प्रकाशक
अमरावसिंह 'मंगल'
व्यवस्थापक—मंगल प्रकाशन
गोविन्दरावजी का रास्ता जयपुर।

प्रथम संस्करण फरवरी सन् १९५८ ई०
१ प्रतियाँ
मूल्य —पाँच रुपया

मुद्रक—
मंगल प्रिंटिंग प्रेस
चूरुकों का रास्ता
जयपुर।

जिनके स्नेहपूर्ण आदेश का
उनके जीवनकाल मे मैं पूर्णतया
' पालन न कर सका
उन
स्वर्गीय विद्याभूषण पुरोहित हरिनारायणजी, बी ए
की पवित्र स्मृति में
सादर समर्पित

अनुवादक

# प्राक्कथन

इतिहास-लेखन की विधिवत प्रणाली हमारे देश में प्राचीन काल से नहीं मिलती इसलिये मुख्यत धार्मिक और साहित्यिक ग्रन्थों मे यत्र तत्र प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक सामग्री से ही सन्तोष करना पडता है। फाहियान, व्हॉनचाग, इब्नबतूता आदि कई विदेशियों द्वारा कालान्तर में की गई यात्राओं के विवरण हमारे इतिहास के लिये अवश्य ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। हमारे देश मे मुस्लिम शासन काल से विधिवत् इतिहास-लेखन की परम्परा प्राप्त होती है। मुस्लिम शासक स्वय इतिहास के प्रेमी होते थे। अपने समय का इतिहास वे स्वय आत्म-चरित्र के रूप मे लिखते थे और अपने दरबारी इतिहासकारों से विशेष व्यय कर लिखवाते थे। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के लिये इन मुस्लिम इतिहासकारों के ग्रन्थ विशेष प्रमाण माने जाते हैं। मुस्लिम इतिहासकारों की भाति युरोपीय इतिहासकारों ने भी हमारे देश का इतिहास विशेष रुचि और श्रम से लिपिबद्ध किया है। जिस प्रकार कर्नल जेम्स टॉड द्वारा लिखित "एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज आफ राजस्थान" अपर प्रसिद्ध नाम "टॉड राजस्थान" राजस्थान के इतिहास का मूल ग्रन्थ माना जाता है उसी प्रकार अलेक्जेंडर किनलॉक फार्बस का "रासमाला" नामक प्रस्तुत ग्रन्थ गुजराती इतिहास का एक लोकप्रिय मूल ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। "रासमाला" के आधार पर न केवल गुजराती भाषा मे वरन् कई अन्य भारतीय भाषाओं में भी विपुल साहित्य का निर्माण समर्थ साहित्यकारों द्वारा किया गया है। रासमाला मे गुजरात और सलग्न प्रदेशों से सम्बन्धित विभिन्न सरस घटनाओं का बडे परिश्रम से सकलन किया गया है। कई घटनाओं का समर्थन अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी हो जाता है और इस प्रकार रासमाला हमारे देश का एक प्रधान इतिहास ग्रन्थ माना गया है।

हिन्दी में इस ग्रन्थ का कोई अनुवाद उपलब्ध नहीं होने से हमारे कई हिन्दी-भाषा-भाषी पाठक इससे अपरिचित रहे हैं। श्री गोपाल नारायणजी बहुरा ने 'रास-माला' का प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद विशेष श्रम से तैयार किया है और इनके द्वारा कई आवश्यक टिप्पणियां भी यथास्थान जोड़ी गई हैं। स्व० पुरोहित हरिनारायणजी के निर्देशन में श्री बहुरा ने यह अनुवाद कार्य किया है। प्रकाशन के पूर्व मैंने अनुवाद को देखा है और टिप्पणियों सम्बन्धी सुझाव भी दिये हैं। मेरे ही सुझावों के अनुसार प्रस्तुत अनुवाद का मिलान गुजराती अनुवाद से किया गया है और उसके अनुसार आवश्यक टिप्पणियां जोड़ी गई हैं। इस प्रकार यह अनुवाद विशेष उपयोगी हो गया है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये श्री बहुराजी हमारी बधाई के पात्र हैं। विश्वास है कि साहित्य-जगत में 'रासमाला' का यह अनुवाद विशेष आदरणीय होगा और हिन्दी पाठक इससे पूर्ण अपेक्षा लाभान्वित होंगे।

•

मुनि जिनविजय

जयपुर ता० १५. २. ५८ ई०

# अनुवादक की ओर से

भारत में जब मुसलमानों की सत्ता अस्त हो गई और ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने अपना शासन जमाया तो इंग्लैण्ड से कितने ही अफसर यहाँ आए और आते रहे। कम्पनी की सेवाओं के निमित्त ऐसे अफसरों की वहीं पर नियमित शिक्षा-दीक्षा भी होने लगी। ये अफसर फौजी और सिविल दोनों ही प्रकार के होते थे और अपनी शिक्षा एवं शासकों की रीति-नीति के अनुसार भारत में आकर शासन-कार्य चलाते थे। इन्हीं अधिकारियों में से बहुत से ऐसे भी आए जो विद्या और कला के प्रेमी होने के साथ साथ यहां के देशवासियों के प्रति सद्भाव रखते थे और उनके रहन-सहन, रीति-रिवाजों तथा यहां की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सामग्रियों में रस लेते थे। अलॅक्जण्डर किनलॉक फार्बस भी ऐसे ही सज्जन अंग्रेजों में से थे। वे 'रासमाला' नामक ग्रन्थ की रचना करके अपनी अमरकीर्ति इस संसार में छोड़ गए हैं।

फार्बस साहब का जन्म लन्दन में सन् १८२१ ई० में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् वे स्थापत्य कलाकारों के एक संस्थान में कुछ समय तक कार्य करते रहे, इसी कारण आगे चलकर भारतीय चित्र-कला में इनकी सुरुचि और सफल रेखा-चित्रांकन में सफलता हमारे सामने आती है। १८४० ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में प्रविष्ट हो कर १८४३ में वे बम्बई आ गए। इसके तीन वर्ष बाद ही वे अहमदाबाद में सहायक कलक्टर नियुक्त हुए और तभी से गुजरात के प्राचीन साहित्य और वीर-काव्यों के अध्ययन में संलग्न हो गए। १८४८ ई० में वढवान के प्रतिभाशाली कवीश्वर दलपतराम डाह्याभाई उनके सम्पर्क में आए। इस मणिकाञ्चन-योग के परिणाम में रासमाला बनकर तैयार हुई। फार्बस साहब ने आवश्यक सुविधाओं का प्रबन्ध किया और

कवीश्वर ने गुजरात में घूम-घूम कर ऐतिहासिक रासों और वार्तादि का संग्रह सम्पन्न किया। महीकांठा में पोलिटिकल एजेण्ट नियुक्त होने के बाद फार्बस साहब राजपूत राजाओं और स्थानीय परिस्थितियों के सीधे सम्पर्क में आए जिनका सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत ग्रन्थ और उनके अन्य लेखों में स्पष्टरूप से व्यक्त हुआ है। सन १८५४ के मार्च मास में फार्बस महोदय छुट्टी पर इंग्लैंड गए और वहां पर इण्डिया आफिस के आलेखों का अध्ययन करने की अनुमति प्राप्त करके रासमाला की तैयारी में लग गए। इसके फलस्वरूप १८५६ ई० में रिचार्डसन ब्रादर्स, २३ कार्नहिल द्वारा रासमाला ग्रंथ के चार भाग दो जिल्दों में प्रकाशित हुए। उसी वर्ष वे भारत लौट आए और सूरत में कार्य-वाहक जज एवं गवर्नर के एजेन्ट नियुक्त हुए। इस समय वे स्वतंत्र विचारक के रूप में बॉम्बे क्वार्टर्ली में लेख लिखने लगे थे। जब भारत में १८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम के बादल घिरने लग तो वे अपने लेखों में ब्रिटिश सरकार की भूलों और गलत नीति का विवेचन करने में भी कभी न हिचकिचाए और प्रजा में आ असन्तोष के कारण उनके ध्यान में आए उन पर स्पष्ट रूप से अपने विचार प्रकट किए। भूस्वामियों और देशी राजाओं के प्रति सरकार के रुख और नीति की उन्होंने मुक्तकर आलोचना की थी। साथ ही देशी राजाओं का भी सामयिक पतनमनी बन में वे न चूके।

स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् फार्बस साहब की नियुक्ति अहमदाबाद के कार्य-वाहक जज के पद पर हुई और तदनन्तर १८६१ ई० में वे गवर्नमेंट के कार्य-वाहक सेक्रेटरी नियुक्त हुए। उसी वर्ष वे सदर अदालत के जज और फिर १८६२ ई० में हाई कोर्ट के जज बनाए गए। सन १८६४ ई० में उनके सहयोगी जज मित्रों ने बताया कि उनके स्वास्थ्य में बहुत खराबी मालूम होती थी। निदान करने पर उनके मस्तिष्क में रोग का होना पाया गया। यह अनुपयुक्त जलवायु वाले स्थान में रह कर २० वर्ष तक अधिक दिमागी परिश्रम करने का परिणाम था। वे वायु परिवर्तन के लिए पूना गए परन्तु कोई लाभप्रद परिणाम न निकला। उनकी

दशा बिगडती गई और ३१ अगस्त को ४३ वर्ष की अल्पायु में ही वे इस असार ससार को छोड कर स्वर्ग सिधार गए।

फार्बस साहब उन अंग्रेजो मे से थे जिन्होंने इस देश मे रह कर यहां के निवासियो, उनके धर्म, साहित्य, सस्कृति, रीति-रिवाजों, भौगोलिक परिस्थितियों, राजवंशों, उनके उत्थान और पतन तथा पारस्परिक सम्बधों के इतिहास का परिश्रमपूर्ण अध्ययन करके अपने देश-वासियों को उनसे अवगत कराने के साथ साथ अपनी साहित्य साधना करते हुए इस देश के विद्वानो को भी अनुसधान का वह मार्ग दिखाया है जिससे पिछली कुछ शताब्दियो मे वे दूर चले गए थे और जिसका अनुसरण करते हुए वे लोग अपने इतिहास और सस्कृति को समझने समझाने मे बहुत कुछ कृत-कार्य हुए हैं। अहमदाबाद मे गुजराती वर्ना-क्यूलर सोसायटी और बम्बई मे गुजराती सभा फार्बस साहब के ही सत्प्रयत्नों से स्थापित हुई थी। इनके द्वारा जो साहित्य सेवा होती रही है वह विद्वानों की जानकारी से दूर नहीं है। गुजराती सभा के तो प्रथम अध्यक्ष भी फार्बस महोदय ही थे और उनके जीवन के अतिम वर्ष मे रायल एशियाटिक सोसायटी की बम्बई शाखा की अध्यक्षता ग्रहण करने के लिए भी उनसे प्रार्थना की गई परन्तु क्रूर और कराल काल ने उन्हें उस महत्त्वपूर्ण पद का उपभोग ही नहीं करने दिया।

गुजरात मे फार्बस साहब का बहुत मान था। वे अपने साहि-त्यिक कार्यों एव कलात्मक अभिरुचि के कारण वहा के समाज मे परम लोकप्रिय व्यक्ति थे। उनकी प्रशसा मे कवि की प्रतिभा भी मुखरित हो उठी और उसने कह दिया—

"करेल कीर्ति मेर, दुनिया मा ते देखवा।
फार्बस रूपे फेर, भोज पधार्यो भूमि मा॥"

अपनी कीर्ति को पराकाष्ठा पर पहुँची हुई देखने के लिए राजा भोज पुन शरीर धारण करके फार्बस के रूप मे पृथ्वी पर अवतरित

हुआ है। इनके पुस्तक प्रेम के विषय में कवि ने कहा है—

"कुम्पा पुस्तक कापिने चेनो न करीश भ्रस्त।
फरतो फरतो फारबस माइक मल्यो गृहस्थ॥

पुस्तक को काटने वाले कीड़े! अब तू पुस्तक को काटकर नष्ट मत कर फार्बस जैसा माइक घर बैठे मिल गया है।

कर्नल जेम्स टॉड ने राजस्थान के क्षत्रियों के सुयश का रक्षण किया ग्रांटडफ ने मराठों के इतिहास पर कार्य किया उसी प्रकार अलक्जेंडर किन्लॉक फार्बस ने गुजरात के इतिहास को 'रासमाला' रचकर रक्षित किया :—

'करनल टॉड कुलीन बिण, क्षत्रिय यश क्षय थात।
फार्बस सम साजन बिना न उद्धरत गुजरात॥'

रासमाला की रचना चारणों तथा भाटों से प्राप्त सामग्री गुजरात के ऐतिहासिक काव्यों रासड़ों वार्ताओं और शिलालेखों के आधार पर हुई है। अतः इसमें केवल शुष्क ऐतिहासिक तथ्यों का संग्रह ही नहीं हुआ है और न इसे मात्र ऐतिहासिक ग्रंथ ही कहा जा सकता है। ऐतिहासिक आधार इस माला का सूत्र है, काव्य इसका सौरभ और वार्ताएं इसकी शोभा बढ़ाने वाले अन्य उपकरण। जिन आधारों को ले कर इस ग्रंथ को रचा गया है उन्हीं के अनुरूप इसके परिणाम भी निकले हैं। ऐतिहासिक शोध में जहां 'रासमाला' के संदर्भ उद्धृत किये जाते हैं वहां गुजराती हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही उपन्यासों नाटकों लघुकथाओं आदि के लिए इसी ग्रंथ से कथा-वस्तु ग्रहण की गई है और की जा रही है।

यों तो गुजरात का इतिहास समस्त भारत के इतिहास से सम्बद्ध है, परन्तु राजस्थान से इसकी सीमा मिली होने के कारण यहाँ की ऐतिहासिक घटनाएं आपस में बहुत कुछ अन्योन्याश्रित हैं। गुजरात

और राजस्थान की भाषा भी बहुत पूर्व एक ही रही है, ऐसा विद्वानों का मत है। आज की राजस्थानी और गुजराती मे भी बहुत साम्य है। इसीलिए रासमाला मे सन्दर्भित कथाए और रास यत्किञ्चित परिवर्तित रूप मे राजस्थान मे भी प्रचलित हैं और वे सर्व साधारण के मनोरञ्जन की सामग्री है।

रासमाला का गुजराती अनुवाद बहुत पहले हो चुका था परन्तु हिन्दीतर भाषाओं को न जानने वाले लोगों को ग्रन्थ के मूल स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता था। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए सन् १९३८ मे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के मत्री श्री रामनारायणजी मिश्र ने स्वर्गीय विद्याभूषण श्री हरिनारायणजी पुरोहित से अनुरोध किया था कि वे रासमाला का हिन्दी अनुवाद अपनी देख रेख मे करवा दे। इसके लगभग एक वर्ष बाद स्वर्गीय श्री पुरोहितजी ने मुझे यह कार्य कर देने के लिए कहा। मैंने उनकी आज्ञानुसार यह काम हाथ मे ले लिया परन्तु दूसरे बहुत से कामो, मेरे पिताजी की मृत्यु एव अन्य जमीन जायदाद आदि के झझटों के कारण, मैं इस कार्य को जल्दी पूरा न कर सका। फिर भी सन् १९४४ मे मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ की दो जिल्दो मे से पहली जिल्द का अनुवाद पूरा कर लिया था और स्वर्गीय पुरोहितजी को दिखा दिया था। उन्होंने सभा को इस विषय मे लिखा परन्तु कागज आदि की परिस्थितियॉ अनुकूल न होने के कारण सभा ने उस समय इस ग्रथ के प्रकाशन का कार्य हाथ मे नहीं लिया। इसके थोडे ही समय बाद दिसम्बर सन् १९४५ मे श्री पुरोहित जी का स्वर्गवास हो गया। मेरे अनुवाद की पाण्डुलिपि मेरे ही पास यथावत पड़ी रही। इसके पश्चात् सन १९४७–४८ मे मैंने सभा को पत्र लिखा परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला।

सन् १९५० मे राजस्थान सरकार ने राजस्थान सस्कृत मडल की स्थापना की और देश के सुविख्यात शोध विद्वान पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय जी उक्त मडल के सदस्य रूपेण जयपुर आये। कुछ ही दिनों बाद राजस्थान सस्कृत मडल के अन्तर्गत राजस्थान पुरातत्त्व मदिर

की स्थापना हुई और श्री मुनिजी इसके सम्मान्य संचालक के पद पर प्रतिष्ठित हुए। गुजरात प्रांत से श्री मुनि जी के जो सम्बन्ध हैं वे सब विदित हैं। अतः मैंने यह अनुवाद श्री मुनिजी को दिखाया और उन्होंने मूल पुस्तक को अपने हाथ में रखकर मेरे अनुवाद को नियम से कई दिनों तक सुना जहाँ नामों और स्थानों आदि की भूल रह गई थी उसे ठीक कराया तथा कितने ही स्थलों पर अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर टिप्पणियां लिखाईं। इसके अनन्तर श्री मुनिजी महाराज ने मुझे दीवान बहादुर रणछोड़ भाई उदयरामकृत इस ग्रन्थ के गुजराती अनुवाद (फार्बस गुजराती सभा द्वारा सन् १६२२ में प्रकाशित) का पता बताया और उक्त पुस्तक में से आवश्यक टिप्पणियां देने के लिए परामर्श दिया। मैंने उक्त पुस्तक के दोनों भाग मंगवा कर उनमें से आवश्यक स्थलों पर टिप्पणियां भी हिन्दी रूपान्तर करके लगा दीं। गुजरात के इतिहास-विषयक अन्य ग्रन्थों में से भी यथाशक्ति जो सूचनाएँ प्राप्त हो सकी उन्हें पाद टिप्पणियों में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रंथ पर जितना कार्य होना चाहिये था वह मैं कर सका हूँ। यह सब कार्य सन् १६४४ तक पूरा हो गया था परन्तु इस पुस्तक के छपने का कोई अवसर नहीं आया।

अभी कोई ५-६ मास पूर्व स्वस्तिक पुस्तक सदन जयपुर के संचालक श्री उमराव सिंहजी 'मङ्गल' गुरू से मिले और रासमाला के हिन्दी अनुवाद को देखा। इन उत्साही अध्यवसायी कार्यकुशल और विद्याप्रेमी मित्र ने इस अनुवाद को अपनी प्रकाशन योजनाओं में सम्मिलित कर लिया और बड़े परिश्रम एवं लगन के साथ श्रम करके यह पूर्वार्द्ध का प्रथम भाग पाठकों को प्रस्तुत कर रहे हैं। यद्यपि सहज सौजन्यवश पुस्तक के सम्पादक की जगह श्री मङ्गल जी ने मेरा नाम दिया है परन्तु वास्तव में इसकी छपाई गेट अप और आयोजना आदि के कर्ताधर्ता यही हैं। अतः एतन्निमित्त पाठकों के सभी धन्यवाद इन्हीं को प्राप्य हैं, हाँ जो त्रुटियाँ रह गई हैं, और जो थोड़ी भी नहीं हैं, वे सब मेरी हैं।

अनुवाद के विषय में मुझे केवल इतना ही कहना है कि इतिहास शास्त्र और भाषा पर अधिकार न होते हुए भी गुरुजनों की आज्ञा पालन करने के लिए ही मैंने यह कार्य करने का साहस किया है। यह कैसा भी हुआ हो परन्तु इससे मूल ग्रन्थ के महत्त्व मे कोई कमी आने वाली नहीं है। यदि इसके द्वारा वे लोग जिनकी मूल ग्रथ तक गति नहीं है इसके किसी अश का भी आस्वादन कर सकेंगे तो मैं अपने प्रयास को सफल मानूंगा। फिर, ऐसे ग्रन्थों का अब हिन्दी मे अनुवाद हो जाने की आवश्यकता पर भी दो मत नहीं हैं। अन्त में, मुनि श्रीजिन विजयजी के प्रति उनके सत्परामर्शो और मार्गदर्शन के लिए पुन कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य मानता हूँ कि जिनके विना इस पुस्तक को यह रूप प्राप्त न होता। श्री मगलजी एव अन्य जिन मित्रों ने इसके प्रकाशन मे सोत्साह मेरा सहयोग दिया है उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ। जिन विद्वानों ने अपना अमूल्य समय देकर मुद्रित पृष्ठों को पढा है तथा सम्मतियाँ प्रदान की हैं उनका भी मैं आभारी हूँ।

श्री महाशिवरात्रि, सम्वत् २०१४ वि०

गोपाल नारायण

# ग्रन्थकर्त्ता की प्रस्तावना

विद्वानों और इतिहासज्ञों के रुचिकर विषय 'प्राचीन भारत' की ओर लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित है, इससे किञ्चित् निम्न श्रेणी के कार्य अर्थात् मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अनुसंधान के प्रति अपेक्षाकृत थोड़ा प्रयत्न हुआ है। यद्यपि अशोक और चन्द्रगुप्त के समय की शोध करना एक ऊँचा विषय है परन्तु यह बात किसी दशा में भी नहीं भुलाई जा सकती कि उपर्युक्त समय से अल्पतर प्राचीन काल वर्तमान हिन्दुस्तान से व्यावहारिक रूप में अधिक सम्बद्ध है। वस्तुतः वर्तमान भारत से आरम्भ करके तत्काल पूर्ववर्ती समय को शोध के लिये ग्रहण करने से हमको एक दृढ़ आधार प्राप्त हो जाता है क्यों कि जब तक इस समय का वृत्तान्त अन्धकाराच्छन्न रहेगा तब तक उसके पृष्ठ में भासमान प्रकाश को प्राप्त कर लेना संशयात्मक ही रहेगा फिर चाहे वह प्रकाश कितना ही द्युतिमान् और स्पष्ट क्यों न हो। कितनी भी अवधि तक इस हिन्दुओं के देश में निवास करने वाले विदेशी का ध्यान यहाँ के निवासियों के रीति रिवाजों और रहन सहन की ओर गए बिना नहीं रह सकता जो प्रत्यक्ष ही उस समय की सामाजिक अवस्था के अवशिष्ट प्रतीक हैं जिसको बीते हुये अभी अधिक समय नहीं हुआ है। ये ऐसी आकृतियाँ हैं जो किसी भरे पूरे जलपोत के प्राति-भासिक आकार के समान आवरणयुक्त वातावरण में चमत्कारिक रीति से आकृति ग्रहण करके विविधाकृतियों में परिलक्षित होती हैं। (जैसे कि इटली और सिसली को पृथक् करने वाले प्रशान्त समुद्रीय अञ्चल में जहाजों के प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं और इन दीर्घीकृत आड़े प्रतिबिम्बों से मूल वस्तुओं का आभास ग्रहण किया जाता है।)

जिन लोगों से राज्य छीन कर मुसलमानों ने अपनी सत्ता स्थापित की थी उन्हीं का स्पष्ट और दृढ प्रभाव अवशिष्ट मुसलमान-कालीन स्मृति-चिन्हों मे परिलक्षित होता है और इन्हीं के आधार पर हम इस तथ्य पर पहुचते हैं कि आर्यावर्त के मैदानों मे अनेक वैभवशाली राजधानियों के नगर पश्चिमी पर्वतों की ओर से हुए मुसलमानी आक्रमणों से पूर्व वर्तमान थे। इस प्रकार उस पूर्वकालीन वैभव के वास्तविक चिन्ह हमें उपलब्ध होते है और उनके आधार पर हम प्रतापपूर्ण कन्नौज, रहस्यमय योगिनीपुर और कल्पना के आधारभूत भोज की राजधानी धारा नगरी के रेखाचित्र तो बना ही सकते हैं। ऐसा नहीं है कि जिन नगरों का हमने उल्लेख किया है वे ही उस समय अस्तित्व में थे अपितु इनकी श्रेष्ठता को मान्य करने वाले प्रदेशों की अपेक्षा अधिक विस्तृत प्रदेश पर कल्याण के राजाओं ने अपने राज्यका प्रसार किया था और वह परमार, चौहान व राठोड़ों की पक्ति में परिगणित अणहिलपुर के सोलकी के राज्य से कम नहीं था।

इस पुस्तक में हमने वनराज के नगर की कथा लिखी है। इस नगर का नाश होने के पश्चात् वहीं पर कितने ही छोटे-छोटे हिन्दू राज्य और सस्थान स्थापित हो गए थे जिनमे से बहुत से तो आजतक विद्यमान हैं। इन्हीं की ओर इस पुस्तक में पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। हम इस बात को भलीभांति समझते हैं कि इस पुस्तक का विषय केवल भारतीय ही नहीं है अपितु एक प्रान्त विशेष तक परि-सीमित है इसलिये यह सर्व साधारण के लिये रुचिकर होगा, इसमे सदेह है। फिर, इसका विवरण लिखने में मैं अपनी सीमित परिस्थि-तियों से भी अनजान नहीं हूँ, तथापि मैं आठ वर्ष तक गुजरात में रहा हूँ और ताप्ती के तट से बनास नदी के किनारे तक बसे हुये भिन्न भिन्न प्रकार के लोगों के निजी एव सार्वजनिक सम्पर्क में आया हूँ। इससे मुझे इस कार्य में किसी अश तक सफलता मिलने की सम्भावना है।

मैं प्राच्यविद्या का ज्ञाता नहीं हूँ, इस बात को आरम्भ में ही स्वीकार करते हुये, यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मुझे हिन्दू विद्वानों

का सहयोग प्राप्त हुआ है; इससे ग्रन्थ-संकलन की कुशलता में तो किसी प्रकार की कमी आ सकती है परन्तु पुस्तक का महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं हो सकता।

व्यापारी लोग प्रायः साहित्यिक विषयों के प्रति निस्पृह होते हैं परन्तु स्वर्गीय श्री धीरचंदजी भंडारी जो मारवाड़ के निवासी तथा जैन धर्म के पालन करने वाले थे संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं के कुशल जानकार थे। उन्होंने मुझे प्रबन्धचिन्तामणि की पुस्तक देकर ही उपकृत नहीं किया अपितु इसका अनुवाद करने में भी साहाय्य प्रदान किया जिसके बिना यह कार्य होना संभव नहीं था।

सोरठ की सीमा पर स्थित वढवान नगर के निवासी श्री दलपतराम डाह्याभाई ब्राह्मण का तो मैं और भी अधिक आभारी हूँ।

मुझे गुजरात में रहते अधिक समय नहीं हुआ था कि एक बार सरकारी काम के प्रसंग में एक पत्र मेरे सामने रक्खा गया जिस पर दो भाटों की सही के साथ ऐसा ⊐⊏⊐> कटार का निशान भी बना हुआ था। इसको देखकर मेरी उत्कण्ठा जागृत हुई और मैंने पूछ-ताछ करके इस जाति के लोगों से यथाशक्य सम्पर्क स्थापित किया। भाट लोगों के ग्रन्थ भण्डारों की झांकी प्राप्त करके मेरी जिज्ञासा शान्त न होकर अधिक बलवती हो गई। जिन लोगों के पास ग्रन्थों का भण्डार था और जिनमें सम्मिलित होने की मेरी इच्छा थी उनको समझाने के लिये तथा भण्डार का ताला खुलवाने के लिये भाटों की बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक था, इस कार्य के लिये मुझे किसी देशीय मनुष्य की सहायता प्राप्त करना परम आवश्यक था। सौभाग्य से तुरंत ही 'कवीश्वर' का नाम मेरे देखने में आया, क्योंकि दलपतराम को उनके देश के लोगों ने यह उपाधि प्रदान की थी। इस प्रकार ई० सन् १८४८ में ये सज्जन उपयोगी सहायक के रूप में मेरे पास आये और तभी से मेरे साथ रहने लगे। हमारे प्रयत्नों में किंचित् सफलता के दरान हुए, इससे बहुत पहिले ही मैंने इनको गुजरात के विभिन्न भागों में

घूमकर रास, वार्त्ताएं और लेख एकत्रित करने की सुविधाएं और साधन देने का प्रबन्ध कर दिया था। लोगों के अज्ञान, ईर्ष्या और लोभवृत्ति के कारण जो बहुत से विघ्न हमारे मार्ग मे आये उनका यदि मैं यहा पर वर्णन करू तो पाठको का मनोरञ्जन तो अवश्य होगा परन्तु वे उससे ऊकता भी जावेंगे। जो थोड़ी सी बाते आगे लिखी जा रही हैं उन्हीं मे पाठक इनका अनुमान लगा सकेंगे। कुछ लोगो की धारणा थी कि मुझे सरकार ने छुपे हुए खजाने ढूंढने के लिये नियुक्त किया था, कुछ लोग सोचते थे कि सरकार उनकी जमीनें खालसा करना चाहती थी और मेरा यह कार्य उनके अधिकारो मे त्रुटियाँ ढूढने की दिशा मे हो रहा था, मुझे ऐसी भी सूचनाये दी गई कि किसी वश विशेष के भाट की बही मे से नकल करवाने का उचित पारिश्रमिक उसको एक गाव का पट्टा कर देना होगा। अन्त मे, सरकारी कार्यवश मैं बाघेला झाला और मोहिलवश के ठाकुरों के सम्पर्क मे आया और मुझे तुरन्त ही मालूम हो गया कि भाटो और चारणो की खुशामद करने और उनको लालच देने की अपेक्षा इन परपरागत सम्मान्य ठिकानों के स्वामियों से प्राप्त होने वाली थोडी सी भी सूचना अधिक लाभप्रद और उपयोगी सिद्ध होगी। मैं महींकाटा का पोलिटिकल एजेन्ट था इससे उक्त विचार के अनुसार राज्य-कर्मचारियों की सहायता से मैं इसी प्रान्त मे अपना काम पूरा करने मे समर्थ हुआ, इतना ही नहीं अपितु गायकवाड के राज्य से भी मुझे ऐसी ही सुविधायें प्राप्त हो गई (यद्यपि पहिले तो एक बार वहा के अधिकारियों ने इसको अच्छा नहीं समझा था) और बडौदा सरकार की ओर से पाटण के सूबेदार बाबा साहिब की कृपा से मुझे द्व्याश्रय की एक प्रति और अन्य बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई। ये वस्तुयें मुझे अणहिलपुर से मिली थीं जो ऐसी आकर्षक वस्तुओं का केन्द्र है।

मेरा शोधकार्य प्राय. बोझिल दफ्तरी कर्त्तव्यो को पूरा करने से बचे हुए समय मे चलता था। मेरी शोध जैन ग्रन्थों और भाटों की बहियों तक ही सीमित नहीं थी, अपितु मैंने हिन्दुओं के प्रत्येक प्रचलित रीति रिवाज का भी ——— अध्ययन किया और विशेषत

उन बातों का जो मेरे द्वारा संगृहीत शोध-सामग्री और पुस्तकों में उल्लिखित थी। मैंने देवस्थानों कुओं बावड़ियों और छतरियों पर लगे हुए शिलालेखों की नकलें करवाईं तथा हिन्दू शिल्पचातुर्य के प्रतीक प्रत्येक खंडहर का भी यथाशक्य निरीक्षण किया। इस अन्तिम प्रकार के प्रयत्नों में अहमदाबाद के नवीन जैन मन्दिर के सूत्रधार प्रेमचन्द सलाट ने मेरी बहुत सहायता की तथा त्रिभुवनदास और सुन्दर जगाराम नामक दो बुद्धिमान सुथारों का भी मुझे पर्याप्त साहाय्य प्राप्त हुआ।

इसी बीच में गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी की स्थापना हुई और हमारे कविवर ने जो ऐसे कामों के लिये सदैव तत्पर रहते थे दो निबन्धों पर पारितोषिक प्राप्त किया। ये निबन्ध 'गुजरात में प्रचलित अन्धविश्वास' और "हिन्दू जातियाँ' विषयों पर लिखे गये थे। इन दोनों ही निबन्धों का मैंने प्रस्तुत पुस्तक के चौथे *भाग* में विस्तृत उपयोग किया है।

मुझे थोड़े समय के लिये इंगलैण्ड जाना पड़ा और वहाँ पर ईस्ट इण्डिया कंपनी की कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ( *संचालक मण्डली* ) ने इण्डिया हाउस के कागजों को देखने की आज्ञा प्रदान करदी जिससे मैं अपने संग्रह की उपयोगी सामग्री का मिलान करके इस कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हुआ। अपने परिश्रम के फलस्वरूप इस ग्रन्थ को अब मैं जनता की सेवा में प्रस्तुत करता हूँ। यह कैसा भी बन पड़ा हो परन्तु इससे स्थानीय अधिकारियों को कुछ सहायता मिलेगी और विलायत में बैठे हुए मेरे कुछ देशवासियों का भी उनके जैसी ही सुगमता "गुजरात के हिन्दुओं' की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने में सफल होगा ऐसी मेरी आशा है।

मेरा यह संग्रह विविध रासों में से संकलित है अतः मैंने इसका *नाम* रासमाला रखा है।

---

# विषय-सूची

विषय पृष्ठ

## प्रकरण १

### गुजरात की स्वाभाविक सीमा-शत्रुञ्जय-वलभीपुर ।



## प्रकरण २



## प्रकरण ३

### वनराज और उसके क्रमानुयायी-अणहिलपुर का चावडा वंश



## प्रकरण ४

### मूलराज सोलंकी

## प्रकरण ५

### चामुण्ड, वल्लभ–दुर्लभ–सोमनाथ का नाश



## प्रकरण ६

### भीमदेव (प्रथम) १०२२ ई० से १०७२ ई० तक ५० वर्ष



## प्रकरण ७

### राजाकर्ण सोलंकी–मीनलदेवी का कार्य भार, सिद्धराज

# रासमाला

## प्रकरण १

### गुजरात की स्वाभाविक सीमा—शत्रुञ्जय—वलभीपुर

गुजरात प्रान्त पश्चिमी हिन्दुस्तान में है और यह दो भागों में विभक्त है। इनमें से एक तो खण्डस्थ भाग है और दूसरा द्वीपकल्पस्थ। इस द्वीपकल्पस्थ भाग का बहुत सा हिस्सा ओमन (उम्माॅ दरिया) के किनारे के सामने और सिन्ध तथा मकरान के किनारे के नीचे अरब-समुद्र में निकला हुआ है। साधारणतया हिन्दू लोग गुजरात के खण्डस्थ भाग अथवा गुजरात प्रधान की दक्षिणी सीमा नर्मदा नदी को ही मानते हैं परन्तु फिर भी इस प्रान्त की भाषा नर्मदा से लेकर बम्बई में बहुत दूर तक दमाऊ खास या सेन्ट जान (सिंजान) तक बोली जाती है। विन्ध्याचल और अरावली पर्वत को मिलानेवाली पहाड़ियों की श्रेणी नर्मदा नदी के किनारे से उत्तर की ओर बढ़कर इस प्रान्त की उत्तर-पूर्वीय सीमा बनाती है और मालवा, मेवाड़ तथा मारवाड़ को गुजरात से पृथक् करती है। इसकी पश्चिमी तथा वायव्यीय सीमा कच्छ की खाड़ी और प्राय पानी से भरा रहनेवाला खारी रण बनाते हैं, दक्षिणी और नैऋर्त्य कोण वाले किनारे सदा खम्भात की खाड़ी और अरब समुद्र के जल से प्रक्षालित होते रहते हैं। इस सीमा को देखते हुए इस प्रान्त का वायव्य कोण ही सब से अधिक अरक्षित है

जहाँ कच्छ के रण और आबू पहाड़ की तलहटी के बीच में एक सपाट मैदान आ गया है। गुजरात पर होने वाले सभी हमले प्रायः इधर ही से हुए हैं।

गुजरात के उत्तरपूर्व में आनेवाले पर्वत, जिनकी अनेक शाखाएं प्रान्त के समीपतर भागों में फैली हुई हैं सीधे ऊँचे नीचे और दुरूह हैं। पहाड़ियों के स्कन्धों और इन पर्वतों के शिखरों के बीच की घाटियाँ जङ्गलों से हरी भरी हैं। इन जङ्गलों की सघन छाया में कितनी ही नदियाँ बहती हैं जिनके ऊँचे ऊँचे किनारे, लम्बे, गहरे और ऊबड़ खाबड़ खड्डों से कटे हुए हैं तथा इन (किनारों) पर झाड़ों और वनस्पति की अधिकता के कारण घने और दुर्गम्य जङ्गल खड़े हो गए हैं। जैसे जैसे इस मैदान की ओर आगे बढ़ते हैं इन्हें जङ्गल कम नजर आने लगते हैं नदियों के पाट अधिक चौड़े होते जाते हैं और उनकी गति मन्द होती जाती है। चलते चलते ये नदियाँ साबरमती माही अथवा नर्मदा में से किसी एक से संगम करके अन्त में खम्भात की खाड़ी में आ मिलती हैं। गुजरात का बहुत सा दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश जिसका विस्तार लगभग साठ मील है कच्छ के रण से नर्मदा के किनारे तक तथा द्वीप के सीमाभाग पर खम्भात की खाड़ी के उत्तर-पूर्वीय किनारे तक फैला हुआ है। यह प्रदेश खुला हुआ और उपजाऊ मैदान है। इस भूभाग का अधिकांश और मुख्यतया साबरमती और माही के बीच का भाग सघन पेड़ों की झुरमुटों से ढका हुआ है। इनमें अधिकतर आमों के तथा दूसरे वृक्ष हैं जो सदा फलों से लदे रहते हैं और जिनके रंग बिरंग चमत्कार पत्ते एक अद्भुत छटा दिखाते रहते हैं। एक महाराष्ट्र लेखक लिखता है कि सैकड़ों मीलों तक फैला हुआ यह प्रदेश इंगलिस्तान के अमरावों के अच्छे से अच्छे बगीचों

से भी बढकर होने का दावा कर सकता है। पहाडी के अधिकांश भाग में खेती-बाडी नहीं होती परन्तु जहाँ जहाँ पर थोडी बहुत खेती होती है वह भाग उपजाऊ जान पडता है। फसलों से भरे हुए खेत सरस और सुरक्षित दिखाई पडते हैं, आमों और अन्य फलदार वृक्षों की बहुतायत असाधारण जान पडती है। इस भाग की ऊँची नीची सतह और पहाडी तथा जगली दृश्यों की अधिकता के कारण ही मिस्टर एलफिन्स्टन ने लिखा है कि हिन्दुस्थान का और कोई प्रदेश इतना फलों फूलों से भरा पूरा और रमणीय नहीं है

कच्छ के छोटे रण के किनारे से लगभग २० मील की दूरी पर खारी पानी की झील शुरू होती है जो ठेठ खम्भात की खाडी के किनारे तक जा पहुँची है। यह झील मुख्य गुजरात और सोरठ तथा काठियावाड के बीच की सीमा बनाती है। सम्भव है पुराने जमाने में ये दोनों विभाग एक दूसरे से और भी अधिक भिन्न हों और सोरठ वास्तव मे एक पृथक् द्वीप ही रहा हो। [१]

खम्भात की खाडी के पश्चिमी किनारे पर भावनगर से उत्तर की ओर कुछ मील दूर, मॉसी रग के कड़े पत्थरों की एक पर्वत श्रेणी है जो शान्त सरोवर की सतह जैसे सपाट मैदान में स्थित होने के कारण समुद्र की लहरों में झूलते हुए द्वीपगुच्छ के समान दिखाई पडती है। चमारडी ग्राम पर झुकी-सी हुई इन पहाडियों पर से ऐसा आनन्ददायक दृश्य दिखाई देता है कि जिसकी समानता भारत के थोडे ही ऐतिहासिक एव दतकथाओं मे आए हुए प्राकृतिक वर्णनों में उपलब्ध होती है।

---

(१) इस विषय की अधिक जानकारी के लिए 'बाम्बे ब्रान्च ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल के विभाग ५ वें के पृष्ठ १०९ म मेजर फूलर जेम्स का लेख और 'एल्फिन्सटन्स इडिया' के सन् १८४१ ई० के सस्करण के प्रथम भाग के पृष्ठ ५५८ को देखिए।

ऐसी किम्वदन्ती प्रचलित है कि किसी समय चमारडी ग्राम की चट्टानें समुद्र के जल से प्रक्षालित होती थीं इसकी पुष्टि इस बात से हो जाती है कि बहुत सी चट्टानें अब भी समुद्र की लहरों के टकराने से पोली हुई नजर आती हैं। इन चट्टानों के बीच में खड़े होकर देखनेवाले को पूर्व की ओर सुदूर क्षितिज तक फैला हुआ एक काली मिट्टी का मैदान दिखाई पड़ता है जो प्रतिवर्ष गेहूँ और कपास की फसलों से हरा भरा रहता है। यह मैदान खाड़ी के गहरे भाग के निकटतम तथा ऊजड़ और खारी हिस्से को छोड़ कर इसके समतल भाग पर पूर्व की ओर रास्ता बनाने का व्यर्थ सा प्रयत्न करने वाले जलप्रवाहों के द्वारा जगह जगह पर कटा हुआ दिखाईपड़ता है। गरमी के दिनों में मन्द गति से अपने टेढ़ेमेढ़े एवं पतले मार्ग पर आगे बढ़ती हुई तथा वर्षा ऋतु में प्रबलवेग से इधर उधर मार्ग निकाल कर समुद्र की ओर दौड़ती हुई परम शोभनीय और प्रतापशाली वलभी दुर्ग के प्राकारों को प्रक्षालित करती हुई नदी भी यहाँ से स्पष्ट दृष्टिगत होती है। यहाँ भावनगर की उस खारी पानी की खाड़ी अथवा प्राचीन छोटी नदी का भी पता चलता है जिसमें कभी रहस्यभरे कनकसेनचरा के व्यापारी जहाजों द्वारा समुद्र की ओर जाया करते थे। आज भी इस नदी में यद्यपि छोटे मोटे जहाज चलते हैं परन्तु यह अपनी प्राचीन विशालता के कुछ चिन्हों को प्रकट करती हुई भावनगर (जिससे इसने अपना नाम पाया है)—के पास होकर बहती हुई गोघा बन्दर को पार करके वेग से पीरम की द्वीपकक्षा में लीन हो जाती है जो सोरठ (मधाम) को पीरम के चमत्कारी एवं मनोरंजक टापू से पृथक करती है। इसी मैदान में चमारडी से कुछ मील उत्तर की ओर आधुनिक वला नामक ग्राम (जो आज कल गोहिल राजपूतों

के अधिकार मे है ) तथा प्राचीन नगर वलभीपुर के खडहर विद्यमान हैं। कुछ आगे चल कर मानों दृश्य की ऐतिहासिकता का प्रतिपालन करती हुई एक मीनार खडी है जिससे लोलिआना नगर का पता चलता है। इसी स्थान से कितने ही वर्षों तक मुसलमान बादशाहों के सूबेदार प्रान्त का कर वसूल किया करते थे। एक टूटी हुई मसजिद के पास ही मरहठों ने एक अच्छा-सा मन्दिर बनवाया है जिसके सामने एक अशुद्ध और अस्पष्ट लेख खुदा हुआ है। "यहाँ दामाजी गायकवाड तन्मय होकर श्री शिवजी के चरणचिन्हो का पूजन करते है। सम्वत १७६४" ( सन् १७३८ ई०)।

चमारडी की पहाडियों पर खडे होकर यदि दर्शक दक्षिण की ओर दृष्टि डाले तो उसे पर्वतश्रेणियों की एक चित्र-विचित्र रेखा-सी दिखाई पडेगी। प्रायद्वीप के भूभाग पर तथा पीरम के दक्षिण की ओर कुछ मीलों तक खोखरा की पहाडियाँ खडी हुई है। पास ही, पश्चिम की ओर 'सिहनगर' ( सीहोर ) को चट्टानों की श्रेणियों ने घेर रक्खा है। आगे चल कर सुदर पश्चिम में पथरीली चोटियों पर बने हुए राजप्रासादों के मुकुट को धारण करता हुआ, पालीताना की बुरजों और मीनारों से भी ऊँचा, पवित्र, शत्रुञ्जय पर्वत निद्रित मी अवस्था में खडा दिखाई देता है।

जैनियों के २४ तीर्थङ्करों में से प्रथम आदिनाथ [१] ने शत्रुञ्जय पर्वत पर तपस्या की इसीलिए यह पवित्र माना जाता है—यह पर्वत समुद्र की

---

[१] इनके माता पिता के नाम और लक्षण आदि प्रतिमा के नीचे बनी हुई एक पट्टी पर लिखे रहते हैं जिससे यह मालूम हो जाता है कि यह किस तीर्थङ्कर की प्रतिमा है।

जिस प्रकार हिन्दू लोग चार युग ( सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ) मानते

समुद्र से २००० फीट ऊँचा है। यहाँ पर आनेवाले यात्री को पर्वत की तलहटी में होकर पालीताना नगर को पार करते हुये इस मार्ग से जाना पड़ता है जिसके दोनों ओर बड़ के घने वृक्षों की कतार उसको धूप की तेजी से बचाने के लिए खड़ी हुई है। पर्वत के स्कंध पर दो तीन मील की कठिन चढ़ाई का एक रास्ता है जिसके दोनों ओर थोड़ी थोड़ी दूर पर बहुत से विश्रामस्थान कुण्ड और तालाब बने हुये हैं। इस मार्ग में छोटे छोटे मन्दिर भी हैं। इन चैत्यों में तीर्थङ्करों के पवित्र पद-चिन्ह अङ्कित हैं। इसी मार्ग से होता हुआ यात्री अन्त में रंग बिरंगी चट्टानों से बनी हुई उस शोभ-कम्य सुन्दर पहाड़ी पर पहुँचता है जहाँ जैन धर्म के प्रधान मन्दिर बने हुये हैं। इस पहाड़ी के दो शिखर हैं जिनको एक घाटी पृथक करती है। इस घाटी का बहुत सा भाग देवालयों और लम्बी छतों तथा दालानों से युक्त है। चारों ओर परकोटे पर तोपें रखने के स्थान बने हुए हैं। यह परकोटा कितने ही छोटे २ किलों में विभक्त है और बहुत से मन्दिर तो स्वतः ही किले जैसे बने हुये हैं। दक्षिण शिखर पर कुमारपाल और विमलशाह द्वारा बनवाये हुये मध्यकालीन मन्दिर हैं। यहाँ खोडियार देवी की प्रतिमा व पवित्र तालाब के पास ही जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित है जिसके चरणों में एक पवित्र बैल चट्टान में खुदा हुआ है। उत्तर शिखरपर एक अत्यन्त विशाल और प्राचीन देवालय है जिसके विषय में कहा जाता है कि दन्तकथाओं में प्रसिद्ध सम्प्रतिराज ने इसे बनवाया था। शत्रुञ्जय पर प्राचीन देवालय बहुत

---

१ इसी प्रकार [illegible] भाग [illegible] चारा मानते हैं। तीसरे खाते में ऋषभ चरित के अंतर्गत [illegible] कुल में नाभि नामक राजा हुआ जिसके मरुदेवी नाम की रानी थी। [illegible] ऋषभदेव जैनों के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ हुए। ऋषभदेव से [illegible] जैनों की, अग्नि की उत्पत्ति नहीं हुई थी [illegible]

कम है और समय समय पर जीर्णोद्धार होते रहने के कारण उनके आस पास खडे हुए नये मन्दिरों में से उन्हे पहचान लेना कठिन है— परन्तु आधुनिक मन्दिर अपने अपने 'वृन्द' के नाम से पहचाने जा सकते हैं। भारतवर्ष भर मे सिन्धु नदी से पवित्र गगा तक, हिमालय के बर्फीले मुकुटधारी शिखरों से रुद्र की सहज-अर्द्धाङ्गिनी कन्याकुमारी तक शायद ही कोई ऐसा नगर हो जहाँ से एक व अधिक बार पालीताना पर्वत पर विराजमान देवालयो के लिए बहुमूल्य भेंट न आई हो। कितने ही रास्तों और प्रागणोंवाले भव्य परकोटों से घिरे हुए आधे महलों जैसे, आधे किलों जैसे सगमर्मर के बने हुये ये जैन मन्दिर, साधारण मनुष्य की पहुँच के बाहर इस एकान्त मे विशाल पर्वत पर स्वर्गीय प्रासादों के समान खडे हुए हैं। प्रत्येक मन्दिर के स्वल्पप्र काश युक्त गम्भीर कक्षों में आदिनाथ, अजीतनाथ तथा अन्य तीर्थङ्करों की एक अथवा अधिक मूर्तियाँ विराजमान हैं। शान्त और उदासीन वृत्ति धारण किये हुये अलबस्तर की बनी हुई इन मूर्तियों के अङ्ग प्रत्यङ्ग चादी के दीपकों के मद प्रकाश मे दिखाई पडते हैं—अगरबत्तियों से वायु सुगन्धित होती रहती है—और सुनहरी गहनों तथा रग-बिरगी

---

वृक्ष नहीं था और ससार में विद्या और चतुराई के व्यवसायों का नाम भी न था। यह सब ऋषभदेव ने प्रकट किए, उन्होंने मनुष्यों को तीन प्रकार के कर्म सिखाए— (१) असि कर्म अथवा युद्ध और राजविद्या, (२) मसीकर्म अथवा शास्त्रविद्या और (३) कशीकर्म (कृषिकर्म) अथवा खेतीबाड़ी का काम। इसके बाद से ही लोग नियमित व्यवसाय करने लगे। अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी ने विक्रमीय सवत् से ४७० वर्ष पूर्व और ईसा से ५२६ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया। इसके तीन वर्ष आठ मास और दो सप्ताह बाद से पांचवें आरे का आरम्भ हुआ है। यह २१ हजार वर्ष तक चलेगा।

ऋषभदेव की स्थापना लाट देशातर्गत भृगुकच्छ (भडौच) के पास नर्मदा के

पोशाकों से सुसज्जित श्रद्धालु स्त्रियाँ समवेत मधुर स्वर से भजन गाती हुई—चिकनी फर्श पर नंगे पैरों धीरे धीरे प्रदक्षिणा करती हैं। वास्तव में शत्रुञ्जय को किसी पूर्वीय अद्भुतकथा (Romance) के उस कल्पित भवन से उपमा भी जा सकती है जहां के निवासी अकस्मात् संगमर्मर की मूर्तियों में बदल गये हों और उनको अपने हाथों से स्वच्छ एवं स्निग्ध रखने के लिए अप्सरायें नियुक्त की गई हों जिनकी भावनापूर्ण देवस्तुतियों की मधुर ध्वनि पवन में गूँजती रहती है।

पालीताना पर्वत के शिखर से पश्चिम की ओर देखने पर दिन के स्वच्छ प्रकाश में तीर्थङ्कर नेमीनाथ की तपस्या से पवित्र गिरनार पर्वत दिखाई देता है। उत्तर की ओर सीहोर के आस पास की पहाड़ियों से वलभीपुर के खण्डहरों के दृश्य को देखने में कोई अड़चन नहीं पड़ती। आदिनाथ के पर्वत (शत्रुञ्जय) की तलहटी में सघन वृक्षों की पंक्तियों में से धूप में चमकती हुई पालीताना की मीनारें सामने ही दिखाई पड़ती हैं। रमत नदी के शत्रुञ्जयी टेढ़े मेढ़े पूर्वीय प्रवाह के साथ साथ चलती हुई दर्शक की दृष्टि सहज ही में क्षण भर देवालयों का मुकुट धारण करनेवाले तलाजा की सुन्दर चट्टानों पर ठहर जाती है और आगे चल कर दूसरी ओर उस स्थान पर भ्रमण करने लगती है जहां प्राचीन गोपनाथ और मधुमावती (महुवा) को समुद्र अपनी लहरों से प्रक्षालित करता है।

शत्रुञ्जय जैन धर्म का अति प्राचीन और पवित्र स्थान है। यह सब तीर्थों में अग्रणी समझा जाता है और अनन्त निवृत्ति (निर्वाण) के साथ सम्बन्ध जोड़नेवालों के लिए विवाह मण्डप के समान है।

---

वह पर वज्रसेन मुनि ने शत्रुञ्जय तीर्थ पर की। यह स्थान बाद में शत्रुञ्जय-विहार कहलाने लगा था।

ऐसा कहा जाता है कि अंग्रेजों के पवित्र स्थान 'आयोना' [१] की तरह प्रलयकाल में भी इसका नाश नहीं होगा। प्रायः हिन्दुस्थान के सभी भागों से इस पवित्र स्थान पर आकर तपश्चर्या व धर्मकार्य करनेवाले, तथा इस भूमि पर सम्पन्न होने के कारण अधिक फलप्रद अनुष्ठानों द्वारा मुक्ति एव निर्वाण प्राप्त करनेवाले पापमुक्त राजाओं की कितनी ही बडी बडी अद्भुत कथाएँ प्रचलित हैं। इस चमत्कारिक स्थान का यथार्थ वर्णन करना तीर्थङ्करों के परम श्रद्धालु भक्त के लिए भी कठिन है इसलिए हम पाठकों को न तो कपर्दी यक्ष, कु डराज, उस पर प्रसन्न होनेवाली अम्बिका तथा समुद्रविजय यादव के विषय में ही कुछ कह सकेंगे और न उन मन्दिरों के विषय मे जिनको 'कल्याण' [२] के सुन्दर राजा 'सुन्दरराज' तथा उसकी अनुपम रानी ने इस पवित्र पहाडी पर बनवाये थे।

सौराष्ट्र के राजा शिलादित्य की आज्ञा से प्रसिद्ध वलभीपुर नगर के धनेश्वर सूरि ने "शत्रुञ्जय माहात्म्य" नाम का ग्रन्थ रचा था, उसी माहात्म्य नामक पुस्तक के आधार पर कुछ मनोरंजक बातें यहाँ पर उद्धृत की जाती हैं।

---

[१] भिन्न भिन्न लोकों के बहुत से राजाओं ने 'आयोना' को अपना समाधि-स्थान क्यों बनाया, इसका कारण निम्नलिखित भविष्य वाणी को बतलाया जाता है—

"जगत् का प्रलय होने से सात वर्ष पहले ही लोग जलप्रलय में डूब जायेंगे—आयर्लैंड पर भी समुद्र एक ही सपाटे में फैल जायगा—हरे भरे 'इसेल' का भी यही हाल होगा, परन्तु, 'कोलम्बो' का टापू फिर भी पानी पर तैरता रहेगा"

["ग्राहम्स एण्टीक्वियटी ऑफ 'आयोना' नामक पुस्तक के आधार पर"]

[२] शत्रुञ्जय माहात्म्य में राजा महीपाल, उसके ससुर कान्यकुब्ज देश के राजा कल्याणसुन्दर और उसकी रानी कल्याणसुन्दरी के विषय में लेख अवश्य मिलता है परन्तु उसने सिद्धाचल पर्वत पर कोई देवालय बनवाया था ऐसा लेख कहीं नहीं मिलता।

ऋषभदेव का पुत्र भरतराज अयोध्या में राज्य करता था। वह शत्रुञ्जय से उत्तर की ओर सेना लेकर गया और एक महाशक्तिमान म्लेच्छ राजा से युद्ध करने लगा। पहली लड़ाई में तो भरत हार गया परन्तु दूसरी में विजयी हुआ। वह म्लेच्छराज हार कर सिन्धु नदी में उसी प्रकार भाग गया जैसे घबड़ाकर दुःख में कोई बालक अपनी माता के अङ्क में शरण लेता है। [१]

वर्षा ऋतु के कारण भरत को एक ही स्थान पर ठहरना पड़ा परन्तु इसके समाप्त होते ही उसके प्रधान मन्त्री सुषेन [२] ने सिन्धु नदी के उत्तर में समुद्र और पर्वतश्रेणियों के बीच एक दुर्ग पर अधिकार कर लिया। भरत के छोटे भाई बाहुबली के पुत्र सोमयशा ने शत्रुञ्जय पर ऋषभदेव का मन्दिर बनवाया और स्वयं भरत राजने "सौराष्ट्र" (देश) की उपज इस पवित्र स्थान के लिए अर्पण कर दी। तभी से यह ( सौराष्ट्र ) देश देवदेश कहलाने लगा। भरत का सम्बन्धी शक्तिसिंह उस समय सोरठ का अधिकारी था। सुषेन की अध्यक्षता में इसी राजा की सेना की सहायता से गिरनार पर्वत पर से राक्षस निकाल दिये गये और उस पर ऊँचाई में मेरु पर्वत की समानता करनेवाले आदिनाथ और अरिष्टनेमि के मन्दिरों की स्थापना की गई। आगे चल कर म्लेच्छों ने शत्रुञ्जय पर्वत पर बने हुये मन्दिरों का विध्वंस कर दिया और बहुत समय तक वहाँ निर्जनता का राज्य रहा। [१]

---

[१] इसका सविस्तार वर्णन रामगाथा पूर्विका अङ्क में छपेगा।

[२] प्रधान का नाम 'सुषेन' नहीं 'सुषेण' था— सेनापति का नाम 'सुषेन' था और 'दुर्ग' का नाम सिन्धु निष्कुट था।

[१] विस्तृत विवरण रामगाथा पूर्विका अङ्क में दिया जावेगा।

जब विक्रम पृथ्वी को ऋणमुक्त करने के लिए उत्पन्न हुआ था तो उन्हीं दिनों 'भावड' नाम का एक गरीब जैन श्रावक और उसकी स्त्री भावुला काम्पिल्य नगर मे रहते थे। अपने घर आये हुये यतियों की सेवा के फलस्वरूप उन्हें चमत्कारी गुणोंवाली एक घोड़ी की प्राप्ति हुई। कुछ ही दिनों पश्चात् भावड प्रसिद्ध घोडों का व्यापारी हो गया और 'विक्रमादित्य' की घुडसाल को अपने बहुमूल्य घोडों से सुशोभित करके उस राजा से सोरठ प्रान्त में मधुमावती ( नगरी ) जागीर में प्राप्त करली। वहीं उसके जावड नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो उसके मरने पर उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह बुद्धि के देवता बृहस्पति के समान अपने नगर का प्रबन्ध करने लगा। एक बार बुरे समय में—समुद्र में ज्वार के वेग के समान मुद्गलों [१] की सेना का इस देश पर आक्रमण हुआ। वे सोरठ, 'लाट' [२] और कच्छ [३] आदि अन्य स्थानों से अन्न आदि सभी प्रकार का सामान और सभी वर्गों में से स्त्री बच्चों और मनुष्यों को लेकर अपने देश को लौट गये। भिन्न भिन्न जाति के अन्य बन्दियों के साथ जावड को भी पकड ले गये परन्तु इस व्यापारी ने वहाँ भी धन पैदा करके अपने धर्म का यथावत् पालन किया। वह वहाँ भी उसी प्रकार धर्मकार्य करता रहा जिस प्रकार इस धर्मक्षेत्र में किया करता था। उसने वहाँ एक जैन-

---

[१] मूल पुस्तक में ऐसा ही लिखा है। गुजराती अनुवाद में 'मुगल' अथवा 'मोगल' लिखा है।

[२] माही और नर्मदा के बीच का प्रदेश।

[३] कच्छ का नाम प्राचीन ग्रन्थों में अनूपदेश, गर्तदेश भोजकट, उद्भट देश और सागरद्वीप देखने में आता है। कच्छ के एक परगने वागड का नाम कच्छदेश भी मिलता है।

मन्दिर भी बनवाया। धार्मिक पुरुष वहाँ जाते थे। आम्रड उनका सब सत्कार करता था। वे लोग वहाँ शत्रुञ्जय का बखान करते और भविष्यवाणी किया करते थे कि 'उसका ( शत्रुञ्जय का ) पुनरुद्धार आम्रड के हाथों होना लिखा है।"

वे उसको कहा करते थे कि 'पवित्र शत्रुञ्जय के रक्षक प्रबल प्राणघातक मांसाहारी और शराबी हो गये हैं। स्वधर्मत्यागी कवड यक्ष ( कपर्दीयक्ष ) जैनधर्म के उन सभी मनुष्यों का नाश कर देता है जो उधर जाने का साहस करते हैं। शत्रुञ्जय के चारों ओर कोसों दूर तक भूमि उजाड़ पड़ी है और ऋषभदेव का पूजन करनेवाला कोई नहीं रह गया है।' उनकी ऐसी बात सुन सुन कर आम्रड ने चक्रेश्वरी देवी की आराधना की और (नीच) देवों के बलिदान चढ़ाया।

तब देवों ने उसे बताया कि "ऋषभदेव की मूर्ति तक्षशिला नगरी में जहाँ राजा जगमल राज्य करता है छुपा कर रक्खी हुई है। अपने पुण्यफल से आम्रड ने उस राजा से मूर्ति प्राप्त करली और उसी के आश्रय से एक संघ-बना कर अपने कितने ही ज्ञाति-बन्धुओं के साथ उन मूर्तियों को लेकर शत्रुञ्जय की ओर प्रस्थान किया। कितनी ही कठिनाइयों का सामना करने के बाद आम्रड और उसके साथी सोरठ में मधुमावती पहुँचे। वहाँ उनके भाग्य ने ऐसा साथ दिया कि बन्दर पर वे उसी समय आए हुए माने और अन्यान्य बहुमूल्य वस्तुओं से भरे हुए वे जहाज भी मिल गए जिनको पहले आम्रड ने चीन और भोट को भेजे थे। उसी समय वज्रस्वामी ने भी मधुमावती में प्रवेश किया। कवडयक्ष भी जिसको उन्होंने जैनधर्म में परिवर्तित कर लिया था बहुत से देवों और यक्षों को साथ लिए उनके साथ था। महामुनि वज्रस्वामी और आम्रड अपने सहायक कवडयक्ष को साथ

लेकर दलबल सहित शत्रुञ्जय पर जा पहुँचे। वहाँ मृत शरीरों, रक्त-रञ्जित पर्वत खण्डों और इधर उधर बिखरी हुई सफेद अस्थियों को देख कर वे भयभीत हो गये। इसके बाद पर्वत को अपने हृदयों के समान विशुद्ध करके वे यात्री वज्रस्वामी के बताये हुये शुभ मुहूर्त मे मूर्तियों को लेकर गाजे बाजे सहित पर्वत पर चढे। उन्होंने यात्रा के निश्चित स्थान को प्राप्त करने के लिए कितनी ही बार प्रयत्न किये, परन्तु पापबुद्धि राक्षसों के विरोध के कारण असफल हुए। अन्त में जावड का हृदय टूट गया और सवत् १०८ विक्रमीय [५२ ई] में वह मर गया। बार बार असफल होने के कारण जब कोई कार्य समाप्त ही नहीं होता है तब "यह तो जावड भावड का काम है" ऐसा कहने की प्रथा पड गई और यह कहावत अब भी देश मे प्रचलित है। [१]

जावड़ की मृत्यु के कुछ वर्षो बाद ही बौद्ध लोगों ने सौराष्ट्र के राजाओं को अपने धर्म में परिवर्तित कर लिया। अन्त में "धनेश्वर सूरि" खडे हुए जिन्होंने वलभीपुर के शासक शिलादित्य को अपना (जैन) धर्मानुयायी बनाया और बौद्धों को देश से निकाल कर धार्मिक स्थानों को पुन अधिकार में लेकर अनेक मन्दिर बनवाये। [२] "माहात्म्य" के अनुसार यह परिवर्तन का कार्य ४७७ वि० ( ४२१ ई० ) में सम्पन्न

---

(१) स्काटलैण्ड में भी एक ऐसी ही कहावत प्रचलित है — "सेन्ट मगोना क कार्य की तरह यह कार्य भी कभी पूरा न होगा"

(२) यहा शीलादित्य प्रथम से तात्पर्य है जिसको जैनों ने अपने धर्म की रक्षा करने के कारण "धर्मादित्य" की उपाधि ददा थी—वास्तव मे इसका समय ५९५ ई० से ६१० अथवा ६१५ ई० तक का है, ४२१ ई० नहीं।

हुआ। शिलादित्य [१] का ठीक ठीक समय क्या था इस विचार को यहीं छोड़ कर हम जैनग्रन्थों के आधार पर यह वर्णन करते हैं कि यह बौद्धधर्म को छोड़ कर इस धर्म में किस प्रकार आया [२] और म्लेच्छों के आक्रमण से उसका तथा उसके राज्य का विनाश किस प्रकार हुआ। ऐसी कथा है कि गुर्जरदेश के खेड़ा नामक ग्राम में देवादित्य नाम का एक ब्राह्मण रहता था जो वेदों में पारगत था। उसके सुभगा नाम की एक पुत्री थी जो बचपन ही में विधवा हो गई

(१) इस समय तक वलभी वंश की स्थापना नहीं हुई थी। इस गणना के अनुसार गुप्त सम्वत्सर २१७ होता है और ई० सन् ५२१ आता है। माहात्म्य ग्रन्थ संवत् ४७७ में पूर्ण होगया था।

(२) सौगत अथवा बौद्ध और जैन अथवा आर्हन्त ये दोनों ही निरीश्वरवादी मतों में से हैं। यहां इन पर कुछ प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है। ये दोनों ही वेद और ब्राह्मणों के प्रतिकूल मत थे। क्रूर हिन्दू धर्मावलम्बियों और बौद्धों में खूब जोरशोरी लड़ाइयां हुई हैं जिनमें हिन्दुस्तान के बौद्धों का नाश हुआ। जैनलोग यद्यपि इस तूफान में जीवित रह गये परन्तु इसमें उनको बहुत सी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा था। डा० विल्सन ने एशियाटिक रीसर्चेज के पृष्ठ १९ में हिन्दुओं के पंथ नामक लेख में लिखा है कि 'कम्माचार्य बौद्ध और सौगत में कोई विशेष भेद नहीं मानते तथापि इनमें कुछ भेद है अवश्य। आनन्दगिरि के अभिप्राय से सौगत लोग सुगतमुनि के मत को मानते थे। इनका सिद्धांत यह था कि प्राणीमात्र पर दया करो। इसी में वे समस्त नीति और धर्म का समावेश करते हैं। इस मत का यह सिद्धान्त बौद्ध और जैन मतों के सिद्धान्तों से बहुत कुछ मिलता है।" ऐसा प्रतीत होता है कि वलभी में बौद्ध और सौगत एक ही थे और प्रतिपक्षिता भी इनमें और जैनों में ही थी और इनके निरीश्वरवादी धर्म वाले वर्णाश्रमी हिन्दुओं में सम्मिलित नहीं थे।

सौर पंथ को मानने वाले सूर्य को जगत का उत्पन्न करने वाला मानते हैं। इस मत को मानने वाले थोड़े हैं परन्तु ब्राह्मण हैं। इन लोगों का पंथ अब तक प्रचलित है। ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय सौराष्ट्र के दक्षिणभाग में ये लोग

थी। वह नित्य प्रातःकाल माध्याह्न और सायकाल मे सूर्यदेव को दूब पुष्प और जल का अर्घ्य चढाती थी। इस बालविधवा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सूर्यदेव मानव शरीर धर कर उसका आलिङ्गन करने के लिए पृथ्वी पर उतरे और वह गर्भवती हुई।

सुभगा के इस कार्य से उनके कुल पर कलक लगेगा, यह सोचकर उसके माता पिता ने उसे घर से निकाल दिया और उनके दिये हुए नौकर के साथ वह वलभीपुर चली गई जहाँ पर उसने दो बालकों (एक पुत्र और एक पुत्री) को जन्म दिया। इन दिव्य बालकों के आठ वर्षों को बीतते

---

बहुत बडी सख्या में मौजूद थे। आनन्दगिरि ने इनके अनेक भेद गिनाए है परन्तु ये भेद अब प्रसिद्ध नहीं हैं।

प्रोफेसर विल्सन ने आनन्दगिरि द्वारा बताए हुए ६ भेदों के विषय में यों लिखा है —

(१) जो उगते हुए सूर्य को पूजते हैं और उसको ब्रह्म अथवा उत्पन्न करनेवाली शक्ति का प्रतिरूप मानते हैं

(२) जो मध्यान्ह के सूर्य को रुद्र (नाश करने वाला) मानते हैं।

(३) जो अस्त होते हुए सूर्य को विष्णुरूप अथवा पालनकर्त्ता मानते है।

(४) जो त्रिमूर्ति का पक्ष मानते हैं। ये लोग सूर्य को उपरि-लिखित तीनों गुणों (सर्ग-स्थिति-सहार) का वाहक अथवा ग्रहण करनेवाला प्रतिरक्षक मानते हैं।

(५) इस भेदवालों का आशय यद्यपि स्पष्टतया नहीं लिखा है तथापि इतना ज्ञात होता है कि ये लोग सूर्य के सच्चे और वास्तविक रूप की आराधना करते हैं। सूर्य का सतह पर जो चिन्ह दिखाई देते हैं उनके लिये इन लोगों का कहना है कि वे सूर्य भगवान् की दाढी और मूछ के बाल है। इनमें और आजकल के सौर पथियों में इतनी समानता अवश्य पाई जाती है कि वे भी सूर्य का दर्शन किए बिना भोजन नहीं करते।

(६) इस भेद को माननेवाले ऊपर लिखे पक्षों के विरुद्ध हैं। ये लोग प्रत्यक्ष दीखते हुए सच्चे सूर्य की उपासना को आवश्यक नहीं समझते वरन् मानसिक तेज-

देर न लगी। लड़के को गुरु के पास पढ़ने बिठाया गया परन्तु दूसरे बालकों के साथ रहते रहते सबसे पहला प्रभाव उसके कोमल मन पर यह पड़ा कि मैं बिना बाप का हूँ।

एक बार अपने साथियों के चिढ़ाने से तंग आकर वह अपनी माता के पास गया और पूछा कि माता! क्या मेरे पिता नहीं हैं? लोग मुझे बिना बाप का कहते हैं। उसने उत्तर दिया "ऐसा पूछ कर तू मुझे क्यों दुखित करता है? बालक दुखी होकर लौट गया परन्तु उसी दिन से उसने विष खाकर अथवा किसी अन्य उपाय से अपने आपको नष्ट करके इस कलंक से मुक्त होने का निश्चय कर लिया।

एक दिन जब वह इस प्रकार दुखी हो रहा था तो भगवान् सूर्यनारायण ने उसे दर्शन दिये और "वत्स" कह कर संबोधन किया। उन्होंने उसकी रक्षा करने का वचन दिया और कुछ प्रस्तरखण्ड देकर कहा— ये तुम्हारे शत्रुओं का विनाश करने में सहायता देंगे। इन्हीं सूर्यदेव के दिये हुये शस्त्रों के कारण वह "शिलादित्य" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[१]

---

पुरुष की कल्पना करके उसीका ध्यान और आराधना करते हैं। ये लोग अपने ललाट, भुजदण्ड और हृदय पर गरम धातु की तप्त मुद्राओं के अंक भी धारण करते हैं। शंकराचार्य ने इस प्रथा का बहुत तिरस्कार किया है क्योंकि यह वैदिक नियमों के विरुद्ध है या ब्राह्मण का शरीर पूज्य होने के कारण भी यह (प्रथा) निषिद्ध है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुजरात में अशोक ने २०१—२१२ ई० पू० बौद्धधर्म का प्रचार किया था। जैन ग्रन्थकारों का मत है कि उसके पौत्र सम्प्रति ने २११ ई० पू० अनार्य देश में (जिसमें सौराष्ट्र भी शामिल था) जैन मन्दिर बनवाये थे।

[१] शील=आदित्य+आदित्य=सूर्य यही इस नाम का सच्चा अर्थ है परन्तु बहुत से विरोधी लोग इसको बुरा बताने के लिए यों अर्थ करते हैं —शिला=पत्थर आदित्य=स ।

एक वार शिलादित्य ने किसी वलभी के निवासी का वध कर दिया। इस पर वलभी का राजा क्रोधित हुआ परन्तु सूर्य भगवान् के दिये हुये अस्त्रों से वह मार दिया गया और सुभगा का पुत्र शिलादित्य, जो अब प्रसिद्ध हो गया था, सौराष्ट्र का राजा हो गया। वह सूर्य भगवान् के दिये हुए घोडे पर सवार होकर आकाशचारी देवताओं के समान स्वच्छन्द विचरने लगा और अपने पराक्रम से कितने ही देशों को जीत कर बहुत समय तक राज्य करता रहा।

एक बार अपनी विद्या का अभिमान लिए हुए कुछ बौद्ध उपदेशक शिलादित्य के पास आये और कहा 'ये श्वेताम्बर (जैन) यदि हमें शास्त्रार्थ ( विवाद ) मे हरा दें तो यहाँ रहें अन्यथा आप उन्हें देश से निकाल दें।'

राजा ने इस बात को स्वीकार किया और चार प्रकार [१] की सभा की। वह स्वयं उसका प्रधान हुआ और आज्ञा दी कि जो पक्ष इस विवाद मे हार जाय वह वलभी की सीमा पार चला जावे। भाग्य से बौद्ध विजयी हुए और श्वेताम्बरों को भविष्य में विजय पाने की आशा हृदय में लेकर देश छोडना पडा। तब से राजा शिलादित्य बौद्ध धर्म का पालन करने लगा परन्तु वह शत्रुञ्जय के महान् देवता ऋषभदेव का पूजन भी पूर्ववत उत्साहपूर्वक करता रहा।

शिलादित्य ने अपनी लाडली बहन का विवाह भृगुपुर ( भडौच ) के राजा से कर दिया और उसने वहाँ कांति और गुणों में देवता के समान एक पुत्र को जन्म दिया। थोडे दिनों बाद ही उसका पति

---

(१) साधु व साध्वी अथवा जैन धर्मावलम्बी त्यागी पुरुष (साधु) और स्त्री (साध्वी) तथा श्रावक व श्राविकाएं जिन्होंने किसी आश्रम को ग्रहण नहीं किया हो, इस प्रकार चार प्रकार के मनुष्यों की सभा।

'नित प्रति काग उड़ावती कब आवें प्रिय नाम।
आधी चूड़ी मज गई आधी मेरे हाथ॥
सुख शय्या शीतल भवन भाजन मेरे पास।
पूरी मेरे सैयन सब विधि मन की आस॥

चावड़ी फिर बोली 'धन्य घड़ी (?) ! धन्य समय ! आज मेरे भाग का समय आया है कि आप से मेरा मिलन हुआ परन्तु, आप के साथ नौकर चाकर क्यों हैं ? आप यहां बगीचे में अकेले छुपे हुए से, व बैठे हैं ? इन सब बातों का अर्थ क्या है ? तब राजकुमार ने चावड़ी पूरा हाल कह सुनाया और कहा 'इस समय मैं नौकरी की तलाश आया हूँ, तुम्हें इस बात को अभी प्रकट नहीं करनी चाहिए। इ बीच में एक दासी महल को दौड़ गई थी और कह रही थी 'बधाई बधाई !' राजवंशी जमाई जी पधारे हैं। तुरन्त ही अगवानी की तैयारि होने लगीं और बधाई देन वाली दासी को पुरस्कार मिला। राजकु धीरज पैदल ही दौड़ पड़ा और जगदेव से मिला। चावड़ी महल लौट गई धीरज जगदेव को साथ लाए। वहां आकर जगदेव राजा राज को प्रणाम किया। पांच दिन ठहर कर जब उसने आगे ज की आज्ञा मांगी तो राजा न कहा 'यह राज-मन्दिर आप ही है। हम सब की इच्छा यही है कि आप यहीं रहें। तब जगदेव कहा 'आप इस समय हट न करें मैं एक बार अकेला ही विदेश जाऊँगा और अपने भाग्य को टटोलूँगा।" इस प्रकार उनमें व हठाहट हुआ परन्तु अन्त में उन्हें जगदेव को जाने के लिए 'हाँ' कह पड़ा। इस प्रकार रात को उसने अपना विचार चावड़ी कहा और जाने के लिए उससे भी अनुमति चाही। चावड़ी ने व

'आपकी दासी तो अब निरन्तर आपकी सेवा में ही रहेगी।' जगदेव ने कहा, "तुम सयानी और समझदार होकर ऐसी बातें करती हो ? जानती हो कि विदेश मे स्त्री बन्धन के समान होती है, इसलिए अभी तो मुझे अकेला ही जाने दो, फिर मैं तुम्हें शीघ्र ही बुला लूँगा।" तब चावडी ने उसके गले मे बाहें डालकर कहा 'क्या छाया शरीर से अलग रह सकती है ? यदि छाया शरीर के साथ न रहे तो मैं भी आपसे विलग हो सकती हूँ और आप मुझे यहाँ रहने की आज्ञा दे सकते हैं।" जगदेव ने चावडी को बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु उसने एक बात भी न मानी और साथ जाने का हठ पकड कर बैठ गई। इसके बाद, दो घोडों पर जीनें कसी गई, उन्होंने अपने साथ बहुत से बहुमूल्य जडाऊ गहने ले लिये और चलने के लिए तैयार हो गये। चावडी ने अपने मुख पर एक परदा (बुरका) डाल लिया और ज्यों ही जगदेव घोडे पर सवार हुआ वह भी तैयार हो गई। मोहरों की दो थैलियाँ उनके घोडों के तोबरों (१) मे रख दी गई। उनके प्रस्थान की बात मालूम होते ही राजकुमार बीरज तीन सौ घोडे लेकर उनको पहुचाने ( विदा करने ) आया। चावडी अपने माता पिता से गले मिली और फिर दौड कर अपनी सहेलियों से लिपट गई। तब जगदेव की सास ने उसको रुपया और नारियल देकर तिलक किया और अपनी पुत्री की सम्हाल रखने के लिए कहा। इसके बाद राजा राज को प्रणाम करके और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करके वे विदा हुए। नगर से थोडी दूर जाने पर जो सवार उनको पहुँचाने गये थे उन्होंने ने कहा, 'महाराज ! यदि आप

---

(१) यहाँ कपडे के उन थैलों से तात्पर्य है जो जीन के नीचे दोनों ओर लटकाये जाते हैं। राजस्थानी में ऐसे थैले को खड़िया अथवा हुक्का-थैली कहते हैं।

घर पधारें तो यह रास्ता है। तब जगदेव ने अपना विचार स्पष्ट करके कहा 'मैं इस समय सिद्धराज जयसिंह देव सोलंकी के यहाँ नौकरी करने के लिए पट्टण आ रहा हूँ।' यह कह कर उसने उधर जाने का सीधा रास्ता पूछा। सवारों में से एक ने कहा 'यहाँ से आगे टोरडी गाँव होकर रास्ता जाता है, टोरडी बीस मील है और यदि आप पहाड़ियों आदि को बचा कर निर्भय रास्ते से जावें तो तीस मील का रास्ता है। तब जगदेव ने कहा 'हम सीधा रास्ता क्यों छोड़ें ? क्या चोरों से बैर है ? तब राजपूतों के प्रधान ने कहा 'इस सीधे रास्ते को एक बाघ और बाघनी ने रोक रखा है इन्होंने गाँव के गाँव उजाड़ कर दिये हैं। बाघ तो एक देव का दूत है—कितने ही राजा और उमराव अपने अपने ढोल नगारे लेकर इनको वश में करने के लिए चढ़े परन्तु सफल न हुए। इनके डर से कोई भी चौपाया पूरा नहीं पनप पाता। यह रास्ता नौ बर्षों से बन्द है, घास बड़ी बड़ी हो गई है, पगडंडियाँ टूट गई हैं, इसलिए अन्य रास्ते होकर ही आप टोरडी जाइये-वही सरल और निर्भय मार्ग है। यह सुन कर जगदेव ने वीरज को प्रणाम करके विदा ली और सीधा बीस मील वाले रास्ते हो लिया। राजकुमार वीरज ने उनको बहुत रोका परन्तु उन्होंने एक न सुनी। जगदेव ने कहा 'इन गीदड़-गीदड़ियों(१) के डर से क्यों कोई इतना चक्कर खाने लगा ?' निर्भय होकर उन दोनों ने अपने घोड़े आगे बढ़ाए। जगदेव ने चावड़ी से कहा 'बाएं हाथ की ओर घास की तरफ निगाह रख कर चलो। इस प्रकार जब वे छः कोस चले गये तो चावड़ी ने कहा 'राजकुमार ! सामने ही बाघनी आ गई है। यह सुनकर जगदेव ने एक तीर निकाला और अपने धनुष पर चढ़ाकर कहा, 'शेरनी। तू रॉड(२) है मेरा सामना मत

(१) ... (२) ...

कर, रास्ता छोड, या तो दांई तरफ चली जा या बांई तरफ चली जा। जब शेरनी ने "राड" यह शब्द सुना तो उसने अपनी पूँछ उठाई और अपने सिर को जमीन तक नीचा ले जा कर उस पर छलांग भरी। उसी क्षण जगदेव ने बाण छोड दिया, वह ठीक उसके कपाल में लगा और उसको आरपार वेध करके दस कदम आगे जा पडा। शेरनी ऊपर उछली और मुर्दा होकर गिर पडी। सौ एक कदम आगे चलने पर उन्हें शेर बैठा हुआ मिला। तब जगदेव ने अपने तरकश से दूसरा तीर निकाला और उससे कहा, 'इधर उधर हो जा और रास्ता छोड दे, वरना तुझे भी तेरी गडकडी के पास अभी पहुँचा दूँगा।' अपनी पूछ को फटकारते हुए सिर को जमीन तक नीचा लेजाकर शेरने छलाग भरी, उधर जगदेव ने अपना तीर छोडा जो इसके माथे को बींध कर आर-पार निकल गया और बीस कदम दूर जा पडा। शेरनी की तरह शेर भी ऊपर उछला और गिर कर मर गया। जगदेव ने कहा, 'मैंने इन गरीब जानवरों को क्यों मारा? मुझे इनको मारने का दोष लगेगा।' चावड़ी ने कहा, 'महाराज! यह तो क्षत्रियों के खेल है।" इस तरह बात-चीत करते हुए वे टोरडी गाव के बाहर एक तालाब पर आये जहाँ वहुत से वड और पीपल के पवित्र वृक्ष थे और पानी में छोटी छोटी लहरें पड़ रहीं थी। यहा एक वड के पेड के नीचे वे अपने अपने घोडों पर से उतरे, अस्त्र शस्त्र उतार कर रख दिये और गगाजली (१) में ठडा पानी

---

(१) प्रवास में पानी पीने का पात्र। ऐसे पात्रों में यात्रा जाते ममय गगाजल भरकर ले जाने की प्रथा हिन्दुओं में अब भी है। इसी से इसका नाम गगाजली पड़ गया है। ठीक अर्थ न समझने के कारण अंग्रेजी मूल में 'गगाजल जैसा पानी खीच कर पिलाया' ऐसा लिखा है।

लाकर घोड़ों को पिलाया। वाघजी दांतन कुल्ले करके अपना मुँह धोने लगी।

इधर राजकुमार वीरज ने अपने घर लौट कर राजा राव को निवेदन किया कि जगदेव तो बीस बीस वाले सीधे रास्ते ही गये हैं। यह सुनकर राव बहुत क्रोधित हुआ और उसने कहा 'अपने साथ शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित दो सौ पचपन सवार ले जाओ और जहां भी उनके मृत शरीर मिलें वहीं उनका अग्नि-संस्कार करके आओ और यदि वे जीवित मिल जावें तो उनके कुशल समाचार लेकर आओ।'

आज्ञा मिलते ही सवार रवाना होगए। जब वे मार्ग में इधर उधर देखते हुए और डरते हुए से जा रहे थे तो उन्होंने शेर और शेरनी को रास्ते में मरे हुए पड़े पाया परन्तु, कोई घोड़ा या सवार वहाँ नहीं था इस लिए उन्होंने सोचा कि जिनकी तलाश में व निकले थे वे सुरक्षित हैं और कहीं पानी के किनारे विश्राम कर रहे होंगे। थोड़ी ही देर में उनकी तलाश में निकले हुये सब सवार इकट्ठे हुये और उन्होंने आपस में राम राम किया। जान पर खेलकर जो काम अपने सिर पर लिया था उसके पूरा हो जाने पर उन्होंने एक दूसरे को बधाई दी। खुश होते हुए और उन दोनों बाघों को लिए वे निर्भय होकर आगे बढ़े। जब वे तालाब पर आकर पहुँचे तो उनको जगदेव वहीं मिले। वाघजी ने उनको पहचान लिया और बोली 'ये तो अपने राजपूत हैं। सवारों ने पास आकर नमस्कार किया और कहा 'राजकुमार ! आपने पृथ्वी और गायों का रक्षण करके बड़ा धर्म-कार्य किया है, यह शेर और शेरनी तो मानों यमराज के दूत ही थे कोई भी राजा व यमराज उनको न मार सका था।

सकता था ?" जगदेव ने इन बातों की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया और उन राजपूतों को विदा किया। उन्होंने घर आकर शेर और शेरनी के मारे जाने की पूरी कथा कह सुनाई जिसको सुनकर राजा राज और जगदेव का साला वीरज बहुत प्रसन्न हुए।

इधर साझ होते होते जगदेव और चावड़ी ने नगर मे प्रवेश किया और खाने पीने का सामान जुटाया। कुछ पैसे देकर उन्होंने अपने घोड़ों की मालिश कराई। एक दिन और दो रात वहा ठहरने मे उनके भोजन आदि मे कुछ रुपये खर्च हुए। इस प्रकार मजिल पर मजिल तय करते हुए वे लोग पट्टण पहुचे और सिद्धराज के बधाये हुए सहस्रलिग तालाब की पाल पर एक बड के वृक्ष की छाया में जाकर उतरे। वहीं अपने घोड़ों को बॉध दिया, मीठा जल लाकर उनको पिलाया और देख भाल की। घोडे अपनी लगाम को चबाते हुए खडे रहे और इतने ही में थोड़ा जलपान करके वे भी तैयार हो गए। उस समय जगदेव ने चावड़ी से कहा, "तुम तो यहीं घोड़ों के पास रहो और मैं नगर में जाकर एक किराये का मकान तलाश करके आता हूँ। इस तरह नट नटी की तरह शहर में अपना दोनों का फिरना अच्छा नहीं लगेगा।" चावड़ी ने कहा, 'जाइये, मैं यहीं हूँ।" इस तरह कटार और तलवार लेकर जगदेव किराये का मकान तलाश करने के लिए शहर मे गया।

अब आगे का हाल सुनिए। सिद्धराज के मुख्य परगने का अधिकारी डूगर-शी था, जो पट्टण का कोतवाल था। डूँगरशी के एक लाल कुवर नामक लडका था जो अपने पूर्ण यौवन में मदान्ध था और किसी को कुछ न समझता था। पट्टण जैसे शहर की कोतवाली और इतने बडे परगने का अधिकार प्राप्त होने के कारण उसका मदान्ध होना भी कोई

बड़ी बात न थी। इसीलिए यह जमीन पर पैर रख कर भी नहीं चलता था। उस समय पट्टणमें पांच सौ वेश्याओं के घर थे उन सब की सरदार जामोती(१) नामकी वेश्या थी जिसके पास बहुत सा धन और अनेक छोकरे छोकरियां थीं। उसके छोकरे भी बहुत धनवान थे। एक दिन कोतवाल का लड़का जामोती के यहाँ रमण करने के लिए गया और उससे कहा, 'ए जामोती ! यदि मुझे कोई ऊँची जाति की बहुत सुन्दरी स्त्री मिले तो मैं उसे रखूँ और तुझे बहुतसा इनाम दूँ। जामोती बोली 'बहुत अच्छा मैं तलाश करूँगी और आपकी सेवा में उपस्थित करूँगी। जामोती ने अपनी दासियों को भी सूचना करदी और वे भी तब से इस तलाश में रहने लगी।

जिस दिन जगदेव और उसकी स्त्री पट्टण आकर पहुँचे थे उसी दिन दोपहर के समय जामोती की एक दासी घड़ा लेकर सहस्रलिंग तालाब पर पानी भरने आई। उसी समय चावड़ी ने चादर ऊँची करके देखा कि आस पास में कोई पुरुष तो नहीं है। जब देखा कि कोई नहीं है तो उसने अपना परदा उतार कर रख दिया और बैठी बैठी तालाब के पानी और पास पर बनी हुई इमारतों की ओर देखने लगी। जामोती की आज्ञा का स्मरण करके वह दासी भी उसकी ओर एकटक देखने लगी। उसने जब चावड़ी को देखा तो वह उसे इन्द्र की अप्सरा सी तथा आकाश की बिजली जैसी मालूम हुई। मन में प्रसन्न होती हुई घड़े को लेकर चावड़ी के पास आई और नमस्कार करके बोली 'बाईजी, आप कहाँ से पधारी हैं, और इस घोड़े के सवार कहाँ गये ? चावड़ी ने कहा 'तू पूछने वाली कौन है ? तब उसने

(१) जाम्बवती।

उत्तर दिया, "मैं तो सिद्धराज जयसिहदेव के दरबार की प्रधान बडारण(१) हूँ।" चावडी ने कहा 'मैं उदयादित्य परमार राजा के पुत्र को ब्याही हूँ।' दासी ने पूछा, 'क्या आपके पति से बड़े भाई भी हैं?' उसने कहा, 'हाँ, उनके बडे भाई का नाम रणधवल है।' दासी ने फिर पूछा, 'बाईजी साहबा! कुँवरजी साहब का क्या नाम है?' चावड़ी ने जवाब दिया, 'पगली! कोई स्त्री अपने पति का नाम भी बतलाती है?' दासी बोली, 'स्त्री या तो अपने पति का नाम लेती है या उस ससार को रचाने वाले महिमामय भगवान का। खैर, आप देश की स्वामिनी हैं—जैसा आपको अच्छा लगे वैसा करें।" तब चावडी ने कहा, 'राजकुमार का नाम जगदेव है।' दासी ने फिर पूछा, 'आपका पीहर कहाँ है?' चावड़ी ने उत्तर दिया, 'मेरा पीहर टोडा है, मैं राजा राज की पुत्री और राजकुमार वीरज की बहन हूँ।' दासी ने फिर कहा, 'ऐसा मालूम होता है कि राजकुमार तो शहर मे गये हैं और आप घोड़ों की रखवाली करने बैठी हैं।' चावड़ी ने कहा, 'उस काले नाग के घोड़े पर नजर डालने की किसकी हिम्मत है?' दासी बोली, 'इतने बड़े राजा के लड़के होकर इस तरह अकेले ही क्यों निकल पडे?' चावड़ी ने कहा, 'अपनी विमाता से झगड़ा होने पर रोष मे आकर चल दिये।' यह कह कर उसने अपनी पूरी कहानी सुनादी। दासी ने आदि से अन्त तक कहानी ध्यान से सुनी और फिर अपना घड़ा भरकर नमस्कार करके चली गई।

दासी ने आकर जामोती गणिका से कहा, "यदि आप अपने युवा मालिक को प्रसन्न करना चाहती हैं तो तालाब की पाल पर दो घोड़ों

(१) मुख्य सेविका।

को लिए एक युवती बैठी है, यह इतनी सुन्दरी है कि इस शहर में उसके समान कोई नहीं है। वह ठीक वैसी ही स्त्री है जैसी आप चाहती थीं और जिस प्रकार की सुन्दरी का आप वर्णन किया करती हैं। उसने मुझे अपनी जाति श्वसुर का नाम अपने पति का नाम और अपने घर का पता आदि सब बतला दिया है।' यह सुनकर आमोती ने उस दासी को बहुमूल्य कपड़े और जड़ाऊ गुजराती गहने पहनाये। एक सुन्दर रथ तैयार करवाकर उसमें स्वयं बैठ गई और नौकरों ने रथ के सारा पर्दे बन्द कर दिये। उसने दूसरी दासियों को भी सुन्दर सुन्दर कपड़े और गहने पहनाये बीस अथवा तीस अच्छी पोशाक पहनी हुई दासियों और शस्त्र कसे हुए कुछ नौकरों को अपने साथ लेकर तथा एक सजेधजे खवास को घोड़े पर बिठाकर आगे रवाना किया। इस प्रकार वह जहाँ चावड़ी बैठी थी उस स्थान के लिये रवाना हुई। वहाँ पहुँचकर उसने आड़ी कनात लगवा दी और फिर स्वयं उतरी। जो दासी पहले चावड़ी से बातें करके गई थी उसने आकर प्रणाम किया और आमोती ने कहा "बहू! उठो मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ, मैं तुम्हारे श्वसुर की बहन हूँ। जब इस चारण ने आकर तुम्हारे आने की सूचना दी तो तुरन्त ही रथ तैयार करवा कर महाराज की आज्ञा से मैं यहां आई हूँ। जब मेरे भतीजे जगदेव का विवाह टोडे हुआ था उस समय मैं न आ सकी थी परन्तु, मैं रणधवल को जानती हूँ। मेरा भतीजा जगदेव कहां है? तुमको मेरे घर आकर ठहरना चाहिये था तुम्हारा विवाह उच्चकुल में हुआ है इसलिए यह स्थान तुम्हारे बैठने योग्य नहीं है।"

आमोती की इन भड़कीली बातों और ढंग को देखकर चावड़ी चक्कर में पड़ गई और सोचने लगी कि कहीं उसको धोखा तो नहीं

दिया जा रहा है। उसने सोचा कि सिद्धराज जयसिंह देव के साथ किसी सम्बन्ध के विषय मे जगदेव ने कभी कुछ नहीं कहा। परन्तु, उसने फिर सोचा कि राजा से राजा का सम्बन्ध होना सम्भव है, इसलिये उन आये हुए अनजान लोगों की बातों का विश्वास करके और उनकी पोशाक और गहने आदि की ओर देखकर उसने जामोती को नमस्कार किया, और उससे मिली। जामोती ने उसे आशीष दी और रथ मे बैठने के लिए आग्रह किया। उसने चावडी से फिर कहा "मैं यहा एक आदमी छोड दूगी जो लौटने पर जगदेव को दरबार मे ले आएगा।" यह कह कर उसने एक नौकर को बुलाया भी और उसको घोडों की सम्हाल रखने को कहा। चावडी ने थैलिया अपने पास ले लीं और रथ मे बैठ गई। रथ रवाना होगया। इस प्रकार जामोती उसे अपने घर ले आई। उसका घर बहुत विशाल था, दरवाजे से आगे चलकर एक बहुत बडा चौक था, उसी चौक में आकर रथ ठहर गया। पहले जामोती उतरी फिर चावडी। उनका स्वागत करने के लिए घर के बहुत से लोग आये। बहुत सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहने हुए और जवाहरात से सुसज्जित स्त्रिया चावडी से मिलने आई किसीने उसको प्रणाम किया, कितनी ही स्त्रियों ने उसके पैर छुए, कितनी ही उसके आगे आकर 'जय, खम्मा, खम्मा (१) कहने लगीं और आगे आगे चलने लगीं। इस प्रकार स्वागत सत्कार के साथ चावड़ी ने उस घर में प्रवेश किया।

जामोती का घर चार मजिल ऊँचा था और बहुत ही सुन्दर बना हुआ था। चारों ओर से लिपा पुता—जहां झाड फानूस आदि लटक रहे थे, सजी हुई दीवारों पर सोने चादी के चौखटों मे मढी हुई तस्वीरें

(१) क्षमा। यह राजपूतों में अभिवादन का प्रकार है।

लगी हुई थी और खिड़कियों में जाली का काम हो रहा था। नौकरों ने लाकर तुरन्त ही एक सुन्दर गालीचा बिछा दिया उस पर गद्दी, तकिये मसनद और गालमसूरियाँ(१) आदि लाकर लगादीं जिनमें सोनेके कसीदे निकले हुए थे। चावड़ी को उस पर बैठने के लिए निवेदन किया गया वह अपनी दोनों बैहियाँ रखकर बैठ गई। हाथ पैर धोने के लिए गरम जल तैयार हुआ। इतने ही में जामोती ने एक दासी से कहा ' जा महाराज से प्रार्थना कर कि परमार रानी का भतीजा कुंवर जगदेव यहां आया है, वह आपसे मिलने आयेगा आप उसका बहुत आदर के साथ स्वागत करें। महाराज को यह भी विदित करना कि जगदेव की स्त्री चावड़ी मेरे महल में ठहरी है। दासी ने यह सुनकर प्रणाम किया और चली गई। लगभग आध घण्टे के बाद वह लौटी और कहने लगी 'महाराज बहुत प्रसन्न हुए और यह आज्ञा दी है कि जगदेव पहले उन से मिलें और फिर आपके पास आवें।

अब भोजन तैयार हुआ। जामोती ने कहा "बहू! भोजन करने के लिए तैयार हो। चावड़ी ने कहा मैं पातिव्रत धर्म का पालन करती हूँ। जब राजकुमार भोजन कर लेंगे तभी मैं भोजन करने का विचार करूँगी। अभी तक वे आए ही नहीं। इतने ही में दासी ने आकर कहा आपके भतीजे जगदेव महाराज से मिल लिए हैं। महाराज उनसे गले मिले और उनको अपने पास बिठा लिया, राजकीय रसोवड़े से थाल वहां पहुंच गये हैं। जामोती ने कहा 'जल्दी करो जाकर जगदेव को वहां भोजन करने से रोक दो और महाराज से प्रार्थना करके उन्हें यहां अपने साथ ले आओ। ऐसा हुआ और भतीजा साथ साथ

(१) गालों के नीचे लगाने के छोटे छोटे तकिये।

भोजन करेंगे, भोजन यहा तैयार है।" थोड़ी देर बाद जामोती फिर कहने लगी, 'क्या बात है, मेरा भतीजा जगदेव अभी नहीं आया। उसके भोजन किए बिना मैं भी कैसे खा सकती हूँ? जब उसके भोजन कर लेने की खबर मुझे मिल जायगी तभी मैं भोजन करने का विचार करूँगी।" इतने ही मे जो दासी गई थी वह लौट कर आ गई और कहने लगी, 'महारानीजी! राजकुमार महाराज के साथ भोजन कर रहे हैं, वे दोनों एक ही बडे थाल पर बैठे हैं। मैंने आने से पहले अपनी आखों से उन्हें देखा है, परन्तु, आपके भतीजे आपके पास आने की तैयारी कर रहे हैं। उनका वर्ण श्याम है न।" जामोती ने कहा, "यह तो मेरे पीहर वालों की साधारण निशानी ही है। मेरा भाई उदयादित्य भी श्याम वर्ण का ही है, परन्तु मुझे मेरे पीहर के लोगों से अधिक सुन्दर कोई नहीं जचता।" इस प्रकार बातचीत होती रही। बाद मे जामोती ने भोजन के सुन्दर थाल मगवाये और एक थाल चावड़ी के आगे रखकर कहा 'बहू! कुछ खा लो।' चावड़ी ने थोड़ा बहुत भोजन किया और फिर बातें होने लगीं। जब तीसरे पहर के तीन बज गये तो चावडी ने कहा 'क्या बात है, राजकुमार अभी तक भी अपनी भुआ से मिलने नहीं आये?' जामोती ने कहा, 'दासी! दौड तो, मेरे भतीजे जगदेव को ले तो आ।' ऐसा कहकर वह फिर बहू के साथ बातें करने लगी, परन्तु चावडी को जगदेव की अनुपस्थिति में उसकी बातों में कोई रस नहीं मिलता था। लगभग आध घण्टे के बाद दासी लौट कर आई और कहने लगी, 'राजकुमार महाराज से बातें कर रहे हैं, वे उन्हें उठने ही नहीं देते और यह कहा है कि राजकुमार जब नौ बजे इस महल में सोने के लिए पधारेंगे तब ही अपनी भुआ से मिलेंगे।' यह सुनकर जामोती ने दासी पर क्रोध करके कहा, 'जा, महाराज से

विनय कर कि जगदेव को मुझ से मिले बहुत वर्ष हो गये हैं, आप से मिलने के लिए तो उसे सुबह बहुत सा समय मिलेगा कृपा करके अभी तो उसे मुझ से मिलने के लिए भेज दीजिए। लगभग आध घरटे और ठहर कर दासी फिर आई और बोली महाराज ने पहले जो उत्तर दिया था वही अब दिया है।

जामोती ने इधर लाल कुँवर को कहला भेजा कि आज मेरा मुजरा(१) मालूम हो नौ बजते ही सीधे यहां आ जाइये मेरे हाथ में एक स्त्री है उसको यदि आप चाहें तो रखलें नहीं तो मैं अपने घर रख लूंगी।

यह सुन कर लालकुंवर ने अफीम चढ़ाना शुरू किया और ऊपर से कितने ही मसाले पड़ी हुई बहुत जोरदार मालूम जमाई फिर पुष्पों से निकाली हुई मीठी शराब पीकर बढ़िया से बढ़िया पोशाक और गहने पहन और अपने शरीर पर कस्तूरी अतर मुश्क आदि का लेप किया। इस प्रकार बन ठन कर एक भाले को टेकता टेकता डोलता फिरता हाथ में एक शराब की बोतल लिए हुए वह आया। उसको देख कर एक दासी ने दौड़ कर चावड़ी से कहा, 'बहूजी ! मुझे बधाई की इनाम दीजिए, राजकुमार आ पहुंचे हैं। चावड़ी ने जाना कि सचमुच ही राजकुमार आ गए। उसी समय युवक लालकुंवर महल के दरवाजे पर आ पहुँचा जहां से वह साफ साफ दिखाई पड़ता था। जब वह अन्दर घुसा तो पीछे से दासी ने दरवाज़ा बन्द कर दिया और साकल चढ़ा कर गायब हो गई। चावड़ी ने देखा कि यह तो मेरा पति नहीं है, ऐसे समय में होशियारी से काम लेना चाहिये क्योंकि मुझ में इस पुरुष जितना बल तो है नहीं और फिर वह शराब में चूर है। उसको कहावत याद आई

(१) नमस्कार पूर्वक आमन्त्रण।

कि ठग के साथ ठगी का ही व्यवहार करना चाहिए। फिर, ऐसे सकट के समय में उसे अपने पातिव्रत की रक्षा करनी थी इसलिए उसने सावचेत रहने का निश्चय किया। इस प्रकार सोच विचार करके वह उठी और बोली, "राजकुमार! आइये, पलग पर बैठिए।' उसने उत्तर दिया, 'चावडी! तुम भी बैठो।' उसकी सुन्दरता को देखकर वह गोला (?) रीझ गया और चावड़ी ने भी उस पर अपने कटाक्ष इस प्रकार चलाए कि वे उसके कलेजे को पार कर गये।

"नयन रूपी भालों के लगने पर जो परिणाम होता है उसे दो ही जानते है, एक वह जो घायल हुआ और दूसरा वह जिसने वह भाला चलाया है।"(१)

अब तो वह गोला पिघलकर पानी पानी हो गया और चावड़ी ने उससे सच्चा सच्चा हाल कहलवा लिया। उसने कहा, 'जामोती ने मेरे लिए बहुत अच्छा किया है।' लाल ने कहा, 'ए चावडी! मैंने उससे कह रखा था कि यदि कोई कुलीन, चतुर और सुन्दरी युवती मिल जावे तो मैं उसे अपने पास रखूँगा, और मैं जैसी स्त्री चाहता था तुम ठीक वैसी ही हो। अब तुम जैसा कहोगी मैं वैसा ही करूँगा।'

अब, चावडी को मालूम हो गया कि उसको और उस गोले को जबर-दस्ती धोखे से एक जगह कर देने वाली जामोती गणिका है। लाल की लाई हुई शराब की बतक और प्याले को देखकर तथा यह जानकर कि वह तो शराब में पहले से ही चूर है, उसने वह बतक और प्याला लिया

(१) नैन भलक भल लग्गिया, निसर गया दो सार।
कैउ घायल जाणसी, केउ नाखणहार ॥

और शराब से लबालब भर कर लाल की ओर बढ़ाकर कहा 'कुँवरजी ! मेरे हाथ से एक प्याला पिओ। लाल ने कहा यह बहुत तेज है, मैंने पहले ही बहुत पी ली है, तुम मुझे और पिलाती हो क्या ? नहीं नहीं, हम तुम तो बातें करेंगे। तब चावड़ी ने कहा 'बातों में क्या रखा है ? मैंने पहले पहल आपको प्याला भर कर दिया है, मेरा हाथ वापिस मत करो जो कुछ मैं दूँ उसे आप स्वीकार कर लीजिए। मेरे कहने से इसे तो आपको पीना ही पड़ेगा। जब चावड़ी ने इस प्रकार कहा तो उसने प्याला ले लिया और उसको पीकर खाली कर दिया फिर उसने कांपते हुए हाथों से दूसरा प्याला भर कर चावड़ी की ओर बढ़ाया। चावड़ी ने घूँघट की ओट करके उस प्याले को अपनी कंचुकी पर उँडेल लिया, और फिर प्याला भर कर देखा कि गोला पलंग पर लेट तो गया है परन्तु अभी पूरा बेहोश नहीं हुआ है इसलिए वह प्याला भी उसको दे दिया जिसको पीते पीते तो वह दांत पीस कर पलंग पर चित हो गया। जब चावड़ी ने देखा कि उसको इतना नशा हो गया है कि वह कुछ नहीं कर सकता तो वह तुरन्त उठी और अपनी तलवार लेकर उसकी गर्दन काट डाली। फिर पलंगपोश लेकर उसमें उसके शव को लपेट कर नीचे ही राजमार्ग में खिड़की से फेंक दिया।

चावीरात बीतने पर चौकीदार गश्त पर निकले। उन्होंने एक गट्ठर पड़ा पाया और सोचा कि किसी बनिये के घर में चोर घुसे होंगे और जाग होने पर इसको पटक कर भाग गये होंगे। फिर उन्होंने सोचा कि कोतवाल साहब के सामने यदि यह माल ले जायेंगे तो इनाम मिलेगी इसलिए उन्होंने उस गट्ठर को उठा लिया जो उनको बहुत भारी मालूम हुआ। वे आपस में कहने लगे "हम लोग इसको अभी न खोलें सवेरे ही इसका मालिक चारों ओर ढूँढता हुआ अपने माल की

तलाश मे आवेगा, इसलिए चलकर इसको कोतवाली के चबूतरे पर रखें और सुबह होते ही उनको (कोतवाल को) सूचना दें।" उधर चावडी आत्मरक्षा के लिये अपनी शक्ति के अनुसार पूरी तैयार होकर बैठी रही।

अब जगदेव का हाल सुनिये। एक घर किराये करके और सब इन्त-जाम करके सांझ पडते पड़ते वह तलाब के किनारे लौटा जहाँ वह अपनी स्त्री और घोडों को छोड़ कर गया था। वहा उसने घोडों और गाडियों के निशान देखे तो तुरन्त समझ गया कि कोई न कोई धोखा देकर चावडी को ले गया। जो कुछ हुआ उसकी सूचना देने के लिए वह दरबार मे गया। वहाँ दरबार-भवन के सामने ही अश्वपाल (घोडो का रक्षक) बैठा था। जब जगदेव उधर पहुचा तो अश्वपाल ने अपने मन मे कहा 'यह तो कोई सच्चा राजवशी है।' वह खडा हुआ और उसका आलिङ्गन करके कहने लगा 'आप कहा से आये हैं?' जगदेव ने कहा 'मैं तो यहा अपनी दो रोटी की तलाश मे आया हूँ, परमार राजपूत हूँ। अश्वपालन ने कहा 'यदि तुम इन घोड़ों की देखभाल कर लिया करो तो हम तुम साथ रहा करें और तुमको तनखाह व भोजन मिला करेगा।' जगदेव का हृदय और विचार वहा नहीं थे, परन्तु उसने सोचा कि यह अधिकारी उसका राजा से परिचय करा सकता है। अश्वपाल ने यह आश्वासन दिया कि वह उसको राजा से मिला देगा तो उसने उसके साथ रहने को हा कह दी। इस बात से यद्यपि वह सन्तुष्ट नहीं था, परन्तु—

'क्षण क्षण करके तो चन्द्रमा बढता है और क्षण क्षण करके घटता है कभी आधा रह जाता है कभी पूर्ण हो जाता है—विधाता ने चन्द्रमा को भी तो समान दिन नहीं दिये हैं।'(१)

---

(१) खण खीणो खण बड्ढलो, खण आधो खण लीह।
दैव न दीधा चन्द ने, सबै सरीखा दीह॥

उसने सोचा काम तो है परन्तु किया भी क्या जाय? सन्ध्या होते ही उसने चोरों को खाना खिलाया। अरवपाल अपने घर से भोजन लाया परन्तु जगदेव को भूख नहीं थी फिर भी उसने खाने का बहाना किया और थाल लौटा दिया। रात भर वह अपने बिस्तर पर करवटें बदलता रहा।

अन्त में, दिन उगा और कोतवाल ढू गरसी कोतवाली के चबूतरे पर आया। चौकीदारों ने नमस्कार करके वह गट्ठर दिखलाया और कहा कि रात में भागते हुये चोरों से उन्होंने उसको छीना था। इस पकड़ से कोतवाल प्रसन्न हुआ और कहने लगा 'इस गट्ठर को खोलो और देखो इसमें क्या है'। नौकर जल्दी जल्दी गट्ठर खोलने लगे परन्तु जब उन्होंने तीसरा पड़त खोला तो उनको खून दिखाई दिया और वे सब चौंके। वे फिर उसको जल्दी जल्दी खोलने लगे तब उनको मालूम हुआ कि उसमें तो किसी न मनुष्य को मार कर लपेट दिया है। ढूँगरसी उस शव को पहचान गया और बोला 'अरे' यह तो लालका(१) है, इसमें कोई सन्देह नहीं, हाय' वह मुझे कितना प्यारा था कपड़े और गहने पहने हुये यह सजीव सा दिखाई देता है यह कह कर कोतवाल अपनी छाती पीटने लगा और नौकरों से कहने लगा, 'अरे! दौड़ो जल्दी खबर लाओ यह तो तुम्हारे स्वामी लाल का मुख है। उन्होंने कहा 'लालजी तो घर पर सो रहे हैं। फिर उन्होंने उसके खवास को बुलवाया तो उसने जवाब दिया कि वह रात को नौ बजे जामोती गणिका के घर पर गया था। तब वे लोग दौड़े और जामोती के घर गये। वहां उसने कहा कि वह तो आराम से ऊपर के कमरे में सो रहा है। यह सुनकर उन्होंने उसे जगाने के लिए कहा। तब दासी ने अन्दर आवाज दी 'लालजी! रात

(१) यह लालसिंह का संक्षिप्त प्यार का नाम है।

कुमार को जगाओ और यहाँ भेजो।' चावड़ी ने क्रोध में भरकर कहा, "कम्बख्त रांड! वह तेरा बाप जिस समय यहा आया था उसी समय मैंने उसको मार डाला और एक गट्ठर मे बाधकर सड़क पर फेंक दिया। तूने चावड़ों की लड़की के साथ चालाकी खेलने की हिम्मत की है। अभागिन! जब मेरे पति राजकुमार को इसका पता चलेगा तब वे तुझे इसका मजा चखाएंगे। दूसरी स्त्रियां चाहे वेश्यावृत्ति करती होंगी परन्तु मैं तुझे शाप देती हूँ कि तेरा सत्यानाश होगा। तूने एक गोले को– जो मेरे दरवाजे पर बैठने योग्य भी नहीं था, उसको मेरे पास भेजा! तेरी यह हिम्मत कि मेरी ओर आख उठाए!" यह सुनकर तो वह वेश्या अधमरी हो गई। दौड कर नौकरों ने कोतवाल को खबर दी कि किसी चावडी राजपूतानी ने उनके स्वामी का वध किया है। अब तो कोतवाल दो सौ आदमियों को साथ लेकर जामोती के घर पर पहुचा और ऊपर की मजिल पर चढ गया। जिस कमरे मे चावडी थी उसका दरवाजा तो जोर से बन्द था परन्तु पीछे की ओर दीवार में एक खिड़की थी जिसमे होकर एक बार मे एक ही आदमी अन्दर घुस सकता था। सीढ़ी लगाकर एक नौकर ऊपर चढ़ा और खिडकी में से ज्योंही अन्दर झांका कि चावडी ने अपनी तलवार से उसका शिर काट डाला, जो कमरे के अन्दर पड़ गया और धड बाहर की ओर गिर पडा। इसी प्रकार उसने पाच या छ आदमियों को तलवार के घाट उतार दिया परन्तु उसको पकडने में कोई भी सफल न हुआ और वे सब के सब थर थर कांपने लगे।

यह बात चारों ओर फैल गई और सिद्धराज जयसिंह को भी ज्ञात हुआ कि किसी चावडी राजपूतानी को धोखा हुआ है और उसने एक कोतवाल के लडके और पाच छ दूसरे लोगों को मार डाला है तथा एक बन्द कमरे मे बैठी अपनी रक्षा कर रही है। राजा ने आज्ञा दी, 'जाओ

और कह दो कि जब तक मैं न आऊँ कोई भी उससे कुछ न कहे मैं अभी यहाँ आता हूँ। सिद्धराज ने अपना घोड़ा मंगवाया और उस पर सवार हुआ। भरवपाल और जगदेव ने प्रणाम किया। जगदेव को देख कर राजा आकर्षित हुआ। उसने अपने मन में कहा 'यह तो बड़ा सुन्दर राजपूत है—मैंने पहले इसे यहाँ कभी नहीं देखा। जगदेव घोड़े पर चढ़कर राजा के आगे आगे चला और राजा भी रास्ते भर जमोटी के घर तक उसकी तरफ एकटक देखता गया। सिपाहियों ने भीड़ में रास्ता किया और वहाँ पहुँच कर राजा ऊपर चढ़ा। भरवपाल और जगदेव उसके पीछे पीछे चले। ऊपर जाकर जयसिंह ने कहा बेटी चावड़ी ! मुझे बताओ तुम्हारा पीहर कहाँ है ? तुम्हारा सुसराल कहाँ है ? और तुम्हारा विवाह किसके साथ हुआ है ? चावड़ी ने देखा और समझ गई कि यह तो कोई बड़ा सरदार है, इसलिए उसने कहा 'महाराज ! मैं राजा राज चावड़ा की लड़की और वीरज की बहन हूँ। मेरा विवाह धार के राजा उदयादित्य परमार के छोटे पुत्र के साथ हुआ है। तब राजा ने पूछा 'बेटी चावड़ा ! तूने मेरे आदमियों को क्यों मार डाला ? इस पर चावड़ी ने क्रोधित होकर कहा 'महाराज ! यह गणिका चालाकी से मुझे यहाँ ले आई और फिर एक गोला मेरा सतीत्व भ्रष्ट करने आया इसलिए मैंने उसे मार डाला। मैं राजपूत की लड़की हूँ; मरने से पहले कितनों ही को मारूँगी और अन्तिम दम तक लड़ती रहूँगी। फिर जैसी ईश्वर की इच्छा होगी वैसा होगा। मेरा पति राजकुमार भी यहीं कहीं शहर में है। उसी समय जगदेव ने आगे आकर कहा 'चावड़ी ! दरवाजा खोल दो तुमने एक बड़ा भारी संकट मोल ले लिया है। जग देव की आवाज को पहचान कर चावड़ी ने किवाड़ खोल दिया और उसकी गोद में आ गिरी। अब जयसिंह जान गया कि यही जगदेव है।

उसने चावडी से कहा 'तुम मेरी धर्म की पुत्री हो।' यह कह कर उसने अपने नौकरों को बुलाया और कहा, 'एक रथ लाओ और दस दासियों सहित इनको एक सुन्दर घर मे ले जाओ।'

अब, डूगरशी कोतवाल आया और राजा से विनय करने लगा, "महाराज! आपकी जय हो! मेरे घरका सत्यनाश करनेवाली के लिए आपने क्या आज्ञा दी?" राजा ने कहा, 'इस बेटी चावडी ने अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा की है,। जब कोई गोला किसी राजपूत की बहू-बेटी का सतीत्व भ्रष्ट करने आवे तो उसे दण्ड मिलना ही चाहिये। क्या इस तरह के खोटे काम करने के लिए ही मैंने नगर को तुम्हारे भरोसे पर छोड रखा था?" इसके बाद आज्ञा हुई कि, उस मूर्ख को कोतवाल के पद से हटा दिया जावे और वह राजाको अपना मुँह भी न दिखा सके। यह कह कर उसने डूगरशी के मालमते जायदाद आदि को भी जब्त कर लिया, और उसको देश निकाला देकर उसका घर लुटवा लिया। इस प्रकार राजा ने दूसरों के सामने कोतवाल का उदाहरण स्थापित किया। इसके पश्चात् सिद्धराज ने सभी वेश्याओं को पकडवा लिया और उनके नाक कटवा कटवा कर सबको शीतला के वाहन (गधे) पर बिठाकर नगर मे फिराया और बाहर निकाल दिया तथा उनके घर बार लुटवा दिये। चावड़ी को रथ में बिठाकर और दस दासिया उसकी सेवा के लिये देकर राजा ने एक हवेली में रख दिया। जयसिंहदेव स्वय उसको वहा तक पहुंचाने गया और काम काज देखने के लिए एक खवास (१) उसके तैनात कर दिया। उसके घर में इतना खाने पीने का सामान भरवा दिया जो एक साल भर चले, और घर के उपयुक्त ही साज सामान का भी प्रबन्ध

---

(१) राजा का मुख्य सेवक। खास=मुख्य। खवास खास शब्द का बहुवचन है।

करवा दिया। उसके घरकी चौकसी के लिए एक पुरुष चौकीदार भी नियुक्त किया गया तथा जो जो बातें उसके लिए आवश्यक थीं उन सब का प्रबन्ध कर दिया और उसने एक बार फिर घोषित किया कि वह उसकी धर्मपुत्री थी। इसके बाद जगदेव को साथ लेकर वह अपने दरबार में गया और वहाँ बैठकर उस से अन्य बातों की पूछताछ करने लगा। राजा जगदेव से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसको अपने साथ भोजन कराया। रात को नौ बजे उसने पोशाक मोतियों की माला और कण्ठा आदि भेंट करके उसको विदा किया। जगदेव ने घर आकर चावड़ी को गले से लगा लिया और मोतियों का कण्ठा देकर कहा, 'तूने जल्दी ही अपना परिचय राजा से करवा दिया नहीं तो दस बीस दिन की देर हो जाती और किसी तीसरे मनुष्य द्वारा उसको मालूम करवाना पड़ता। इस प्रकार बहुत रात तक वे उस दिन की घटनाओं के बारे में बातचीत करते रहे।

चावड़ी पातिव्रत धर्म का पालन करती थी इसलिए उसने उस दिन कुछ भी न खाया था। वह सवेरे तीन बजे ही उठी और रसोई तैयार करने लगी—पानी गरम होने को रख दिया। जब सब कुछ तैयार हो गया तो उसने जगदेव को जगाया। उसने कहा 'आज इतनी जल्दी क्यों ?' चावड़ी ने कहा 'राजा आपको बुलायेंगे कल उन्होंने आपसे बातें की थीं इसलिए आज वे आपके बिना एक क्षण भी न रहेंगे। मैंने जो नियम ले रखा है वह तो आप जानते ही हैं। इसलिये कल से मेरा उपवास ही चला आ रहा है, अब आप उठिये स्नान कीजिये और आपके भोजन कर लेने पर मैं भोजन करूँगी। जगदेव ने कहा 'ठीक है। वह उठा, स्नान आदि से निवृत्त हुआ और फिर दोनों ने भोजन किया। इतने ही में एक आदमी घोड़ा लेकर आया

और दरवाजे पर आवाज देने लगा। जगदेव अपनी स्त्री से विदा लेकर नीचे आया और घोड़े पर चढ़ कर दरबार को चला।

जब वह दरबार मे पहुँचा तो राजाने खडे होकर उसका आदर किया और फिर वे दोनों बातें करने लगे। राजा ने पूछा, 'आप मेरे यहाँ काम करेंगे ?' जगदेव ने उत्तर दिया, मैं तो दो रोटी पैदा करने के लिये ही घर से निकला था।' राजा ने फिर पूछा कि आप पट्टा (जमीन) लेंगे या नकद तनख्वाह लेते रहेंगे ?' जगदेव ने कहा 'महाराज ! नकद तनख्वाह लेना मुझे ठीक जचता है, मैं एक हजार रुपये रोज लूँगा और अधिक से अधिक जोखिम वाले स्थान पर मुझे भेज दीजिये, यदि पीछे पैर रखूँ तो असल राजपूत नहीं।' तब राजा ने कहा, 'बहुत ठीक है।' यह कह कर उसने कोपाध्यक्ष को बुलाया और आज्ञा दी कि जगदेव को दो हजार रूपये प्रतिदिन के हिसाब से साठ हजार रुपया महीना दिया करो, इनकी तनख्वाह मे कोई अडचन न पड़े।' इसके बाद राजा ने जगदेव को एक शिरोपाव(१) भेंट किया और परवाना लिखकर उस पर अपनी मोहर करके दे दिया।

जब जगदेव घर चला गया तो पट्टण के बडे बडे सरदार आपस में कानाफूसी करने लगे, 'राजाने इसको क्यों नौकर रखा है ? सूर्य उगते ही इसको दो हजार रुपये मिल जाते हैं, अस्सी लाख घुड़सवारों की फौज आवेगी तब यह अकेला उसको कैसे हरा देगा ?' परन्तु राजा उससे निरन्तर प्रसन्न रहता, उसको अपने बराबर या सामने बिठाता और कुछ न कुछ भेंट किये बिना उसको घर न जाने देता। इस प्रकार यह क्रम एक वर्ष तक चलता रहा। एक वर्ष समाप्त होते होते जगदेव के एक कुँवर उत्पन्न हुआ जिसका नाम जगधवल रखा गया, और तीन वर्ष बाद

(१) सम्मान सूचक वस्त्रालकार आदि।

दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम बीजपाल पड़ा। राजा इन छोटे छोटे राजकुमारों का बहुत लाड़ प्यार करता था। उसे छोटे बच्चों और भोले मनुष्यों की भोली बातों पर इनाम देने का बहुत शौक था। दान पुण्य में भी वह नित्यप्रति एक हज़ार रुपये खर्च करता था। इन बातों का फिर भाट लोग क्यों न उल्लेख करें ? धर्मगुरु और धर्म का भला करने वाले का नाम याद करना भी नित्य के छः व्रतों में से एक व्रत है।

उस समय बड़ा कुँवर पांच वर्ष का और छोटा दो वर्ष का ही हुआ था भादों का महीना था बादल छा रहे थे, काली अंधियारी रात थी मेह बरस रहा था—मेंढक टर्रा रहे थे मोर केकारव कर रहे थे पपीहा बोल रहा था और बिजली के झमाके हो रहे थे ऐसी भाद्रपद की घनघोर रात्रि थी जिसमें कायरों की छाती तो यों ही डर के मारे धड़क रही थी। ऐसी रात्रि में राजा ने एक शोर सुना जो ऐसा मालूम होता था मानों पूर्व दिशा में चार स्त्रियाँ तो प्रसन्न होकर गीत गा रही थीं और उनसे थोड़ी ही दूर पर दूसरी चार स्त्रियां रो रही थीं। राजा ने पूछा 'यहां कोई पहरायती जग रहा है क्या ? जगदेव ने उत्तर दिया 'महाराज ! पहरायती को क्या आज्ञा है ?" राजा बोला 'जगदेव ! तुम अभी घर नहीं गये ? राजकुमार जगदेव ने उत्तर दिया 'महाराज की आज्ञा के बिना मैं घर कैसे जा सकता था ?" राजा ने कहा, 'तो अच्छा अब घर जाओ। जगदेव ने कहा महाराज आप पहरायती के लिये क्या आज्ञा प्रदान करने वाले थे ? मैं उस आज्ञा को पूरी करके ही जाऊँगा। राजा ने पूछा यह हम क्या शोर सुन रहे हैं ? जगदेव ने उत्तर दिया 'कुछ औरतें गा रही हैं और कुछ रो रही हैं। तब राजा ने कहा 'यह कौन गा रही हैं और कौन रो रही हैं, और क्यों ? मुझे इसकी खबर

लाकर दो, सुबह होते ही मैं इस बात को सुनना चाहता हूँ।' जगदेव ने प्रणाम किया और अपनी ढाल सिर पर रखकर तथा हाथ मे तलवार लेकर अकेला ही चल दिया। राजा ने मन ही मन सोचा, 'भादों की राते भयावनी होती है जरा देखूँ तो यह जाता है या नहीं।' इस प्रकार सोच विचार करके एक काला कपडा चारों ओर लपेट कर सिद्धराज भी जगदेव के पीछे पीछे चल दिया। कुछ और भी सरदार पहरे पर थे। वेष बदले हुए राजा ने उनसे उनके नाम पूछे और उन्होंने अपने अपने नाम बतला दिए। उसने उनसे भी कहा कि पूर्व की ओर कुछ स्त्रियाँ गा रही हैं और कुछ रो रही हैं, राजा उनकी खबर मगवाना चाहते हैं।' एक सामन्त ने कहा, "जिसको दो हजार रुपये प्रतिदिन मिलते हैं और जिसको नित्य इनामें मिलती हैं उसे भेजने दो अब तक तो वह मुफ्त की पगार पाता रहा है।" राजा ने यह सब चुपचाप सुन लिया। कुछ सरदारों ने कहा, 'हम इसकी खबर ले आए गे।' फिर जब वे अपनी अपनी चारपाई मे सोने लगे तो एकदूसरे से कहने लगे, 'ठाकुरो ! उठो ! उठो !।' इसके बाद जैसे अपने हथियार ही तैयार कर रहे हों इस तरह का शब्द करके और अपनी ढालों को खडखडाते हुए वे ऊँघने लगे।

इतनी ही देर में जिधर से रोने की आवाज आ रही थी उधर पूर्व ओर जगदेव रवाना हुआ। सिद्धराज भी उसके पीछे पीछे हो लिया। व नगर के दरवाजे पर पहुचा और दरवान ने खिडकी खोलकर बाहर जाने दिया। सिद्धराज ने कहा, मैं इस सरदार का खवास हूँ, कह कर वह भी बाहर निकला। जिधर स्त्रियाँ रो रही थीं उधर ही देव आगे बढा और उनसे कहने लगा, 'तुम कौन हो ? तुम मृत्यु- ; की रहनेवाली हो, देविया हो, अथवा भूतनी या प्रेतनी, सिद्धा वा

शिक्षोतरी (१) हो ? इस आधी रात के समय क्यों विलाप कर रही हो, मुझे कहो तुम्हें क्या दुःख है ?' वे बोलीं 'पुत्र जगदेव ! इधर आओ, तुम कहां से आए हो ?' उसने कहा 'मैं तुम्हारे विलाप का कारण पूछने आया हूँ।' उन्होंने उत्तर दिया 'हम पाटण की योगिनियां हैं कल दस बजते बजते सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु का समय है और इसीलिए हम विलाप कर रही हैं। अब भक्ति बलिदान और दानपुण्य कौन करेगा ? हमें विलाप करना ही चाहिए। राजा जहाँ छुपकर खड़ा था वहीं से उसने यह सब कुछ सुना। जगदेव ने फिर पूछा 'परन्तु, ये जो गा रही हैं वे कौन हैं ?' योगिनियों ने कहा 'जाकर तुम्हीं पूछ लो।' जगदेव उधर गया और प्रणाम करके बोला, 'तुम बधावे (२) गा रही हो तुम में प्रधान कौन है ? और तुमको ऐसी क्या प्रसन्नता है कि तुम इस प्रकार गीत गा रही हो ?' वे बोलीं 'हम दिल्ली की कुलदेवियाँ हैं और सिद्धराज जयसिंह देव को लेने के लिए आई हैं यह देखो विमान मौजूद है। यही हमारे गाने का कारण है।' जगदेव ने पूछा 'उसकी मृत्यु कब होगी ?' देवियों ने जवाब दिया 'प्रातःकाल सवा पहर दिन चढ़े जब वह स्नान आदि से निवृत्त होकर पूजा के लिए तैयार होगा और पीताम्बर पहनकर चौकी पर खड़ा होगा उसी समय हम उसे मार देंगी और वह शरीर छोड़ देगा।' जगदेव ने फिर पूछा 'आज कल के समय में सिद्धराज जैसा कोई राजा नहीं है। कोई पुरुष दान शपथ (व्रत) अथवा अन्य कोई ऐसा उपाय है क्या, जिससे कि वह संकट से बच जाय ?' देवियों ने कहा 'इसका केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि

---

(१) शाकिनी/डाकिनी के छः भेदों में एक भेद है।

(२) बधाई गीत।

यदि सिद्धराज की बराबरी का कोई सामन्त अपना मस्तक काटकर हमें दे दे तो जयसिंह की आयु बढ सकती है।' जगदेव ने कहा, 'क्या मेरे मस्तक से काम चल जायगा? यदि मैं अपना सिर उतार कर तुम्हे अर्पण कर दूँ तो क्या सिद्धराज की आयु और राज्य बढ़ जाएंगे? यदि ऐसा हो सके तो मैं तैयार हूँ।' देवियों ने यह बात मान ली और कहा, 'जो तू अपना सिर दे दे तो सिद्धराज बच सकता है।' उसने कहा, 'मुझे थोडी देर की छुट्टी दो, मैं जाकर यह सब वृत्तान्त अपनी स्त्री को सुना आऊँ और उसकी अनुमति ले आऊं।' यह सुनकर देवियां ठहाका मारकर हसने लगीं और कहने लगीं, 'क्या कोई स्त्री अपने पति के मरण में सहमत होगी? परन्तु जा और उसे पूछकर जल्दी लौट आ।'

अब जगदेव घर की ओर चला। सिद्धराज ने मन में कहा, देखूँ अब यह वापस आता है या नहीं और चावड़ी क्या कहती है। यह सोचकर वह भी उसके पीछे पीछे चला। जगदेव घर पहुँचकर ऊपर के कमरे मे गया और उसने चावडी का आलिङ्गन किया। सिद्धराज जयसिंह पति-पत्नी की बातचीत को ध्यान से सुनने लगा। वे नित्य की तरह पास पास बैठे। जगदेव बोला, 'चावडी! एक बहुत गम्भीर मामला है।' चावडी ने हाथ जोड़कर पूछा, 'नाथ! क्या आज्ञा है?' तब जगदेव ने आदि से लेकर अन्त तक सब कथा कह सुनाई और फिर कहा 'मैं तुम्हारी अनुमति लेने आया हूँ।' चावड़ी बोली, 'आज का दिन और रात धन्य है! ऐसे ही अवसर के लिए हम नमक खाते हैं। अपना जीवन अर्पित कर दो। इसी के लिए तो वेतन, धन और जमीनें मिलती हैं। आपने बहुत सुन्दर निश्चय किया है, राजपूत का यही धर्म है। यदि सिद्धराज जीवित रहें

और राज्य करते रहें तो सब कुछ ठीक है, और यदि वे ही न रहें तो जीवन का क्या मूल्य रह जायगा ? परन्तु, मेरे स्वामी ! एक प्रार्थना है वह यह कि मैं जीवित रह कर क्या करूँगी ? केवल दो घड़ी जीवित रह कर मैं क्यों यह संकट अपने ऊपर लूँ (१) मैं भी अपना जीवन आप ही के साथ समाप्त कर दूँगी। जगदेव बोला, 'परन्तु बच्चे—इनका क्या होगा ?" चावड़ी ने कहा, 'इनका भी उसी समय बलिदान कर दो। फिर जगदेव बोला 'यदि ऐसी बात है तो देर मत करो। जगदेव अपने बड़े बच्चे का हाथ पकड़कर नीचे उतरा और चावड़ी उसके पीछे पीछे चली। सिद्धराज जयसिंह देख आश्चर्य से भर गये और बोले 'धन्य राजपुत ! धन्य राजपुत्री !!

इसके बाद वे चारों रवाना हुए और राजा भी यह देखने को कि क्या होता है उनके पीछे पीछे चला। जगदेव और चावड़ी देवियों के पास जाकर पहुँचे। वे बोलीं 'जगदेव ! तुम अपना मस्तक अर्पण करने को तैयार हो ? यह बोला 'मेरे सिर के बदले में तुम सिद्धराज की कितनी आयु बढ़ा दोगी ? उन्होंने उत्तर दिया 'इसके बदले में यह बारह वर्ष और राज्य करेगा।' जगदेव ने फिर कहा, 'चावड़ी और इन दोनों लड़कों में से प्रत्येक का जीवन का मूल्य भी मेरे जीवन के बराबर ही है इसलिये चारों की जिन्दगी के बदले में सिद्धराज की अड़तालीस वर्ष की आयु और राज्य बढ़ा दो मैं चारों का जीवन अर्पण करता हूँ। देवियों ने कहा 'ऐसा ही होगा। इसके बाद चावड़ी ने अपने बड़े पुत्र को आगे किया

(१) भावार्थ यह है कि उसके पति के मर चुकने के बाद दो घड़ी तो वह रहेगी ही फिर, यही अच्छा है कि वह साथ ही साथ अपने प्राण भी समर्पित कर दे। दो घड़ी का वियोग भी क्यों झेले ?

और जगदेव ने तलवार निकाल कर उसका शिर काट डाला। फिर वह अपने दूसरे पुत्र को चढाने लगा, इतने ही मे देवियों ने उसको रोक दिया और कहा, 'जगदेव ! हमने तुम्हारे, तुम्हारी स्त्री और दोनों बच्चों के अडतालीस वर्ष स्वीकार कर लिए।' यह कह कर उन्होंने जगदेव के वडे पुत्र के शव पर अमृत छिडका और वह तुरन्त जी उठा। फिर, देवियों ने हँसकर कहा, 'तुम्हारी और तुम्हारी स्त्री की स्वामिभक्ति से हम वहुत प्रसन्न हैं।' इसके वाद उन्होंने दोनों वच्चों के शिर पर हाथ फेरा और उन्हें चावडी को सौंप दिया। उन्होंने कहा, 'जगदेव ! तुम्हारी स्वामिभक्ति के कारण हमने सिद्धराज का राज्य अड़तालीस वर्ष और वढा दिया है।' यह कह कर उसको विदा किया, और उसने तथा चावड़ी ने नमस्कार करके अपने वच्चों को साथ लेकर घर की ओर प्रस्थान किया।

जगदेव की स्वामिभक्ति और उसकी स्त्री की पतिभक्ति को देखकर राजा गद्गद हो गया। वह राजमहल को लौट गया और पूर्ववत् लेट रहा। वह लेटे लेटे विचार करने लगा, 'जगदेव ! तू धन्य है ! तूने मेरा राज्य और आयु अडतालीस वर्ष और वढा दिये।' वह इसी प्रकार विचार करता रहा और उसे नींद नहीं आई। सुवह के चार वजते ही साईस जगदेव को वुलाने आ पहुचा। उसने उठकर मुँह हाथ धोये और स्नान करके सर्वशक्तिमान् प्रभु की पूजा की। इसके वाद उसने माला जपी, ललाट पर तिलक किया और पौ फटते फटते तो राजा के पास उपस्थित होगया।

जव जगदेव आया तो राजा सिद्धराज दरवार में विराजमान था। उसने सिंहासन से उठ कर उसको गले से लगा लिया और अपने पास ही दूसरा सिंहासन लगवा कर आग्रह करके उस पर विठाया। इसके

और राज्य करते रहें तो सब कुछ ठीक है और यदि वे ही न रहें तो जीवन का क्या मूल्य रह जायगा ? परन्तु, मेरे स्वामी ! एक प्रार्थना है वह यह कि मैं जीवित रह कर क्या करूँगी ? केवल दो घड़ी जीवित रह कर मैं क्यों यह संकट अपने ऊपर लूँ (१) मैं भी अपना जीवन आप ही के साथ समाप्त कर दूँगी। जगदेव बोला 'परन्तु बच्चे—उनका क्या होगा ?" चावड़ी ने कहा 'उनका भी उसी समय बलिदान कर दो। फिर जगदेव बोला 'यदि ऐसी बात है तो देर मत करो। जगदेव अपने बड़े बच्चे का हाथ पकड़कर नीचे उतरा और चावड़ी उसके पीछे पीछे चली। सिद्धराज जयसिंह देव आश्चर्य से भर गये और बोले, 'धन्य राजपुत्र ! धन्य राजपुत्री !!

इसके बाद वे चारों रवाना हुए और राजा भी यह देखने को कि क्या होता है उनके पीछे पीछे चला। जगदेव और चावड़ी देवियों के पास जाकर पहुंचे। वे बोलीं 'जगदेव ! तुम अपना मस्तक अर्पण करने को तैयार हो ? वह बोला 'मेरे शिर के बदले में तुम सिद्धराज की कितनी आयु बढ़ा दोगी ? उन्होंने उत्तर दिया 'इसके बदले में वह बारह वर्ष और राज्य करेगा। जगदेव ने फिर कहा 'चावड़ी और इन दोनों लड़कों में से प्रत्येक के जीवन का मूल्य भी मेरे जीवन के बराबर ही है इसलिये चारों की जिन्दगी के बदले में सिद्धराज की अड़तालीस वर्ष की आयु और राज्य बढ़ा दो मैं चारों का जीवन अर्पण करता हूँ। देवियों ने कहा 'ऐसा ही होगा। इसके बाद चावड़ी ने अपने बड़े पुत्र को आगे किया

(१) आशय यह है कि उसके पति के मर चुकने के बाद तो वह भी मरेगी ही फिर, यही अच्छा है कि वह साथ ही साथ अपने प्राण भी समर्पित कर दे। दो घड़ी का वियोग भी क्यों भोगे ?

और जगदेव ने तलवार निकाल कर उसका शिर काट डाला। फिर वह अपने दूसरे पुत्र को चढ़ाने लगा, इतने ही में देवियों ने उसको रोक दिया और कहा 'जगदेव! हमने तुम्हारे, तुम्हारी स्त्री और दोनों बच्चों के अड़तालीस वर्ष स्वीकार कर लिए।' यह कह कर उन्होंने जगदेव के बड़े पुत्र के शव पर अमृत छिड़का और वह तुरन्त जी उठा। फिर, देवियों ने हँसकर कहा, 'तुम्हारी और तुम्हारी स्त्री की स्वामिभक्ति से हम बहुत प्रसन्न हैं।' इसके बाद उन्होंने दोनों बच्चों के शिर पर हाथ फेरा और उन्हें चावड़ी को सौंप दिया। उन्होंने कहा, 'जगदेव! तुम्हारी स्वामिभक्ति के कारण हमने सिद्धराज का राज्य अड़तालीस वर्ष और बढा दिया है।' यह कह कर उसको विदा किया, और उसने तथा चावड़ी ने नमस्कार करके अपने बच्चों को साथ लेकर घर की ओर प्रस्थान किया।

जगदेव की स्वामिभक्ति और उसकी स्त्री की पतिभक्ति को देखकर राजा गद्गद हो गया। वह राजमहल को लौट गया और पूर्ववत् लेट रहा। वह लेटे लेटे विचार करने लगा, 'जगदेव! तू धन्य है! तूने मेरा राज्य और आयु अडतालीस वर्ष और बढा दिये।' वह इसी प्रकार विचार करता रहा और उसे नींद नहीं आई। सुबह के चार बजते ही साईस जगदेव को बुलाने आ पहुंचा। उसने उठकर मुँह हाथ धोये और स्नान करके सर्वशक्तिमान् प्रभु की पूजा की। इसके बाद उसने माला जपी, ललाट पर तिलक किया और पौ फटते फटते तो राजा के पास उपस्थित होगया।

जब जगदेव आया तो राजा सिद्धराज दरबार मे विराजमान था। उसने सिंहासन से उठ कर उसको गले से लगा लिया और अपने पास ही दूसरा सिंहासन लगवा कर आग्रह करके उस पर बिठाया। इसके

बाद उसने उन सामन्तों को बुलाया जिनको रात्रि के समय खबर लाने के लिए आज्ञा दी थी। जब वे आए तो उनसे पूछा 'रात्रि के क्या समाचार लाए ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'दो गाड़ियों में चार माऊ(१) बैठी थीं। एक गाड़ी में बैठी हुई स्त्री के पुत्र उत्पन्न हुआ था इसलिए वे गाती थीं, और जो दूसरी में बैठी थीं उनका पुत्र मर गया था, इसलिए वे विलाप कर रही थीं। सामन्तों की यह बात सुनकर सिद्धराज ने एक घृणापूर्ण हँसी हँसी और कहा 'तुम एक एक लाख के पटावती(२) हो तुम मेरे राज्य के बड़े बड़े स्तम्भ हो यदि तुम्हीं खबर लाकर न दोगे तो कौन देगा ?' ऐसा कह कर उसने जगदेव की ओर देखा और रात्रि का वृत्तान्त कह सुनाने के लिए कहा। जगदेव ने कहा "जैसा सामन्तों ने कहा है वैसा ही हुआ होगा। राजा ने फिर कहा 'जो कुछ हुआ हो सो सच सच कहो मैंने सब कुछ देख सुन रक्खा है। जगदेव ने कहा "मैंने कुछ देखा हो तो कहूँ, मुझे कहानी बना कर तो कहना नहीं आता।" तब जगदेव की उदारता और धैर्य की प्रशंसा करते हुए जयसिंह कहने लगा "सामन्तो! भाइयो! और सरदारो! इस कथा को सुनो। आज प्रातःकाल का पहला पहर मेरे मरण का समय था परन्तु इन जगदेव के प्रताप से मुझे अड़तालीस वर्ष का राज्य और आयु और मिल

---

(१) दुष्काल पड़ने पर अथवा कोई अन्य संकट पड़ने पर घरबार छोड़ कर निकलने वाली स्त्रियाँ 'माऊ' या मऊ कहलाती हैं। मारवाड़ के बनिये माऊ कहलाते हैं। ये कच्छ काठियावाड़ में आकर बस गये हैं और आज तक 'माऊ' नाम से पुकारे जाते हैं। 'माऊ' या 'मऊ' का अर्थ दुःखी मनुष्य है। जब मारवाड़ में अकाल पड़ता है तब वहाँ के लोग देशान्तरों में जाकर निर्वाह करते हैं। इसीलिए भविष्यकथन करते हुए भड्डली ने भी कहा है कि यदि ऐसे चिन्ह दृष्टिगोचर हों तो 'मऊ मालवे जाय।

(२) एक लाख रुपया वार्षिक आय की जागीर के उपभोक्ता।

गये हैं। इन्होंने अपने दोनों पुत्रों सहित अपना और अपनी स्त्री के शिर मेरे लिए देवियों को अर्पण कर दिये थे, और बडे लड़के का शिर तो प्रत्यक्ष ही काट कर चढ़ा दिया था। इस शूरवीर सरदार का साहस और स्वामिभक्ति देख कर तथा इसकी स्त्री के पति-प्रेम से प्रसन्न होकर देवियों ने सब कुछ लौटा दिया और मुझे भी आयु प्रदान की। आज से जो मैं राज्य करूँगा वह राजकुमार जगदेव ही के प्रताप से करूँगा। तुम लोग अपने किसी लाभ के लिए झूँठ बोलते हो, मैंने यह सब कुछ अपनी आखों से देखा है और अपने कानों से सुना है। उसको जो तनख्वाह मिलती है उसे देखकर तुम लोग कुढते हो परन्तु यदि मैं लाख अथवा करोड मुद्रा भी नित्य खर्च करूँ तो मुझे इसके समान राजपूत नहीं मिल सकता" ऐसा कहकर राजा जयसिंह ने जगदेव को अपनी बडी पुत्री का नारियल भेट किया और साथ ही दो हजार ग्रामों का पट्टा भी कर दिया। इसके उपरान्त उनके व्यक्तिगत खर्चे के लिए उसने उन्हें पाच सौ गाव और दिए। इसके पश्चात् कड़े, मोतियों का कठा, शिरपेच और बहुत से बहूमूल्य जवाहरात भेट करके उनको विदा किया। घर लौट कर, जो कुछ हुआ वह सब उसने चावडी को कह सुनाया। उसने कहा, 'आप राजा हो, आपके अन्त पुर में दो चार राजकन्याएँ तो चाहिए ही, आपने बहुत अच्छा किया, सम्बन्ध बहुत ठीक हुआ है।'

इसके अनन्तर शुभ मुहूर्त देखकर जगदेव का विवाह सस्कार पूरा हुआ। सब लोग सिद्धराज जयसिंह और जगदेव को बराबर समझने लगे। इस प्रकार उन्होंने दो तीन वर्ष सुख सम्पत्ति का पूर्ण उपभोग करते हुए बिताए।

भुजनगर मे राजा फूलजी राज करता था। उसके लाखा फूलाणी(१)

---

(१) कच्छ में बोलाडी ग्राम के समीप अणघोर गढ में राजा फूल (८५५ से ८८० ई० तक) की राजधानी थी। डवाय नदी की एक क्षुद्र धारा के

नाम का एक पुत्र था जिसके दो पुत्रियाँ थीं। एक बार उसने विचार किया कि ये लड़कियाँ विवाह के योग्य होगई हैं इसलिए सुयोग्य वरों की तलाश करना चाहिए। अपने मन्त्री को बुलाकर उसने सिद्धराज जयसिंह देव के पास नारियल भेजने की सलाह की और अन्त में आजेजी का नारियल पाटण जा ही तो पहुँचा। जयसिंह ने भी बरात तैयार की और जगदेव तथा अन्य सामन्तों के साथ रवाना होकर भुज नगर आ पहुँचा। बड़े समारोह के साथ उनका स्वागत करके नगर प्रवेश कराया। राजा फूल को जगदेव के कुल की बात पहले ही विदित थी और फिर इस अवसर पर उसके प्रधान ने यह कह कर और भी दृढ़ता ला दी कि जगदेव एक सच्चा राजपुत्र शूरवीर और धीर पुरुष है, छोटी राजकुमारी इसको देना चाहिए। इस कुमारी का नाम फूलमती था इसका नारियल जगदेव को दिया गया। राजा फूल के मंडप पर सिद्धराज सोलंकी और जगदेव पँवार के साथ दोनों आजेजियों का विवाह हो गया। कुलमर्यादा के अनुसार परदक्षिणा आदि मिलने पर उन्होंने विदा मांगी और पाटण आकर सुख से रहने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गए। उन्हीं दिनों

---

तट पर लाखाड़ी का कोट भग्नावशेष गढ़ तथा कतिपय जैन मन्दिरों के खंडहर अब भी विद्यमान हैं। परन्तु यहाँ ऐतिहासिक विसम्वाद है। लाखा फूलाणी तो जयसिंह के परदादा मूलराज के हाथों ही मारा जा चुका था। फिर वह इस समय कैसे हो सकता था? वास्तव में यह लाखा जाडाणी था न कि फूलाणी। जाम लाखा जाडाणी के सात कन्यायें थी उनके लिए योग्य वर न मिलने के कारण वे बस मरी थी—यह बात प्रसिद्ध है। परन्तु उनमें से दो बड़ी कन्याओं का लग्न होगया हो और बाकी पाँच बस मरी हों—यह सम्भव है। जाम लाखा जाडाणी की राजगद्दी लखियार विरा में थी। इसलिए सिद्धराज के समय में लाखा फूलाणी नहीं था वरन् यह लाखा जाडाणी था। इसका समय १ ४७ ई० से ११७५ तक था।

चावडी के पीहर से दूत उसे लिवाने आए और वह जगदेव की आज्ञा प्राप्त करके दोनों बालकों सहित अपने पीहर चली गई ।(१)

अब, आगे की कथा मनोरञ्जक होने के बदले विस्मय-जनक अधिक है। कवि ने वर्णन किया है कि किस तरह जगदेव ने उपकारों से अपने स्वामी को वश मे कर लिया था। कहते हैं कि सिद्ध राज की जाडेजी रानी पर काल-भैरव का असर था। (२) जगदेव ने उस

---

(१) इस कथा की ऐतिहासिक उपयोगिता दिखाने के लिए यह बात बताना आवश्यक है कि जो विवाह नही हुआ हो अथवा जिन कुलों में आपस में सम्बन्ध नही हुआ हो उनके विषय में यह लिखना कि सम्बन्ध हुआ था—इतनी स्वतन्त्रता किसी भाट का नही हो सकती क्यो कि ऐसा करने से वे दोनों ही कुल उस पर अप्रसन्न हो जायेंगे ।

(२) इस कथा का प्रसग इस प्रकार मिलता है—"जाडेजी बहुत रूपवती थी। वह मृगनयनी पद्मिनी के समान शोभा वाली थी। उसके अगराग में नित्य पाच सौ रुपये की सुगन्धित सामग्री खर्च होती थी। स्नान के समय जब उसके नहाने का जल बहता तो उस प्रवाह पर सुगन्धि के लोभी भँवरें मँडराया करते थे—इससे रानी को बडा दु ख पहुँचा । कोई काल भैरव रानी पर आसक्त होगया और नित्य आकर रानी में आविष्ट होने लगा। जब सिद्धराज को काल भैरव की बात मालूम हुई तो उसे बहुत दु ख हुआ और वह इसी चिन्ता से नित्य सूखने लगा और बहुत ही उदास मालूम पड़ने लगा। अब वह किसी भी प्रकार के रागरग व राज्य कार्य में भाग नहीं लेता था और न उसका चित्त ही लगता था ।

इस प्रकार पाँच महीने बीत गये । जगदेव ने इसका कारण जानने का निश्चय किया। एक दिन रात पड़ने पर सभी दरबारी लोग राजा की आज्ञा ले लेकर चले गये परन्तु जगदेव नही गया। राजा ने उसे भी जाने के लिए कहा तो उसने निवेदन किया, "महाराज ! आपके चित्त में कोई गहरी चिन्ता है—आप

कालभैरव के साथ लड़ाई लड़ी और उसको जीत लिया। इसके अतिरिक्त यह भी वर्णन मिलता है कि, एक बार चामुण्डा माता एक भाट स्त्री के वेश में दान मांगने के लिए जयसिंह के दरबार में गई और जगदेव ने उस का अपना मस्तक अर्पण करके उदारता की प्रतिस्पर्धा में अपने स्वामी सिद्धराज को नीचा दिखाया। ऐसा प्रतीत होता है कि

---

उसे मुझे कहिये। तब सिद्धराज ने कहा "कुँवरजी ! मेरे मन के दुःख को मेरा मन ही जानता है —

हिवड़ा भीतर दव बले कोय न जाणे सार।
कै मन जाणे आपणो, कै जाणे करतार॥

मेरे हृदय में जो अग्नि जल रही है उसके रहस्य को कोई नहीं जानता। या तो मेरा मन जानता है या भगवान जानता है।

कुँवरजी ! यह बात कहने की नहीं है परन्तु कहे बिना पार भी नहीं पड़ती क्योंकि आप मेरे घर के हो। आज आप जनोणी (रनिवास) में छुप कर रानी की दशा को देखो तो मेरे मन की सारी वेदना आपके समझ में आ जावेगी।

इसके बाद सिद्धराज तो सो गया और जगदेव ढाल तलवार तथा शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर अनार और चमेली की बाड़ी में छुप कर बैठ रहा। आधी रात बीतते बीतते काल भैरव ने आकर राजा को नीचे पटक दिया पलग का पाया उसके सीने पर रख दिया और रानी में प्रवेश करके उसको तरह तरह की यातना देने लगा। यह देखकर जगदेव ने समझ लिया कि सिद्धराज के दुःख का कारण यही हो सकता है और वह इस दुःख को किनके आगे कहे ? इसके बाद तलवार हाथ में लेकर वह भैरव पर टूट पड़ा और भैरव से कहने लगा 'पर-काया में प्रवेश करने वाले चोर ! सावधान ! बहुत दिनों से तू बच बच कर निकल जाता था—आज जगदेव से तेरा पाला पड़ा है। अब तेरी खैर नहीं है।' फिर भैरव ने अपना बहुत सा चमत्कार दिखलाया परन्तु जगदेव ने उसकी एक भी न चलने दी और उसको इतना तंग किया कि वह बहुत ही निर्बल पड़ गया। अब वह कहने लगा 'मुझे छोड़दो आज से मैं कभी इस शरीर में नहीं आऊँगा। इसके बाद उसका आवेश

इस घटना के बाद जयसिंह जगदेव पर रुष्ट हो गया क्योंकि उसने उसको पैरा तले कुचल कर ससार में उसकी कीर्ति को मन्द कर दिया था। शायद, इसी रोष के परिणामस्वरूप जयसिंह ने धार पर चढ़ाई करने का विचार किया। जब जगदेव को राजा के इस विचार का

---

उतारने के लिए रानी को एक तहखाने में उतारा गया और भैरव को कैद करके रानी को बाहर निकाल लिया। दूसरे दिन सवेरे ही जगदेव परमार दरबार में पहुँचा और वहाँ सिद्धराज ने उसको दो हजार गाव, कडे, मोती आदि दिये।

काला भैरव और गोरा खेतरपाल (क्षेत्रपाल) ये दोनों चामुण्डा माता के अखाडे के वीर थे। एक बार गोरे खेतरपाल (क्षेत्रपाल) को अकेला देखकर माता ने पूछा, 'काला कहा है ?' तब क्षेत्रपाल ने उत्तर दिया 'माताजी ! आपसे क्या छुपा हुआ है ?' फिर माता ने ज्ञानदृष्टि से देखा तो सब बात मालूम हो गई। वह बोली, 'मैंने उसे पहले ही कह दिया था कि जहाँ जगदेव परमार हो वहाँ मत जाना परन्तु वह माना नही।' ऐसा कह कर उसको छुड़ा लाने के लिए माता ने भाट-स्त्री का रूप धारण किया।

माता का रूप इस प्रकार का था—लम्बे लम्बे दाँत, देखने में विकराल, माथे के बाल बिखरे हुए और तेल में सने हुए—सफेद शेतर ( ऊँट ) के बालों जैसे। कपाल पर सिन्दूर लगा हुआ था, कन्धों पर काली ओढनी पड़ी हुई थी और वह काले ऊन का बना हुआ वस्त्र तथा सिन्दूर में लदबद हुई काँचली ( चोली ) पहने हुई थी। ऐसा रूप धारण किए हुए हाथ में त्रिशूल लेकर वह सिद्धराज के दरबार में आई। उसने राजा को बाएँ हाथ से आशीर्वाद दिया और जगदेव को दाहिने हाथ से। साथ ही, जगदेव के सामने जाते ही उसने अपना शिर भी ढँक लिया।

इतने ही में जगदेव तो किसी प्रसगवश अपने डेरे पर चला गया और सिद्धराज ने माता से अपनी अपेक्षा और जगदेव के प्रति अधिक सम्मान प्रदर्शित करने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया 'जितना सम्मान मैंने जगदेव के प्रति प्रकट किया है वह उससे भी अधिक के योग्य है।' यह सुनकर राजा के मन में

पता चला तो उसने नौकरी छोड़ने का निश्चय किया क्योंकि कहावत चली आती है कि —

> जहँ पँवार तहँ धार है, धार तहाँ परमार।
> धार बिना परमार नहिं, नहिं पँवार बिन धार।

अतः घर जाकर जगदेव ने अपनी स्त्री आडेजी से सलाह की, "राजा अपने से शत्रुता करने पर तुला हुआ है, अब यहाँ रहने से कोई लाभ नहीं है। यदि वह आग्रह भी करे तो हम यहाँ नहीं रहेंगे। हम अपना

---

कुछ ईर्ष्या उत्पन्न हुई और उसने कहा 'जा तू पहले जगदेव के पास ही जाकर जो कुछ माँगना हो वह माँग ला वह जो कुछ देगा उससे चौगुना दान मैं तुझे दूँगा। तब कंकाली माटणी (चारणी) ने कहा हे सिद्धराज! इस पृथ्वी पर परमार की बराबरी कोई नहीं कर सकता अतः तुमको उसकी होड़ नहीं करना चाहिए, क्योंकि—

> प्रथम बड़ा परमार, पृथ्वी परमारां तणी।
> एक उजेणी धार, बीजु आबू बैसणो॥

इस पर सिद्धराज ने कहा 'अवश्य ही जो कुछ जगदेव तुझे देगा उससे चार गुना तौल कर मैं दूँगा। उसका इतना बखान करती है तो पहले उसी के पास जा।

तदनुसार कंकाली माटणी जगदेव के पास गई और दरबार में घटी घटना का सम्पूर्ण विवरण उसे सुनाकर दान माँगा। जगदेव ने विचार किया 'मैं जो कोई भी वस्तु इसको दान में दूँगा वही राजा भी दे सकता है। इसलिए कोई ऐसी वस्तु देनी चाहिए कि जो राजा दे ही न सके। यह सोचकर उसने अपना मस्तक दान में देने का निश्चय किया। इस विषय में जब उसने अपनी रानियों से सलाह की तो सोलंकिनी रानी ने उसे कहा 'आप सर्वस्व दे दीजिए परन्तु शीश मत दीजिये।' वाघेली रानी ने कहा 'हे स्वामी एक आप अपना शीश दीजिए और दूसरा मेरा। राजा इन से चार गुने अर्थात् आठ मस्तक कहाँ से लावेगा?।' इस प्रकार माटणी के कार्य के लिए अन्तःपुर में ही बहुत सा

भाग्य आजमा चुके हैं।' रानी ने कहा, "एक राजवशी के समान आपकी कीर्ति ससार मे व्याप्त हो चुकी है और आपको सभी शोभा प्राप्त हो चुकी है, अब आपको घर चल कर माता पिता से मिलना चाहिये, मैं भी अपने सास श्वसुर को नमस्कार करूँगी। आपके सम्बन्धी भी कहेंगे कि राजकुमार ने नाम पैदा किया है, इसलिए अब शीघ्र ही अच्छा मुहूर्त देख कर चलना चाहिये।"

इसके बाद जगदेव ने ज्यौतिषी को बुलवाया और शुभ मुहूर्त निकलवा कर शहर के बाहर अपना तम्बू तनवाया। इतने ही मे चावड़ी भी अपने पीहर से आ पहुँची और अपने पति से मिलकर बहुत प्रसन्न हुई। जगदेव ने उसको पूरी बात कह सुनाई और वह भी शीघ्र ही चलने को तैयार हो गई। उन्होंने अपना पूरा खजाना ऊँटों पर लाद लिया और अपने हाथी, घोड़े, रथ, पालकी ढोर तथा दास दासी आदि

---

वादविवाद करने के पश्चात् जगदेव ने अपना मस्तक काटकर थाल में रख कर भेट कर दिया। भाटणी भी प्रसन्न होती हुई वह भेट लेकर राजा के पास गई परन्तु चलते समय जगदेव की स्त्री से कहती गई, 'मैं सिद्धराज के पास जाकर आऊ तब तक इसके धड़ का रक्षण करना और मङ्गल गीत गाती रहना।'

दरबार में पहुँचकर ककाली ने राजा से कहा, 'मैं जगदेव से दान ले आई हूँ, लाओ तुम अब इससे चार गुना दान दो।' यह कह कर उसने थाल पर से कपड़ा हटाया। जगदेव का मस्तक देख कर राजा आश्चर्य में भर गया और बहुत सोच विचार के बाद इतना ही कह सका, 'मैं तुझे अपना और अपने मुख्य घोडे का सिर दे सकता हूँ, परन्तु, तू ही अपने हाथ से मेरा सिर उतार ले।' भाटणी ने कहा, "मैं योगिनी तथा भिक्षुणी हू, दाता के हाथ से दिया हुआ दान ही लेती हूँ, बिना दिए हुए पदार्थ के हाथ भी नही लगाती। यदि दान ही देना है तो अपने हाथ से सिर काट कर दे।" परन्तु सिद्धराज की हिम्मत न हुई और वह बगलें झाकने लगा। तब भाटणी ने कहा, अपने महल

पूरे परवार को साथ लेकर रवाना हुए। जब सब सामान शहर के बाहर निकल चुका तो जगदेव अपने घोड़े पर सवार होकर राजा के दरबार में गया। सिद्धराज ने कहा 'आओ! यहाँ बैठो!' जगदेव ने उत्तर दिया 'महाराज! आपकी सेवा करते हुए मुझे बहुत समय होगया है, अब मुझे घर जाने की आज्ञा मिलनी चाहिए। राजा ने उसे अपने पास रोकने का बहुत आग्रह किया परन्तु जगदेव न माना। प्रधान और अन्य सामन्तों ने भी बहुत कुछ कहा पर वह घर जाने की आज्ञा माँगता ही रहा। अन्त में राजा और समस्त सभा को नमस्कार करके जगदेव रवाना हुआ। सिद्धराज की पुत्री भी अपने माता-पिता बन्धु-बान्धवों सखी सहेलियों से मिलकर विदा हुई।

इस प्रकार पाँच हजार सवार साथ लेकर जगदेव पाटण से रवाना हुआ। आठ हजार पैदल उसके आगे आगे चलने लगे। मंजिल

---

पर चढ़कर ज़ोर से घोषणा करो कि जगदेव जीता और तुम हारे, फिर इस माल के नीचे से सात बार निकलो तो तुमको छोड़ सकती हूँ। सिद्धराज बड़े संकट में पड़ गया परन्तु अन्त में छुटकारा पाने के लिए उसे ऐसा करना ही पड़ा।

इसके पश्चात् मस्तक सहित थाल लेकर कंकाली वापस जगदेव के डेरे पर पहुँची और धड़ से मस्तक जोड़ कर पुनर्जीवित करने लगी। तब रानी कहने लगी 'हैं! यह क्या करती हो, क्या मेरे स्वामी दान में दिए हुए मस्तक को फिर स्वीकार करेंगे?' यह सुनकर कंकाली भी देखती रह गई—परन्तु एक क्षण रुक कर उसने मस्तकवाला थाल एक ओर रख दिया और रानी को धड़ पर से कपड़ा हटाने को कहा। उसने देखा कि जगदेव के धड़ पर सिर निकल रहा है। पुनर्जीवित जगदेव बैठा हुआ और उसने सुना—जय जगदेव! जय वीर!

अब जगदेव ने प्रसन्न होकर माताजी से कहा 'मेरा सौभाग्य! जो तू माँगे सो ही दूँ।' तब कंकाली ने कहा 'मुझे और कुछ नहीं चाहिए, काल-भैरव को छोड़ दे।' जगदेव ने भैरव को तुरन्त ही तहखाने से मुक्त कर दिया। उसने

पर मंजिल तय करते हुए वे टूक टोडे आकर पहुंचे। दूतों ने चावड़ा राजा को जाकर समाचार सुनाये और बधाई का इनाम माँगा। राजकुमार वीरज ने उनको पुरस्कार दिया, नौबत तथा अन्य वाद्य बजने लगे, शहर सजाया गया और बहुत धूमधाम से जगदेव उन लोगों से मिलने गया। सब लोग उससे गले मिले और मोतियों की न्यौछावर हुई। जगदेव वहाँ पर एक महीने तक रहा। वहां के लोगों ने पाटण का हाल सुन तो रखा ही था परन्तु चावडी ने आदि से अन्त तक की कथा फिर कह सुनाई जिसको सुनकर सभी को बहुत प्रसन्नता हुई।

एक महीने बाद विदा लेकर जगदेव धार को रवाना हुआ। यद्यपि वहां पर पहले ही खबर पहुँच चुकी थी, तो भी उन्होंने अपनी ओर से दूत को आगे भेजा। समाचार सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने दूत को जवाहरात, कड़े और मोती उपहार में दिये। दो मुख्य दूतों ने जाकर सोलकिनी को सूचना दी। जगदेव की अगवानी के लिए सवारी ( जलूस ) की तैयारियां होने लगीं और नगर सजाया गया। राजा उदयादित्य हाथी घोडे और पालकियां साथ लेकर उसका स्वागत

---

उसका एक पैर खण्डित कर दिया था इसीलिए तभी से खोड़ा ( लगड़ा ) क्षेत्रपाल कहलाने लगा। उसको साथ लेकर ककाली चली गई।

दोहा—सवत ग्यारह चहोतरा, चैत्र तीज रविवार।
शीश ककाली भाट ने, दिय जगदेव उतार॥

इसी आशय का एक दोहा 'धार राज्य का इतिहास' में पृ० ४५ पर इस प्रकार है—

सवत ग्यारसौ इक्यावन, जेत सुदि रविवार।
जगदेव सीस समर्पियो, धारा नगर पँवार॥

करने आगे आया। जगदेव ने अपने पिता के चरण छुए और अपने भाइयों भतीजों, सरदारों सामन्तों, अन्य राजपूतों मन्त्रियों और सेठ साहूकारों से प्रेमपूर्वक अच्छी तरह मिला। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और कविगण उसकी कीर्ति का गान करने लगे।

इस प्रकार सब की राम जुहार स्वीकार करते हुए शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हाथियों सिपाहियों व परिकर सहित उन्होंने नगर में प्रवेश किया। जगदेव ने जाकर अपनी माता सोलंकिनी के चरणों में प्रणाम किया। उसने पहले उसके शिर पर हाथ रखे और फिर अपने शिर पर रख लिये मानों उसका दुःख और शोक अपने ऊपर ले लिया हो।(१) फिर उसकी तीनों बहुओं ने उसके चरण छुए। रानी अपने पुत्र और पुत्र-वधुओं को देख कर बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगी कि, 'मैं इस संसार में बहुत भाग्यशालिनी हूँ जो मैंने अपने पुत्र के वीरतापूर्ण कार्यों का वृत्तान्त अपने कानों से सुना और आँखों से देखा। बच्चे अपनी दादी की गोद में जा बैठे। तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा "पुत्र! तुमने परमारों की पांच सौ शाखाओं को उज्ज्वल कर दिया। वत्स! तुम्हारे जैसा कोई नहीं हुआ और न होगा। तुमने सिद्धराज को बचाया और उसके जीवन की रक्षा की तथा भैरव को वश में किया। फिर राजा से भिड़कर तुमने उसका मानमर्दन किया। सोलंकिनी! तुम धन्य हो जिसने ऐसे पुत्र को जन्म दिया और जो इस संसार में मौजूद है। तुम्हारा नाम अमर होगया है।"

इसके बाद बाघेली रानी ने आकर राजा के चरण छुए और जगदेव का सत्कार करने लगी। तब जगदेव ने उसको रोक कर

(१) इस तरह करने को 'वारणा लेना (वारी जाना) कहते हैं।

कहा, "भॉजी ! मेरी कीर्ति आप ही के प्रताप से हुई है।, मैं आप ही का कहलाता हूँ।" इस प्रकार अच्छे आदमी बुराई में से भी भलाई निकाल लेते है.—

"किसी के अवगुणों की ओर ध्यान न दो, चाहे वे उतने ही क्यों न हों जितने कि बबूल मे कॉटे–तुम तो उसके गुणों को ही ग्रहण करो–जैसे ( बबूल की ) छाया मे काटे नहीं होते।"(१)

इस प्रकार विचार करते हुए उसने बावेली के चरणों मे प्रणाम किया और रणधवल का आलिङ्गन किया। बहुओं ने भी उन दोनों का उचित सत्कार किया।

इसके थोडे ही दिनों बाद उदयादित्य को रोग ने आ घेरा और उसके बचने की कोई आशा न रही। उसने अपने सभी सामतों, जगदेव तथा रणधवल को अपने पास बुलाया और वह उन सभी को यों कहने लगा, "मैं जगदेव को राज्य-चिन्ह प्रदान करता हूँ और राज्य के समस्त अधिकार भी उसी को सौंपता हूँ।" इसके बाद उसने रणधवल को सौ गाव दिये और जगदेव के कहने मे चलते रहने को कहा। जगदेव को भी रणधवल की रक्षा करते रहने के लिए कहा। इस प्रकार जगदेव को गद्दी पर बिठा कर राजा देवलोक को सिधारा और रानी वाघेली तथा सोलकिनी उसके साथ सतियाँ हो गई। राजा जगदेव राज-काज चलाने लगा।

---

(१) अवगुण उर धरिये नहीं, यदपि बहुत से होंय।
काटे घने बबूल में, छाया में सुख सोय॥

जगदेव पंद्रह वर्ष की अवस्था में घर छोड़कर निकला था और उसने अठारह वर्ष तक सिद्धराज की नौकरी की तथा गद्दी पर बैठने के बाद उसने ५२ वर्ष तक राज्य किया। इस प्रकार वह ८५ वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। अन्त में, राजकुमार जगधवल को गद्दी पर बिठाकर वह स्वर्गलोक को गया। चावड़ी सोलंकिनी और वाघेली रानियां उसके साथ हँसती हँसती सतियां होगईं और अपने स्वामी के साथ स्वर्ग सिधारीं।

कवि ने इस कथा को इस प्रकार समाप्त की है 'जगदेव की यह बात सुनने से सत्य आरोप धैर्य शौर्य बुद्धिमत्ता और उदारता का पूर्ण उदय होगा। यदि राव राणा इस बात को सुनेंगे तो उनकी कायरता कृपणता और अनुदारता नष्ट हो जावेगी और उन पर कभी संकट नहीं पड़ेगा। इस प्रकार विचार करके पाठक इसको पढ़ेंगे, कविगण इसका गान करेंग और राव राणा सामंत आदि सुनेंगे। इसके कहने

---

[ अंग्रेजी मूल में जगदेव द्वारा कंकाली माता को शीश दान करने की कथा की ओर इंगित मात्र किया है। गुजराती अनुवाद की टिप्पणी में अवश्य ही यह कथा दी हुई है। इसी कथा का अनुमुक्त हिन्दी रूप देश के प्रसिद्धनामा विद्वान् डॉ. वासुदेवशरणजी अग्रवाल निर्मित 'जायसी कृत पद्मावत' की संजीवनी व्याख्या के परिशिष्ट में भी प्रकाशित हुआ है जो राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त द्वारा लिपिबद्ध किया गया है। आरम्भ में ही कहा जा चुका है कि राजस्थानी में मूल कथा 'राजस्थानी वार्ता' में निबद्ध मिली है। इसी की कितनी ही हस्तप्रतियाँ हमें पुरातत्व मन्दिर में भी मिलीं परन्तु वे प्रायः सूर्यकरणजी पारीक वाली कथा के ही अनुरूप हैं–कहीं २ थोड़ा बहुत अन्तर है। वे सब गद्य में हैं। इनके अतिरिक्त एक पन्द्रह छप्पय छन्दों में निगुम्फित पद्यमयी कथा भी प्राप्त हुई है जो परिशिष्ट में मुद्रित है।

तथा सुननेवालों को वही आनन्द प्राप्त होगा जो अमरपुरी में वास करनेवालों को मिलता है।"

इस प्रकार प्रतापी और शूरवीर जगदेव की वात समाप्त होती है।

---

उक्त सामग्री के आधार पर ही ऊपर की कथा लिखी गई है। श्री गुप्तजी-वाली कथा से तो इस में अन्तर अवश्य है परन्तु राजस्थानी कथा की दशाधिक प्रतियों के अनुसार यह सक्षिप्त रूप परिपूर्ण किया गया है। इनमें जगदेव द्वारा मस्तक काट कर दान में देने के सम्वत् अवश्य ही भिन्न हैं। 'राजस्थानी वार्ता' में यह सम्वत् ११६१ दिया है। इसके अन्तिम अश में जयसिंह विषयक कतिपय अन्य सूचनायें भी मिलती हैं। जो इस प्रकार है:—

"सम्वत् इग्यारह इक्याणवै, चैत तीज रविवार।
सीस ककाली भट्ट नै, जगदे दियो उतार॥"

सिद्धराव जैसिंहजी, खाप सोलखी, तिणनैं छिन्नू हजार गाव हुता। सवत् ११३३ तपिया, नै चोटी माहे गगा वहै। महारुद्ररो अवतार हुवौ। सिद्धरो पिण वर थो, तिण सू सिद्धराव कहाणों। इसो सिद्धराव हुवौ। भीमभार्या निर्मलदे पुत्र। कर्ण राजा भार्या, मिलणदे पुत्र। सिद्धराव जैसिंघ देव हुवौ, तिण मालवापति, नरवर राजा नैं वाध्यौ, मोहवक पाटण धणी मदभ्रम राजानै जीत्यौ। जिणरै ३२ राजकुली सेवा करै। सवत् ११९९ सिद्धराव जैसिंघ वैकुण्ठ गया। सिद्धराव जैसिंघ दे रै प्रधान कुशल मन्त्री साजनदे हुवौ।"

---

# प्रकरण ६

## रा' खेंगार

प्रबन्धचिन्तामणिकार लिखता है कि सिद्धराज ने वर्धमान (आधुनिक वढवाण) के बाहिर (ग्वाल) राना नवघन के विरुद्ध एक फौज भेजी थी जिसने आकर वर्धमान व अन्य कितने ही शहरों के घेरा डाला परन्तु कई बार पीछे हटना पड़ा। अन्त में रा'खेंगार के विरुद्ध स्वयं सिद्धराज ने प्रस्थान किया और उसके भानजे के कपट-व्यवहार की सहायता से उसे पकड़ लिया तथा मार डाला। उसकी रानी ने बहुत शोक प्रकट किया और रा'खेंगार के साथ प्राणत्याग करने का अवसर न मिलने पर विलाप करने लगी।

'राजा के मरने से वर्धमान तो नष्ट हो चुका मेरे पिता के वंश में भी कोई नहीं है अब मेरा जीवन व्यर्थ है, भोगवाह (नदी) मेरा उपभोग करे।'

> सोरठा—वाढी तो वढवाण विसरतां न वीसरइ।
> सोना समा पराण भोगवह घइ भोगवीई।'

यहाँ नवघन (नापघ्र) और रा'खेंगार इन दोनों नामों में गड़बड़ी पड़ती है। वास्तव में ये दो भिन्न भिन्न पुरुषों पिता और पुत्र के नाम हैं। ये यदुकुल के राजा थे और गिरिनार अथवा जूनागढ़ में

राज्य करते थे। इनमें से सिद्धराज का विपक्षी जिसको उसने मारा था रा' खेंगार था और वढवाणमे जो रानी सती हुई थी वह इसी की स्त्री थी।

एक भाट का कहना है कि रा'खेंगार (१) के पिता रा' नवघन ने माही (माहीकाटा) नदी पर स्थित उमेठा के राजा को दबाकर अपनी

---

(१) जूनागढ के यादव ( चूडासमा ) राजाओं में चौथा रा' ग्राहरिपु ( गारियो १ ला ) ई० स० ६४० से ६८२ तक था। वह सन् ६७६ ई० में मूलराज से पराजित हुआ। उसके बाद उसका पुत्र रा'कवाट ( ५वाँ रा' ) सन् ६८२ से १००३ ई० तक रहा। इसने आबू के आबा राजा को दस बार पकड कर छोड़ दिया, परन्तु शिवाल द्वीप के परमार राजा वीरमदेव ( कोई मेघानद चावडा भी कहते हैं ) राजाओं को पकड़ कर लकड़ी के पीजड़ों में बन्द कर दिया करता था। उसने यादवों के अतिरिक्त ३६ कुल के राजाओं को तो कैद कर ही लिया था और सोमनाथ पट्टण का वाहन (जहाज) बताने के बहाने से बुलाकर रा' को भी दगे से पकड़ कर कैद कर लिया। वहाँ से रा' ने एक चारण के द्वारा अपने मामा ऊगा वाला के पास समाचार भेजे और उसने आकर उसको छुडाया।

कवाट के बाद उसका पुत्र रा' दयास ( ६ ) उपनाम महीपाल प्रथम सन् ११०३ से १११० ई० तक हुआ। सोमनाथ की यात्रा करने आई हुई अणहिलवाड़ा की रानियों व कुमारियों के साथ अपमानसूचक व्यवहार करने के कारण दुर्लभसेन सोलकी ने इस पर चढाई की और इसकी राजधानी वामन-स्थली को जीत लिया। रा' दयास अपने कुटुम्ब के साथ जूनागढ के ऊपरकोट किले में छुपकर बैठ गया और सोलकी ने उसके घेरा डाल लिया।

चूड़ासमा राजपूतों के भाट का कहना है कि जब रा' दयास को जीतना कठिन जान पड़ा तब एक बीजल नाम के चारण ने दुर्लभसेन से कहा, "यदि आप मुझे भारी इनाम देने का वचन दें तो मैं अकेला ही वह काम करके दिखा सकता हूँ जो आपका लश्कर नहीं कर सकता।" राजा ने इनाम देना

विजय की निशानी में उसकी कन्या लेली। हंसराज माहीड़ा नामक उस कन्या का भाई था उसने कहा 'यह मेरे पिता की कायरता थी जो उसने इस तरह कन्या देदी इसके बदले में मैं किसी न किसी दिन नवघन को मार डालूंगा उसने यह धमकी खुल्लमखुल्ला दी थी अतः नवघन ने भी शपथ ली कि मैं कभी न कभी हेमराज माहीड़ा का वध करूँगा।"

---

स्वीकार कर लिया और चारण माँगने वाली जाति का होने के कारण बेरोक-टोक किले में चला गया।

रा' दयास सोरठी रानी से विशेष प्रेम करता था इसलिए उस रानी का राजा पर बहुत प्रभाव था। इस रानी ने रात्रि को ऐसा स्वप्न देखा कि किसी चारण ने राजा से दान में उसका मस्तक माँगा और उसने उसे सहर्ष दे दिया। इस स्वप्न के सच्चे हो जाने की आशंका से उसने राजा को एक कमरे में बन्द कर दिया और कोई भी वहाँ पर न जा सके ऐसा प्रबन्ध कर दिया।

जब चारण को यह बात मालूम हुई तो वह सदर (प्रधान) बुर्ज के पास बैठ कर रा के यश-कवित्त बोलने लगा। रा' ने ऊपर खिड़की में से देखा तो चारण दिखाई पड़ा। उसे ऊपर बुलाने के लिये राजा ने एक रस्से से लकड़ी बाँध कर नीचे लटका दी और जब चारण लकड़ी पर बैठ गया तो उसे ऊपर खींच लिया। इस विषय का एक सोरठा है—

चारण चढ़िया खोड़ मथा गढ़े मागर्वी।
सोरठ रा' दयास, से द्यो म कदि कहाड़े॥

ऊपर आने पर रा' ने चारण से कहा 'जो कुछ इच्छा हो वह माँगो।' चारण ने उसका सिर माँग लिया। जब वह अपना मस्तक काट कर देने को तैयार हुआ तो रा के सब कुटुम्बी आ गए और रानी ने चारण से कहा—

"हे भाट मगनहार, मैं तुझे हाथी, घोड़ा अपना चन्द्रहार और बहुत सी वस्तुएं दे दूंगी तू मेरे सरदार (पति) को छोड़ दे।" चारण ने उत्तर दिया

इस रानी के कारण नवघन को इसी एक झगडे मे पडना पड़ा हो यह बात नहीं है वरन् एक ऐसा ही और भी झगडा हो चुका था। वह यह है कि जब रानी को लेकर बरात जूनागढ लौट रही थी तब जसदन के पास भोंयेरा ग्राम के पास पहुँचने पर वहां के राजा ने, यह सुनकर कि नवघन रानी लिए जा रहा है, हँसकर कहा 'मेरा गढ न होता तो वह उसे ले जाता अब तो रानी को यहीं छोड देना चाहिए।' जब नवघन ने यह बात सुनी तो उसने यह प्रतिज्ञा की 'मैं इस गढ को नष्ट भ्रष्ट कर दूँगा और इस राजा को मार डालूँगा।'

---

"हाथी तो बहुत से मिल जावेंगे और घोडों से तबेले भर जावेंगे परन्तु मुझे शिर देने वाला कहीं नही मिलेगा।"

रा' की बहन ने यह समझकर कि भाई का मन डिग गया तो अपकीर्ति होगी इसलिए बोली–'हे भाई, मगणहार को अपना शिर काटकर दे दो, दानी लोगो की सी दुग्धधवल कीर्ति अदाताओं के लिए प्राप्त करना बहुत ही कठिन है।"

रा' की माँ ने इस प्रकार कहा, "हे दयास, यदि तू मगनहार को अपना शिर नही देगा तो भाट लोग तेरे बाद में तेरे विषय में क्या कहकर कीर्तिगान करेंगे ?"

अन्त में, रा' दयास ने अपना मस्तक काट कर चारण को दे दिया और वह उसे लेकर जाने लगा तब सोरठी रानी ने उसे माँग लिया और दामोदर कुण्ड पर उसके साथ सती हो गई। सोलकी सेना ने जूनागढ पर कब्जा कर लिया और वहाँ पर अपनी तरफ का थानेदार नियुक्त करके पाटण की ओर प्रस्थान कर दिया। रा' दयास की दूसरी रानी अपने पुत्र नवघन को लेकर आलिदर बोडीधर के अहीर देवाईत के घर रही। जब जूनागढ के थानेदार को इसकी खबर हुई तो उसने देवाईत को बुलाकर हाल पूछा। उसने कहा कि यदि कुँवर मेरे घर पर छुपाया गया होगा तो मैं लिखता हू कि वह आपको सौंप दिया जावे। इसके बाद उसने इस आशय का एक सोरठा लिखकर अपने पुत्र ऊगा

एक बार, सिद्धराज सोलंकी और नवघन दोनों नल नामक स्थान के पास सोरठ देश की सीमा पर पाञ्चाल देश में भिड़ गए। तब नवघन को हथियार पटककर और मुँह में तिनका लेकर जयसिंह की शरण लेनी पड़ी । उस समय उसने यह प्रतिज्ञा की कि 'मैं पाटण के दरवाज़े को तोड़ डालूँगा'। उन्हीं दिनों सिद्धराज का एक चारण था, जिसने नवघन का उपहास करते हुए एक कविता लिखी जिससे रा' बहुत

---

के हाथ भेजा 'गाड़ी दलदल में फँस गई है हमें उसे निकालना है हे ऊदा के पुत्र तू इसमें हाथ लगाकर इसे ऊँची कर।" पत्र मिला परन्तु थानेदार को नवघन नहीं मिला। इसलिए वह देवाईत को साथ लेकर आलीधर बोडीधर आया परन्तु देवाईत ने नवघण के कपड़े अपने पुत्र ऊगा को पहनाकर थानेदार को सौंप दिया और उसने उसे तुरन्त मार डाला। इसके दस वर्ष बाद अर्थात् सन् १ २ में देवाईत ने अपनी जाति के लोगों को इकट्ठा किया और उनकी सलाह से अपनी लड़की जेसल का विवाह रचाया। उस अवसर पर उसने थानेदार आदि को भी निमन्त्रण देकर जीमने बुलाया और उनको मारकर जूनागढ़ की गद्दी पर रा' नवघण को बिठा दिया।

मालूम होता है कि रा' नवघण (प्रथम) ने १ २ ई० से १ १४ ई० तक राज्य किया। इसके समय में दुष्काल पड़ने के कारण सोरठ के बहुत से लोग सिन्ध और मालवा की तरफ चले गए थे। इन्हीं लोगों के साथ देवाईत की लड़की जसल (जसम) भी जिसको नवघण ने अपनी धर्म की बहन बना रखी थी अपने पति ... के साथ सिन्ध चली गई। वहाँ पर सिन्ध के राजा हमीर सुमरा ने ... उसको ... उसे अपने अन्तःपुर में रखने का यत्न किया। जसल ने अपने ... का कोई उपाय न देखकर छः मास का बहाना करके राजा से ... और इधर अपने धर्म के भाई नवघण को मदद के लिये ... "भाई तुम्हारे होते हुए भी बात नहीं हो ... रही है। इसलिए हे भाई सोरठ के स्वामी ... सहायता करो।" इस पर रा' नवघण ने बड़ी भारी सेना

नाराज हुआ और फिर प्रतिज्ञा कि 'मैं उस भाट के गाल काट डालूँगा।'

राव नवघन बीमार पड़ा और वह अपनी प्रतिज्ञाओं में से एक भी परी न कर पाया था कि मौत आ पहुंची। उसने अपने चारों पुत्रों को अपने पास बुलाया और कहा कि उनमें से जो कोई उसके चारों कामों को पूरा करने की प्रतिज्ञा करेगा वही गद्दी पर बैठेगा। सबसे बड़ा कुमार रायघन था उसने भोंयेरा के गढ़ को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की। राव ने उसे चार परगने दिए, इसकी शाखा के वशज रायजादा कहलाते हैं। दूसरा कुँवर शेरसिंह था। उसने हंसराज माहीड़ा का वध करने की प्रतिज्ञा की। उसको भी कुछ गाव मिले और वह सरवैया राजपूतों की शाखा का आदि-पुरुष हुआ। तीसरा कुमार चन्द्रसिंह अम्बाजी का भक्त

---

लेकर सिन्ध पर चढाई कर दी और सुमरा राजपूतों को परास्त करके अपनी बहन को छुड़ा लाया।

इसके बाद नवघण का पुत्र (८) रा' खेंगार ( प्रथम ) हुआ जिसने १०४४ से १०६७ तक राज्य किया। उसके पुत्र (९) रा' नवघण ( द्वितीय ) ने १०६७ से १०९८ ई० तक राज्य किया। इसी ने पाटण का दरवाजा तोड़ने व चारण के गाल फाड़ने आदि की प्रतिज्ञा की थी। इसके चार लड़के थे (१) रायघण उपनाम भीम जिसको गाँफ व भडली ग्राम मिले—इसके वशज रायजादा कहलाए। (२) शेरसिंह या शत्रुसाल, इसको धधुका मिला और इसके वशज सरवैया कहलाए। (३) चद्रसिंह उपनाम देवघण इसको ओशम चौरासी मिली और इसके वशज अपनी पूर्व शाखा चूडासमा के नाम से ही प्रसिद्ध रहे और (४) रा' खेंगार ( द्वितीय ) हुआ जो सौराष्ट्र का १० ( वाँ ) यादव राजा हुआ। इसने १०९८ ई० से ११२५ ई० अथवा १६ वर्ष तक राज्य किया। इसी का वध करके सिद्धराज ने सज्जन नामक मत्री को जूनागढ का शासक नियुक्त किया था।

था और इसलिए हाथ में उनकी चूड़ी (१) पहनता था। उसने अपने भाइयों की प्रतिज्ञा के अतिरिक्त पट्टण का द्वार तोड़ने की प्रतिज्ञा की परन्तु चारण के गाल काटने की बात उसने स्वीकार नहीं की क्योंकि वह इसको अपकीर्ति करने वाला काम समझता था। उसे भी कुछ गांव मिले और वह चूड़ासमा राजपूतों का पूर्वज हुआ। सबसे छोटे कुमार खेंगार ने चारों काम अकेले ही पूर्ण करने का भार अपने सिर पर लिया इसलिए राव नवघन ने अपने जीवनकाल में ही उसे जूनागढ़ की गद्दी पर बिठा दिया और इसके थोड़े दिन बाद ही वह मर गया।

राव खेंगार ने अपनी पहली ही सामरिक चढ़ाई में सोमरा के किले को तोड़कर वहां के राजा को मार डाला। इसके पश्चात् उसने हंसराज माहीड़ा का वध किया और तदुपरान्त जब सिद्धराज मालवे गया हुआ था तो उसने एक फौज लेकर पट्टण पर चढ़ाई कर दी और पूर्वीय दरवाजे को तोड़ डाला। वापस लौटते समय मार्ग में कालड़ी के देवड़ा राजपूत की पुत्री राणक देवड़ी (देवी) को जिसका विवाह सिद्धराज से होने वाला था हर लाया और उससे विवाह कर लिया। जब वह इतने पराक्रम कर चुका तो उसी चारण ने उसकी प्रशंसा की। इस पर खेंगार ने हीरों और मोतियों से उसके मुँह को इतना भर दिया कि सभा के सभी लोग चिल्ला उठे 'चारण के गाल फट गये फट गए' यह सुन कर खेंगार बोला 'इसके गाल काटने का यही प्रकार है, तलवार से ऐसा नहीं किया जा सकता था।'

---

(१) देवी का भक्त होने के कारण चूड़ी पहनता था इसलिए वह चन्द्रचूड़ कहलाने लगा और उसके वंशज चूड़ासमा कहलाए।

इसके वाद सिद्धराज ने जूनागढ़ पर चढ़ाई की और बारह वर्ष तक लडता रहा परन्तु सफल न हुआ। अन्त में, खँगार के भानजे देमल और वीसल दोनों ही खँगार से नाराज होकर सिद्धराज से जा मिले और उसको एक गुप्त मार्ग बतला दिया जिसमे होकर वह सेना सहित किले मे घुस गया। सिद्धराज ने खँगार को मार डाला और राणकदेवी को वढवान ले गया। वहाँ जाकर रानी सती हो गई और सिद्धराज ने देसल और वीसल को उनके नाक काटकर छोड दिए।

जिस समय सिद्धराज ने राणक देवी को पकडा तब उसे यह बात मालूम नहीं थी कि उसका पति मर चुका है। वह तो यह समझी हुई थी कि वह भी सिद्धराज का वन्दी था। वढ़वान पहुँचने पर सिद्धराज ने उससे कहा 'तेरा पति मार डाला गया है' तू मेरे साथ विवाह कर ले(१)।" रानी ने उसके अन्त पुर मे प्रवेश करने से इन्कार किया और कहा 'मुझे सत चढ गया है–मुझे मेरे पति का शव दे दो, अन्यथा मैं तुम्हें शाप दे दूँगी।' सिद्धराज डर गया और उसने खँगार का शव दिलवा दिया। फिर उससे पूछा "मैंने जो अपराध किया है उसका क्या प्रायश्चित्त करूँ ?" राणकदेवी ने कहा, "इस स्थान पर मेरे नाम पर एक देवालय वनवा दो–तुम्हारा राज्य दृढ़ हो जावेगा। परन्तु, तुमने मेरे बच्चों का वध किया है इसलिए मैं शाप देती हूँ कि तुम

(१) सिद्धराज ने शायद इ गलैण्ड के रिचार्ड के समान इस प्रकार राणक देवी से अनुनय की होगी, 'हे बानू ! जिसने तुझे तेरे पति से मुक्त किया है उसने तुझे उससे भी अच्छा पति प्राप्त करने में सहायता दी है।' "राजा हेनरी को मैंने मारा है परन्तु ऐसा करने के लिए मुझे तेरी सुन्दरता ने उत्साहित किया है। · छोटे एडवर्ड के मैंने कटार मारी थी परन्तु, मुझसे यह कार्य तेरे दिव्य मुखमडल ने करवाया है।" [ किंग रिचार्ड तृतीय (१)–२ ]

निस्सन्तान ही मर जाओगे और तुम्हारे बाद गद्दी पर बैठनेवाला न रहेगा। ऐसा कहकर वह अपने पति के साथ चिता में जल गई। (१)

सोरठ के लोग अब भी जूनागढ़ के राओं को बहुत याद करते हैं। इनके विषय में यहाँ एक कहावत भी प्रचलित है जो इस प्रकार है–

'जे साथे सोरठ गढ्यो गढियो राव खेंगार।
सो सांचो अब टूटिगो जातो रह्यो लुहार॥'

'सोरठ देश और राव खेंगार को जिस सांचे से गढ़ा गया था वह टूट गया और गढ़नेवाला लोहार भी अब नहीं रहा।'

राओं के नगर में नैर्ऋत्य कोण से एक मार्ग आता है। यह सड़क मीलों तक खेती बाड़ी से हरे भरे और चित्रोपम प्रदेश में होकर आती है। इस प्रदेश में आमों इमलियों व अन्य कई प्रकार के सघन विशाल वृक्ष खड़े हैं। सामने ही काले पत्थर की पर्वत-श्रेणी दिखाई देती है जो घनी वृक्षावली से खूब ढकी हुई है। यह पर्वत-श्रेणी उत्तर पूर्व की ओर लगभग बारह मील तक चली गई है। पर्वत-श्रेणी के मध्य

---

(१) मेवाड़ के इतिहास में लिखा है कि द्वारका के पास कालीबाव नामक स्थान के परमार राजा की पुत्री ने चित्तौड़ के बापा से असिल नामक एक पुत्र को जन्म दिया। उसने सोरठ में भूमि प्राप्त की और वह असिल गेहलोत जाति का पूर्वज एवं संस्थापक हुआ। ऐसा कहते हैं कि उसका पुत्र विजयपाल सिंगराम डाबी के पास से बलपूर्वक सम्पत्ति को लेने के प्रयत्न में मारा गया था। विजयपाल की स्त्रियों में से एक स्त्री की अकाल मृत्यु हुई। इसी स्त्री के गर्भ से असमय में ही बेद नाम का एक पुत्र हुआ। इस प्रकार अकाल मृत्यु होने पर हिन्दू लोगों का विश्वास है कि मृतक आत्मा चुडैल (एक प्रकार की भूत योनि) हो जाती है इसीलिए बेद से जिस शाखा का आरम्भ हुआ वह चुडैल जाति कहलाई। असिल की बारहवीं पीढ़ी में बीज हुआ जिसने अपने मामा गिरनार के राव खेंगार से सोमनाथ प्राप्त किया परन्तु बाद में वह जयसिंहदेव के हाथ से मारा गया।

भाग मे एक बड़ा नाका है जो 'दुर्गा का प्रवेश द्वार' कहलाता है। इसके आगे ही एक सुन्दर घाटी दिखाई पडती है जिसके मुख पर नेमीनाथ का पवित्र पर्वत, गिरनार खड़ा है जिसका निम्न भाग दो नीची पर्वत श्रेणियों से मिला हुआ है। गिरनार पर्वत घाटी के इस प्रवेशद्वार के सुदृढ और स्थूल भाग से बहुत ऊँचा उठा हुआ है और इसका उन्नत श्याम शिखर काले पत्थरों के कारण ऐसा दिखाई देता है मानों इसका ऊपरी अर्द्ध भाग बादलों से ही ढका हुआ है।

इस घाटी के मुखभाग पर ही प्राचोन नगर जूनागढ बसा हुआ है। इसके कोट की नीची दीवारें आस पास के घने जगलों से ढक सी गई हैं। उत्तर पूर्व के कोने मे राजपूतों का पुराना गढ 'ऊपरकोट' खड़ा है जो कभी राव खँगार और उसकी मन्दभागिनी रानी का निवासस्थान था। इसकी बुर्जों के नीचे होकर बहने वाली सोनरेखा नदी पर किले की छाया निरतर पड़ती रहती है। यह किला इस देश की किले-बन्दी का एक उत्तम नमूना है।(१) प्राचीन होने के कारण आदरणीय और अपनी विशेष स्थिति के कारण यह अद्‌भुत दुर्ग, अपनी गहरी खुदी हुई खाई, अनेक बड़ी बड़ी बुर्जों और रन्ध्रयुक्त प्राकारों से, जो इसकी दृढ़ता एव महानता के सूचक हैं, अवश्य ही दर्शक को प्रभावित किये बिना नहीं रहता यदि श्रीकृष्ण की छाया के समान आज तक वर्तमान यदुकुल की उस रहस्यमयी महिमा की कल्पना मे वह न खो जाय जो इस किले से सम्बन्धित है।

---

(१) यह कोट ग्राहरिपु ने, ( ग्राह अरिसिंह उपनाम गारित्यो ) जिसकी मूलराज के साथ आटकोट के पास लड़ाई हुई थी, बनवाया था।

खेंगार के नगर के दरवाजे से ही यात्रियों के पदचिह्नों से बनी हुई एक पगडंडी सोनरेखा नदी के किनारे किनारे उसके उद्गम स्थान, गिरनार के शिखर तक चली गई है। इसी पर्वत की तलहटी में बड़ी बड़ी चट्टानों में होकर न्यायी और उदार अशोक ने भी एक मार्ग बनवाया था। यहां यात्रियों को इसी मार्ग से प्रवेश करना पड़ता है। इसके आगे लगभग एक मील तक एक टेढ़ामेढ़ा चक्करदार मार्ग पर्वत के पश्चिमी ढालू स्कंध के अन्त तक चला गया है। इसी मार्ग से चलते चलते यात्री एक पहाड़ी की तलहटी में आ पहुँचता है। इस पर्वत की बाकी चढ़ाई में झुके हुए अत्यंत विशाल और कठोर ग्रेनाइट पत्थर की चट्टानें दिखाई पड़ती हैं, जो अपने ढंग की निराली ही शक्ल की हैं। इसके शिखर पर पहुँच कर एक समतल भूभाग आता है जिसके चारों ओर कोट खींचकर एक दुर्ग सा बना लिया गया है। यह पहाड़ी के बिलकुल किनारे पर ही स्थित है और यहां पर जैन तीर्थङ्करों के चैत्य बने हुए हैं। इस मैदान से गिरनार के शिखर पर चढ़ने का सीढ़ियों में होकर एक बीहड़ मार्ग उस स्थान तक चला गया है जहां अम्बादेवी का मन्दिर है। इस पर्वत की छ: अलग अलग चोटियां हैं जिनमें सबसे ऊँची चोटी गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध है और दूसरी कालिका के नाम से। कालिकादेवी के शिखर पर बड़ी बड़ी घोर तांत्रिक क्रियायें होती हैं और यदि यह सत्य है कि कालिका मनुष्य का भक्षण करने वाले अघोरियों से प्रसन्न रहती है तो इसीलिए यह अघोरेश्वरी माता कहलाती है। इस मैदान से केवल चार ही शिखर स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। ये शिखर गोरखनाथ के देवालय से देखने पर तो अलग अलग दिखाई पड़ते हैं परन्तु थोड़ी ही दूरी पर से ये गिरनार के शंकु के से आकार वाले शिखर में विलीन हुए से देख पड़ते

हैं। मैदान में बने हुए नेमीनाथ के मन्दिरों की बनावट के विषय में वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस धर्म के माननेवालों ने, शत्रुञ्जय के समान ही इस स्थान पर भी मन्दिर बनवाकर, इसको भारतवर्ष मे अपने धर्म का परम महिमामय स्थान बनाने के लिए धन खर्च करने मे कोई कसर नहीं रखी। (१)

राणक देवी का निम्नलिखित वृत्तान्त तूरी नामक घुमन्तू गायकों से प्राप्त हुआ है। जिस प्रकार उच्चवर्ण के हिन्दुओं के साथ प्रसिद्ध भाट चारणों आदि का सम्बन्ध है उसी प्रकार ढेढ आदि नीच वर्ण के हिन्दुओं के साथ इन तूरी लोगों का सम्बन्ध होता है। यजमानों से प्राप्त भिक्षा पर ही इन लोगों का निर्वाह होता है और इसके बदले मे ये आधी गद्य और आधी पद्यमय लोक-कथाए सारगी पर गा गा कर सुनाते हैं। इस प्रकार मनोविनोद करते हुए ये लोग देश भर में घूमते रहते हैं।

सिन्ध देश में पावर लोगों का राज्य है। (२) वहां का शेर पावर नामक राजा था। उसके मूलनक्षत्र में एक पुत्री उत्पन्न हुई। ज्यौतिषियों ने राजा से कहा कि इस नक्षत्र मे पैदा होने वाली लड़की का जिसके

---

(१) देखिये बगाल एशियाटिक सोसायटी जर्नल ७, पृ० ८५५।

(२) पावर कच्छ में है। शेर पावर (शेर पँवार) उस समय थोडे से गाँवों का भासिया (सरदार) था। जब लाखा जाडाणी ने लाखियार वियरो को अपनी राजधानी बनाया उस समय शेर पावर वहाँ का राजा कहलाता हो, ऐसा सम्भव है। अग्रेजी मूल में 'रोर' लिखा है यह 'शे' को 'रो' पढने की भूल के कारण हुआ है।

साथ विवाह होता है वह अपना राज्य खो देता है। यह बात सुनकर राजा बहुत दुःखी हुआ और उसने अपनी लड़की को जंगल में भिजवा दिया। वहां से हरणमतिया नामक कुम्हार उसको ले गया और उसका पालन पोषण किया। यह लड़की इतनी सुन्दरी थी कि लाखा फूलाणी(१) ने भी उसके साथ विवाह करने का सन्देश भेजा। कुम्हार ने उत्तर दिया "इस विवाह से पूर्व अपने जाति के लोगों से पूछ लेना मेरे लिए आवश्यक है।" इस पर लाखाने उसको बहुत डराया धमकाया तब वह वहां से भाग कर सोरठ देश में मजेवड़ी चला गया तथा वहीं अपने कुटुम्ब सहित रहने लगा।

एक समय पट्टण के राजा सिद्धराज जयसिंह के चार दरबारी भाट लाला भाट मंगल भाट बच्छ भाट और डगल भाट विदेश-भ्रमण करते हुए मजेवड़ी आ पहुँचे और वहाँ उन्होंने हरणमतिया कुम्हार की सुन्दर पुत्री को देखा। जिस मार्ग से वह निकल जाती थी वहीं उसके गुलाबी चरण-चिह्न अंकित हो जाते थे। भाटों ने सोचा 'यह रमणी तो सिद्धराज के अन्तःपुर की शोभा बढ़ाने योग्य है, और इस शुभ समाचार को लेकर हम लोग जब पट्टण पहुँचेंगे तो अवश्य ही पुरस्कार मिलेगा। इस प्रकार विचार करके वे लोग पट्टण पहुँचे और सिद्धराज जयसिंह ने सम्मान पूर्वक उनका स्वागत किया। उस समय उसके सोलह रानियाँ थीं। उसने उन भाटों को सोलह दिन तक अलग अलग रानियों के महल में अपने साथ भोजन करने को निमन्त्रित किया। ज्योंही भाट लोग भोजन करके उठते प्रतिदिन वे एक दूसरे की ओर देख कर गर्दन हिला देते। राजा ने इसका कारण पूछा तो भाटों ने उत्तर दिया "महाराज! हमने आपकी सोलहों रानियों

(१) सम्भवतः लाखा फुलाणी।

को देख लिया परन्तु उनमे से एक मे भी पद्मिनी (१) स्त्री के सम्पूर्ण लक्षण नहीं मिले।' राजा ने कहा, 'तुम लोग मेरे घरू भाट हो, देश देश मे भ्रमण करते हो इसलिए मेरे लिए ऐसी स्त्री तलाश करो जो पद्मिनी के पूर्ण लक्षणों से युक्त हो और ज्योंही तुमको ऐसी स्त्री मिले लग्न निश्चित करके विवाह पक्का कर दो।'

भाट लोग पद्मिनी स्त्री की खोज में निकले, वहुत से देशों मे घूमे फिरे परन्तु सफल न हुए। अन्त में उन्होंने सोरठ मे मजेवडी जाने का ही निश्चय किया। उधर, जव से ये लोग पहले मजेवड़ी आकर गये थे तव से हणमतिया अपने मन मे सशक हो रहा था कि सिद्धराज के भाटों ने इस लड़की को देख लिया है इसलिए कोई न कोई आपत्ति आने वाली है। अत वह उस लड़की को एक तहखाने मे छुपा कर रखने लगा। भाटों ने मजेवडी पहुचते ही कुम्हार से कहा, 'अपनी पुत्री की सगाई पट्टण के राजा से कर दो।'' कुम्हार ने उत्तर दिया "मेरे तो कोई लडकी ही नहीं है।'' भाटों ने फिर कहा, "हमने उसे अपनी आखों देख लिया है, तुम उसकी सगाई न करोगे तो भी सिद्धराज उसे न छोडेगा। फिर, तुम्हारा ऐसा भाग्य कहा कि तुम एक साधारण कुम्हार होकर पट्टण के महाराजा सिद्धराज के श्वसुर वनो।'' इस प्रकार कुछ धमकी और कुछ लालच देकर उन्होंने कुम्हार को सगाई करने के लिए राजी कर लिया और दो तीन महीने बाद का ही लग्न निश्चित किया। इसके पश्चात् वे पट्टण पहुचे और राजा को पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने कहा "मैं कुम्हार की लड़की से शादी नहीं करूँगा क्यों कि

---

(१) स्त्रियाँ चार जाति की होती हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, हस्तिनी और शखिनी। इनमें पद्मिनी सवसे उत्तम होती है।

ऐसा करने से मेरे कुल की प्रतिष्ठा भंग हो जायगी । मारों ने उत्तर दिया—

"आंगण्या आंबो मोरियो साख पड़ी पर बार ।
वेसे रूपाई देवड़ी नहीं जाते कुम्हार ॥'

'एक मनुष्य के घर आम का पेड़ लगा हुआ है और उसका फल दूसरे के घर जा पड़ा । इसी प्रकार देवड़ी परमात्मा की पैदा की हुई है वह कुम्हार की लड़की नहीं हो सकती ।

यह बात समझकर तथा उनके मुँह से देवड़ी के रूप एवं गुणों की प्रशंसा सुनकर राजा विवाह करने को तैयार हो गया और मंडप रचा कर उसने गणेशजी को निमन्त्रित कर दिया ।

इसी समय जब यह सब कुछ हो रहा था जूनागढ़ में चूड़ासमा वंश का राव खेंगार राज्य करता था जिसकी बहन का विवाह सिद्धराज के किसी निकट सम्बन्धी से हुआ था । उस समय रा' खेंगार की बहन अपने दोनों पुत्रों देसल और वीसल सहित जूनागढ़ में ही रहती थी । एक दिन देवल ने अपने मामा से कहा "अपने राज्य में मजेवड़ी नाम का एक नया गांव बसा है मैं उसे देखने जाता हूँ । इस प्रकार आज्ञा प्राप्त करके अपने भाई वीसल को साथ लेकर वह मजेवड़ी गया । वहां कुम्हार की लड़की की सुन्दरता का हाल सुनकर वे वापस जूनागढ़ आये और राव खेंगार से पूरा वृत्तान्त कह सुनाया । उन्होंने कहा, अपने प्रान्त में एक कुम्हार के ऐसी सुन्दर लड़की है जो आपके दरबार को शोभित करने लायक है । सिद्धराज के चारण भाट उसको देखने के लिए वहाँ आये थे और राजा के साथ उसकी शादी का

दिन नियत कर गये हैं। यदि पट्टण का राजा अपने देश में से ऐसी सुन्दरी को ले जावेगा तो तुम्हारी क्या शोभा रहेगी?' यह सुन कर चूडासमा ने देवल से कहा, "मेरा खांडा ले जाओ और उस सुन्दरी को यहा मेरे दरबार मे ले आओ।" देवल तलवार लेकर गया और कुम्हार से कहा, 'अपनी लड़की की शादी राव खँगार के खाडे से कर दो।' कुम्हार ने कहा, 'लड़की की सगाई तो पट्टण के राजा सिद्धराज जयसिंह से हो चुकी है, थोडे दिन बाद ही वहां से बरात आने वाली है। यदि मैं अपनी लडकी राव खँगार को ब्याह दूँ तो वह (सिद्धराज) मुझे अवश्य ही मार डालेगा।' देवल ने उत्तर दिया, "मैं उस लडकी को जबरदस्ती ले जाऊँगा—तुम्हें कोई नुकसान नहीं होगा।" कुम्हार ने फिर कहा, 'यदि तुम ऐसा करोगे तो पट्टण का राजा गिरनार को जडमूल से उखाड़ देगा और इसका एक एक पत्थर बिखेर देगा, इसलिए जिस कन्या की सगाई सिद्धराज से हो चुकी है उसके विषय मे हस्तक्षेप करना उचित नहीं।'

'क्या तुम उस जयसिंह को नहीं जानते हो जिसने धार नगर को हिला दिया था—जो चीज उसकी हो चुकी है उस पर खँगार को हाथ नहीं डालना चाहिये।'

यह सुन कर देसल ने नाक चढ़ा कर उत्तर दिया—

'सोरठ के अधिपति ने गढ़ गिरनार में बावन हजार घोड़े इकट्ठे कर रखे हैं। उस सोरठ के धनी को किसका डर है? रा' खँगार के पास अक्षौहिणी(१) दल है।"

---

(१) बावन हजार बाँधिया, घोड़ा गढ गिरनार।
क्यम हठे सोरठधणी, वेहण दल खँगार॥

(क) अक्षौहिणी सेना में २१,८७० हाथी, इतने ही रथ, ६५,६१० घोड़े और १,०९,३५० पैदल होते हैं।

अन्त में यही हुआ कि देवल उस लड़की को जबरदस्ती राव खेंगार के पास ले गया। जूनागढ़ पहुँच कर जब राणक देवी रथ से उतरी और पहले पहल पोलि ( दरवाजे ) में घुसी तो अचानक उसके पैर के एक पत्थर की ठोकर लगी और खून की धार बहने लगी। उसने निःश्वास डालकर कहा 'भाई यह तो अच्छा शकुन नहीं हुआ इससे किसी घोर आपत्ति के आ जाने की सम्भावना है।

पहले पहल पोलि में प्रवेश करते ही ठोकर लग गई। या तो राणकदेवी को रँडापा मिलेगा अथवा सोरठ देश उजाड़ हो जायेगा। (२)

इसके पश्चात् बड़ी धूमधाम से राव खेंगार ने उसके साथ विवाह कर लिया और तीन दिन तक लगातार गिरनार नगर के निवासियों को भोजन कराया। उसी समय पट्टण के सौ वागरे* भी मिट्टी के बरतन बेचने के लिए वहाँ आये हुए थे और नगर के उत्तरी दरवाजे के बाहर ठहरे हुए थे। आये हुए अन्य और लोगों के साथ उनको भी जीमन के लिए निमन्त्रित किया गया। उन्होंने पूछा, 'आज राजा के यहाँ क्या बात है जो हमको निमन्त्रित किया गया है ? नौकरों ने उत्तर दिया—

'सोरठ सिंहलद्वीप की सुकुमारी परमार।
बटी राजा शेर की परण्यो राव खेंगार॥'

---

(२) प्रथम पोली पेसतां थयो ठबको नें ठेस।
रंडापो राणक देवी ने (के) सूनो सोरठ देश॥

*वागरिया एक जाति विशेष जो जंगलों में हरिण आदि मार कर निर्वाह करते हैं।

इसीलिए आज तीन दिन से ढेढों (अन्त्यजों) सहित समस्त नगर के लोगों को राजा भोजन करा रहा है। हमको तुम्हें बुलाने भेजा है, चलो।" वागरियों ने सोचा—इस कन्या की सगाई तो अपने राजा सिद्धराज के साथ हुई थी। राव खँगार ने इसके साथ बलपूर्वक विवाह कर लिया है। सिद्धराज सोलकी है और हम लोग भी सोलकी कहलाते हैं इसलिए हमको ऐसी दावत में शामिल नहीं होना चाहिए जो उस कन्या के विवाह की खुशी में मनाई जा रही है जिसकी सगाई एक सोलकी के साथ हो चुकी थी और जिसको यह राव हर लाया है।' यह सोचकर उन्होंने तुरन्त पट्टण पहुँच कर पूरा समाचार कह सुनाने का निश्चय किया। इस प्रकार मनसूबा करके वे लोग भूखे प्यासे ही वहा से रवाना हो गये और पाटणवाड़ा मे वधेल ग्राम की सीमा मे आकर दम लिया। वहा उन्होंने शिकार पकड़ने के लिए जाल फैलाया। उसी समय राजा के चारों दरबारी भाट भी घोड़ों पर चढ़े हुए उधर आ निकले। उनको देखकर उन वागरियों का पकडा हुआ एक रोझ भाग गया। वागरियों ने उनसे कहा, "महाराज आपने यह क्या किया—हम रात दिन चलते हुए जूनागढ से आ रहे हैं। आज हमारा सातवा उपवास है। आपने हमारे रोझ को क्यों भगा दिया?" भाटों ने पूछा, 'क्यों यह, क्या बात है–तुम सात दिन से भूखे क्यों हो?" उन्होंने उत्तर दिया, 'हमारे राजा से जिस कन्या की सगाई हुई थी उसको राव खँगार जबरदस्ती पकड़ कर ले गया।' यह सुन कर भाट लोग बहुत दुखी हुए और तुरन्त घोड़ों पर सवार होकर राजा के पास पट्टण पहुँचे। वहां पहुच कर सिद्धराज से कहा—

'हम अनाथ और विना घरबार के हैं और गरीब भाट कहलाते

है। हमने रायक देवी को खोज निकाला था। अब उसको राव खेंगार हर ले गया।'

यह सुनकर सिद्धराज ने अपनी सहायता के लिए बाबरा भूत(१) को बुलाया। यह भूत बहुत काल से उसकी सहायता करता आया था। जब वह आया तो सिद्धराज ने उसे अपने साथ राव खेंगार से लड़ने के लिए जूनागढ़ चलने को कहा। इसके बाद राजा तैयार होकर बाघेल पहुँचा और वहीं पर पाँच हजार दो सौ भूतों को साथ लेकर बाबरा भूत उसको मिला। सिद्धराज की आज्ञा से उन भूतों ने एक ही रात में वहां पर एक तालाब तैयार किया।(२) बाघेल से कूच करके सेना

---

(१) बाबरियाबाड़ में रहने वाले लोगों का मालिक इसलिए बाबरा कहलाता था।

(२) गुजरात में कोई भी तालाब अथवा धार्मिक इमारत हो वह यदि हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हो तो सिद्धराज जयसिंह ( उसके लोक प्रसिद्ध नाम सिधरायजेसिंग ) की बनवाई हुई बतलाई जाती है और यदि वह मुसलमानी धर्म से सम्बन्धित हो तो सुलतान महमूद बेगड़ा की बनवाई हुई बतलाई जाती है और यह कहा जाता है कि ये इमारतें उन्होंने भूतों तथा जिन्नों की मदद से बनवाई थीं। दूसरे देशों के प्रसिद्ध वीर पुरुषों के विषय में भी ऐसी ही बहुत सी बातें प्रचलित हैं—

फ्रांस और इंगलैंड दोनों ही नगरों में जितनी प्राचीन इमारतें हैं और जिनके विषय में ठीक २ यह नहीं कहा जा सकता कि कब की बनी हुई हैं उनके विषय में भी सामान्य रीति से यही कह दिया जाता है कि ये प्रसिद्ध जूलियस सीजर की बनवाई हुई हैं जिसकी पराक्रमपूर्ण कथाओं से इंगलैण्ड का पूर्व इतिहास भरा पड़ा है। लन्दन के प्रसिद्ध टावर के विषय में भी साधारणतया यही कहा जाता है कि इसको भी इसी पराक्रमी वीर ने बनवाया था। शेक्सपीयर के नाटक में रिचार्ड द्वितीय की अभागिनी रानी कहती है "जूलियस सीजर के अशुभ टावर का यही मार्ग है।

मुञ्जपुर पहुँची और वहा से जिञ्जूवाड़ा,(१) जहां उन्हें ग्वालों का प्रधान धाँधू मिला जो अपने जाति के लोगों के साथ झोंपडों मे रहता था। वहा उन्होंने एक किला और एक तालाव बनवाया और आगे चलकर वीरमगांव पहुँचे जहा उन्होंने मानसर नामक तालाव बनवाया। वहा से घढ़वाण पहुँचकर वहा भी एक दुर्ग बधाया, फिर सायले में पहुँच कर एक किला और एक तालाब का निर्माण करवाया। इसके कुछ दिन बाद वे जूनागढ़ पहुँचे जहां वारह वर्ष तक लड़ाई लडते रहे परन्तु राव

---

"विंडसर कैसिल ( किले ) के नीचे के मोहल्ले का बैल-टावर ( घण्टा-घर ) भी जूलियस सीजर का ही टावर है" परन्तु इतिहास-विषयक अद्भुत-कथाओं में विश्वास करने वाले इस टावर को इस सेमन विजेता का बनवाया हुआ कभी नही मान सकते।

"इसी प्रकार फ्रांस देश में भी जो कोई प्राचीन चमत्कारिक वस्तु होती है उसका आरम्भिक सम्बन्ध किसी परी, भूत, अथवा सीजर से स्थापित कर दिया जाता है।" ( पैरिस के इतिहास के आधार पर )

(१) चतुर्वेदी मोढ ब्राह्मणों के बारहट की बही में लिखा है कि, "सर-खेज में रहने वाले मोढ ब्राह्मण उपाध्याय भाण ने अपने पिता झूडा के नाम पर सवत् ११४९ ( सन् १०९३ ई० ) में सोलकी राजा कर्ण के आखिरी दिनों में झिझूवाडा गाँव बसाया था और उसके साथ ही ओडूँ, मोलाडूँ, आदरियाँण, जाडियाण, पाडीवाला, रोजीयूँ, सुरेल, फतहपुर, नगवाड़ा, धामाद और भलगाँव नामक ११ गाँव और बसाये—इस प्रकार कुल १२ गाँव बसाये।

"सोलकी सिद्धराज जयसिंह ने सवत् ११६५ ( सन् ११०९ ई० ) मिती माह सुदि ४ रविवार को झिझूवाड़े का गढ बँधवाने का मुहूर्त निश्चित किया। उसने यह काम उपाध्याय भाण के पुत्र विश्वेश्वर बोहरा को सौंपा और गढ के कार्य में सहायक होने के निमित्त माता श्री राजबाई की स्थापना गढ के मध्य कोष्ठ में की।"

सँगार के महलों तक न पहुँच सके। मीनलदेवी ने जो अपने पुत्र के साथ यहीं मौजूद थी बहुत से मन्त्र जाप आदि करके अनेक युक्तियां कीं परन्तु एक भी सफल न हुई।(२) अन्त में ऐसा हुआ कि राव सँगार अपने भानजे देसल से ईर्ष्या करने लगा और उस पर राणक देवी से

---

इसके अतिरिक्त इस बही में यह भी लिखा है कि 'संवत् ११५४ ( सन् १२९८ ई० ) में पौस सुदी २१ (११) सोमवार को दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खूनी खिलजी ने झिञ्झूवाड़ा जीत लिया।"

(२) बुरी गायकों की बात इस प्रकार है कि किसी कारीगर ने एक लकड़ी की एक साडनी (ऊँटनी) बनाकर दी उस पर बैठकर सिधराव और मयणल्ल देवी राणक देवी के महल पर गए। वहाँ पर उन्हें किवाड़ बन्द मिले। जब उन्होंने दरवाजा खटखटाया तो राणक देवी बोली—

सो —कवण खटकावे कँवाड़ मेड़ी१ हेठ राणक देवनी।
आपरो रा' खँगार, भाटक भनवर तोड़री ॥

मयणल्ल देवी ने कहा—

म्हारो मेदो२ लाडको ओल्यो४ गढ गिरनार।
मारी रा' खँगार, उतारवी राणक देव ने ॥

इस पर राणक देवी ने उत्तर दिया —

आ मारा गढ हेठ५, कैयो लम्बू वाणिया।
सपरो६ म्हेरो शेठ पीवा वर्तांऊ७ वाणिया ॥

यह सुनकर मयणल देवी ने कहा—

राणा सब्बे वाणिया वेसल्ल वडुँ ह सेठ।
काहु वणिज्ज मंडीयिउ अम्मीणां गढ हेठ ॥
वाणिजाना वेपार, आवे हाहलेव्ट आपणी।
मारछु रा' खँगार, उतारछु राणक देव ने ॥

इस प्रकार किवाड़ खोले के बाद वे उतर आए।

---

१ ऊपर के खंड का मकान। २ खटक (गहनों) सहित कान तोड़ देगा। ३ लड़का। ४ अमर। ५ नीचे। ६ सुन्दर ७ काम चलाऊ। ८ प्रत्यक्ष में।

घनिष्ठ गुप्त सम्बन्ध होने का दोष लगाया।(१) उसकी माता ने इस बात की सूचना उसको दी। उसने उत्तर दिया—

'ना मैं घोड़ा मारिया, ना लूट्यो भडार।
भोगी न राणक देवड़ी, क्यों रूठै खेगार?'

"मैंने खँगार के घोडे नहीं मारे, न भडार ही लूटा और राणकदेवी से भी कोई सम्बन्ध नहीं किया, फिर वह मुझसे क्यों अप्रसन्न है?"

---

(१) इस विषय में तुरी की बात इस प्रकार है कि, एक बार रा' खँगार ने शराब पी और अपने भानजे को भी पिलाई तथा राणक देवी को पिलाने के लिए देसल को शीशी लेकर भेजा। देसल ने कहा कि, मैं शराब पिए हुए हूँ, मैं नहीं जाता, परन्तु रा' ने इस उचित बात को भी न मान कर उसे आग्रह करके भेज दिया। उसने जाकर शराब का पात्र अपनी मामी को दे दिया और उसने अपने भानजे को हिण्डोले पर बिठाकर शराब पिलाई व खुद ने भी पी। राणक देवी को तो बहुत पीने के कारण शराब चढ गई इसलिए वह तो अपने पलग पर सो गई और बेहोश देसल जब चलने को तैयार हुआ तो अनजान में राणक देवड़ी की खाट पर ही सो रहा। इस प्रकार जब वे दोनों निर्दोष अवस्था में बेहोश होकर गहरी नींद में सो रहे थे तो बहुत देर हो जाने के कारण रा' खँगार स्वय देसल को देखने आया और दोनों को एक पलग पर सोते देखकर क्रोध में भर गया। उसने तलवार निकाल कर वार किया और दोनों को एक ही वार में खतम कर देना चाहा परन्तु तलवार पलग की साकल पर पड़ी और उन दोनों को जरा भी चोट नहीं आई इसलिए उसने सोचा कि वे निर्दोष थे। फिर और जाँच करने के लिए अपना जमिया (कटार) रानी के बोये हुए चम्पा पर मारा परन्तु वह लगा नहीं। इसके बाद तलवार को म्यान में रखकर अपने ओढने का वस्त्र दोनों को उढाकर और देसल का वस्त्र स्वय लेकर चला आया। परन्तु इतना होने पर भी उसके मन का सन्देह बना ही रहा इसलिए उसने अपनी बहन से कहा कि, तेरा पुत्र मेरे घर की ओर ताकता है।

मात उत्तर दिया, " बेटा, रायक देवी की सगाई तुम्हारे पिता के वंश में हुई थी उसको लाकर तुमने उसका विवाह अपने मामा से करा दिया। तुम्हारी इन सेवाओं को भूलकर वह तुमसे नाराज हो गया है अब तुम्हें इस देश में नहीं रहना चाहिए। इसके कुछ दिन बाद स्वयं सैंगार ने भी उसे वहां से चले जाने को कहा। इस पर देसल अपने भाई वीसल को साथ लेकर रातों रात भाग गया। जब वे किले के दरवाजे पर आये तो बूढा और हमीर नाम के राजपूतों ने जो पहर पर थे, उनसे पूछा 'तुम कहां जा रहे हो?' उन्होंने कहा 'महाराज ने मालवा से अफीम की गाड़ियां मंगवाई हैं, हम उन्हें आगे लेने जा रहे हैं। जब आधीरात को ये गाड़ियाँ आवें तो तुरन्त दरवाजा खोल देना। ऐसा कहकर दोनों भाई बाहर आए और सिद्धराज के पास जाकर बोले महाराज! पहले हमें यह मालूम नहीं था कि आप हमारे काका हैं इसीलिए हमने रायक देवी को लाकर अपने मामा से उसका ब्याह करा दिया। अब वह हम पर झूठे दोष लगाता है इसलिए हम आप के पास आए हैं यदि आप हमारे साथ चलें तो हम रा सैंगार को मार कर रायक देवी को आपके आधीन कर दें।'

इसके पश्चात् एक सौ चालीस (१४०) योद्धाओं को बैल गाड़ियों में छुपाकर वे रवाना हुए। दरवाजे पर आकर बूढा और हमीर से दरवाजा खुलवाया और अन्दर आकर सबसे पहले उन दोनों को ठिकाने लगा दिया फिर रा सैंगार के महलों की ओर आगे बढ़कर रणसिंगा बजाया सैंगार भी तुरन्त ही लड़ने के लिये निकल आया।

> सांपो सांग्यो वेढ पढी भेड्यो गढ़ गिरनार।
> बूढो हमीर मारिया सोरठ ना सिणगार॥

"उन्होंने गढ के दरवाजे को तोड़ दिया और गिरनार गढ़ को लूट लिया। ददा और हमीर को मार डाला जो सोरठ के शृगार थे।

इस अवसर पर दोनों ही ओर के कितने ही वीर मारे गये और अन्त में स्वय राव खॅंगार भी काम आया।

इसके बाद देसल सिद्धराज को साथ लेकर राणक देवी के महल पर पहुचा और कहने लगा "मामी, हम दोनों भाई और मामा खॅंगार आये हैं, दरवाजा खोलो।" उसने दरवाजा खोल दिया। राणक देवी के दो पुत्र थे। बडे का नाम माणेरा था और उसकी आयु ११ वर्ष की थी। दूसरा डगायच्यो था, वह पाच वर्ष का था। सिद्धराज ने छोटे बच्चे को राणक देवी से छीन लिया और वहीं उसका वध कर दिया। जब माणेरा को मारने का प्रयत्न करने लगा तो वह उससे हाथ छुडा कर अपनी मा के पीछे छुप गया, और हे मां, हे मा, कहकर रोने लगा। तब राणक देवी ने कहा —

"माणेरा मत रोय, मत कर राता नैण तू,
कुल में लागै खोय, मरतां माॅ न सभालिये ॥"

'हे माणेरा, मत रो, रो रोकर लाल आखें मत कर। मरते समय मा को याद करने से तेरे कुल को कलङ्क लगेगा।'

सिद्धराज ने आज्ञा दी कि इस कुॅवर को न मारा जाय, यदि राणक देवी पट्टण चलने में आनाकानी करेगी तो इसका वध करदिया जायेगा। वास्तव मे, इस कुॅवर को भी मार दिया गया था परन्तु किस स्थान पर उसका वध किया गया, यह ज्ञात नहीं है।

इसके बाद राणक देवी को किले के बाहर लाए। जब उसने राव खेंगार के घोड़े को देखा तो शोकातुर होकर बोली—

> 'घोडांरा सिरदार, अजूं न फाटयो काळजो ?
> मरतां राव खेंगार जासी तू गुजरात नै।"

'हे श्रेष्ठ अश्व ! अब तक भी तेरा कलेजा नहीं फटा ? राव खेंगार की मृत्यु हो गई है और अब तू गुजरात ले जाया जावेगा।

फिर राव खेंगार के हरिण को देख कर उसने कहा—

> कर रे कुरंग विचार इक दिन सुख्खो घूमतो
> मरतां राव खेंगार, भवनां में बंधण बँध्यो।

'अरे हरिण ! विचार कर कभी तू स्वतंत्र घूमता था। अब राव खेंगार के मरने पर तू मकान में बांध कर रक्खा जायगा।

फिर मोर को बोलते हुए सुनकर कहने लगी—

> क्यूं गरजे रे मोर, खोखां में गिरनार की
> फटी कालजे कोर लखपतियो सुरगां गयो। (१)

हे मोर ! गिरनार की खोहों में क्यों गरज रहा है ? मेरा हृदय भग्न हो चुका मेरा लखपतिया तो स्वर्ग सिधार गया।

---

(१) मोर की वाणी का यह शकुन माना जाता है कि प्रिय का मिलन हो। विरहिणी कहती है कि हे मोर, गिरनार की चोटियों पर चढ़कर क्यों गरजता है ? मेरे कलेजे की कोर कट गई, अब प्रिय मिलन की क्या आशा है ?

इसके बाद राणक देवी उस स्थान पर आई जहां खॅंगार की लाश पडी हुई थी, उसको देखकर उसने कहा—

स्वामी ! ऊठौ सैन्य लै, खडग(१) धरो खॅंगार,
छत्तर(२) सो छायो भलो, जूनों(३) गढ़ गिरनार।

जैसे जैसे वह घाटी मे नीचे उतरती गई वैसे ही अपने दामोदर कुंड,(४) वगीचे और चम्पा के वृक्ष से विदा लेती गई। उसने पर्वत की ओर देखकर कहा—

ऊंचो गढ गिरनार, वादल सू वातां करै,
मरता राव खगार, रडापो (५) राणक देवड़ी।

---

(१) खड्ग–तलवार। (२) छत्र। (३) जीर्ण–पुराना।

(४) तुरी की बात में इतना और है—
दामोदर कुंड पर आकर राणक बोली—
उतर्यां गढ गिरनार, तनडु आव्यु तलाटिए,
वलता वीजी वार, दामो कुंड नथी देखवो।

'गिरिनार गढ से उतर कर तलहटी में आ गई हूँ। अब लौटकर दामोदर कुण्ड को देखना न होगा।'

धारगर बावड़ी के पास आकर कहा—
चपां ! तु का मोरियो, थड मेलु अगार,
मोहोरे कलियु माणतो, मारयो रा' खॅंगार।

हे चम्पा ! तू अब क्या फूली है ? तुझ पर अङ्गारे धरू ( ऐसी मन में आती हैं ) तेरी एक एक कली का मोहरों ( स्वर्ण मुद्राओं ) से सम्मान करता था वह राव खॅंगार मारा गया।'

(५) वैधव्य।

कुछ मील चलकर उसने फिर गिरनार की ओर मुड़कर देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि मानों यह पर्वत उसके पीछे पीछे चला आ रहा है तब उसने कहा—

'पापी गढ़ गिरनार ! मत वैरयां को मान कर
मरतां राव खेंगार तू भी मिलतो धूल में ।" (१)

'हे पापी गिरनार दुर्ग ! तू शत्रुओं का मान मत कर ( तेरा स्वामी ) राव खेंगार मर गया है । उसके साथ ही तुझे भी मिट्टी में मिल जाना चाहिए था ।

अब और भी आगे बढ़ी तो उसे यह पर्वत क्षितिज के उस पार गिरता हुआ सा दिखाई पड़ा । यह देख कर वह कहने लगी—

'मत डूबे आधार ! कुण रे चढ़ासी कांगरा ?
गया चढ़ावणहार, जीता करसी जातरा"

'हे धरती के सहारे गिरनार ! अब आँखों से ओझल मत हो । तेरे कँगूरे अब कौन चढ़ावेगा ? जो चढ़ाते थे वे (राव खेंगार) स्वर्ग चले गए । अब जो जीवित रहेंगे वे तेरी यात्रा करेंगे । ( उनके लिए तू तीर्थ स्थान हो गया है । )

---

(१) पर गरूआ गिरनार, काइ मनि मच्छर धरिऊ ।
मारीता खेंगार, एकसिहरू न ढालिऊ ॥

हे गरवीले गिरनार ! तूने मन में क्यों मत्सर धारण किया है ? राव खेंगार की मृत्यु हो जाने पर तूने अपना एक शिखर भी नहीं गिराया ।

देसल और वीसल ने पहले ही सिद्धराज से यह तय कर लिया था कि राव खँगार को मार कर वह जूनागढ की गद्दी देसल को दे देगा इसलिए जब वह ( सिद्धराज ) घर को रवाना हुआ तो उन्होंने इस बात की याद दिलाई। सिद्धराज ने पहले तो उनसे कहा, 'ले लो' परन्तु उसने फिर सोचा कि जिस तरह इन्होंने अपने मामा के साथ धोखे का व्यवहार किया है उसी प्रकार किसी न किसी दिन ये मुझे भी धोखा देंगे, इसलिए उसने उन दोनों को वहीं कत्ल कर दिया।

पट्टणवाडा पहुच कर सिद्धराज ने राणकदेवी को शाति पहुँचाने के लिए कितने ही स्थान दिखलाए—परन्तु वह बोली—

"बालूँ पाटण देश, बिन पाणी ढाँढा मरै,
सुन्दर सोरठ देश, धाप धाप कर जल पिवै।"

'उस पट्टण देश के आग लगे, जहा पानी के बिना ढोर प्यासे मरते हैं। मेरा सोरठ देश बडा सुन्दर है जहा सब लोग पानी पीकर तृप्त हो जाते हैं।'

अन्त मे, वे लोग पट्टण नगर के बाहर आकर पहुँचे और कोट के नीचे ही पड़ाव डाला। राजा ने नगर के बाहर ही शहर के लोगों को निमन्त्रित करके जीमने बुलाया। सभी लोग तड़क भड़क की पोशाकें पहन कर बहुत बड़ी सख्या मे वहाँ आ पहुचे। उन्हें देख कर राणकदेवी को कोई प्रसन्नता न हुई, उसने कहा—

"बालू पट्टण देश, ओछी ओढ़ै ओढणी,
सुन्दर सोरठ देश, पूरी ओढै ओढणी"

'यह पट्टण देश जल जाय जहां स्त्रियां छोटी छोटी ओढ़नी ओढ़ती हैं। सोरठ देश बड़ा सुन्दर है जहां महिलाएं लम्बी पूरी लुगड़ियां ओढ़ती हैं।

एक गुजराती स्त्री ने उसके पास आकर कहा 'तुम्हारे तो सिद्धराज जैसा समर्थ पति है।" तब उसने कहा, 'मेरे पति को तो मैं इस स्थिति में छोड़कर आई हूँ—

धीमी फरके मूछड़ी उज्जल चमके दन्त
ओछी ओढ़णवालियों ! एहो देख्यो कन्त।

'हे छोटी ओढ़नी ओढ़नेवाली (पाटणी) स्त्रियो ! मैं अपने पति को ऐसी अवस्था में देखकर आई हूँ कि उसकी मूछें धीरे धीरे फरक रही हैं और उजले उजले दांत चमक रहे हैं।

फिर उस स्त्री ने पूछा 'तुम्हारी आंखों का आंसू नहीं सूखता, वह किस प्रकार बन्द हो ?" उसने उत्तर दिया—

"मेरे आंसुओं की धारा से कुए क्यों न भर जावें-मायेरा की मृत्यु से मेरे शरीर में आंसुओं की नदियां उमड़ी पड़ रही हैं।"(१)

इस प्रकार राणकदेवी को किसी भी बात से शान्ति न हुई। सिद्धराज ने उसके साथ बहुत आदरपूर्ण व्यवहार किया और उससे पूछा कि उसका मन कहां रहने का था ? इस पर उसने वढ़वाण जाना

---

(१) पाणखने पडवे, कोरो तो कूवा मरावीए।
मायेरो मरते शरीरमां सरणां वहे ॥

चाहा। सिद्धराज स्यय उसको पहुचाने गया। भोगावा(१) नदी के किनारे पर एक चिता तैयार कराई गई और राणकदेवी ने उस पर अपना आसन जमाया। सिद्धराज ने उसको जीवित रखने का अन्तिम प्रयत्न करते हुए कहा "यदि तुम सच्ची सती हो तो विना आग लगाए ही चिता जल उठेगी।" यह सुनकर राणकदेवी घुटने टेक कर बैठ गई और सूर्य की प्रार्थना करने लगी–फिर उठकर बोली –

'त्रिदा नगर वढ़वाण, भोगावा सरिता वहै,
भोगी राव खेंगार, अब भोगै भोगावा नदी।' (२)

---

(१) जेसल मोडि म वाह, वलि वलि विरूप भावइह।
नइ जिम नवा प्रवाह, नवघण विणु आवइ नहि॥

इसका भावार्थ यह है कि, हे नदि, जिस प्रकार मैं अपना देश छोडकर स्वामी के बिना विरूप हो गई हूँ उसी प्रकार तू भी नवीन मेघ के बिना दुर्बल होती जा रही है और उसके बिना अच्छी नही लगती। जिस प्रकार तूने तेरे पर्वत रूपी स्थान का त्याग किया है उसी प्रकार मैंने भी किया है इसलिए अपने दोनों की दशा समान है।

गुजराती अनुवाद में उक्त पद्य का भावार्थ ऊपर दिया है परन्तु स्पष्ट अर्थ इस प्रकार है—

'अरे जेसल! मेरी बाह मत मरोड़। मैं पति वियोग में विरूप हो गई हूँ। नवधन (नये बादल अथवा राव नवघन) के बिना नदी में प्रवाह नहीं आ सकता।'

(२) यही भाव प्रबन्ध चिन्तामणि नामक सस्कृत ग्रन्थ में भी है जो सन् १३०५ ई० में रचा गया था। यह ग्रन्थ बाद में जैन भडार में रख दिया गया था इसलिए यह सभव नही प्रतीत होता कि यह 'तुरी' जैसे लोगों के हाथ लगा हो परन्तु फिर भी तुरी लोगों में एक से सुनकर दूसरे ने इसकी आवृत्ति की है इसलिए यह उल्लेखनीय है। देखिए इस प्रकरण का पहला सोरठा।

जहाँ भोगावा नदी बहती है उस बढ़वाण नगर से भव होती है। मेरे शरीर का उपभोग था सो राम सँगार ने किया । अब भोगावा नदी करे।

फिर उस समय इतनी गरम हवा चली कि चिता अपने जल उठी। तब राणकदेवी ने कहा—

भन भन ! ताती वाय वाली, माटी परजली
फमो पढ़णराय सोरठणीरो सत लसी।

'मैं धन्य हूँ कि गरम हवा चलने लग गई और इससे (रेत अथवा मृत शरीर) प्रज्वलित हो गई। पट्टण का राजा खड़ा सोरठनी के सतीत्व की परीक्षा कर रहा है ।

उस समय सिद्धराज ने अपनी पगड़ी राणकदेवी पर दी परन्तु उसने वापस लौटा दी और कहा, 'यदि दूसरे जन्म में मेरे पति होना चाहते हो तो मेरे साथ जल मरो।" परन्तु सिद की हिम्मत न पड़ी।

जिस स्थान पर राणकदेवी सती हुई थी उसी स्थान पर सिद्ध ने एक देवालय बनवाया। सम्पूर्ण सोरठ उसके अधिकार में था परन्तु सती राणकदेवी के चरणों के चिन्ह तो गिरनार पर बने हुए सँगार के महलों ही को प्राप्त हुए थे।

वर्द्धमानपुर अथवा बढ़वाण आजकल भाला राजपूतों का २ स्थान है। यह नगर सोरठ ही में है परन्तु सीमा से अधिक दूर नहीं और कपास उपजाने वाले सपाट प्रदेश में बसा हुआ है। इतिहास

ने इसको वहुत प्राचीन नगर लिखा है और यह सिद्ध हो चुका है कि यह वनराज की राजधानी मे पहले का वसा हुआ है–

'वल्हे ओ' वढवाण, पाछै पाटणपुर वस्यो ।

भोगावा नदी की उत्तरी शाखा नगर की बुर्जो के नीचे होकर वहती है। वह कर समुद्र मे जा मिलना तो दूर रहा, यह शाखा वर्षा ऋतु के सिवाय लीमडी के पास होकर वहने वाली दक्षिण शाखा मे भी नहीं मिल पाती और वीच ही मे सावरमती के मुख भाग पर खारी सपाट में विलीन हो जाती है। वढ़वाण के पुराने कोट मे अव भी कुछ समकोण वुर्जें खडी है। ये बुर्जें ही अव उस प्राचीन कोट के वचे खुचे चिन्ह हैं। आज कल इसके चारों ओर वस्ती खूव बढ गई है और राणकदेवी सती का स्थान जो पहले कहीं भोगावा नदी के किनारे पर रहा होगा, अव कोट के अन्दर आ गया है। इस मन्दिर का अव तो शिखर मात्र वच रहा है जिस पर वहुत सजावट का कार्य हो रहा है, और इसकी वनावट मोढेरा के मन्दिर की वनावट से वहुत मिलती हुई है। आसपास के गुम्बजदार मडप विलकुल नष्ट हो चुके हैं ? खँगार की दु:खिनी स्त्री की एक टूटी फूटी मूर्ति अव भी निज मन्दिर में विद्यमान है और वार त्यौहार के दिन, वढवाण दरवार की उन रानियों के साथ, जो झालावश के राजाओं के साथ सती होकर स्वर्ग को चली गई हैं और अपने पातिव्रत को अमर कर गई हैं तथा जिनके मन्दिर भी पास ही मे बने हुए हैं, इसकी भी पूजा होती है, मूर्ति को सौभाग्य की पोशाक पहनाई जाती है, मुकुट धारण कराया जाता है, चूदडी उढ़ाई जाती है और इसका सभी प्रकार का राजोचित शृङ्गार किया जाता है।

---

## प्रकरण १०

### सिद्धराज

राव खेंगार की मृत्यु के बाद सिद्धराज ने सोरठ का कार्यभार सज्जन नामक सुभट पर छोड़ दिया था। यह सज्जन वनराज के सखा जाम्बा अथवा चम्पा का वंशज था। मेरुतुंग ने लिखा है कि इस कर्मचारी ने राज्य की तीन वर्ष की आय गिरनार पर बने हुये नेमीनाथ के मन्दिर के पुनर्निर्माण में खर्च कर दी। जब सिद्धराज ने हिसाब मांगा तो उसने इतना सन्तोषपूर्ण उत्तर दिया कि राजा ने प्रसन्न होकर उसको उसी स्थान पर नियत रक्खा और मुख्यतया शत्रुंजय और उज्जयन्त के पवित्र स्थानों को भी उसी के आधीन कर दिया। (१) इसके थोड़े ही दिनों बाद देवपट्टन के श्रीसोमेश्वर भगवान्

---

(१) कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि जयसिंह ने सौराष्ट्र मण्डल को अपने आधीन करके वामनस्थली (वनस्थली) जाकर सज्जन को वहाँ का दण्डनायक नियुक्त किया और उसी की आज्ञा से सज्जन ने सौराष्ट्र की तीन वर्ष की आय श्रीनेमिनाथ देवालय के जीर्णोद्धार में खर्च की थी। विजय-यात्रा करते करते सिद्धराज जब सौराष्ट्र पहुँचा तो उस समय सज्जन का पुत्र परशुराम वहाँ का दण्डाधिप था। जब सिद्धराज ने उससे तीन वर्ष की आय माँगी तो वह राजा को रैवताचल पर्वत पर ले गया और वहाँ कर्णविहार को दिखा

की यात्रा करके लौटते हुए सिद्धराज ने इन दोनों पवित्र पर्वतों की भी यात्रा की और ऋषभदेव की पूजा आदि के खर्च के लिए बारह गाव प्रदान किए। उस समय यद्यपि ईर्ष्यालु ब्राह्मणों ने उसे मना किया परन्तु उसने उनकी बात न मानी।

सिद्धराज के राज्यकाल मे धार्मिक मतभेद और विवाद बहुत चलते थे। यह विवाद ब्राह्मणों और जैनधर्मावलम्बियों मे ही चलता हो, ऐसी बात नहीं है—वरन् विशेषतया जैनधर्म के अन्तर्गत ही दिगम्बर और श्वेताम्बर नामक प्रतिस्पर्द्धी पक्षों में भी बहुत मतभेद रहता था। इनमे से पहले पक्ष के अनुयायी साधु, नग्नावस्था में रहते हैं और दिशाओं रूपी वस्त्र ही धारण करते हैं अतएव दिगम्बर कहलाते हैं और दूसरे पक्ष के लोग श्वेत वस्त्र पहनते हैं इसलिए श्वेताम्बर कहलाते हैं।

दिगम्बर मत का कुमुदचन्द्र नामक एक साधु था। वह चौरासी सभाओं मे अपने प्रतिपक्षियों को पराजित करके कर्णाट देश से धार्मिक दिग्विजय करने एव कीर्ति प्राप्त करने के लिए गुजरात आया

---

कर कहा—"इस प्रासाद को बँधवाने में ही मेरे पिता ने सौराष्ट्र की आय खर्च की है, यदि आपको इसका पुण्य लेना है तो यह आपके समक्ष है ही और यदि आप धन ही चाहते हैं तो चलिए अभी साहूकारों से चूकती रकम दिलवा देता हूँ।" यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "सज्जन ने बहुत अच्छा काम किया है—तुम इसको पूर्ण करो।" सज्जन ने श्री नेमीश्वर का चैत्य छ महीने में तैयार कराया था और वह कलश चढाने वाला ही था कि ज्येष्ठ शुक्ला ५ को उसके शिर में बडे जोर का दर्द हुआ। ध्वजारोहण आदि का कार्यभार परशुराम पर छोड़ कर आठ दिन बाद ही वह स्वर्ग सिधार गया।

था। अपने माना का धर्मगुरु जानकर सिद्धराज ने उसका बहुत आदर सत्कार किया और मयणल्ल देवी भी उससे बहुत प्रभावित हुई। कर्णावती का विद्वान् साधु देवसूरि(१) और हेमाचार्य भी श्वेताम्बरों की ओर से कुमुदचन्द्र से विवाद करने के लिए सन्नद्ध हुए। विवाद का दिन निश्चित हुआ। नियत समय पर सिद्धराज आकर राजगद्दी पर विराजमान हो गया और उसके आसपास धर्म के मर्म को जानने वाले विद्वानों ने आसन ग्रहण किए। इसके पश्चात् कुमुदचन्द्र पालकी में बैठकर दरबार में आया। उसके ऊपर श्वेतछत्र था, आगे आगे निशान और दिग्विजय का डंका बजता चलता था। उधर देवसूरि और हेमाचार्य भी आ पहुंचे और अपने विपक्षी के सामने ही गद्दी पर बैठ गए। दोनों प्रतिपक्षियों के मत पहले दिन ही लिख लिये गये थे। वह पत्र इस प्रकार सभा में पढ़कर सुनाया गया—

'कुमुदचन्द्र का पक्ष यह है कि केवली त्रिकालदर्शी हैं, और जो कैवल्य अथवा मोक्ष प्राप्त करने के मार्ग पर हैं वह आहार नहीं करता है, जो मनुष्य वस्त्र धारण करते हैं उनका मोक्ष नहीं होता और न स्त्रियों का मोक्ष होता है।

देवसूरि का कहना है कि केवली आहार कर सकता है और वस्त्र पहनने वाले मनुष्यों एवं स्त्रियों का मोक्ष हो सकता है।

---

(१) देवसूरि का जन्म संवत् ११३४ ( सन् १ ७८ ) में हुआ संवत् ११५२ ( सन् १ ९६ ) में दीक्षा ग्रहण की, संवत् ११७४ ( सन् १११८ ) में सूरि पदवी प्राप्त की और संवत् १२२६ ( सन् ११७ ) में श्रावण वदि में गुरुवार को उन्होंने निर्वाण लाभ किया।

कुमुदचन्द्र की आधी हार तो पहले ही दिन हो गई। उसके मत-प्रतिपादन के प्रकार से उसके बुद्धिमान् विपक्षियों ने लाभ उठाया और राजमाता से जो सहायता उसको प्राप्त होती उससे वंचित कर दिया। पहले तो मयणल्ल देवी ने, इस विचार से कि उसके पीहर के विद्वान् की विजय हो, अपने आसपास वालों को कुमुदचन्द्र की सहायता करने के लिए आदेश दिया। परन्तु जब हेमाचार्य को यह बात ज्ञात हुई तो वह राजमाता से मिलने गया और उसको समझाया कि दिगम्बरों का अभिप्राय तो यह है कि स्त्रियाँ तो किसी प्रकार का धार्मिक कर्म कर ही नहीं सकतीं। इसी का खण्डन करने के लिए श्वेताम्बर खडे हुए हैं। जब राजमाता की समझ में यह बात आ गई तो उसने मानव-चरित्र (आचरण) से अनभिज्ञ दिगम्बरों की सहायता करना बंद कर दिया।

दोनों पक्षों ने राजा और चालुक्य वंश की स्तुति करके विवाद आरम्भ किया और अपने अपने पक्ष का समर्थन करने लगे। कुमुदचन्द्र का भाषण संक्षिप्त और कबूतर की सी लड़खड़ाती हुई भाषा में हुआ, परन्तु, देवसूरि के भाषण की छटा संसार का प्रलय कर देने वाले एवं समुद्र की लहरों को आन्दोलित कर देने वाले वायु के प्रवाह के समान थी। अन्त मे, कर्णाट देश के साधु को मान लेना पडा कि वह देवसूरि आचार्य से पराजित हो गया। पराजित होने के कारण उसका वहाँ रहना अपशकुन समझा गया और वह तुरन्त ही नगर के अशुभ द्वार से बाहर निकाल दिया गया।(१) उधर श्वेताम्बर पक्ष के समर्थकों

---

(१) दरवाजों के विषय में शुभ और अशुभ होने की भावना दूसरे देशों में भी मिलती है। जैरिमीटेलर ने लिखा है कि, "नगर के अशुभ द्वार

का सिद्धराज ने बहुत सम्मान किया और हाथ पकड़कर स्वयं उनको महावीर स्वामी का दर्शन कराने के लिए ले गया। उस समय चँवर, छत्र सूर्यमुखी पंखे आदि राज चिन्ह उनकी सवारी के साथ थे और उनकी विजय का शङ्खनाद रणविजय के शंखनाद के समान गूँज रहा था। उसी समय राजा ने सूरि को परांतीज और देहग्राम के बीच के बाला ग्राम एवं ग्यारह दूसरे गाँव भेन्ट किये। सूरि ने उन गाँवों को लेने में बहुत आनाकानी की परन्तु अन्त में उन्हें स्वीकार करना पड़ा।

उस समय यद्यपि जैन लोगों में बहुत से अन्तरङ्ग झगड़े चल रहे थे परन्तु अन्य धर्मों के प्रति अपने उदार भाव प्रकट करने की रीति उन्होंने अपना रक्खी थी। कहते हैं कि, सिद्धराज ने भिन्न भिन्न देशों में से भिन्न भिन्न मतों के आचार्यों को बुलाकर पूछा कि सब से उत्तम देवता कौन है? सब से उत्तम शास्त्र अथवा ज्ञान का भण्डार कौन सा है? और सब से उत्तम मत कौन सा है जो आसानी से पाला जा सके? प्रत्येक धर्माचार्य ने अपने मत की प्रशंसा और अन्य मतों की निन्दा की। इस से राजा के मन को सन्तोष न हुआ और उसके चित्त की दशा अनिश्चय एवं संदेह में दोलायमान रही। अन्त में उसे सन्तोषप्रद उत्तर हेमाचार्य से मिला। इस साधु ने राजा से एक कहानी कही "एक मनुष्य को वश में करने के लिये उसकी स्त्री ने उसे एक प्रकार का रस पिलाया जिससे वह बैल बन गया। परन्तु, संयोग

---

से वही लोग निकाले जाते हैं जो कुकर्मी होते हैं और जिनको फाँसी आदि का दण्ड दिया जाता है। ऐसे दरवाजों को जिनसे पवित्र और निर्मल चरित्र वाले मनुष्य बाहर नहीं जाते प्लूटार्क ने जिज्ञासु और छद्मस्वार्थ जानने वाले लोगों के कर्णरन्ध्रों के सदृश बताया है।

से चरता चरता वह एक ऐसी जड़ी चर गया जिसमें दुर्गा के प्रभाव से मनुष्यत्व प्रदान करने की शक्ति आ गई थी, इससे वह फिर मनुष्य हो गया।' हेमाचार्य ने कहा कि जिस प्रकार उस जड़ी के लाभ को न जानते हुए भी वह बैल उसको चर गया और उसको अभीष्ट लाभ हुआ इसी प्रकार इस कलियुग मे धर्म की महिमा को न जानते हुए भी यदि स्वधर्माचरण करे तो मनुष्य को मोक्ष मिल सकता है। यह बात सर्वथा सत्य है।"

किसी भी धर्म की निन्दा न करना एवं उसमे बाधा न देना, इसी नीति से, जिसको वह राजनैतिक कारणों से भी मानता था, प्रेरित होकर सिद्धराज ने इस उत्तर पर बहुत प्रसन्नता प्रकट की।

इस विषय में सन्देह नहीं है कि अणहिलवाड़ा की स्थापना से लेकर उसके नाश तक के समय मे शैव मत एव जैन मत दोनों ही साथ साथ प्रचलित रहे। कभी एक मत जोर पकड़ता था तो कभी दूसरा। सिद्धराज की सोमेश्वर यात्रा व उसके बनवाए हुए श्रीस्थल के मन्दिरों के जीर्णोद्धार का आधार लेकर कितने ही लोग कहते हैं कि वह प्राचीन शैव मत का अनुयायी था परन्तु उसके विषय में जो और और बातें प्रचलित हैं उनसे सिद्ध होता है कि वह धर्मान्ध नहीं था। परन्तु, इसके विपरीत प्रबन्धचिन्तामणिकार एक और ही कहानी लिखता है जिसको यहा लिखने की आवश्यकता नहीं है और इसी के आधार पर सिद्ध करता है कि, 'उसी दिन से सिद्धराज पूर्वजन्म के पाप पुण्य मे विश्वास करने लगा।' यह हिन्दू धर्म का एक बहुत प्राचीन और मुख्य सिद्धान्त है, परन्तु उपर्युक्त बात से पता चलता है कि कुछ समय के लिये सिद्धराज इससे विरोधी विचार रखने लगा होगा।

मूलराज सोलंकी ने सिंहपुर अथवा सीहोर नगर औदीच्य ब्राह्मणों को दान में दे दिया था यह बात पहले लिखी जा चुकी है। सिद्धराज ने इसी दान का नया लेख करके दिया और वालाक तथा भाल देश में ब्राह्मणों को एक सौ(१) गांव और दिए। थोड़े ही समय बाद सीहोर तथा उसके आसपास के प्रदेशों को भयंकर जंगली जानवरों की बहुतायत के कारण भयानक समझकर ब्राह्मणों ने उस देश को छोड़ दिया और गुजरात में आकर बसने के लिए सिद्धराज से आज्ञा मांगी। सिद्धराज ने उनको सहर्ष आज्ञा देदी और साबरमती के किनारे आशावली(२) नामक गांव भी उनको प्रदान कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने वह जकात (कर) भी माफ कर दी जो सीहोर से बाहर जाने वाले अनाज पर ली जाती थी।

जैन ग्रन्थकारों ने लिखा है कि एक बार सिद्धराज के दरबार में यवनों के कार्यकर्त्ता आए थे। उनके सामने दरबार में एक चमत्कारी अभिनय(३) हुआ जिसमें यह दिखाया गया कि लंका के राजा

(१) मेरुतुंग ने गाँवों की संख्या १ १ लिखी है।

(२) आसाम्बली।

(३) द्व्याश्रय में लिखा है कि सिद्धराज ने केदार का मार्ग बँधवाया, सिद्धपुर में रुद्रमहालय अथवा रुद्रमाल की स्थापना की और जैन चैत्य भी बनवाया। उसने सोमेश्वर की पैदल यात्रा की वहाँ पर जब ध्यान लगाकर बैठा तो स्वयं शिवजी ने उसे दर्शन दिए और सुवर्ण-सिद्धि तथा सिद्ध-पद प्रदान किए। उसने उसी समय पुत्र के लिए भी याचना की परन्तु शिवजी ने कहा कि, 'तेरा भतीजा कुमारपाल तेरा उत्तराधिकारी होगा।' इसके बाद वह गिरनार गया। हेमचन्द्राचार्य के कथनानुसार गिरनार के मार्ग में कल्पवासी विभीषण के साथ उसकी भेंट हुई और वह भी उसके साथ गिरनार गया था।

विभीषण के प्रतिनिधि, सोलंकी वंश के शृंगार, सिद्धराज से इस प्रकार प्रार्थना कर रहे हैं 'आप राम के अवतार हैं और हमारे स्वामी हैं।' इस अभिनय से यवन प्रतिनिधि डर गये और अन्त मे, उन लोगों को उचित शिरोपाव आदि देकर राजा ने विदा किया।

---

प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है सिद्धराज ने म्लेच्छ लोगो पर अपना प्रभाव जमाने के लिए वेषधारियों (नटों) को बुलाकर अपना रहस्य समझाया और राजसभा में नाटक खेलने की आज्ञा दी। इसके बाद इन्द्रसभा का सा ठाठ सजाकर वह नाटक देखने के लिए बैठा। नाटक शुरू हुआ, शुरू में बहुत से अन्य खेल दिखाने के बाद स्वर्ण की सी कान्ति धारण करने वाले दो राक्षसों ने मस्तक पर स्वर्ण की ईंटें लिए हुए प्रवेश किया और उन दोनों ईंटों को सिद्धराज के चरणों में भेंट करके दण्डवत की। फिर, हाथ जोड़कर बोले 'हम लंका के स्वामी विभीषण के पास से आए हैं, उन्होंने देवपूजा के अनन्तर जब अपने इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान किया तो (उन्हें) ऐसा भान हुआ कि उनके इष्टदेव ने चालुक्यवंश में सिद्धराज के रूप में अवतार धारण किया है। इसलिए, हमें आपके पास भेज कर यह प्रार्थना की है कि, 'यदि आज्ञा हो तो मैं सेवा में उपस्थित हो जाऊँ, अथवा यदि प्रभु की कृपा हो तो कभी यहीं पधार कर मुझे दर्शन दें।' इस पर कुछ विचार करके सिद्धराज ने कहा, 'उनसे कहना कि, जब हमारी इच्छा होगी तब वहीं आकर हम उनको दर्शन देंगे।' ऐसा कहकर उपहार के रूप में उसने आपने गले का इकहरा हार उतार कर उनको दे दिया। हार लेकर विदा होते हुए उन राक्षसों ने कहा, 'यदि किसी समय हमारी आवश्यकता पडे तो याद करते ही हम लोग सेवा में उपस्थित हो जावेंगे।' यह कहकर राक्षस तो चले गए और म्लेच्छों के दूत बहुत प्रभावित हुए। वे भी सिद्धराज द्वारा विदाई में दी हुई पोशाकें लेकर अपने स्वामियों के पास लौटने को रवाना हो गए।

द्व्याश्रय में लिखा है कि, "सिद्धराज ने गिरनार, रैवताचल अथवा ऊर्ज्जयन्त की यात्रा लंकाधीश विभीषण के साथ पैदल की थी। वहाँ पर

जैसलमेर के इतिहास में लिखा है कि यहाँ के राजा लांजा विजयराय को जब वह राजा नहीं हुआ था तब ही सिद्धराज सोलंकी ने अपनी लड़की ब्याह दी थी।(१) विदा के समय उसकी सास ने तिलक करके कहा पुत्र जिस राजा की सत्ता आजकल बलवती होती जा रही है उसके राज्य और हमारे राज्य की उत्तरी सीमा के बीच में तुम प्रतिहार होना।

इन सब घटनाओं के सन् संवत् के विषय में केवल इतना ही लेख मिलता है कि लांजा विजयराय का पिता दुसाज संवत् ११०० अथवा सन् १०४४ ई० में गद्दी पर बैठा था। यह समय सिद्धराज के राज्याभिषेक

---

उसने नेमिनाथ की पूजा करके विभीषण को तो विदा कर दिया और स्वयं पद यात्रा करता हुआ शत्रुञ्जय पर्वत पर गया वहाँ ऋषभदेव की पूजा करके नीचे आया। नीचे आकर उसने ब्राह्मणों को दान दिया सिंहपुर अथवा सीहोर की स्थापना करके उन्हें दे दिया तथा उसके साथ ही उनके गुजारे के लिए दूसरे गाँव भी प्रदान किए। इसके बाद अणहिलपुर आकर उसने सहस्रलिंग तालाब बनवाया जिसके किनारे पर एक सौ आठ शिवालय शक्ति के मन्दिर तथा सत्रशालाएं या मठ आदि बनवाए और दश अवतारों की प्रतिमाएं बनवाकर 'दशावतारी' की स्थापना की।

(१) कीर्तिकौमुदी में लिखा है कि शाकम्भरी के राजा अर्णोराज के साथ हुई लड़ाई के बाद में सिद्धराज ने अपनी लड़की का विवाह उस के साथ कर दिया था परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह भूल है क्योंकि अर्णोराज के साथ तो कुमारपाल की बहन देवल देवी ब्याही गई थी। यह वृत्तान्त चतुर्विंशति प्रबन्ध में विस्तार सहित लिखा है। सिद्धराज के कोई कुँवरी हुई होगी तो उसका लांजा विजयराज के साथ विवाह होना अधिक संभव है (देखिए गुजराती चतुर्विंशति प्रबन्ध पृ ६८)

से ५० वर्ष पहले का था। विजयराय(१) का जन्म उसके पिता की वृद्धावस्था मे हुआ बताते हैं इसलिए सिद्धराज की कन्या और विजयराय का समकालीन होना हम मान्य करते हैं।

यद्यपि सिद्धराज के राज्यकाल मे मुसलमानों ने गुजरात पर कोई आक्रमण नहीं किया परन्तु उनकी शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि उनके राजदूत उसके दरबार मे आते थे। अणहिलवाडा की रानी ने उनके विरूद्ध उत्तर की ओर जैसलमेर की भाटी रियासत कायम करने की जो उत्सुकता प्रकट की उसका कारण भी और क्या हो सकता है? फरिश्ता ने लिखा है कि सुल्तान मसाऊद तृतीय ( १०६८ ई० से १११८ ई० तक) के समय मे हाजिब तोघान तुगीन नामक उसका एक सरदार, जो लाहोर का अध्यक्ष ( गवर्नर ) था, एक सेना लेकर गगा के पार चला आया और इतना बढा चला गया कि उस समय तक महमूद के अतिरिक्त कोई मुसलमान आक्रमणकारी इतना न बढ सका था। धन-सम्पन्न नगरों और मन्दिरों मे से सम्पत्ति लूटकर वह

---

(१) नीचे की टिप्पणी से विदित होता है कि दुसाज सवत् ११५५ ( ई० स० १०६६ ) में गद्दी पर बैठा और सिद्धराज १०६४ ई० में। इसलिए ये दोनों समकालीन प्रमाणित होते हैं परन्तु मि० फार्ब्स् ने जो सम्वत् ११०० ऊपर दिया हैं उसके अनुसार ५५ वर्ष का अन्तर पड़ता है।

श्री आदिनारायण से ५४ वाँ पुरुष श्रीकृष्णचन्द्र हुए और १३५ वाँ देवेन्द्र हुआ जिसका तीसरा पुत्र नरपत कच्छ के जाडेजों का पूर्वज था और चौथा पुत्र भूपत जैसलमेर के आधुनिक राजवश का मूल पुरुष। इन्हीं में से भाटी नामक एक कुँवर ने लाहोर में राज्य स्थापित किया और महापराक्रमी होने के कारण उसके वशज भाटी राजपूत कहलाए। कुछ पीढियों बाद राव तणु जी हुआ जिसने सवत् ८८७ वि० में तणोट का कोट बँधवाया और वहीं पर

विजयोल्लास में लाहौर लौटा। उस समय तक गजनी के राजवंश के हाथ से ईरान और तूरान का बहुत सा भाग निकल चुका था इसलिए यह नगर (लाहोर) ही एक प्रकार से राजधानी बन गया था क्योंकि ये लोग अब इधर ही आकर बस गये थे। सन् १११८ ई० में लाहौर मोहम्मद् बिलीम के अधिकार में था। सुलतान अरसलान ने इस नगर को जीत कर अपने कब्जे में लिया था और बिलीम को यहां का अधिकारी नियुक्त किया था। इस सुलतान की मृत्यु के बाद उसके भाई बैरम का सामना करके इसने नगर पर कब्जा कर लिया परन्तु अन्त में बैरम ने उसको दबा दिया और फिर उसी (बिलीम) को उसके पद पर नियुक्त करके वह गजनी लौट गया। मोहम्मद बिलीम ने शिवालिक प्रान्त में नागौर के किले को खूब दृढ़ कर लिया और सेना इकट्ठी करके वहीं से हिन्दुस्थान के दूसरे राजाओं को तंग करने लगा। अपनी इस सफलता से उत्साहित होकर उसने राजगद्दी पर भी हाथ मारना चाहा परन्तु, मुलतान के स्थान पर सुल्तान बरमन उसको हराकर विद्रोह को दबा दिया।

मालवा को बल-पूर्वक अपने अधिकार में लेकर सिद्धराज ने वहां की बहुत सी यात्राएं की। इस विषय में मेरुतुंग ने कितनी ही कथाएं

। नगर जी के वश में ही महारावल भी सिद्ध देवराज
। गढ़ जीत और इसलिए 'नवगढ़ नरेश' कहलाया।
।जबर्गा का भाग नगर के राजा ने कैद करके उसरा
प देवगढ़जी ने सेना लेकर भाग नगर पर चढ़ाई
।। यहां से लौटते समय मार्ग में लोद्रवा के राजा
तदनन्तर, इन्होंने सम्वत् ९ ९ की माघ सुदि ५

लिखी हैं। एक वार जब सिद्धराज मालवे गया तो उसके साथ एक विशाल रथ था। यह रथ इतना बड़ा था कि मालवा के पहाडी मार्ग मे वह नहीं जा सकता था, इसलिए वीच मे वाराही नामक गांव मे उस रथ को छोड दिया। सिद्धराज के आगे चले जाने पर गांव के पट्टलिक (पटेल) ने गाव के एक एक आदमी को बुलाकर उस राजरथ की जिम्मेदारी लेने को कहा परन्तु किसी ने भी अकेले में सम्हाल करना स्वीकार नहीं किया। इस पर पटेल ने उस रथ को तोड़ कर

---

सोमवार के दिन पुष्य नक्षत्र में अपने नाम पर देवगढ अथवा देवरावल की स्थापना की। इसके बाद सवत् १०३० में मनजी, १११३ में बाछुजी और ११५५ में महारावल श्री दुसाज हुए। दुसाज के जेसल नामक एक कुँवर हुआ। अपनी वृद्धवस्था में मेवाड़ के राणा के कुटुम्ब में उन्होंने फिर विवाह किया। उस स्त्री से इनके लाँजा विजयराव नामक पुत्र हुआ। दुसाज की मृत्यु हो जाने पर राज्य के भाई बन्धुओं व कर्मचारियों ने मिलकर लाँजा को बाल्यावस्था में ही लोद्रवे की गद्दी पर (सवत् ११७६ में) बिठा दिया और बड़ा लडका जेसल गद्दी न मिलने के कारण रुष्ट होकर सिन्ध में नगर ठट्टे के बादशाह शाहबुद्दीन गोरी की शरण में चला गया। लाँजा विजयराव से सिद्धराज की पुत्री के भोजदेव नामक पुत्र हुआ जिसकी रक्षा के लिए ५०० सोलकियों का पहरा रहता था।

पहले तो लोद्रवे की गद्दी लेने के लिए जेसल की हिम्मत न पड़ी परन्तु, बाद में ठठा के लश्कर को पाटण पर चढा कर वहाँ से ५०० सोलकियों को हटाने की तरकीब सोची। मुसलमानों की मदद से उसने लोद्रवे को घेर लिया और लड़ाई में भोजदेव काम आया। इसके बाद उसने प्रजा को लोद्रवे से अपना सामान हटा ले जाने के लिए दो दिन की मोहलत दी, फिर तीसरे दिन करीमखां के लश्कर को लोद्रवा लूट लेने की छूट मिली।

सोरठा —गोरी शाहबुद्दीन, भिडिया रावल भोज दे
नाम उमर रख लीन, बारहसै नव रुद्रपुर (१२०६)

उसके भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न मनुष्यों के सुपुर्द कर दिये। जब राजा वापस आया और रथ के लिए पूछा तो उसे सब हाल मालूम हुआ। रथ का नाश होने से दुःख तो बहुत हुआ परन्तु उसने गांव के पट्टकिलों को बूच(१) अथवा अज्ञानी का उपनाम देकर ही सन्तोष किया। यह उपनाम बहुत समय तक वाराही के पट्टकिलों के नाम के साथ चलता रहा।

दूसरी बार मालवा से लौटते समय सिद्धराज ने अणहिलवाड़ा पट्टण के पास ऊँझा नामक गांव में पड़ाव डाला। मेरुतुंग ने लिखा है कि इस गांव के मुखिया का और सिद्धराज के मामा का आवटंक एक ही था। विवाह से पूर्व मयणल्ल देवी ऊँझा के मुखिया हिमालु के संरक्षण में उसी के घर रही थी। यही किम्वदन्ती मेरुतुंग की उपर्युक्त बात का आधार जान पड़ती है। जिस प्रकार सिद्धराज के समय में यह गांव गुजरात के उन्नतिशील गांवों में गिना जाता था उसी प्रकार अब भी गिना जाता है। आज कल यह कुड़वा कुनबी

---

इसी स्थान (लोद्रवा) से पूर्व दिशा में चार कोस के फासले पर गोरहर नामक स्थान पर संवत् १२१२ के माघवदि सुदि १२ रविवार को जैसलमेर का तोरण बँधवाया। ( देखिए जैसलमेर का इतिहास )

(१) राजस्थानी में बूच मूर्ख या मोटे मनुष्य को कहते हैं। जिसका कान कटा हुआ होता है उसे भी 'बूचा' कहते हैं। उन पट्टकिलों ने भाणकी या रथ को भग्न कर दिया था इसलिए उनको 'बूच' या 'भूच' की उपाधि दी गई थी।

ऐसा जान पड़ता है कि यह शब्द 'अबोध' अथवा 'अबुद्ध' से बिगड़ कर 'बूध' या 'बुध्ध' रह गया है। 'वष्टि भागुरिरल्लोपः' के अनुसार 'अ' का लोप हो गया है।

जाति के किसानों का मुख्य स्थान है। रात्रि के समय सिद्धराज, महाराष्ट्र से आए हुए सोमनाथ के यात्री का वेष बनाकर, गांव वालों की हथाई (१) पर पहुँचा और उनकी बातचीत मे सम्मिलित हुआ। वहा उसने अपने विषय मे सभी सद्गुणों, विद्याप्रेम, सेवकों के साथ दयामय वर्ताव, और नीतिकुशलतापूर्ण राज्य-सचालन की प्रशंसा सुनी। ऊँझा के किसानों ने अपने राजा मे एक ही कमी पाई और वह यह थी कि "हमारे राजा के कोई पुत्र उसके बाद गद्दी पर बैठने वाला नहीं है, यही हमारा दुर्भाग्य है।" दूसरे दिन प्रातःकाल गांव के मुख्य लोग राजा से भेंट करने के लिए उसके डेरे पर गए। राजा के बाहर आने मे अभी देरी थी इसलिए पटेल लोग दरबार के कर्मचारियों के मना करते रहने पर भी राजगद्दी का बिना विचार किए नरम नरम गद्दों (२) पर आराम के साथ इस तरह बैठ गए मानों अपने घर पर ही बैठे हों। उच्चकुल के राजपूत मे जो साधारण सादगी होती है अथवा जिस सादगी को दिखाने का वह प्रयत्न करता है, सिद्धराज मे उससे भी अधिक स्वाभाविक सादगी थी। इसके अतिरिक्त रात की बातचीत सुन चुकने के बाद तो और भी अधिक शिष्टाचार दिखाना इस अवसर पर उसके लिये उपयुक्त था, इसलिए उसने उन ग्रामीणों को उसी जगह बैठे रहने दिया जहां वे बैठ गए थे। इस राजोचित मर्य्यादा के भग से दरबारियों को बहुत विस्मय हुआ।

---

(१) गाँव वालों के इकठ्ठे होने का स्थान।

(२) प्रबन्धचिन्तामणि मूल में 'पल्यङ्क' शब्द लिखा है जिसका अर्थ पलग होता है।

एक बार मालवा से लौटते समय मार्ग में सिद्धराज को भीलों ने रोक लिया जिनका सामना कोई नहीं कर सकता था। उसी समय उसका मन्त्री मातृ गुजरात से सेना लेकर उसकी अगवानी करने आ पहुँचा इसलिए उसी ने उस समय अपने राजा के लिए मार्ग को निर्विघ्न कर दिया।

गुजरात के इस महाराजा के विषय में अधिक लिखने के लिए हमारे पास अब कोई साधन नहीं है इसलिए इसके प्रति लिखे हुए कुछ लेखकों के स्वस्तिवाचन मात्र यहाँ उद्धृत करते हैं—

गाथा—सो जयउ कुम्भकारओ(१) तिहुयण मज्झम्मि जेसल नरिन्दो (२)
छित्तूण रायवंसं इक्कं छत्तं कयं जेण ॥ १ ॥

'जिसने समस्त राजवंश को नष्ट करके संसार को एक छत्र के नीचे ला दिया, ( ऐसे ) तीनों भुवनों के शूरवीरों में मुख्य जयसिंह नरेन्द्र की जय हो ॥१॥

महालयो महायात्रा महास्थानं महासरः
यत् कृतं सिद्धराजेन क्रियते तन्न केनचित् (१) ॥ २ ॥

बड़े बड़े प्रासाद संस्थान जलाशय आदि जैसे सिद्धराज ने बनवाए वैसे किसी ने नहीं बनवाये और जैसी यात्राएं उसने की वैसी इस पृथ्वी पर कौन करेगा ?

---

( ) बांसों की टोकरी आदि बनाने वाले। इस पद्य में श्लेषालङ्कार है। जयसिंह और मरुड का एक ही प्रकार का काम बताया गया है।

(२) स जयतु कुम्भकारः त्रिभुवनमध्ये जयसिंहनरेन्द्रः
छित्वा राजवंशं एकच्छत्रं कृतं येन।

(१) 'धरित्र्या तत्करोतु कः' ऐसा भी पाठ है।

मात्रयाप्यधिक किञ्चिन्न सहन्ते जिगीषव
इतीव त्व धरानाथ ! धारानाथमपाकृथा· ॥२॥(१)

"विजय की इच्छा रखने वाले लोग दूसरे के पास एक मात्रा तक की अधिकता को भी नहीं सह सकते, इसीलिए हे धरानाथ ! आपने धारानाथ को नष्ट कर दिया।"

मान मुञ्च सरस्वति ! त्रिपथगे ! सौभाग्यभङ्गीं त्यज,
रे कालिंदि ! तवाफला कुटिलता रेवे ! रयस्त्यज्यताम्।
श्रीसिद्धेशकृपाणपाटितरिपुस्कधोच्छलच्छोणित-
स्रोतोजातनदी-नवीनवनितारक्ताम्बुधिर्वर्तते ॥ ४ ॥

"हे सरस्वती ! अपने मान को छोड़ दे, हे गगे ! अपने सौभाग्य के गर्व को त्याग, यमुने ! तुम्हारी कुटिलता ( टेढ़ापन ) निष्फल हो गई, रेवा ! अपनी गति की शीघ्रता को छोड़ दे—क्योंकि तुम्हारा प्रियतम समुद्र तो अब श्रीसिद्धराज नरेश की तलवार से से जिन शत्रुओं के स्कध कटे हैं उनमे से निकले हुये खून की नदी रूपी नव-वनिता मे रक्त ( आसक्त ) है।"

सिद्धराज के शरीर की बनावट के विषय मे कृष्णाजी ने निम्नलिखित वृत्तान्त लिखा है—

"उसका रग गोरा, शरीर दुबला परन्तु सुगठित था, उसके बाजू पोंहचों तक काले थे।"

---

(१) यह सिद्ध है कि यह प्रशस्ति का पद्य है।

उसके आचरण के विषय में मेरुतुंग ने लिखा है कि "वह सभी सद्गुणों का भण्डार था, जिस प्रकार युद्ध में शूरवीर था उसी प्रकार दयावान् भी था वह अपने सेवकों के लिए कल्पतरु था—

'उसका उदार हाथ सभी के लिए खुला हुआ था, अपने मित्रों के लिए मेघ के समान था और शत्रुओं के लिए वह रणक्षेत्र में सिंह के सदृश था।

सभी ग्रन्थकर्त्ताओं ने उसकी कामुकता के विषय में उस पर दोष भी लगाया है और पवित्र ब्राह्मण आदि की स्त्रियों के साथ विषयासक्ति के लिए भला बुरा भी लिखा है। धार्मिक विषयों में उसकी पक्षपात-रहितता के लिए पहले लिखा जा चुका है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह खुशमिजाज था और अपने घरेलू जीवन में भी आलस्य नहीं करता था। ये बातें उसके वेश बदल कर रात्रि के समय घूमने नाटक खेल तमाशों आदि में सम्मिलित होने की कथाओं से प्रतीत होती हैं। उसमें एक विशेष बात यह थी कि वह कीर्ति का कामी बहुत था। यह बात उसके युद्ध में प्रशंसनीय पराक्रम दिखाकर यश प्राप्त करने के सतत प्रयत्नों में ही सिद्ध नहीं होती वरन् कवियों पर कृपा रखने एवं अपने कुल को चिरस्मरणीय बनाने की प्रबल उत्कण्ठा से भी विदित होती है। द्व्याश्रय ने लिखा है कि 'उसको पुत्र प्राप्ति की बड़ी अभिलाषा थी और महाकवि बनने की भी प्रबल उत्कण्ठा थी परन्तु उसकी ये दोनों ही इच्छाएं कभी पूर्ण नहीं हुई। फिर भी उसने अपने वंश का एक इतिहास लिखवाया। उसका नाम आगे में न रह जाय इसी इच्छा से प्रेरित होकर उसने गुजरात और सोरठ पर उदारता का हाथ रक्खा और ऐसे भव्य देवालय तथा सरोवर

बँधाए(१) कि उनके खडहरों को देख कर आज भी साधारण बुद्धि के मनुष्य चकित हो जाते हैं और इतिहास के विद्यार्थी भी विस्मय मे भर जाते हैं।(२)

सिद्धराज के आचरण में कितने ही दोष क्यों न हों परन्तु निस्सन्देह वह हिन्दू राजाओं में एक उच्चकोटि का राजा हो गया है। वह परम साहसिक, शूरवीर एव वीर्यवान् था इसी लिए इतिहासलेखक उसके विषय मे लिखते हैं कि वह 'गुर्जर देश का शृङ्गार तथा चालुक्यवश का दीपक था'। उसके राज्य के विस्तार का अनुमान मात्र ही लगाया जा सकता है, सीमा का वर्णन ठीक ठीक नहीं किया जा सकता। गुजरात प्रधान एव उसके आस पास का प्रदेश जो उसको वनराज के उत्तराधिकारी पद पर

---

(१) राव साहब महीपतराम रूपराम ने सिद्धराज जयसिंह के प्रसिद्ध कार्यों के विषय में लिखा है कि डभोई का किला और उससे चार चार मील के फ़ासले पर धर्मशालाए, कपडवज का कुड, धोलका का मालव्य सरोवर, रुद्रमहालय व अन्य देवस्थान, रानी की बावडी, सहस्त्रलिंग सरोवर, सीहोर का कुड, सायला का किला, दश हजार मन्दिरों वाला दशासहस्त्र, वीरमगाँव का मुन तालाब, दाधरपुर, बढवाण, अनन्तपुर और चुवारी का गढ, सरधर तालाब, जिंजूवाड़ा, वीरपुर, भदुला, बेसिंगपुर और थान का गढ, कडोला और सेजकपुर के महल, देदाद्र का कीर्तिस्तम्भ, जैतपुर और अनन्तपुर के कुड, ये सब सिद्धराज ने बनवाए थे।

(२) लार्ड बेकन लिखता है कि सन्तानहीन मनुष्यों ने जो अच्छे अच्छे काम किए हैं अथवा शुभ कार्यों की नीव डाली है इसका कारण यह है कि जब वे अपने शरीर की प्रतिमूर्ति प्राप्त करने में असफल होते हैं तो अपने मनोगत भावो को मूर्त रूप देने का प्रयत्न करते हैं।

प्राप्त हुआ था उस पर उसने अपना अधिकार दृढ़ कर लिया था
अचलगढ़ और चन्द्रावती के किले जो उसके अधीनस्थ पँवारों के
हाथ में थे अणहिलवाड़ा की उत्तरी सीमा के किले थे मोढेरा और
झिंझुवाड़ा पश्चिम में थे चांपानेर तथा डभोई के किले पूर्व में थे
इनके अतिरिक्त दूसरे दुर्ग जिन पर सिद्धराज की ध्वजा फहराती
थी तथा जिन में उसके दुर्गपाल रहते थे वे और उनके मध्य की
उपजाऊ भूमि उस विजयी सिंह ( जयसिंह ) की पराक्रमपूर्ण धाव
(हमले) के ही फलस्वरूप प्राप्त हुए थे । मूलराज अथवा भीमदेव प्रथम
के हाथ में जितना राज्य था वह जयसिंह के अधिकार में किसी प्रकार
कम न हुआ था अपितु उसके राज्य की सीमा आबू के उस पार
जालोर तक आगे चली गई थी । कच्छ(१) भी इसी राज्य के अन्तगर्त
था । हम देख ही चुके हैं कि सोरठ और मालवा उसके अधिकार में

---

(१) मूलराज के हाथों लाखा फूलाणी की मृत्यु के बाद कच्छ चालुक्यों
के अधिकार में आ गया । कार्तिक शुक्ला १५ संवत् १०८६ के एक ताम्रप
से प्रमाणित होता है कि भीमदेव के समय तक यह उन्हीं के अधिकार में
था । इस ताम्रपट्ट से यह भी विदित होता है कि भीमदेव ने कच्छ-मण्डल
वाराहीक ग्राम से आए हुए आचार्य मंगलशिव के पुत्र भट्टारक अजयपाल को म
नामक ग्राम दिया था । इस मसूरा ग्राम का अब ठीक ठीक स्थान मालूम
होता । सिद्धराज के समय में भी यह उसके अधीनस्थ प्रदेश था इसका प्रम
भद्रेसर के एक शिलालेख से मिलता है जो सन् १११९ ( संवत् ११
आषाढ़ सुदि १ ) का है । इस लेख से पता चलता है कि उस समय सिद्ध
का प्रधान शासक था और कच्छ भद्रेश्वर का स्थानिक-शासनकर्ता र
आशापाल का पुत्र कुमारपाल था क्योंकि इस शिलालेख की जो ५-६ पंक्ति
पढ़ी जा सकी हैं उनसे यही ज्ञात होता है कि राजा ने यह लेख राजा आशाप
के कुँवर कुमारपाल के बनवाए हुए कुमारपालेश्वर के गढ़ मंदिर में

थे और दक्षिण दिशा मे उसका राज्य सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। मेरुतुंग लिखता है कि वहा उसने कोल्हापुर(१) के राजा को भयभीत कर दिया था। चन्द वरदाई का अनुमान है कि कन्नौज के राजा के साथ उसका युद्ध हुआ था जहा 'उसने अपनी तलवार गङ्गा नदी के जल मे धोई थी।' यह भी लिखा है कि उसकी सार्वभौम विजय

---

ऊदलेश्वर के प्राचीन मन्दिर में औदीच्य ब्राह्मणो को पूजा करने का अधिकार देने के लिए लिखवाया था।

(१) शिलार (शिलाहार) अथवा कोल्हापुर के महामण्डलेश्वर, कल्याण के सोलंकियो के वशपरपरागत जमींदार थे। (देखिए रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल Vol. VI, पृ० ४, ३३ और ट्रान्जैकशन्स् आफ दी बाम्बे लिटररी सोसाइटी, पुस्तक तीसरी पृ० ३६४, नवीन आवृत्ति पृ० ४१३ दक्षिण का प्राचीन इतिहास पृ० १२१–१२५)

उस समय कोल्हापुर में पन्हाला शाखा का राजा भोज (द्वितीय) था जिसके वश का सक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है। "विद्याधर के राजा जीमूतकेतु के पुत्र जीमूतवाहन ने शखचूड नामक नाग के प्राण बचाए थे। उसके वशज शिलार अथवा शिलाहार नाम के महामण्डलेश्वर कहलाए। ये ही लोग तगरपुर के अधीश्वर भी कहलाते थे। 'शिलाहाराख्यवशोऽय तगरेश्वरभूभृताम्'। इन शिलाहारों के तीन वश हुए, जिनमें से तीसरे वश के राजा, कोल्हापुर, मिरजे, और कर्हाड़ पर राज्य करते थे। कुछ समय बाद उन्होंने दक्षिण में कोंकण तक अपना राज्य बढा लिया। इनकी वशावली इस प्रकार है—(१) जतिग, (२) नाइम्म, (३) चन्द्रादित्य (चन्द्रराज), (४) जतिग (दूसरा), (५) गौचारक, (गूवल प्रथम, कीर्तिराज और चद्रादित्य ये तीन भाई थे), (६) मारसिंह, इसके पुत्र गूवल दूसरा, भोज पहला, वेल्लाल और (७) गडरादित्य, इसका पुत्र (८) विजयार्क और (६) भोज दूसरा था। इसके लेख शक सवत् ११०१ से ११२७ तक मिलते हैं। जादव सीधण ने लगभग शक सवत् ११३६ (ई० स० १२१४) में शिलाहार वश के राजाओं का राज्य छीन लिया।

की धारणा को रोकने के लिए मेवाड़ और अजमेर के राजाओं ने आपस में मित्रता करली थी। प्रसिद्ध चित्तौड़ में एक लेख प्राप्त हुआ है जिसमें लिखा है कि 'उसका खड्ग जयकोश में बैठा हुआ था और उसके कृत्य पृथ्वी पर गाजते रहते थे। इस देश के इतिहासकार भी साक्षी देते हैं कि उसके नाम एवं पराक्रम का वर्णन राजपूताने के प्रत्येक राज्य के इतिहास में प्राप्त होता है।

सिद्धराज(१) ने १०९४ ई० से ११४३ ई० तक ४९ वर्ष

---

(१) सिद्धराज वि० सं० ११९९ (११४३ ई०) की कार्तिक शुक्ला ३ को स्वर्गस्थ हुआ। कहते हैं कि जब मयणल्लदेवी सगर्भा थी तब उसे स्वप्न आया कि उसके मुंह में एक सिंह घुस गया था इसीलिए सिद्धराज का नाम जयसिंह रखा गया। ऐसी भी कल्पना है कि इस स्वप्न की स्मृति को बनाए रखने के लिए ही उसने बाद में सिंह संवत् चलाया होगा।

जो महापराक्रमी राजा होते हैं प्रायः उनके नाम से संवत्सर चलाए जाते हैं। संवत् ११७० (१११४ ई०) से सिद्धराज जयसिंह के नाम से सिंह संवत् मिती आषाढ़ शुक्ला से प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है। सौराष्ट्र के रा' खेंगार को जीतकर उसने वहां पर सज्जन (साजन) को दण्डनायक बनाया। इसके बाद ही इस प्रान्त में सिंह संवत्सर का प्रचार हुआ था। सौराष्ट्र की तीन वर्ष की आमदनी खर्च करके साजन ने जो देवालय बँधवाया था वह संवत् ११७६ का है और उस स्थान पर सिंह संवत्सर नहीं लिखा हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि सब व्यवस्था ठीक हो जाने के पश्चात् लगभग छः वर्ष बाद उसने इस संवत् को प्रचलित किया होगा। सिद्धराज के बाद कुमारपाल हुआ उसके समय में भी यह संवत् चलता रहा। कुमारपाल ने भी अपना नया संवत् चलाया ऐसा अभयतिलक सूरि ने संवत् १३१२ में अपने द्व्याश्रय ग्रंथ की वृत्ति करके उसके २० वें सर्ग में लिखा है। मंगलपुर (आधुनिक मांगरोल) में जो सोढल नाम की बावड़ी है उसमें एक लेख है, जिसमें सिंह संवत् ३२ और

राज्य किया।

---

विक्रम सवत् १२०२ लिखा है। यह लेख बहुत प्राचीन है, उसको देखकर और उस स्थान पर बावड़ी होने का अनुमान करके ही १३७५ वि० में राव श्रीमहिपाल देव के राज्य में, मोढ जाति के ब्राह्मणों ने ( बादशाह सलीमशाह के समय में ) यह मोढल बावडी बनवाई होगी, ऐसा भावनगर के प्राचीन शोध सग्रह से मालूम होता है।

श्रीसिद्धराज के बाद अद्भुत महिमावाला और पुण्य के कारण जिसका उदय निश्चित हो गया था, ऐसा कुमारपाल राजा राज्य करता था। उसी के समय में गुहिल वश में महामहिमाशाली, धरामडन, श्री साहार हुआ जिसका पुत्र चौलुक्यागनिगूहक ( चालुक्यों का अङ्गरक्षक ) सहजिग नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके पुत्र पृथ्वी पर बलवान् और सौराष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ हुए, जिनमें से एक सोमराज था। इसीने प्रभास पट्टण में सोमनाथ के देवालय के चौक में मन्दिर बनवा कर अपने पिता की स्मृति में 'सहजिगेश्वर' की स्थापना की थी। सहजिग का दूसरा पुत्र मूलुक था जिसने सहजिगेश्वर की पचोपचार पूजा के निमित्त मगलपुर अथवा मगरोल के दानपत्र पर प्रति दिवस की कितनी ही लागें (कर) लिखी हैं। यह लेख आश्विन बुदी १३ सोमवार वि० स० १२०२ का लिखा हुआ है और इसके साथ ही सिंह सवत् ३२ लिखा है। जब तक अणहिलवाडा की गद्दी का प्रभाव रहा तब तक इस सिंह सवतसर का प्रचार रहा मालूम होता है। अर्जुनदेव के समय के वेरावल के लेख में विक्रम सवत् १३२०, वल्लभी सवत् ६४५ और सिंह सवत् १५१ लिखा है। चालुक्य महाराजा अर्जुन देव के समय में उसके प्रधान कार्यकर्त्ता राणक मालदेव थे। उन दिनों सोमनाथ पट्टण में पाशुपताचार्य गड श्री परम वीरभद्र तथा महश्री अभयसिंह आदि पचकुल की प्राप्ति के लिए अमीर रुक्नुद्दीन राज्य करता था। वहा पर हरमुज देश के खोजा अबुइब्राहिम के लडके फीरोज ने किसी कार्य की सिद्ध पर एक मसजिद बनवाई थी जिस पर हि० स० ६६२ लिखा है, यह बात भावनगर के प्राचीन शोध-सग्रह से मालूम होती है। इससे बढकर आश्चर्यजनक बात यह है कि चालुक्यवश के भोला भीम आदि के ताम्रपटों

में केवल विक्रम संवत् ही का चिह्न मिलता है। यह देखकर, निश्चय नहीं होता कि सिंह सम्वत्सर सिद्धराज जयसिंह के नाम पर ही प्रचलित हुआ था अथवा किसी दूसरे के नाम पर। सिंह नाम के किसी दूसरे राजा का तलाश करने पर पोरबंदर के एक लेख में वहां के मंडलेश्वर सिंह का नाम मिलता है और कहते हैं कि उसके पराक्रमपूर्ण कार्यों के कारण ही सिंह सम्वत् चला था। परन्तु, सम्वत् ११७० में सिद्धराज ने सौराष्ट्र को अपने आधीन कर लिया था और उसके होते हुए कोई दूसरा अपने नाम पर सिंह संवत्सर चला सका हो, यह संभव प्रतीत नहीं होता है। सिद्धराज ने ही ब्राह्मणों को दान देने के लिए एक ग्राम का नाम सिंहपुर रक्खा था इसलिए यह बात और भी अधिक संगत प्रतीत होती है कि उसीने नए सम्वत् का नाम सिंह सम्वत् रखा होगा।

# प्रकरण ११

## कुमारपाल

सिद्धराज के कोई पुत्र नहीं था इसलिए उसके बाद उसका राज्य भीमदेव के पुत्र क्षेमराज के वश में चला गया। यह क्षेमराज बकुला देवी(१) के पेट से उत्पन्न हुआ था और राजा कर्ण सोलकी का सौतेला भाई था। क्षेमराज के पौत्र और देवप्रसाद के पुत्र त्रिभुवनपाल के

---

(१) एक पुस्तक में 'बाकुला' ऐसा नाम लिखा है, शायद वह बकुला का अपभ्रंश है। मेरुतुंग ने उसका नाम चउला देवी लिखा है, यह शायद ब और च के पढने में हेरफेर होने के कारण हो गया है। चउला देवी नाम की एक वेश्या पट्टण में रहती थी, वह वेश्या होने पर भी बहु गुणवती थी और धर्म की मर्यादा का पालन करती थी। उसकी शीलमर्यादा कुलवधुओं से भी अधिक मानी जाती थी। भीमराज ने जब उसके गुणों की प्रशंसा सुनी तो अपनी रक्षिता बनाने के अभिप्राय से उसने सवा लाख रुपये की एक कटारी अपने नौकरों के हाथ भेजी। बकुला ने उसको घर में रख लिया। इसके दूसरे ही दिन मूलराज को मालवा-विजय करने के लिए जाना पड़ा और वहां दो वर्ष रुकना पडा। उसकी अनुपस्थिति में भी वह उसी प्रकार नियमपूर्वक रही, जैसी उसकी प्रशंसा थी, इसलिए राजा उससे बहुत प्रसन्न हुआ और उसको अंतःपुर में रख लिया। इसी चउला देवी के हरिपाल नामक पुत्र हुआ और हरिपाल के क्षेमराज हुआ।

तीन पुत्र व दो पुत्रियां थीं। पुत्रों के नाम महिपाल कीर्तिपाल और कुमारपाल थे तथा पुत्रियों के नाम प्रेमलदेवी व देवलदेवी थे। प्रेमलदेवी का विवाह जयसिंह के प्रधान सेनापति कान्हदेव के साथ हुआ था और उसकी बहन देवलदेवी काश्मीर के राजा (१) को ब्याही थी।

मेरुतुंग ने लिखा है कि सामुद्रिकशास्त्रवेत्ताओं ने सिद्धराज को पहले ही कह दिया था कि उसके बाद कुमारपाल राजा होगा। सिद्धराज ने इस बात पर विश्वास तो नहीं किया क्योंकि कुमारपाल निम्न कुल में उत्पन्न हुआ था परन्तु फिर भी वह उसको समाप्त कर देने के प्रयत्न में निरन्तर लगा रहता था। कुमारपाल भी उसके डर से भाग गया और साधु का वेष बनाकर कितने ही वर्षों तक देश विदेश में घूमता रहा। फिर अणहिलवाड़ा लौट कर वह श्री आदिनाथ के उपाश्रय में निवास करने लगा। एक बार सिद्धराज ने अपने पिता कर्ण के श्राद्ध के अवसर पर अर्घ्य पूजा आदि करने के लिये सभी तपस्वियों को निमंत्रित किया और एक एक के चरण

---

(१) रत्नमाला के कर्ता कृष्णाजी ने लिखा है —

( हरिगीतिका के दो चरण )

इक पुत्री प्रेमल नाम सो जयसिंह सेनापति वरी।
काश्मीर देशाधिप के कर पुत्री देवल कु वरी॥

यहां इन पंक्तियों के आधार पर ही यह लिखा गया है कि देवलदेवी का विवाह काश्मीर के राजा के साथ हुआ था। परन्तु सच्ची बात यह है कि वह त्रिभुवनपाल की काश्मीर वाली रानी की लड़की थी और भूल से ऐसा लिखा गया है क्योंकि देवलदेवी का विवाह तो शाकम्भरी के आना अथवा अर्णोराज के साथ हुआ था जिसका वृत्तान्त आगे आवेगा।

धोने लगा। ज्योंही उसके हाथ साधु कुमारपाल के कमल के समान चरणों पर पडे त्योंही ऊर्ध्व रेखा एव अन्य राजोचित लक्षणों को देख कर वह जान गया कि इस मनुष्य के भाग्य मे राज्य लिखा है। उसके मुख के भाव से कुमारपाल भी ताड़ गया कि राजा ने उसे पहचान लिया है, इसलिए वह तुरन्त ही वेष बदल कर अपने गाव देथली ( देवस्थली ) को चला गया। राजा कर्ण ने जो गाव उसके दादा देवप्रसाद को दिया था यह वही गांव था। उसके पीछे पीछे बहुत से सिपाही भी उसकी खोज मे वहीं जा पहुचे, परन्तु आलिग ( अथवा साजन ) नामक एक कुम्हार ने उसको अपने बर्तन पकाने की भट्टी मे छुपा लिया। अवसर पाते ही कुमारपाल वहा से भाग निकला परन्तु सिपाही बराबर उसका पीछा करते रहे और एक बार तो उसे पकड़ ही लेते यदि एक किसान(१) जो अपने खेत की रखवाली कर रहा था, उसे खेत की बाड़ बनाने के लिए एकत्रित की हुई काटेदार झाडियों मे न छुपा लेता। उसके पदचिन्हों को देखते हुए राजा के आदमी उस खेत मे भी आ पहुँचे जहा वह छुपा हुआ था और अच्छी तरह देख भाल करने लगे यहा तक कि बाड के ढेर मे भी तलवार गडाकर उन्होंने खोज करली परन्तु कुमारपाल का पता न चला। जब इस प्रकार अपने शिकार को प्राप्त करने में विफल हुए तो वे वापस लौट गये। दूसरे दिन, किसान ने कुमारपाल को बाड में से बाहर निकाला और वह आगे भाग गया। कुछ दूर चल कर जब वह एक पेड के नीचे विश्राम करने बैठा तो उसने देखा कि एक चूहा अपने बिल से बाहर आया और एक एक

---

(१) इस किसान का नाम भीमसिंह था। कुमारपाल ने उसे समय आने पर उसके उपकार का बदला चुकाने का वचन दिया।

करके बीस चांदी की मुद्राएं ला कर वहां रख दीं। इस प्रकार वह अपने पूरे खज़ाने को बाहर ले आया और फिर उसको वापस बिल में रखने लगा।(१) जो कुछ बचा उसको कुमारपाल ने ले लिया और इस दैवप्रदत्त सहायता को प्राप्त कर वह आगे बढ़ा। कुछ दूर चल कर उसने देखा कि एक वैश्य स्त्री(२) अपने दास, दासी एवं घोड़े आदि को साथ लेकर ससुराल से पीहर जा रही थी और रास्ते के किनारे ही एक स्थान पर भोजन विश्राम आदि करने के लिए ठहरी हुई थी। कुमारपाल को तीन दिन से भोजन नहीं मिला था और वह भूखा ही यात्रा कर रहा था इसलिए उसने भी भोजन में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। उसकी यह प्रार्थना बहुत ही सहृदयता के साथ स्वीकार कर ली गई।

दूर दूर के देशों में यात्रा करता हुआ अन्त में वह स्तम्भ तीर्थ अथवा खम्भात पहुँचा(१) और वहां भोजन मांगने के लिए उदयन

---

(१) प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि वह चूहा इक्कीस रजत मुद्राएं निकाल कर लाया। फिर वह उन्हें वापस बिल में ले जाने लगा। तब एक तो ले गया परन्तु शेष पर कुमारपाल ने अधिकार कर लिया। जब चूहा बिल के बाहर आया तो अपनी मुद्राओं को न देखकर दुःख के मारे वहीं पछाड़ खाकर मर गया।

(२) यह उदुम्बर ग्राम की रहने वाली थी। इसका नाम देव श्री (श्री देवी) था। इसने कुमारपाल के साथ भाई का सा व्यवहार किया था। उसने भी इसको बहन मानने का वचन दिया।

(१) मार्ग में कुमारपाल को वोसरी नामक मित्र मिला वह भी उसके साथ हो लिया गाँवों में ...

मेहता (मन्त्री) के घर गया। जब यह मालूम हुआ कि मंत्री तो चैत्यालय में गया है तो कुमारपाल भी वहीं पहुँच गया और उदयन को हेमाचार्य के पास बैठा हुआ देखा। आचार्य ने उसे देखते ही समस्त भू-मण्डल का राजा कह कर सम्बोधित किया। कुमारपाल ने अपनी तात्कालिक गरीबी को देखकर उस भविष्यवाणी को सत्य मानने मे सकोच किया, परन्तु जब हेमाचार्य ने उसे फिर विश्वास दिलाया तो उसने उसी समय प्रतिज्ञा की 'यदि यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई तो मैं जैनमत का अवलम्बन करूगा।'(१) इसके बाद उदयन मन्त्री से धन एव अन्य आवश्यक वस्तुए प्राप्त करके कुमारपाल मालवे गया,(२) वहां

---

प्रकार दोनों मित्र खम्भात ( स्तभ तीर्थ ) पहुँचे। वोसरी शैव ब्राह्मण था। ( प्रभावक चरित्र-प्रभाचन्द्रकृत )

(१) जब कुमारपाल ने हेमचन्द्राचार्य के कथन की सत्यता पर सन्देह प्रकट किया तो आचार्य ने लिखकर प्रतिज्ञा की—

'११९९ वर्षे कार्तिक वदि २ रवौ हस्तनक्षत्रे यदि भवत पट्टाभिषेको न भवति तदात पर निमित्तावलोकसन्यास ।'

यदि कार्तिक कृष्णा २ रविवार को हस्तनक्षत्र में आपका पट्टाभिषेक न हुआ तो इसके आगे से मैं कोई भविष्यवाणी नहीं करूगा।

इसके अनन्तर कुमारपाल ने भी भविष्यवाणी के सत्य सिद्ध होने की दशा में जैनधर्म स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की।

(२) जब कुमारपाल खम्भात ही में था तो सिद्धराज के आदमी उसको पकड़ने आ पहुँचे। वह वापस ही भागकर हेमाचार्य के पास आया और उन्होंने उसको एक तहखाने में छुपा कर ऊपर पेड के लकडे आदि डाल दिये। प्रभावक चरित्र में लिखा है कि ताड़पत्र फैला दिए और कुमारपालचरित्र में लिखा है कि पाडुलिपियाँ उसके ऊपर डाल दी। राजा के आदमियों ने बहुत कुछ

श्रीकुमरेश्वर के प्रासाद में निम्नलिखित लेख पढ़कर वह बहुत विस्मित हुआ—

> पुण्णे वास सहस्से सयम्मिवरिसाण नवनवइ कलिये
> होही कुमार नरिन्दो तुह विक्कमराय सारिच्छो ।

'पवित्र ११९९ वें वर्ष के समाप्त होने पर हे विक्रमराय ! कुमार (पाल) नामक राजा तुम्हारे ही समान होगा ।"

मालवे में ही कुमारपाल को समाचार मिला कि सिद्धराज का स्वर्गवास हो गया तो उसने गुजरात जाने का निश्चय किया परन्तु उसके पास तो पेट पालने का भी पूरा साधन नहीं था इसलिये अणहिलवाड़ा पहुँचने में उसे बहुत सी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं ।

---

तलाश किया परन्तु कुमारपाल न मिला और वे निराश होकर लौट गये । वहाँ से कुमारपाल वटपद्रपुर ( बड़ौदा ) गया । वहाँ भूख लगने पर कुटुक नामक बनिये की दूकान पर, पास पैसा न होने कारण उधार ही भुने हुए चने लेकर खाये । वहाँ से चलकर वह भृगुकच्छ ( भड़ौंच ) पहुँचा वहाँ एक मन्दिर की ध्वजा पर बैठे हुए कलीदेवी पक्षी को देखकर एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की कि थोड़े ही समय में वह राजा हो जावेगा । इसके बाद वह कोल्हापुर गया वहाँ एक योगी ने भविष्यवाणी की कि वह गुजरात की गद्दी प्राप्त करेगा और यह कहकर उसको दो मंत्र भी सिखा दिए । वहाँ से चलकर वह कांचीवरम् और फिर कालम्ब पट्टन ( कोलम अथवा क्विलोन ) पहुँचा । वहाँ के राजा प्रतापसिंह ने उसका अपने बड़े भाई के समान सत्कार किया और उसी सम्मान के साथ उसको नगर में लाया । उसका सम्मान प्रदर्शन करने के लिए राजा ने कुमारपालेश्वर महादेव का एक शिवालय बनवाया तथा उसके नाम का सिक्का भी प्रचलित किया । फिर, राजा से विदा लेकर कुमारपाल चित्रकूट और वहाँ से चित्तौड़ गया, इसके बाद वह उज्जैन चला गया ।

एक हलवाई ने दया करके कुमारपाल को कुछ भोजन दिया, उसीसे पेट भर कर वह अपने वहनोई कान्हड़देवी (कान्हदेव) के घर पहुचा। सिद्धराज ने मृत्यु से पूर्व अपने सभी कर्मचारियों को बुलाया और उनको अपने गले पर हाथ रख कर शपथ खाने को विवश किया कि वे उसके वाद किसी भी दशा मे कुमारपाल को गद्दी पर नहीं विठाए गे। इन कर्मचारियों मे से एक प्रधान कर्मचारी कान्हदेव भी था। यह वात चल ही रही थी कि उसका देहान्त हो गया। कान्हदेव ने भी यह शपथ ग्रहण की थी अथवा नहीं यह तो ठीक २ नहीं कहा जा सकता परन्तु, ज्योंही उसको कुमारपाल के आने का समाचार मिला वह तुरन्त हवेली से वाहर आया और वहुत सम्मान के साथ उसकी अगवानी करके अन्दर ले गया। दूसरे दिन कुछ सशस्त्र सिपाहियों को साथ लेकर वह कुमारपाल को महल मे ले गया। अव, राजगद्दी पर कौन वैठे यह वात तय करने के लिए कान्हदेव ने सिद्धराज महान् की गद्दी पर एक के वाद एक, इस प्रकार दो राजकुमारों को विठाया। सभव है, वे कुमारपाल के भाई महीपाल और कीर्तिपाल हों। परन्तु, पहला तो अपने स्त्रैण वेष के कारण लोगों की नजरों मे नहीं जचा इसलिए रद्द कर दिया गया। दूसरे कुमार को गद्दी पर वैठते ही पूछा गया कि जयसिंह ने जो अठारह परगने (१) छोडे हैं उन पर किस प्रकार

---

(१) कर्णाटे१ गुर्जरे२ लाटे३ सौराष्ट्रे४ कच्छ५ सैन्धवे६ ।
*उच्चाया७ चैव भम्भेर्यां८ मारवे९ मालवे१० तथा ॥१॥
कौङ्कणे च११ महाराष्ट्रे१२ कीरे१३ जालन्धरे पुन १४ ।
सपादलक्षे१५ मेवाडे१६ दीपा१७ भीरा१८ ख्ययोरपि ॥२॥
(कुमारपाल प्रबन्ध)

(*) उच्च-मुल्तान के नैऋत्य कोण से दक्षिण में ७० माइल पर पचनद

राज्य करोगे ? तो उसने जवाब दिया 'आप लोग जैसी सलाह देंगे उसी के अनुसार कार्य करूंगा। सिद्धराज के शौर्यपूर्ण शब्दों को सुनने में अभ्यस्त सामन्तों के कानों को यह उत्तर न रुचा इसलिए वह भी अस्वीकृत कर दिया गया और अब कुमारपाल को गद्दी पर बिठा कर यही प्रश्न पूछा गया। प्रश्न को सुनते ही गद्दी से लेकर

---

के पूर्वीय किनारे पर भावलपुर स्टेट में जहां सतलज नदी सिन्धु नदी से मिलती है उस स्थान का प्राचीन नगर है। आज कल मिठनकोट से आगे यहां पर चिनाब और सिन्धुनद का संगम होता है वह पहले तैमूर और अकबर के समय में वहां से ६ मील ऊपर की ओर उच्च नगर के सामने होता था। इस शताब्दी के आरम्भ से सिन्धु नद ने अपना मार्ग बदलना शुरू कर दिया है और अग्निकोण से दक्षिण की ओर बहती बहती मिठनकोट के पास अपने पुराने मार्ग से आ मिलती है। इस फेरफार के कारण अब उच्च से इसके मार्ग का २ मील का अन्तर पड़ गया है। झेलम और चिनाब के संगम से थोड़ी दूर पर अब भी उच्च नाम की एक जगह है और उत्तरी हिन्दुस्थान में उच्च अथवा ऊछ नाम से प्रसिद्ध है। उच्च नगर जिसका मुख्य शहर था वह उच्च देश कहलाता था।

८ मम्मुरा—सिन्ध के कराची जिले में एक प्राचीन नगर था। इसके चारों ओर परकोटा था और उसमें प्रसिद्ध देवालय थे जिनको ७११ ई० के हमले में मुसलमानों ने तोड़ डाले थे। आज भी उन स्थानों को वहां के लोग देवल दक्ल अथवा दावल आदि नाम से पुकारते हैं। यह नगर जिस राज्य का मुख्य नगर था वह देश कबरा या ममेरा कहलाता।

(१४) जालन्धर—पंजाब देश के अन्तर्गत एक प्रदेश। उस समय यह पंजाब से अलग था। इसका क्षेत्रफल १२१८१ वर्ग मील गिना जाता है इसके ईशान कोण में होशियारपुर जिला है वायव्य कोण में कपूरथला और ब्यास नदी है पश्चिम में सतलज नदी का गर्त है और सतलज और ब्यास

उसकी लाल आंखों तक चात्र तेज प्रदीप्त हो उठा और उसने म्यान से आधी तलवार खींच ली। यह देख कर राजसभा 'धन्य धन्य' के शब्दों से गूंज उठी और कान्हदेव तथा गुजरात के अन्य सरदारों ने कुमारपाल को पञ्चाङ्ग (१) प्रमाण किया। शखनाद होने लगा और बाजे बजने लगे। इस प्रकार कुमारपाल गुजरात के जयसिंह का योग्य उत्तराधिकारी मान्य हुआ।

---

नदी के बीच का त्रिकोणाकार भाग जालधर का दोआबा कहलाता है जो बहुत उपजाऊ है। प्राचीन काल में यह प्रदेश चन्द्रवशी राजाओं के अधिकार में था। कागडा पर्वत के आसपास के छोटे छोटे सस्थानों में अब भी इस वश के लोग हैं और वे महाभारतकाल के सुशर्म चन्द्र के वशज कहलाते हैं। सुशर्म ने महाभारत की लडाई के बाद मुलतान का राज्य छोड़ कर जालन्धर के दोआबे में काटोच अथवा त्रैगर्त नामक राज्यों की स्थापना की।

सातवीं शताब्दी में ह्युआन्साग नामक चीनी यात्री भारतवर्ष में आया था। उसके लेख से विदित होता है कि,आजकल के जालधर प्रदेश में उस समय होशियारपुर, कागड़ा पर्वत का प्रदेश और आधुनिक चम्बा मडी और सिरहिन्द के प्रदेश भी सम्मिलित थे।

पद्मपुराण में लिखा है कि जलधर नामक दैत्य ने इसकी स्थापना की थी।

चीनी यात्री ने लिखा है कि, जालधर नगर का घेरा दो मील का है, इसके दोनों ओर दो पुराने तालाब हैं। यह गजनी के इब्राहिम मुसलमान के अधिकार में आ गया था। मुगलों के राज्यकाल में यह सतलज और व्यास नदी के बीच के दोआबे की राजधानी था। इसके अलग अलग विभाग बने हुए हैं और प्रत्येक विभाग के चारों ओर पृथक् २ कोट बने हुए हैं।

(१) हाथ, घुटने, शिर और वाणी एव बुद्धि से पचाङ्ग प्रणाम किया जाता है।

'हस्तजानुशिरोवाक्यधीभिः पञ्चाङ्ग ईरित' ( प्राणतोषिणी )

सन् ११४३ ई० में कुमारपाल ५० वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा और उसने ३१ वर्ष तक राज्य किया।(१) उसकी वयस्कता एवं देशाटन से प्राप्त अनुभवशीलता के कारण उसमें और उसके मन्त्रियों में कुछ मनमुटाव हो गया था इसलिए उसने उनको अधिकारच्युत कर दिया था। इसका बदला लेने के लिए उन लोगों ने उसको मार डालने का षड्यंत्र किया और रात के समय वह जिस दरवाजे से नगर में आने वाला था उस पर कुछ हत्यारों को नियुक्त भी कर दिया परन्तु पूर्व जन्म के पुण्य से उसको इस षड्यन्त्र की बात विदित हो गयी इसलिए वह उस दरवाजे से न जाकर दूसरे दरवाजे से अन्दर गया और शत्रुओं का षड्यन्त्र विफल हुआ। इसके बाद कुमारपाल ने षड्यन्त्रकारियों को मरवा डाला।

---

(१) राजवंशावली में लिखा है कि, कुमारपाल मार्गशीर्ष शुक्ला ११ संवत् ११९९ को गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठने के बाद उसके आश्रितों को जो उपहार मिले उनका वर्णन कुमारपालचरित्रम् के आधार पर इस प्रकार है —

गद्दी पर बैठते ही कुमारपाल ने अपनी रानी भूपालदेवी को पटरानी बनाई और खम्भात में सहायता करने के कारण उदयन को प्रधान मंत्री बनाया। उदयन के पुत्र बाहड़ अथवा वाग्भट को मुख्य समात्य अथवा महामात्य नियुक्त किया। आलिग को महाप्रधान नियुक्त करके चित्तौड़गढ़ के पास सात सौ ग्राम बक्शीश में दिए। भीमसिंह ने उसको काँटों की बाड़ के नीचे छुपाया था इसलिए उसको अङ्गरक्षक व सेना का मुखिया नियुक्त किया। देवि श्री (श्रीदेवी) से राखपत्तिका करा कर उसे देवग्री (प्रबन्ध के अनुसार धोलका अथवा धवलक) ग्राम दिया। वटोदरा के जिस कुटुम्ब बनिए ने उसे चने दिये थे उसे वटपद्र अथवा वडोदरा प्रदान किया। कुमारपाल ने अपने मुख्य साथी वोसरी को लाट मण्डल दिया और उसे दक्षिण गुजरात का सूबादार नियुक्त किया।

इसके कुछ ही दिनों बाद कान्हदेव, जो उसका बहनोई था और जिसने उसको गद्दी पर बिठाया था, अभिमान में भरकर उसके कुल व उसकी पूर्वस्थिति के विषय मे अयोग्य बाते कह कर राजाका अपमान करने लगा। कुमारपाल ने उसको बहुत समझाया परन्तु उसने और भी उत्तेजित होकर उत्तर दिया और उसका अनुशासन न मानने का निश्चय प्रकट किया। इस पर राजा ने उसको भी मृत्यु-दण्ड दिया। उसके इस कार्य का बडा भारी प्रभाव पडा और उसी दिन से उसके सामन्तों को उसकी आज्ञा न मानने मे भय का अनुभव होने लगा—

"इस दीपक को पहले मैंने ही प्रदीप्त किया था इसलिए यह मुझको नहीं जलावेगा, इस भ्रम से यदि कोई अपनी अँगुलियों से दीपक को स्पर्श करे तो वह जलाए बिना नहीं रहेगा, यही हाल राजा का है।"(१)

अब, कुमारपाल ने पुराने आश्रयदाता उदयन मन्त्री के पुत्र वाग्भट्ट-देव को अपना महामात्य बनाया और सकट मे रक्षा करने वाले आलिङ्ग कुम्हार(२) के उपकार का भी बदला चुकाया। उदयन का दूसरा पुत्र चाहड़ था, वह सिद्धराज का बहुत प्रीतिपात्र था इसलिए उसने कुमारपाल

---

(१) आदौ मयैवायमदीपि नून न तद्दहेन्मामवहेलितोऽपि।
इति भ्रमादङ्गुलिपर्वणापि स्पृश्येत नो दीप इवावनीप ॥
(प्र० चि० पृ० ७६)

(१) इस कुम्हार को सम्मान देने के लिए राजा ने उसे महाप्रधान पद और सात सौ गांवों की उपजवाला चित्रकूट ( चित्तौड़ ) प्रदेश दिया।
'आलिगकुलालाय सप्तशतीग्राममिता विचित्रा चित्रकूटपट्टिकाऽददे।
[ प्रबन्ध चिन्तामणि, ४८० ]

की सेवा में रहना अस्वीकार कर दिया और नागौर ( अजमेर ) के राजा आम(१) अथवा मेरुतुंग के लेखानुसार वीसलदेव चौहान के पौत्र आनाक राजा के यहां जाकर नौकरी करली। चाहड़ की प्रेरणा से आम राजा ने गुजरात पर चढ़ाई करने का मनसूबा किया और, 'वहां के बहुत से सामन्त मेरे पक्ष में लड़ने के लिए आ जावेंगे' इसी आशा से वह एक बड़ी फौज लेकर गुजरात की सीमा पर आ पहुंचा। इधर सोलंकी राजा ने भी शत्रु का सामना करने के लिए चतुरंगिणी सेना इकट्ठी की और देश को सम्पूर्ण शत्रुओं से निर्भय करनेके लिए अथवा ग्रन्थकर्ता के शब्दों में 'निष्कण्टक' करने के लिए वह आम की सेना से आ भिड़ा। लड़ाई शुरू हुई ही थी कि बहुत से गुजरात के सामन्त राजा का पक्ष छोड़ कर विपक्ष में जाने लगे। इससे चाहड़ की चाल प्रकट हो गई। तब कुमारपाल ने अपनी सेना को तितर बितर होते देखा तो उसने अपने महावत को आज्ञा दी कि नागौर के राजा के सिर पर छत्र है, इस निशानी को ध्यान में रख कर हाथी को आगे बढ़ाओ जिससे मुझे शत्रु से आमने सामने लड़ने का अवसर मिले। इस आज्ञा के अनुसार महावत ने भीड़ में होकर हाथी को उधर बढ़ाया जिधर नागौर का राजा युद्ध कर रहा था। यह देखकर चाहड़ दोनों राजाओं के बीच में आ गया और कुमारपाल का वध करने के अभिप्राय से अपने हाथी पर से उसके हाथी पर कूदने लगा कि कुमारपाल के महावत ने अंकुश लगा कर हाथी को पीछे हटा लिया इसलिए वह ( चाहड़ ) नीचे गिर पड़ा और

---

(१) सपादलक्ष का राजा। [ हेमचन्द्राचार्य ]

उसको राजा के सिपाहियों ने घेर लिया। इधर कुमारपाल ने 'सम्हल' इस शब्द के द्वारा ललकार कर नागौर के राजा पर एक तीर छोड़ा जिसके लगते ही वह नीचे आ गिरा। इतने ही में गुजरात के घुड़सवार 'जय जय' शब्द करते हुए आगे बढ़े और तुरन्त ही शत्रु की सेना को नष्ट कर दिया।

कुमारपाल के राज्यकाल के आरम्भ मे जो लडाइया हुई थीं उनके विषय मे द्व्याश्रय का कर्ता इस प्रकार लिखता है —

'आन्न(१) नामक राजा एक लाख गावों का स्वामी था। वह यद्यपि जयसिंह का माण्डलिक था, परन्तु, उसने विचार किया कि जयसिंह तो

---

(१) सपादलक्ष देश अथवा सवा लाख ग्रामो के देश का राजा आन्न, आनक, अन्न अथवा अर्णोराज, जिसको चतुर्विंशति प्रबन्ध में शाकम्भरीश्वर चाहमान वशज आनाक राजा लिखा है, और कुमारपालचरित्र के आधार पर टॉड ने जिसका नाम पूरणपाल लिखा है तथा गुजराती कुमारपालरासा में भी जिसको पूरणपाल ही लिखा है, कुमारपाल का बहनोई था। कुमारपाल की बहन देवल देवी का विवाह उसके साथ हुआ था। द्व्याश्रय के कर्त्ता को छोड़कर उपर्युक्त सभी ग्रन्थकारों ने तथा कुमारपालप्रबन्ध के रचयिता ने लिखा है कि, एक बार राजा आन्न देवल देवी के साथ चौपड़ खेल रहा था। एक गोट (शारी) मर रही थी, उसको बताकर राजा ने कहा, 'मुण्डक्या(१) को मारो।' रानी ने इस व्यग को समझकर कहा, "मेरे साथ ऐसी हँसी न करें।" तब राजा बार बार इसी वाक्य को दोहराने लगा। इस पर रानी ने रोष करके कहा, 'जगडक! ( जगली ) जीभ सम्भाल कर नहीं बोलते ? गुजरात की भूमि पर बसने वाले कान्तिमान् देहधारी, मधुरभाषी और पृथ्वी पर देवतारूप साधु पुरुषों की और

---

(१) मुण्डक्या, मोड़ा, फकीर ( एक अपमान सूचक शब्द ) जो सभवत: यहाँ गुजरात के जैन साधुओं के लिए राजा ने प्रयुक्त किया।

की सेवा में रहना अस्वीकार कर दिया और नागौर ( अजमेर ) के राजा आम(१) अथवा मेरुतुंग के लेखानुसार बीसलदेव चौहान के पौत्र आनाक राजा के यहाँ जाकर नौकरी करली। चाहड़ की प्रेरणा से आम राजा ने गुजरात पर चढ़ाई करने का मनसूबा किया और, 'वहाँ के बहुत से सामन्त मेरे पक्ष में लड़ने के लिए आ जावेंगे' इसी आशा से वह एक बड़ी फौज लेकर गुजरात की सीमा पर आ पहुँचा। इधर सोलंकी राजा ने भी शत्रु का सामना करने के लिए चतुरंगिणी सेना इकट्ठी की और देश को सम्पूर्ण शत्रुओं से निर्भय करनेके लिए अथवा ग्रन्थकर्ता के शब्दों में 'निष्कण्टक' करने के लिए वह आम की सेना से आ भिड़ा। लड़ाई शुरू हुई ही थी कि बहुत से गुजरात के सामन्त राजा का पक्ष छोड़ कर विपक्ष में जाने लगे। इससे चाहड़ की चाल प्रकट हो गई। जब कुमारपाल ने अपनी सेना को तितर बितर होते देखा तो उसने अपने महावत को आज्ञा दी कि नागौर के राजा के सिर पर छत्र है, इस निशानी को ध्यान में रख कर हाथी को आगे बढ़ाओ जिससे मुझे शत्रु से आमने सामने लड़ने का अवसर मिले। इस आज्ञा के अनुसार महावत ने भीड़ में होकर हाथी को उधर बढ़ाया जिधर नागौर का राजा युद्ध कर रहा था। यह देखकर चाहड़ दोनों राजाओं के बीच में आ गया और कुमारपाल का वध करने के अभिप्राय से अपने हाथी पर से उसके हाथी पर कूदने लगा कि कुमारपाल के महावत ने अंकुश लगा कर हाथी को पीछे हटा लिया इसलिए वह ( चाहड़ ) नीचे गिर पड़ा और

---

(१) सपादलक्ष का राजा। [ हेमचन्द्राचार्य ]

उसको राजा के सिपाहियों ने घेर लिया। इधर कुमारपाल ने 'सम्हल' इस शब्द के द्वारा ललकार कर नागौर के राजा पर एक तीर छोड़ा जिसके लगते ही वह नीचे आ गिरा। इतने ही मे गुजरात के घुड़सवार 'जय जय' शब्द करते हुए आगे बढे और तुरन्त ही शत्रु की सेना को नष्ट कर दिया।

कुमारपाल के राज्यकाल के आरम्भ मे जो लडाइया हुई थीं उनके विपय मे द्व्याश्रय का कर्ता इस प्रकार लिखता है —

'आन्न(१) नामक राजा एक लाख गावों का स्वामी था। वह यद्यपि जयसिंह का माडलिक था, परन्तु, उसने विचार किया कि जयसिंह तो

---

(१) सपादलक्ष देश अथवा सवा लाख ग्रामों के देश का राजा आन्न, आनक, अन्न अथवा अर्णोराज, जिसको चतुर्विशति प्रबन्ध में शाकम्भरीश्वर चाहमान वशज आनाक राजा लिखा है, और कुमारपालचरित्र के आधार पर टॉड ने जिसका नाम पूरणपाल लिखा है तथा गुजराती कुमारपालरासा में भी जिसको पूरणपाल ही लिखा है, कुमारपाल का बहनोई था। कुमारपाल की बहन देवल देवी का विवाह उसके साथ हुआ था। द्व्याश्रय के कर्ता को छोडकर उपर्युक्त सभी ग्रन्थकारों ने तथा कुमारपालप्रबन्ध के रचयिता ने लिखा है कि, एक बार राजा आन्न देवल देवी के साथ चौपड़ खेल रहा था। एक गोट (शारी) मर रही थी, उसको बताकर राजा ने कहा, 'मुडक्या(१) को मारो।' रानी ने इस व्यग को समझकर कहा, "मेरे साथ ऐसी हँसी न करें।" तब राजा बार बार इसी वाक्य को दोहराने लगा। इस पर रानी ने रोष करके कहा, 'जगडक! (जगली) जीभ सम्भाल कर नहीं बोलते ? गुजरात की भूमि पर बसने वाले कान्तिमान् देहधारी, मधुरभाषी और पृथ्वी पर देवतारूप साधु पुरुषों की और

---

(१) मुडक्या, मोड़ा, फकीर (एक अपमान सूचक शब्द) जो सभवत यहाँ गुजरात के जैन साधुओं के लिए राजा ने प्रयुक्त किया।

मर गया है, गुजरात का राज्य नया है और कुमारपाल कम
इसलिए अब प्रसिद्धि प्राप्त करने का अवसर आ गया है
धारणा से प्रेरित होकर वह उज्जैन के राजा बल्लाल एवं अन्य प
गुजरात के राजों के साथ किसी को भय दिखाकर तथा कि
प्रतिज्ञा करके सम्बन्ध बढ़ाने लगा। कुमारपाल के चरों ने

---

तुम्हारे देश में बसने वाले जंगली कौपीन ( लंगोटी ) लगाए फिरते आ
बोलने वाले और राक्षसों के जैसे भयंकर जोगियों की क्या बराबरी है
है ? यदि तुमको मेरे सामने इस तरह बोलते हुए शर्म नहीं आती तो
राज राक्षस कुमारपाल से तो डरना चाहिए। यह सुनकर राजा
क्रोध आ गया और उसने देवल देवी के लात मार कर कहा 'जा
से जो कुछ कहना हो सो कह। रानी ने भी प्रतिज्ञा करके कहा, 'यदि
जीभ न कटवाऊँ तो मुझे शुद्ध राजपुत्री मत कहना। यह कहकर वह
परिवार सहित पाटण चली आई और पूरा हाल सुनाकर अपने भाई को
प्रतिज्ञा के विषय में भी निवेदन किया। कुमारपाल ने बहन से कह
कुछ की जीभ निकलवाकर मैं तेरी प्रतिज्ञा को पूरी करूँगा।' इसके बाद
पाल ने अपने चतुर गुप्तचरों को आन्न का हाल जानने के लिए
उन्होंने वहाँ पहुँचकर किसी तरह आन्न की ताम्बूलवाहिनी परिचारिका (
को अपने पक्ष में मिला लिया। दासी ने उन्हें सूचना दी कि आज ही आ
के समय राजा ने व्याघ्रराज को बुलाकर इस प्रकार कहा है, 'तुम मेरे
के नौकर हो यदि गुजरात जाकर तुम कुमारपाल को मार डालोगे तो तु
लाख मराग सहित स्थान में दूंगा। इस आज्ञा के अनुसार व्याघ्रराज गुज
लिए रवाना हो गया है। इधर कुमारपाल के मंत्री ने तुरन्त एक दूत को गु
भेज कर पहरेदारों को कहला दिया कि यदि कोई नया आदमी देखने में आ
उससे सावधान रहना। कुमारपाल कर्णमेरुप्रासाद में पूजा करने गया हुआ
उसी समय आन्न का भेजा आदमी दिखाई दिया। उसे मल्लों ने पकड़
और उसके पास जो गुप्त कटारी थी उसे छीनकर भगा दिया।

समाचार दिया कि आन्न राजा सेना लेकर गुजरात की पश्चिमी सीमा पर चढ आया है, उसके साथ जो राजा हैं उनमें से बहुत से विदेशी भाषाओं के जानने वाले हैं और कथग्राम ( कथकोट ) का राजा तथा

---

कुमारपाल ने युद्ध की तैयारी की और विविध प्रकार के पार्ष्णिरक्षक और नगर रक्षक नियुक्त करके आन्न पर चढाई कर दी। रास्ते में चन्द्रावती नगर आया, वहाँ का राजा विक्रमसिंह कुमारपाल को वह्नियन्त्र की सहायता से धोखा देने के लिए तैयार हुआ। परन्तु उसे सफलता नही हुई इसलिए उसे अपने साथ लेकर कुमारपाल ने शाकम्भरी के पास ही एक जगल में पड़ाव डाला। आन्न ने कटु वचन कहे थे इसलिए उसने दूत के हाथ निम्नलिखित कविता उसके पास भेजी—

> रे रे भेक, गलद्विवेककटुक किं रारटीत्युत्कटे
> गत्वा क्वापि गभीरकूपकुहरे त्व तिष्ठ निर्जीववत्।
> सर्पोऽय स्वमुखप्रसृत्वरविषज्ज्वालाकरालो महान्
> जिह्वालस्तव कालवत्कवलनाकाङ्क्षी यदाऽजग्मिवान्।

भावार्थ,—हे विवेकरहित मेंढक, तू इस तरह कटु वचन क्यों बोलता है ? कही गभीर कुए के कोने में जाकर चुपचाप बैठ जा, क्योंकि जिसके मुख से विष की ज्वालाए निकल रही हैं ऐसा कराल सर्प तुझे खाने की इच्छा से जिह्वा निकाले हुए तेरे काल के समान आ पहुँचा है।

इस कविता के मर्म को समझ कर आन्न ने उसी दूत के हाथ यह उत्तर भेजा—

> रे रे सर्प, विमुच्य दर्पमसम किं स्फारफूत्कारतो
> विश्व भीषयसे क्वचित् कुरु बिले स्थान चिर नन्दितुम्।
> नोचेत्प्रौढगरुत्स्फुरत्तरमरुद्व्याधूतपृथ्वीधर—
> स्तार्क्ष्यो भक्षयितु समेति झटिति त्वामेष विद्वेषवान्।

भावार्थ —हे सर्प, तू इस प्रकार के असाधारण गर्व को छोड़ दे, इस प्रकार फुकार मार मार कर ससार को क्यों डराता है ? यदि चिरकाल तक

अणहिलवाड़ा का सेनापति चाहड़ ये दोनों भी उनके साथ मिल गए हैं। उन्होंने यह भी कहा कि गुजरात और मालवा इन दोनों देशों में आने जाने वाले व्यापारियों से राजा ने गुजरात की

---

आनन्द से रहना चाहता है तो किसी किले में जाकर आश्रय ले क्योंकि अपने विशाल पंखों की फड़फड़ाहट के पवन से पर्वतों को भी हिलाता डुलाता हुआ तेरा शत्रु गरुड़ शीघ्र ही आने वाला है।

चतुर्विंशतिप्रबन्ध में लिखा है कि सिद्धराज के बाद जब गद्दी पर उसकी पादुकाओं का पूजन होता था उस समय मालवा के राजपुत्र चाहड़ ने प्रधान के पास जाकर गद्दी प्राप्त करने के लिए इच्छा प्रकट की परन्तु वह उसे न मिल सकी इसलिए वह नाराज होकर अर्णोराज के पास जाकर नौकरी करने लगा। कुमारपाल प्रबन्ध में इस व्यक्ति का नाम चारभट लिखा है। प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है कि सिद्धराज का प्रतिपन्न पुत्र चाहड़ कुमारपाल की आज्ञा में नहीं रहता था वह सपादलक्ष की सेवा में जाकर रहा और अर्णोराज को गुजरात पर चढ़ा कर लाया। कुमारपाल भी चतुरंगिणी सेना लेकर उसके सामने गया।

अर्णोराज ने चारभट से कहा जिसको जीतना कठिन काम है ऐसे कुमारपाल को पराजित करने का सुगम उपाय कौन सा है ?' चारभट ने कहा 'कुमारपाल कृपण और अक्खड़ है इसलिए दुखिया केल्हण गेल्हण आदि सामन्त उससे असन्तुष्ट हैं मैं उन्हें लालच देकर फोड़ लूंगा। फिर, जब मैं वेगवान हाथी पर सवार होकर कुमारपाल के सामने जाऊंगा तो उसका हाथी डरकर भग जावेगा। इसके बाद उसने द्रव्य देकर कुमारपाल के सामन्तों को अपनी तरफ मिला लिया। युद्ध में जब कुमारपाल ने अपने सामन्तों को उदास पाया तो अपने महावत श्यामल से इसका कारण पूछा। श्यामल ने सब रहस्य का पता लगाकर राजा को सतर्क किया। चाहड़ ने चउलिंग महावत को अपनी ओर मिलाया था परन्तु युद्ध में कुमारपाल के हाथी को श्यामल चला रहा था। उसको यह बात मालूम न थी परन्तु जब युद्ध में कुमारपाल का हाथी

परिस्थिति का पूरा हाल मलूम कर लिया है और उसने मालवा के राजा बल्लाल के साथ ठहराव भी कर लिया है कि आन्न राजा के चढ़ाई करते ही वह तुरन्त गुजरात के पूर्व भाग पर हमला करने के लिए तैयार रहे। यह समाचार सुनकर कुमारपाल बहुत कुपित हुआ।(१)

---

कलह-पञ्चानन पीछे हटा तो चाहड़ ने हमला करके महावत को मार डाला। उसी समय कुमारपाल छलांग मार कर आन्न के हाथी के गंडस्थल पर जा चढ़ा और उसको ( आन्न को ) नीचे पटक कर छाती पर चढ़ बैठा। वह बोला, "रे, बकवादी, वाचाल, मूढ, अधर्मी, पिशाच! 'मार, मुण्डी को मार' इस तरह जो तू ने अपनी बहन से वचन कहे थे उनको याद कर। मैं अभी अपनी बहन की प्रतिज्ञा पूरी करता हूँ और तेरी जीभ का छेदन करता हूँ।" आन्न कुछ न बोला परन्तु उसकी आखें कह रही थी "बचाओ, मैं तुम्हारी शरण में हूँ।" उसकी दीन दशा देखकर कुमारपाल को दया आ गई इसलिए उसे छोड़ दिया और आज्ञा दी कि, 'तुम्हारे देश में ऐसी टोपी पहनी जावे जिसके दोनों तरफ दो जीभें निकली हुई हों और वह पीछे की तरफ बँधी हुई रहे। इस प्रकार तेरी जीभ बँध जाने से मेरी बहन की प्रतिज्ञा पूरी हो जावेगी।' इसके बाद कुमारपाल ने आन्न को लकड़ी के पींजड़े में बन्द करके तीन दिन तक अपनी सेना में रखा और फिर शाकम्भरी का राज्य वापस लौटा दिया। पाटण लौटकर उसने अपनी बहन को सब समाचार कह सुनाया और वापस सुसराल लौट जाने की प्रार्थना की। परन्तु उस स्वाभिमानिनी ने वहाँ जाने से इन्कार कर दिया और स्तभनपुर में तपस्या करते हुए जीवन बिता दिया।

(१) द्व्याश्रय के आधार पर विशेष वृत्तान्त की टीका लिखने वाले अभयतिलकगणी के अभिप्राय के अनुसार गुजराती अनुवाद में जो फेरफार आवश्यक था वह किया गया है। इस सम्बन्ध में विशेष वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार है—

शरावती नदी जो ईशान से नैर्ऋत्य की ओर बहती है उसके पूर्व ओर

कुमारपाल के साथ भी बहुत से राजा आ मिले जिनमें प्रसिद्ध घुड़सवार कोळी व चारों ओर से एकत्रित हुए जङ्गली जाति के लोग

---

दक्षिण की ओर के देश 'पूर्व के देश' कहलाते हैं और इसके पश्चिम उत्तर के देश 'उत्तर के देश' कहलाते हैं।

सपादलक्ष देश गुजरात के उत्तर में गिना जाता है और गुजरात को सपादलक्ष देश से पश्चिम में। अवन्ती को गुजरात व सपादलक्ष देश से पूर्व में माना जाता है।

सपादलक्ष का राजा आन जयसिंह के स्वर्गस्थ होने के बाद मदोन्मत्त हो गया था और उसने बिना कारण ही गड़बड़ी फैलाना शुरू कर दिया था। नैफेली शाकल कायब दाव चैडकीब काशीम आदि स्थानों के गुप्तचरों द्वारा कुमारपाल की खोज खबर लेने लगा और उसके गुप्तचर कांचन पिपल कच्छ द्रुबक आदि स्थानों में भी घूमने लगे।

आन केवल मंगलालङ्कार जो ग्रैवेयक के बने होते थे पहनता था और बहुत समय तक मसाले में डालकर रखे हुए लोहे की तलवार जो कौक्षेयक कहलाती थी कमर में बांधे रहता था। इस प्रकार वह अपने आपको राघव से भी बढ़कर शक्तिशाली समझता था। कुमारपाल का एक गुप्तचर शत्रुओं की आंखें बचाकर अपने स्वामी के पास पहुँचा और निवेदन किया कि बहुत समय से शत्रुता रखने वाला आन सेना सहित अपने देश की सीमा के पास पहुँचने वाला है। अन्धकार के पास ही जो अरण्यक और किरवक्रम देश हैं वहां के राजा भी हमारे विरुद्ध उससे मिल गए हैं और हाथी पर चढ़कर इन्द्र की बराबरी करने वाला चाहड़ भी अपने घुड़सवारों सहित कल ही उसके पास जाने वाला है। पूर्वसमुद्र अपरसमुद्रगामी गोमती नदी के प्रदेश गोह्रासा तैलप्य ग्राम पूर्णिम देश वाहिक रोमक मरुस्थल पह्लवर और सूरसेन के राजा लोग भी आन के पक्ष में हैं और अवन्ती के गालवं ग्राम का राजा गोमर्दीन भी कुमारपाल के विरुद्ध आन से मिल गया है।

अब आभाखाल मद्र और नासिक्य के राजा भी आन के पक्ष

भी थे। उसके करद प्रदेश कच्छ के लोग भी सिन्ध प्रान्त के लोगों

---

में हो गए हैं। अवन्ती के बल्लाल के साथ काकराटक, पाटलीपुत्र, और मल्लवास्त के राजा लोग भी आन्न से आ मिले।

ऊपर लिखे राजाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित भी आन्न के साथ थे। उत्तरदेश के राजा, शिवहार नदी के आसपास के राजा। ग्रामेयक (अर्थात् सत्य बोलने वाले) अग्राम्य (अर्थात् असत्य बोलने में निपुण) अर्थात् सत्यासत्य बोलने में निपुण, और कात्रेयक ( धर्म, अर्थ, काम तीनों में कुत्सित् इच्छा रखने वाले ) देशों के राजा। कुण्डधा और कुण्या ( इन दोनों नामों को कितने ही तो गावों के नाम बताते हैं और कितने ही दो नदियों के नाम बताते हैं ) के रहने वाले राजा भी आन्न के साथ थे।

आन्न की सेना का जमाव इस प्रकार था कि, पौरस अथवा मुखभाग का सेनापति वल्हि देश का राजा वल्हायन था और पृष्ठभाग का अधिकारी उर्दि देश का अधिपति उर्दायन था तथा पर्दिदेश का राजा भी उसके साथ था।

कुमारपाल के सहायक इस प्रकार थे—

युगन्धर की पैदल सेना, पुरुदेश के अश्वारोही, साल्वदेश के पैदल, और गुजरात के पास वाले मय्यड जाति के क्षत्रियो के नाद्रह देश का राजा।

राष्ट्रीय जाति के राजपूतों ( राठौड़ ? ) का राजा, जो पडौसी था वह नान्दीपुर,साकाश्यपुर और फाल्गुनीवह देश का भृत्य राजा बल्लाल पर चढा। इतने ही में काक नामक ब्राह्मण सेनापति ने जो कुमारपाल का।दण्डपति कहलाता था, वातानुप्रस्थपुर के राजा के साथ चढाई कर दी।

कुमारपाल ने जब चढाई की तब उसके साथ ऐरावत, अभिसार, दर्वस्थली धूम, त्रिगर्त और अभिसारगर्त के राजाओ ने भी चढाई की थी।

सौवीर प्रान्त के कुल नामक ग्राम के उत्तम अश्वरोही भी कुमारपाल के साथ थे।

चढाई के समय चक्रवर्त देश के राजा ने कुमारपाल पर छत्र कर रखा था।

कुमारपाल के साथ भी बहुत से राजा आ मिले जिनमें प्रसिद्ध घुड़सवार कोळी व चारों ओर से एकत्रित हुए जङ्गली जाति के लोग

---

दक्षिण की ओर के देश 'पूर्व के देश' कहलाते हैं और इसके पश्चिम उत्तर के देश 'उत्तर के देश' कहलाते हैं।

सपादलक्ष देश गुजरात के उत्तर में गिना जाता है और गुजरात को सपादलक्ष देश से पश्चिम में। अवन्ती को गुजरात व सपादलक्ष देश से पूर्व में माना जाता है।

सपादलक्ष का राजा आन्न जयसिंह के स्वर्गस्थ होने के बाद मदोन्मत्त हो गया था और उसने बिना कारण ही गड़बड़ी फैलाना शुरू कर दिया था। नैऋती शाकल कायस्थ दाव चैत्यभीम, कच्छीय आदि स्थानों के गुप्तचरों द्वारा कुमारपाल की खोज खबर लेने लगा और उसके गुप्तचर कांकाम्न पिप्पल कच्छ, हदुक आदि स्थानों में भी घूमने लगे।

आन्न केवल मंगलालङ्कार जो ग्रैवेयक के बने होते थे पहनता था और बहुत समय तक मसाले में डालकर रखे हुए सांड की खाल का बख्तर जो ग्रैवेयक कहलाती थी कमर में बांधे रहता था। इस प्रकार वह अपने आपको राक्षस से भी बढ़कर शक्तिशाली समझता था। कुमारपाल का एक गुप्तचर शत्रुओं की आंखें बचाकर अपने स्वामी के पास पहुँचा और निवेदन किया कि बहुत समय से शत्रुता रखने वाला आन्न सेना सहित अपने देश की सीमा के पास पहुँचने वाला है। कश्मीर के पास ही जो मरस्थल और मिरवरूप देश हैं वहां के राजा भी तुम्हारे विरुद्ध उससे मिल गए हैं और हाथी पर चढ़कर इन्द्र की बराबरी करने वाला बाल्हीक भी अपने घुड़सवारों सहित जल्द ही उसके पास आने वाला है। पृथमद्र अपरगुरामगामी गोमती नदी के प्रदेश गोप्रथा लेकर आन्न पूर्वीय देश वाहिक गंगा पञ्चाल पद चर, और सूरसेन के राजालोग भी आन्न के पक्ष में हैं और अवन्ती के गर्दर्भ ग्राम का राजा गोनर्दीय भी कुमारपाल के विरुद्ध आन्न से मिल गया है।

अब जालन्धर मद्र और नालिनपल्ल के राजा भी आन्न के पक्ष

भी थे। उसके करद् प्रदेश कच्छ के लोग भी सिन्ध प्रान्त के लोगों

---

में हो गए हैं। अवन्ती के बल्लाल के साथ काकएटक, पाटलीपुत्र, और मल्लवास्त के राजा लोग भी आन्न से आ मिले।

ऊपर लिखे राजाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित भी आन्न के साथ थे। उत्तरदेश के राजा, शिवहार नदी के आसपास के राजा। ग्रामेयक (अर्थात् सत्य बोलने वाले) अग्राम्य (अर्थात् असत्य बोलने में निपुण) अर्थात् सत्यासत्य बोलने में निपुण, और कात्रेयक ( धर्म, अर्थ, काम तीनों में कुत्सित् इच्छा रखने वाले ) देशों के राजा। कुण्डधा और कुण्या ( इन दोनों नामों को कितने ही तो गावों के नाम बताते हैं और कितने ही दो नदियों के नाम बताते हैं ) के रहने वाले राजा भी आन्न के साथ थे।

आन्न की सेना का जमाव इस प्रकार था कि, पौरस अथवा मुखभाग का सेनापति वल्हि देश का राजा वल्हायन था और पृष्ठभाग का अधिकारी उर्दि देश का अधिपति उर्दायन था तथा पर्दिदेश का राजा भी उसके साथ था।

कुमारपाल के सहायक इस प्रकार थे—

युगन्धर की पैदल सेना, पुरुदेश के अश्वारोही, साल्वदेश के पैदल, और गुजरात के पास वाले मय्यड जाति के क्षत्रियों के नाद्रह देश का राजा।

राष्ट्रीय जाति के राजपूतो ( राठौड़ ? ) का राजा, जो पडौसी था वह नान्दीपुर,साकाश्यपुर और फाल्गुनीवह देश का भृत्य राजा बल्लाल पर चढा। इतने ही में काक नामक ब्राह्मण सेनापति ने जो कुमारपाल का।दण्डपति कहलाता था, वातानुप्रस्थपुर के राजा के साथ चढाई कर दी।

कुमारपाल ने जब चढाई की तब उसके साथ ऐरावत, अभिसार, दर्वस्थली धूम, त्रिगर्त और अभिसारगर्त के राजाओ ने भी चढाई की थी।

सोवीर प्रान्त के कुल नामक ग्राम के उत्तम अश्वरोही भी कुमारपाल के साथ थे।

चढाई के समय चक्रवर्त देश के राजा ने कुमारपाल पर छत्र कर रखा था।

के साथ उसीके झण्डे के नीचे आ गए।(१) ज्योंही वह आबू की ओर आगे बढ़ा मृगचर्म की पोशाकें पहने हुए पहाड़ी लोग भी उसकी सहायता करने के लिए आ पहुँचे। आबू का पँवार राजा विक्रमसिंह भी जालंधर ( जालौर ) की सेना लेकर अपने स्वामी कुमारपाल के साथ हो गया। कुमारपाल की पहुँच का समाचार मिलते ही आन राजा अपने मन्त्रियों के परामर्श के विरुद्ध लड़ाई चालू रखने को तैयार हुआ। वह अच्छी तरह तैयारी भी न कर पाया था कि रणवाद्य सुनाई पड़ा और सामने ही पहाड़ की तलहटी में गुजराती सेना आगे बढ़ती दिखाई

---

उत्तम बैलों के साथ कच्छवासी और उत्तम घोड़ों के साथ सिन्धुवासी भी उसके साथ चले।

हरवाक्ष मृगाक्षगद भारवल्लिक कर्कोट दाविड़ दाक्षिकन्या और आयमुख के राजा भी अपनी अपनी सेनाओं सहित कुमारपाल से आ मिले।

दाक्षि नगर से पूर्व और पश्चिम की तरफ के प्रदेश के राजा नासिक ग्राम के स्वत्व और दाक्षि तथा पक्षद से पश्चिम की ओर के गाँवों के सुमर तथा अन्य मृगचर्म कम्बल और दूसरे पार्वतीय देशोचित वेष वाले लोग भी उसके साथ थे।

जहाँ पर बकरा और घर्म रोग के लोग बसते हैं ऐसी अर्बुदभूमि (आबू) का राजा विक्रमसिंह कुमारपाल का भृत्य गिना जाता था वह भी मह दल के पत्नी सहित तैयार हो गया। चन्द्रावती नगरी के परमार राजा विक्रमसिंह ने इसका राज्य छीनकर इसके भतीजे यशोधवल को दे दिया था और कुमारपाल के उमराव यशोधवलने बल्लालसेन को मार डाला था। ( देखो चार राज्य का हिन्दी इतिहास। ) यशोधवल विक्रमादित्य का भतीजा होता था।

( ) वन्द्य का नाम लाखा आदाणी और सिंध का नाम गादोजी आदाणी के लश्कर भी साथ थे।

दी। उस समय राजा के सिर पर श्वेत छत्र शोभित था और सूर्य का पूर्ण प्रकाश उस पर पड़ रहा था। आन्न के योद्धाओं ने कुमारपाल की सेना पर बाणवृष्टि की और नागौर के राजा ने स्वय अपने हाथ मे धनुष सम्हाला, परन्तु, छत्रधारी राजाओं की अध्यक्षता मे होते हुए भी उत्तर की ओर वाली सेना गुजराती सेना के आगे न ठहर सकी और तितर बितर हो गई। अब, स्वय आन्न राजा आगे बढ़ा और सिद्धराज के उत्तराधिकारी कुमारपाल से उसकी मुठभेड हुई। कुमारपाल ने कहा, 'यदि तू ऐसा योद्धा था तो तूने जयसिंह के आगे क्यों सिर झुका लिया था? इससे अवश्य ही तेरी बुद्धिमानी प्रमाणित होती है परन्तु, यदि अब मैं तुझे पराजित न करू तो जयसिंह की कीर्ति मे कालिख लगती है।" इसके बाद दोनों राजाओं मे लडाई होने लगी और दोनों सेनाओं मे भी घमासान युद्ध छिड़ गया। गुजरात की सेना का अध्यक्ष आहड़(१) था और मारवाड़ी सेना मन्त्री गोविन्दराज की अध्यक्षता मे थी। अन्त में, एक बाण के लगते ही आन्न राजा भूमि पर आ गिरा और उसके सामन्तों ने कुमारपाल के आगे आत्मसमर्पण कर दिया।

इस प्रकार आन्न राजा पर घातक वार करने के बाद भी गुजरात का राजा कुछ दिन रणक्षेत्र मे ठहरा रहा। आन्न राजा ने हाथी और घोड़े कुमारपाल को भेट किए और अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ

---

(१) उदयन के एक लड़के का नाम आस्थलदेव था, इसी का अपभ्रश आहड़ है परन्तु इस स्थान पर आहड न होकर चाहड़ हो तो कोई आश्चर्य नहीं। द्व्याश्रय में लिखा है कि चालुक्य के भृत्य ( चाहड आदि ) आन्न की ओर जा मिले और आन्न के भृत्य ( गोविन्दराज आदि ) चालुक्य की तरफ जा मिले ( द्व्याश्रय भा० पृ० ३०३ )

के साथ उसीके झगड़े के बीच आ गए। (१) ज्योंही वह आबू की ओर आगे बढ़ा मृगचर्म की पोशाकें पहने हुए पहाड़ी लोग भी उसकी सहायता करने के लिए आ पहुंचे। आबू का पँवार राजा विक्रमसिंह भी जालंधर (जालौर) की सेना लेकर अपने स्वामी कुमारपाल के साथ हो गया। कुमारपाल की पहुँच का समाचार मिलते ही अन्न राजा अपने मन्त्रियों के परामर्श के विरुद्ध लड़ाई चालू रखने को तैयार हुआ। वह अच्छी तरह तैयारी भी न कर पाया था कि रणवाद्य सुनाई पड़ा और सामने ही पहाड़ की तलहटी में गुजराती सेना आगे बढ़ती दिखाई

---

उत्तम बैलों के साथ कच्छवासी और उत्तम घोड़ों के साथ सिन्धुवासी भी उसके साथ चले।

इक्ष्वाकु, शृगालगत आश्वत्थिक, कर्तीक दाक्षिकूट दाक्षिकन्या और आवमुख के राजा भी अपनी अपनी सेनाओं सहित कुमारपाल से आ मिले।

दाक्षि नगर से पूर्व और पश्चिम की तरफ के प्रदेश के राजा वाहिक ग्राम के भृत्य और दाक्षि तथा पत्तन से पश्चिम की ओर के गांवों के कुमार तथा अन्य मृगचर्म कवल और दूसरे पार्वतीय देशोचित वेश वाले लोग भी उसके साथ थे।

जहाँ पर कफण और पर्ण देश के लोग बसते हैं ऐसी अर्बुदभूमि (आबू) का राजा विक्रमसिंह कुमारपाल का भृत्य गिना जाता था वह भी गढ़ देश के पैदलों सहित तैयार हो गया। चन्द्रावती नगरी के परमार राजा विक्रमसिंह ने इसका राज्य छीनकर उसके भतीजे यशोधवल को दे दिया था और कुमारपाल के उमराव यशोधवलने बल्लालसेन को मार डाला था। (देखो बार राज्य का हिन्दी इतिहास।) यशोधवल विक्रमादित्य का भतीजा होता था।

( ) कच्छ का नाम लाखा फूलाणी और सिंध का नाम गाहोजी फूलाणी के लश्कर भी साथ थे।

विजय और कृष्ण नामक दो सामन्तों को भेजे थे, वे उज्जैन के राजा से मिल गए हैं और गुजरात प्रान्त मे आ पहुँचे हैं तथा अणहिलपुर की ओर बढे चले आ रहे हैं। जिस प्रकार यशोवर्मा को जीत कर

---

कृष्ण नामक विश्वासपात्र सामन्तों को अपनी ओर मिला लिया। शालावत्य, और्ण-वत्य और वैदभृत्य शाखा के लोगों की प्रेरणा से वे बल्लाल से जा मिले और हमारी सेना का रास्ता रोककर खडे हो गए। दूसरे राजाओं की सहायता से उन्होंने अपनी सेना पर दण्ड, मुसल और खड्ग से हमला किया। हमारे कितने ही सुभट रुक गए और आगे नही बढ सके इसलिए कृष्णभूम, पाण्डुभूम और द्विभूम आदि अपने नायक गण आडे रास्ते से ऊपर चढे, अत' शत्रु के बाणों की वर्षा से फैले हुए अन्धकार के सम्पर्क से मूर्छा रूपी अन्धकार में पडने वाले सैनिकों को देखकर हमारे बहुत से सैनिक घबराकर पर्वतादि के ऐसे स्थानों में चले गए जहाँ मनुष्यों का आना जाना नही हो सकता। इस प्रसग को देख कर साम, अनुसाम और प्रतिसाम नीति के प्रयोग में निपुण तथा ज्ञातानुरहस्य अर्थात् चरों ( गुप्तचरों ) द्वारा जान लिया है शत्रु का रहस्य जिसने ऐसे, काक सेनापति ने अपनी तरफ के राजाओं से यों कहना आरम्भ किया, "जो अवलोम ( अर्थात् शत्रु के प्रतिकूल ) और अवसाम ( अर्थात् शत्रु के प्रति ) साम का प्रयोग नही करता है ऐसे मेरे स्वामी कुमारपाल ने मेरे जिस ब्रह्मवर्चस् अर्थात् ब्रह्मतेज की स्तुति की है उसको धिक्कार है, और तुम्हारे जिस राजवर्चस् ( क्षात्र तेज ) और हस्तिवर्चस् की प्रशसा की है उसे भी धिक्कार है। हे राजाओं, जो तुमने दृढ शरीररक्षक कवच धारण कर रखे हैं उन्हें भी धिक्कार है। जब हमारी तुम्हारी उपस्थिति में ही शत्रु इस प्रकार हमारे घर में घुस रहे हैं जैसे हमारा अस्तित्व ही न हो तो फिर बताओ राजा ने हमारा किस लिए पोषण किया है ?"

इस प्रकार काक ने प्रत्येक राजा को फटकारा। तब वे सब अपने प्रतिवर्म के आदर की रक्षा करने के लिए अध्याजिकर्म अर्थात् युद्धकर्म में तत्पर हुए और जिन लोगों से उपनदि, उपगिरि, अन्तर्नद और अन्तर्गिरि व्याप्त हो रहे थे

करने की इच्छा प्रकट की। राजा ने कहा 'तुमने रणक्षेत्र में घायल पड़े हुए सिपाहियों का वध किया है इसलिए तुम्हारा अपराध अक्षम्य है। अन्त में उसने पराजित राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और अणहिलपुर लौट गया।

इसके बाद तुरन्त ही आब राजा का कुल पुरोहित अपने स्वामी की कन्या जल्हणा को लेकर धनराज के नगर में आया और शास्त्रोक्त विधि के अनुसार उसका विवाह कुमारपाल के साथ कर दिया।

जब यह विवाहोत्सव हो ही रहा था तब समाचार मिला कि जिस समय कुमारपाल आब राजा का सामना करने लिए रवाना हुआ था उसी समय उज्जैन के राजा बल्लाल(१) से युद्ध करने के लिए उसने

---

(१) इस विषय में द्व्याश्रय में विस्तारपूर्वक लिखा है कि विजि नाम का व्यक्ति ऐसी कितनी ही जातियों का नेता था जिनकी अर्थ और काम प्राप्ति मात्र ही वृत्ति है और जिनकी कमाई और आजीविका अनियमित रूप से चलती है। वे लोग टोलियां बनाकर इधर उधर घूमते रहते हैं। एक बार विजि ने अचानक आकर कुमारपाल से कहा 'आपने मालवा ( अवन्ति ) के बल्लाल पर जिस दण्डनेता काक को चढ़ाकर भेजा है मैं उसका प्रीतिपात्र हूँ। जिस समय आप आब पर चढ़ाई करने गए और काक को बल्लाल पर चढ़ाई करने भेजा उस समय उसके साथ गोपाल ब्राह्मण के वंशज गोपालि राजन क्षत्रिय के वंशज राजन्य काँची जाति के कान्चम्य दुमाना के अपत्य यौधेय और आर शुभ्र के वंशज शौभ्रेय आदि शस्त्रजीवी लोग थे। जब बल्लाल को काक की चढ़ाई का हाल मालूम हुआ तो वह भी उसका सामना करने के लिए आगे बढ़ा। उस समय उसके साथ रक्षस्, पर्शु दामनि उलपि भीमत्, और मैमत नाम के शस्त्रोपजीवी वर्गों के लोग थे जो क्रमश: राक्षस, पार्शव दामनेय औलपेय भीमत और मैमत कहलाते हैं।

शामीवत्य ( शमीवत् वाला ) आभिजित्य ( अभिजित् वाला ) और शैखावत्य ( शिखावत वाला ) लोगों के द्वारा बल्लाल ने हमारे विजय और

करके वह मालवा के राजा का सामना करने के लिए रवाना हुआ और

---

और भ्रकुटियों पर घाव हो गए थे ऐसे लोग रात दिन चलते चलते पीडित हो गए और अपने अपने स्त्री और वाहन आदि को छोड छोड़ कर जैसे अवसर मिला वैसे ही भाग निकले।

दिन में जिस प्रकार सूर्य शोभित होता है तथा रात दिन जलता हुआ अग्नि जिस प्रकार शोभा पाता है उसी प्रकार जाज्वल्यमान तथा जिसका बल अवाङ्मनसगोचर है ऐसे बल्लाल ने भी दूसरी ओर से चढाई की। हमारे सैनिकों को केवल ग्वालिया समझने वाले बल्लाल ने चमडा, हड्डी और मास के पार निकल जाने वाले तीर चलाए और जो दो दिनों में भी नही तोडा जा सकता था ऐसे राजाओं के चक्र को तोड कर काष्ठ और पाषाण की तरह उन लोगो को दूर फेंकता हुआ वह आपका शत्रु बल्लाल दण्डनायक काक के समीप जा पहुँचा।

उस समय काक ने अपने पक्ष के योद्धाओं को तिरस्कारपूर्वक कहा, "अरे, दो दो तीन तीन अञ्जली मोहरों का मासिक वेतन पाने वाले सुभटो! तुम्हारी आयुष्य अभी दोगुनी बाकी है अथवा तिगुनी, यह तुमही जानते हो, अब तुम इस तरह क्या देखते हो? दो दो तीन तीन अञ्जली रुपए भर वेतन पाने वाले बहादुरो, मैंने तुमसे हाथ जोड़कर जो प्रार्थना की थी क्या वह यों ही व्यर्थ जावेगी?"

इस प्रकार फटकारने पर अपने सुभटों ने शत्रुओं से भी अधिक भयकर युद्ध किया और दो नावों जैसा व्यूह रचाने वाले हमारे सैनिकों ने शत्रु के नौका व्यूह को अर्द्धनाव जैसा कर दिया। उसकी रक्षा करने में अवन्ती के बडे बडे पुरुष मारे गए।

इतने ही में गुर्जरी सेना के ब्राह्मणों के समक्ष पाच राजाओं ने ...ल को उसके हाथी से नीचे गिरा लिया और ब्राह्मण काक दूसरे बहुत से ...ों द्वारा बल्लाल के वध को रोके रोके इससे पहले ही उन्होंने उसका ...माम कर दिया। इसके बाद शिकार करने के पश्चात् जिस प्रकार शिकारी

जयसिंह ने यश प्राप्त किया था उसी प्रकार मल्लाल को जीत कर कीर्ति प्राप्त करने का निश्चय कुमारपाल ने किया। अपनी सेना एकत्रित

---

ऐसे ग्रामग्रामणी अर्थात् मार्गशीर्ष के महिने में पूर्णिमा के दिन आकाश में फैले हुए बादलों के कारण म्लान हुए तारों के समान कांतिवाले अपने अपने मंत्री को उन्होंने वापस बुलाया।

उपपौर्णमास के दिन जिस प्रकार समुद्र गर्जन करता है उसी प्रकार गर्जन करते हुए मलिष्ठ राजा लोग शत्रु पर टूट पड़े। 'यह रणभूमि पंचनद अथवा सप्तगोदावरी के समान स्वर्ग में पहुँचने का साधन तीर्थ है' इस प्रकार कहता हुआ शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसी कान्ति धारण करने वाला दरडनेता काक भी रणस्थल में कूद पड़ा।

जिस प्रकार शरद् ऋतु में पूर्ण चन्द्रमा, और शिकारी-कुत्तों के समूह के बीच में शिकारी शोभित होता है उसी प्रकार वह छत्रपति सेना के बीच में सुशोभित हो रहा था।

शत्रु पक्ष में जो बालक अथवा वृद्ध उसकी दृष्टि में आता था उसको तो वह जीवित छोड़ देता था परन्तु जो जवान योद्धा उसके सामने आ जाता था वह प्राणों से हाथ धो बैठता था।

अस्त्रों से लगी हुई बैल गाड़ियों के चलने से जो रज उड़ रही थी उससे ऐसा घटाटोप छाया हुआ था कि उसमें बहुत सी सेना इस प्रकार समा गई जैसे मृत्यु के मुख में प्राणी बैल समा जाता है।

शुद्ध क्षत्रिय के वंश में उत्पन्न हुए सुभटों में से, जो मालवा को छोड़कर भाग रहे थे जो वृद्ध थे जो बालक थे अथवा जो नपुंसक थे उन पर प्रहार नहीं किया बहुत से वीर जो जाति से ब्राह्मण तो नहीं थे परन्तु अपनी जान बचाने के लिए ऋक्साम अथवा ऋग् युजुर्वेद का गान करने लगे कितनों ही ने गायों और बैलों की तरह मुँह में घास ले लिया। इनके अतिरिक्त जिनके पैरों से लेकर उर तक मर्म स्थान पर चोट लगी थी अथवा जिनकी आंखों

करके वह मालवा के राजा का सामना करने के लिए रवाना हुआ और

---

और भ्रकुटियों पर घाव हो गए थे ऐसे लोग रात दिन चलते चलते पीड़ित हो गए और अपने अपने स्त्री और वाहन आदि को छोड़ छोड़ कर जैसे अवसर मिला वैसे ही भाग निकले।

दिन में जिस प्रकार सूर्य शोभित होता है तथा रात दिन जलता हुआ अग्नि जिस प्रकार शोभा पाता है उसी प्रकार जाज्वल्यमान तथा जिसका बल अवाङ्मनसगोचर है ऐसे बल्लाल ने भी दूसरी ओर से चढाई की। हमारे सैनिकों को केवल ग्वालिया समझने वाले बल्लाल ने चमडा, हड्डी और मास के पार निकल जाने वाले तीर चलाए और जो दो दिनों में भी नहीं तोड़ा जा सकता था ऐसे राजाओं के चक्र को तोड कर काष्ठ और पाषाण की तरह उन लोगों को दूर फेंकता हुआ वह आपका शत्रु बल्लाल दण्डनायक काक के समीप जा पहुँचा।

उस समय काक ने अपने पक्ष के योद्धाओं को तिरस्कारपूर्वक कहा, "अरे, दो दो तीन तीन अञ्जली मोहरो का मासिक वेतन पाने वाले सुभटो! तुम्हारी आयुष्य अभी दोगुनी बाकी है अथवा तिगुनी, यह तुमही जानते हो, अब तुम इस तरह क्या देखते हो? दो दो तीन तीन अञ्जली रुपए भर वेतन पाने वाले बहादुरो, मैंने तुमसे हाथ जोड़कर जो प्रार्थना की थी क्या वह यों ही व्यर्थ जावेगी?"

इस प्रकार फटकारने पर अपने सुभटों ने शत्रुओं से भी अधिक भयकर युद्ध किया और दो नावों जैसा व्यूह रचाने वाले हमारे सैनिकों ने शत्रु के नौका व्यूह को अर्द्धनाव जैसा कर दिया। उसकी रक्षा करने में अवन्ती के बडे बडे पुरुष मारे गए।

इतने ही में गुर्जरी सेना के ब्राह्मणों के समक्ष पाच राजाओं ने बल्लाल को उसके हाथी से नीचे गिरा लिया और ब्राह्मण काक दूसरे बहुत से उस ब्राह्मणों द्वारा बल्लाल के वध को रोके रोके इससे पहले ही उन्होंने उसका काम तमाम कर दिया। इसके बाद शिकार करने के पश्चात् जिस प्रकार शिकारी

उसको युद्ध में हरा कर हाथी पर से मार गिराया।

---

अपने बाघ जैसे कुत्तों के साथ चलता है उसी प्रकार यह अपने योद्धाओं के साथ रवाना हुआ।

यह समाचार सुनकर कुमारपाल ने दूत को पारितोषिक दिया और प्रसन्न होता हुआ जल्दी से वापस चला गया।

इस प्रकार द्व्याश्रय काव्य में तो हस्तनामक काक की अध्यक्षता में ब्राह्मण वर्गों के हाथी बल्लाल के वध का वर्णन है परन्तु अन्य कतिपय काव्यों और शिलालेखों में बल्लाल-वध का श्रेय स्वयं कुमारपाल को दिया गया है जैसे कीर्तिकौमुदी में लिखा है—

युद्ध में बड़े प्रेम से कुमारपाल ने राजा बल्लाल और मल्लिकार्जुन के मस्तकों को इस प्रकार ग्रहण किए जैसे कि वे लक्ष्मी के स्तन ही हों।

गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज से प्रकाशित 'वसन्त-विलास' में भी कुमारपाल द्वारा बल्लाल पर विजय प्राप्त करने का वर्णन है।

'भावनगर-इन्स्क्रिप्शन्स्' नामक पुस्तक के पृष्ठ १८६ पर उद्धृत प्रशस्ति में भी कुमारपाल को 'बल्लाल रूपी हाथी के मस्तक पर कूद पड़ने वाला सिंह' लिखा है।

एपिग्राफिया इण्डिका खण्ड १ के पृ. १ २ में प्रकाशित वडनगर प्रशस्ति के श्लो. १५ से विदित होता है कि चौलुक्याधिपति (कुमारपाल) ने मालवा के अधिपति का मस्तक भगवती दुर्गा को कमल के समान अर्पण किया था वा उसके द्वार पर लटका रहता था। यह मालवनरेश बल्लाल ही हो सकता है।

इन उद्धरणों से यह तो स्पष्ट है कि कुमारपाल ने मालवा प्रदेश को जीत लिया था। बल्लाल-वध विषयक जो वर्णन द्व्याश्रय काव्य में मिलता है उसे केवल कवि-कल्पना ही मान कर नहीं छोड़ देना चाहिए। हस्तनामक काक अवश्य ही एक महान् तेजस्वी विद्वान् और पराक्रमी व्यक्ति हुआ था क्योंकि

इतिहासकार के उपर्युक्त लेख की पुष्टि, आबू पर्वत पर तेजपाल के मन्दिर में प्राप्त एक लेख से होती है, जिसमे लिखा है कि अचलेश्वर और चन्द्रावती के राजा का नाम यशोधवल(१) था। 'उसको जब यह मालूम हुआ कि चालुक्यराज कुमारपाल युद्ध करने के लिए आ रहा है तो वह मालवा के राजा बल्लाल के पास दौडकर गया।' नाँदोल मे एक जैन-पुस्तकालय है जिसमे एक ताम्रपट्ट मिला है, जो ११५७ ई० का है। उसके लेख से विदित होता है कि जिस समय

---

उसका उल्लेख कुमारपाल के इस समसामयिक महाकाव्य मे हुआ है। अन्य प्रशस्तियों आदि में राजा का वैशिष्टय-वर्णन मात्र अभीष्ट रहा है। ]

(१) राजकालनिर्णय में लिखा है कि आबू के वशिष्ठ द्वारा निर्मित होमकुड में से परमार उत्पन्न हुआ। उसके धूमराज, धूमराज के धन्धुक, उसके ध्रुवभट आदि हुए। इसी के वश में विक्रम सवत् ३०० पूर्व सुधन्वा हुआ और वि० स० २० पूर्व भर्तृहरि। उसके बाद वीर विक्रमादित्य गन्धर्वसेन हुए। इनकी ४० वी पीढी में रवपालजी हुआ जो सिन्ध के ठठ्ठ नगर में वि० स० ८६५ में राज्य करता था। इसकी १४ वी पीढी में वही पर दामोजी हुआ जिसके पुत्र जसराज ने ठठ्ठ नगर से आकर गुजरात में गबरगढ को अपनी राजधानी बनाया। जसराज का पुत्र केदारसिंह वि० स० ११२५ में था। उसने गबरगढ से हटाकर तरसगम में अपनी गद्दी स्थापित की। केदारसिह का पुत्र जसपाल हुआ जिसके कान्हडदेव प्रथम हुआ। कान्हडदेव ने अचलेश्वर चन्द्रावती में वि० स० ११३० में अपनी गद्दी स्थापित की। उसका पुत्र ढुण्ढराज हुआ और उसके बाद कान्हडदेव दूसरा। फिर विक्रमसिह, रामदेव और यशोधवल हुए। कुमारपालप्रबन्ध (पृ० १०३) में लिखा है कि, कुमारपाल ने विक्रमसिह को राजसभा में बुलाकर बहुत से सामन्तों के सामने उसका अपमान किया और कैदखाने में डाल दिया तथा उसके स्थान पर उसके भतीजे यशोधवल का राजा बनाया। इससे विदित होता है कि यशोधवल तो कुमारपाल के पक्ष में ही था अत उसका बल्लाल के पक्ष में जाना सभव प्रतीत नही होता। सभवत

"राजाधिराज, मस्माव राजकुल का शृंगार, महाशूरवीर, जिसने अपने शस्त्रबल से शाकम्भरी के राजा को पराजित किया था' ऐसा कुमारपालदेव श्रीमंत अणहिलपुर की गादी पर विराजता था उस समय महाप्रधान वाहड़देव उसका मन्त्री था। इस ताम्रपट्ट में लिखे हुए मन्त्री के नाम के विषय में कुछ गड़बड़ी है क्योंकि मेरुतुंग लिखता है कि वाहड़ उदयन मन्त्री का सौतेला भाई था।(१) कुम्भारिया का

---

वस्तुपाल के लेख के १५ वें श्लोक को गलत समझ लेने के कारण ही यह बात लिखी गई प्रतीत होती है। वह श्लोक इस प्रकार है—

रौद्रचन्द्रकर्णकीर्तिलहरीलिप्तामृतांशुद्युते-
रप्रद्युम्नवशो यशोधवल इत्यासीत्तनूजस्ततः ।
यश्चौलुक्यकुमारपालनृपतिप्रत्यर्थितामागतम्
मत्वा सत्वरमेव मालवपतिं बल्लालमालब्धवान् ॥

भावार्थ—ब्रह्माण्ड में फैली हुई कीर्तिलहरियों से व्याप्त चन्द्रमा के समान कान्तिवाले ( रामदेव ) से कामदेव के वश में न होने वाला ( अतुल सुन्दर ) यशोधवल नाम का पुत्र हुआ जिसने यह जानकर कि चौलुक्यराज कुमारपाल से मालवा के राजा बल्लाल ने शत्रुता करली है उसको ( बल्लाल को ) मार डाला।

(१) प्रबन्धचिन्तामणि से ज्ञात होता है कि उदयन के पृथक् २ स्त्रियों से चार पुत्र थे। 'उदयनस्यपृथक्मातृका चत्वारः सुताः' वाहड़देव आम्बड़ चाहड़ सोल्लाक नामानोऽभवन् अर्थात् अलग अलग माताओं से चार पुत्र थे जिनके नाम वाहड़देव आम्बड़ चाहड़ और सोल्लाक थे। यहां पर जहां चाहड़ लिखा है दूसरी प्रति में 'बाहड़' होगा इसीलिये अंग्रेजी रासमाला में वाहड़ को उदयन का सौतेला भाई लिखा है वास्तव में वह उसका पुत्र था।

प्रबन्धचिन्तामणि की एक प्रति में (१) बाहड़देव (२) आम्बड़देव (३) चाहड़ और (४) सोल्ला लिखा है एक प्रति में सोलदेव भी लिखा है।

लेखक कहता है कि चाहड आन्न राजा से मिला था परन्तु, मेरुतु ग लिखता है कि उदयन के पुत्र वाहड़ ने ऐसा काम किया था। आगे चल कर विदित होगा कि वाहड ने फिर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया था और कुमारपाल ने उसको पुन नियुक्त कर दिया था। इससे

---

कुमारपाल प्रबन्ध में एक स्थान पर ( पृ० ६६ ) बाहड़, आम्बड चाहड और सोला नामक चार पुत्र हुए, ऐसा लिखा है। दूसरे स्थान पर लिखा है कि कुमारपाल ने उदयन को अपना महामात्य बनाया और उसके पुत्र वाग्भट्ट को सर्वराजकार्यभार में उसका सहायक नियुक्त किया।

यह वाग्भट्ट विद्वान् था। उसने वाग्भटालकार नामक एक अलकार-ग्रथ रचा है। इस ग्रथ के चतुर्थपरिच्छेद की समाप्ति पर उसने लिखा है —

बमडसुत्तिसपुडमुत्तिश्र मणिणो पहासमूश्रव्व,
सिरि वाहुड़त्ति तणउ आसि बुहो तस्स सोमस्स।
( ब्रह्माण्डशुक्तिसम्पुटमौक्तिकमणे प्रभासमूह इव।
श्रीवाहड इति तनय आसीद् बुधस्तस्य सोमस्य ॥ )

अर्थात् ब्रह्माण्ड रूपी सीप के मोती, (मणि) से जैसे प्रभासमूह और सोम अर्थात् चन्द्रमा से जैसे बुध, उसी प्रकार सोम (उदयन) से बाहड नामक विद्वान् पुत्र हुआ। यह सकरालकार का उदारहण है। ब्रह्माण्ड रूपी सीप का मोतीमणी यह रूपक, उसका मानों प्रभासमूह यह उत्प्रेक्षा, प्रभासमूह वही हुआ सोम, अर्थात् चन्द्रमा उसका पुत्र, बुध वैसा ही उदयन सोम का बुध, अर्थात् बुद्धिशाली पुत्र बाहड, इसमें श्लेष और जाति अलकार हुए। इस प्रकार इस पद्य में ४ अलकारों का समिश्रण है।

[ गुजराती अनुवाद में सवत् १८४४ और १८४८ की जीववर्धन सूरिकृत टीका की हस्तप्रतियों का उल्लेख है। उनमें वाहड व बाहड पाठ है इस ग्रन्थ की सिंहदेव सूरि रचित टीका काव्यमाला ग्रन्थाङ्क ४८ के रूप में छप चुकी है। राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जयपुर में ग्रन्थ सख्या ७१६१ पर एक सटीक पचपाठ प्रति उपलब्ध है जो अपेक्षाकृत प्राचीन है और १६ वीं शती से अर्वाचीन नही है। उपर्युक्त गाथा का पाठ उमी से लिया गया है।]

"राजाधिराज, प्रख्यात राजकुल का शृंगार, महाशूरवीर, जिसने अपने शस्त्रबल से शाकम्भरी के राजा को पराजित किया था' ऐसा कुमारपालदेव श्रीमंत अणहिलपुर की गद्दी पर विराजता था उस समय महाप्रधान वाहडदेव उसका मन्त्री था। इस ताम्रपट्ट में लिखे हुए मन्त्री के नाम के विषय में कुछ गड़बड़ी है क्योंकि मेरुतुंग लिखता है कि वाहड उदयन मन्त्री का सौतेला भाई था।(१) द्वयाश्रय का

---

वस्तुपाल के लेख के १५ वें श्लोक को गलत समझ लेने के कारण ही यह बात लिखी गई प्रतीत होती है। वह श्लोक इस प्रकार है—

> तेऽप चन्द्रत्विषिकीर्तिलहरीलिप्तामृतांशुद्युते-
> रप्य नन्दनो यशोधवल इत्यासीत्तनूजस्तत: ।
> यश्चौलुक्यकुमारपालनृपतिप्रत्यर्थितामागतम्
> मत्वा मत्वरमेव मालवपति बल्लालमालब्धवान् ॥

भावार्थ—ब्रह्माण्ड में फैली हुई कीर्तिलहरियों से व्याप्त चन्द्रमा के समान कान्तिवाले (रामदेव) से कामदेव के वश में न होने वाला (बहुत सुन्दर) यशोधवल नाम का पुत्र हुआ जिसने यह जानकर कि चौलुक्यराज कुमारपाल से मालवा के राजा बल्लाल ने शत्रुता करली है उसको (बल्लाल को) मार डाला।

(१) प्रबन्धचिन्तामणि से ज्ञात होता है कि उदयन के पृथक् २ स्त्रियों से चार पुत्र थे। अन्यापरमातृका चत्वार: सुता: वाहडदेव आम्बड चाहड सोलाक नामानोऽभवन् अर्थात् अलग अलग माताओं से चार पुत्र थे जिनके नाम वाहडदेव आम्बड चाहड और सोलाक थे। यहां पर जहां चाहड लिखा है दूसरी प्रति में वाहड होगा इसीलिये फार्बस ने रासमाला में वाहड को उदयन का सौतेला भाई लिखा है वास्तव में वह उसका पुत्र था।

प्रबन्धचिन्तामणि की एक प्रति में (१) बाहडदेव (२) आम्बडदेव (३) चाहड और (४) सोल्ला लिखा है एक प्रति में सोलदेव भी लिखा है।

एक बार सोलंकी राजा कुमारपाल अपने दरबार में बैठा था और आने जाने वाले लोगों से मुलाकात कर रहा था, इसी समय कुछ मगण (मागध) लोग भी दरबार में आए और कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन को 'राजपितामह'(१) कह कर उसका कीर्तिगान करने लगे। यह सुनकर कुमारपाल बहुत क्षुब्ध हुआ और कोंकण के घमण्डी राजा(२) को जो अपने आप को चतुरंगी(३) राजा कहता था, नष्ट करने के लिए किसी सामन्त को खोजने लगा। उदयन मन्त्री के पुत्र अम्बड अथवा आम्रभट्ट नामक योद्धा ने इस कार्य को पूरा करने का बीडा उठाया और तुरन्त ही एक सेना की अध्यक्षता प्राप्त करके वह कोंकण के लिए रवाना हो गया। बडी कठिनाई के बाद उसने कालविनी(४) नदी को पार किया और दूसरी पार जाकर डेरा डाला। मल्लिकार्जुन ने वहीं आकर उस पर हमला कर दिया और उसको हराकर भगा दिया। इस प्रकार परास्त सेनापति ने लौट कर राजधानी के पास ही पडाव डाला। उसने काला तम्बू तनवाया, काली पोशाक पहनी और काला ही छत्र धारण किया। इस काले डेरे को देखकर राजा ने तलाश करवाया कि यह किसका लश्कर है? जब उसको समाचार मिला कि अम्बड़ इस

---

(१) कोल्हापुर का महामंडलेश्वर। देखिए टिप्पणी पृ० १०६

(२) समुद्र से घिरे हुए शतानन्द नगर में महानन्द नामक राजा राज्य करता था उसका पुत्र मल्लिकार्जुन कोंकण के शिलाहारवंश का था। इस वंश के तीन ताम्रपत्रों में इन राजाओं के दूसरे पद के साथ राजपितामह पद भी जुड़ा हुआ देखने में आता है। (इण्डिअन एन्टक्वेरी भाग ६ पृ० ३५ व ३८)

(३) चतुर्दिग्विजयी।

(४) चीखली और बलसाड़ तालुके में बहने वाली कावेरी नदी। दक्षिण की कावेरी नदी से इसे भिन्न समझना चाहिए।

विदित होता है कि जिस तिथि को यह लेख लिखा गया था उससे पहले चाहड ने विद्रोह किया होगा और उस समय शायद बाहड मन्त्र के पद पर कार्य कर रहा होगा।

सिद्धराज के राज्य का वृत्तान्त लिखते समय जिस लेख का प्रसंग आया है वह चित्तौड़ के समाधीश्वर मन्दिर में मिलता है। इसमें ११५१ ई०(१) सन् की तिथि लिखी है और कुमारपाल सोलंकी के विषय में इस प्रकार लिखा है- कैसा था वह-जिसने अपनी विलक्षण प्रतिभा के प्रताप से समस्त शत्रुओं को जीत लिया था पृथ्वी पर अन्य राजाओं ने जिसकी आज्ञा शिरोधार्य की थी जिसने शाकम्भरी के राजा को अपने चरणों में झुका लिया जो स्वयं शस्त्र धारण करके शिवालक तक चढ़ाई करता चला गया और बड़े बड़े गढ़पतियों-यहाँ तक कि शालिपुर(२) में भी लोगों को उसके आगे झुकना पड़ा।'

मेरुतुंग लिखता है कि इन घटनाओं के कुछ ही दिनों बाद

---

उदयन के बाद महामात्य होने वाला यह वाग्भट बाहड था और उदयन के मरणावसर की इच्छानुसार जिसको दंडनायक बनाया गया था वह आम्रभट्ट आम्बड अथवा अम्बड था। तीसरा चाहड और चौथा सोलदेव भट—साहाक अथवा सोला था।

(१) टॉड कृत वैस्टर्न इन्डिया पृ० १२७ (ई० सन् ११११) लिखा है यह भूल है।

(२) सपादलक्ष के राजा पर चढ़ाई करके कुमारपाल ने 'शालिपुर' नामक ग्राम में अपना शिविर लगाया था। यह स्थान कहीं चित्तौड़ के पास रहा होगा (देखिए एपिग्राफिआ इंडिका भा० २ पृ० ४२१-२४)

एक बार सोलंकी राजा कुमारपाल अपने दरबार मे बैठा था और आने जाने वाले लोगों से मुलाकात कर रहा था, उसी समय कुछ मगण ( मागध ) लोग भी दरबार मे आए और कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन को 'राजपितामह'(१) कह कर उसका कीर्तिगान करने लगे। यह सुनकर कुमारपाल बहुत क्षुब्ध हुआ और कोंकण के घमण्डी राजा(२) को जो अपने आप को चतुरंगी(३) राजा कहता था, नष्ट करने के लिए किसी सामन्त को खोजने लगा। उदयन मन्त्री के पुत्र अम्बड अथवा आम्रभट्ट नामक योद्धा ने इस कार्य को पूरा करने का बीडा उठाया और तुरन्त ही एक सेना की अध्यक्षता प्राप्त करके वह कोंकण के लिए रवाना हो गया। बडी कठिनाई के बाद उसने कालविनी(४) नदी को पार किया और दूसरी पार जाकर डेरा डाला। मल्लिकार्जुन ने वहीं आकर उस पर हमला कर दिया और उसको हराकर भगा दिया। इस प्रकार परास्त सेनापति ने लौट कर राजधानी के पास ही पडाव डाला। उसने काला तम्बू तनवाया, काली पोशाक पहनी और काला ही छत्र धारण किया। इस काले डेरे को देखकर राजा ने तलाश करवाया कि यह किसका लश्कर है? जब उसको समाचार मिला कि अम्बड इस

---

(१) कोल्हापुर का महामंडलेश्वर। देखिए टिप्पणी पृ० १०६

(२) समुद्र से घिरे हुए शतानन्द नगर में महानन्द नामक राजा राज्य करता था उसका पुत्र मल्लिकार्जुन कोंकण के शिलाहारवंश का था। इस वंश के तीन ताम्रपत्रों में इन राजाओं के दूसरे पद के साथ राजपितामह पद भी जुड़ा हुआ देखने में आता है। ( इण्डिअन एन्टक्वेरी भाग ६ पृ० ३५ व ३८ )

(३) चतुर्दिग्विजयी।

(४) चीखली और बलसाड़ तालुके में बहने वाली कावेरी नदी। दक्षिण की कावेरी नदी से इसे भिन्न समझना चाहिए।

प्रकार कोंकण के राजा से हारकर वापस आ गया है तो उसने मन्त्री को मानभंग के लिए बहुत कुछ दिलासा दिया और उसका आदर सत्कार करके अधिक बलवान् योद्धाओं की एक दूसरी सेना साथ देकर पुनः कोंकण विजय करने के लिए भेजा।

दूसरी बार अम्बड़ ने कलाविणी नदी पर पहुँचकर सेतु बँधवाया और सावधानी से सेना को उस पार उतार कर पहले हमला करने का अवसर प्राप्त किया। इस दूसरे युद्ध में गुजरात की सेना ने विजय प्राप्त की और मल्लिकार्जुन(१) अम्बड़ की तलवार से मारा गया।(२) अम्बड़ ने राजधानी में लूट मचाकर अधिकार कर लिया और सोलंकी राजा की दुहाई फिरवाकर अणहिलवाड़ा लौट आया। भरे हुए दरबार में आकर उसने अपने स्वामी कुमारपाल के चरणों पर शिर रख दिया और कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन का मस्तक भेंट किया। इसके साथ ही उसने सोना मोती जवाहरात बहुमूल्य धातु के बने हुए बर्तन हाथी और सिक्के आदि भी जो उसको लूट में प्राप्त हुए थे भेंट किए।(३) राजा ने दरबार में उसका बहुत सम्मान किया और

---

(१) राव रविराम दुर्गाराम दवे ने इण्डियन एन्टीक्वेरी भाग १२ पृ १५ में लिखा है कि उत्तर कोंकण के शिलारवंश का १७ वां राजा मल्लिकार्जुन था। उसका एक शिलालेख रत्नागिरि जिले के चिपलूण नामक स्थान में शक संवत् १०७८ का और दूसरा बसई में १०८२ का मिलता है।

(२) जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९११ पृ २७४–५ में लिखा है कि मल्लिकार्जुन का वध कुमारपाल के सामन्त् सोमेश्वर चौहान ने किया था।

(३) शृंगारकोटी साड़ी माणक से जड़ा हुआ पछेवड़ा (पट)

मण्डलेश्वर मल्लिकार्जुन की 'राजपितामह' वाली उपाधि भी उसक
प्रदान की। ( ई० ११६१ )

कुमारपाल के अब आगे आने वाले इतिहास मे आचा
हेमचन्द्र(१) की बहुत प्रधानता है। कहते हैं कि 'जिस प्रकार चन्द्रमा व
कान्ति से समुद्र की लहरें आकर्षित होती हैं उसी प्रकार उनकी वार
सुनकर राजा आनन्द-लहरियों मे निमग्न हो जाता था(२) इसलिए ऐ

---

पापक्षय हार, सयोगसिद्धि ( विषापहार ) सिप्रा, बत्तीस स्वर्णकुंभ, छै र
मोतियो का भार, चतुर्दतहस्ति, १२० पातरे ( दासिया ) और १४ करोड सोनै
(स्वर्णमुद्रायें)

शाटी श्रृंगारकोट्याख्या पट माणिक्यनामक,
पापक्षयकर हार मुक्ताशुक्तिं विषापहाम्
हैमान् द्वात्रिंशत कुम्भान मनुभारान् प्रमाणत',
षण्मूटकास्तु मुक्ताना स्वर्णकोटीश्चतुर्दश ॥
विंश शत च पात्राणा चतुर्दन्त च दन्तिना
श्वेत सेदुकनामान दत्वा नव्य नवग्रहम् ॥
( जिनमण्डनगणिकृत कुमारपालप्रबन्ध—पृ० ३६ )

(१) इन्होंने मनुष्य की स्तुति न करने का नियम ले रखा था प
आम्बड का बखान किये बिना इनसे नही रहा गया। उन्होंने उसके ए
लिखा है —

"किं कृतेन न यत्र त्व यत्र त्व किमसौ कलि
कलौ चेद् भवतो जन्म, कलिरस्तु कृतेन किम्"।

उस कृतयुग से हमें क्या, जिसमें तुम नहीं, जहाँ तुम हो वहा कलि
कहाँ है? यदि कलियुग में ही तुम्हारा जन्म है तो सदा कलियुग ही रहे।

(२) श्री हेमचन्द्रसूरीणामपूर्वं वचनामृतम्।
जीवातुर्विश्वजीवाना राजचित्तावनिस्थितम् ॥१॥
( प्रभावकचरित पृ० १८३ )

महापुरुष के विषय में जो थोड़ा बहुत वृत्तान्त बड़भाग्य के साधु से प्राप्त हुआ है उसको यहाँ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। उनके माता पिता का नाम चाचिंग और पाहिणी था। व मोढ़ जाति के बनिये थ और सोरठ तथा गुजरात की दक्षिणी सीमा पर अर्द्धाष्टम देश में धुंधुका ग्राम के रहने वाले थे। उनके पिता कट्टर हिन्दू धर्म को मानने वाले थे और माता मानों जैनधर्म की साक्षात् देवी थी। उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चङ्गदेव (१) रखा गया। जब वह बालक आठ वर्ष का हुआ तब उसी प्रदेश में भ्रमण करते हुए देवचन्द्राचार्य धुंधुका ग्राम में आ पहुँचे। चाचिङ्ग उस समय घर पर नहीं थे। बालक की आकृति देखकर आचार्य ने बहुत आश्चर्य किया और उसकी माता से आग्रह किया कि वह प्रारम्भ से ही उसको जैन धर्म में दीक्षित कराये। यह कहकर वे उस बालक का अपने संरक्षण में रखने के लिए कर्णावती ले गए जहाँ उनका उपासरा था।

जब चाचिङ्ग विदेश से घर लौटे तो चंगदेव का वृत्तान्त सुनकर बहुत दुखी हुए। उन्होंने सौगन्ध खाई कि 'जब तक मैं अपने पुत्र का मुख न देख लूँगा तब तक भोजन नहीं करूँगा।' धर्माचार्य का नाम पता ज्ञात करके

( ) [illegible] । उसकी कुलदेवी थी और गणेश उसका कुलदेव था इसलिए [illegible] दोनों नामों के पहले अक्षर 'च' और 'ग' लिए गये। इसको [illegible] के साथ देव लगाकर "चंगदेव" नाम रक्खा गया। [illegible] (सन् १ [illegible]) में कार्तिक शुक्ला १५ को [illegible] (स [illegible]) में दीक्षा ली और देवमुनि, ऐसा नाम [illegible] ११ में सूरि पद प्राप्त किया और सं० ११२९ ( [illegible] ) में [illegible] अवस्था में स्वर्ग सिधार गये।

वे कर्णावती को रवाना हुए। वहाँ पहुँचकर वे अपने पुत्र को वापस लेने के लिए देवचन्द्र के उपासरे मे गए। उस समय चगदेव उदयन मन्त्री के घर थे, जिसने चाचिंग के पुत्र को जैन धर्म मे दीक्षित कराने का कार्यभार अपने ऊपर ले लिया था। वह इसमे सफल भी हुआ। इस प्रकार चगदेव ने जैन धर्म की दीक्षा ली और उसका नाम हेमचन्द्र पड़ा। थोडे ही समय मे समस्त हिन्दू तथा जैन शास्त्रों के ज्ञाता होकर हेमचन्द्र ने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और अपने गुरु से 'सूरि' की पदवी प्राप्त की।

हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि, जिनदेव-स्तोत्र ( जिस पर १२९२ ई० में लिखी हुई एक टीका प्राप्त होती है ), पवित्र योगशास्त्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुपचरित्र, त्रिंशतिवीतरागस्तोत्र और द्व्याश्रय आदि अनेक ग्रन्थ(१) लिखे हैं। जब कुमारपाल अपनी सेना सहित

---

(१) कुमारपालप्रबोध के अभिप्राय के अनुसार—परम धार्मिक होने के कारण कुमारपाल राजर्षि कहलाता था। उसने २१ ज्ञान-भंडार स्थापित किये जिनमें उसके गुरु हेमाचार्य के रचे हुए ग्रथों को लिखने के लिए ६०० लेखक काम करते थे। उस समय विशेषकर तालपत्र पर पुस्तकें लिखी जाती थीं। एक बार राजा लेखकशाला का निरीक्षण करने के लिए गया और वहा पर लेखकों को कागज पर लिखते देख कर उसे खेद हुआ उसने यह नियम किया कि जब तक लेखकशाला में तालपत्र आकर न पहुच जावेंगे तब तक भोजन नहीं करूगा। इस चमत्कारी रीति से उसने अपने बाग में से तालपत्र मगवाकर लेखकों को दिये और फिर पारण किया। हेमाचार्य के रचे हुए ग्रथों में से हैमव्याकरण और हैमकोष समस्त भारत में बहुत प्रसिद्ध है। हैमव्याकरण के ८ सूत्राध्याय हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में ६३ शलाका पुरुषों के चरित्र हैं ( २४ तीर्थंकर, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण,

महापुरुष के विषय में जो थोड़ा बहुत वृत्तान्त बड़वाणा के साधु से प्राप्त हुआ है उसको यहाँ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। उनके माता पिता का नाम चाचिग और पाहिणी था। वे मोढ जाति के बनिये थे और सोरठ तथा गुजरात की दक्षिणी सीमा पर अर्द्धोक्रम देश में धुंधुका ग्राम के रहने वाले थे। उनके पिता कट्टर हिन्दू धर्म को मानने वाले थे और माता मानों जैनधर्म की साक्षात् देवी थी। उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चङ्गदेव (१) रखा गया। जब वह बालक आठ वर्ष का हुआ तब उसी प्रदेश में भ्रमण करते हुए देवचन्द्राचार्य धुंधुका ग्राम में आ पहुँचे। चाचिग उस समय घर पर नहीं थे। बालक की आकृति देखकर आचार्य ने बहुत आश्चर्य किया और उसकी माता से आग्रह किया कि वह प्रारम्भ से ही उसको जैन धर्म में दीक्षित करावे। यह कहकर वे उस बालक को अपने संरक्षण में रखने के लिए कर्णावती ले गए जहाँ उनका उपासरा था।

जब चाचिग विदेश से घर लौटे तो चंगदेव का वृत्तान्त सुनकर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने सौगन्ध खाई कि 'जब तक मैं अपने पुत्र का मुख न देख लूँगा तब तक भोजन नहीं करूँगा। धर्माचार्य का नाम पता ज्ञात करके

---

(१) चामुण्डा उसकी कुलदेवी थी और गोनेश उसका कुलदेव था इसलिए इन दोनों नामों के पहले अक्षर 'च' और 'ग' लिए गये। इसको सार्थक करने के लिए चग के साथ देव लगाकर "चंगदेव" नाम रक्खा गया। चंगदेव का जन्म सं. ११४५ (सन् १०८८) में कार्तिक शुक्ला १५ को हुआ था। सं. ११५४ (सन् १०९६) में दीक्षा ली और देवमुनि ऐसा नाम करण किया गया। सं. ११६६ में 'सूरि' पद प्राप्त किया और सं. १२२९ (११७३ ई.) में ८४ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिधार गये।

के मरणोत्सव(१) के समय कुछ शैवों ने मार धाड की थी, इसलिए उन्होंने सोचा कि 'या तो अपना राज्य हो अथवा राजा अपने वश मे हो, तब काम चल सकता है।'(२) उदयन मन्त्री ने आचार्य का राजा से परिचय कराया और राजा ने भी खम्भातवाली भविष्यवाणी तथा अपनी प्रतिज्ञा को याद करके उनका बहुत आदर सत्कार किया और स्वस्थ मन से उनसे बाते करने लगा। राजा पर हेमचन्द्र के बढते हुए प्रभाव को देखकर उनके पास रहने वाले ब्राह्मण बहुत डरे, और उन्होंने उस समय उन पर बहुत से अपवाद भी लगाए। उनमे से शायद सबसे बड़ा भारी अपवाद यह था कि वे सूर्य का पूजन नहीं करते थे। हेमचन्द्र राजनीति जानते थे और अपने विपक्षियों के धर्म पर आक्षेप करने व उसका विरोध करने की अपेक्षा अपने धर्म की विशालता प्रमाणित करने की अधिक इच्छा रखते थे इसलिए उन्होंने ऐसा उत्तर

---

सस्कृत द्व्याश्रय, और वृत्ति ( इतिहास और व्याकरण साथ साथ सिखाने के लिए रचा हुआ ग्रथ ) (१६) प्राकृत द्व्याश्रय और वृत्ति (इ तिहास और व्याकरण का ग्रथ ) (१७) महावीरद्वात्रिंशिका ( लघुजैन काव्यमाला में प्रकाशित ) (१८) हेमवादानुशासन, वीतराग स्तोत्र ? पाडव-चरित्र ? (२०) जातिव्यावृत्ति (न्याय) ? ( २१ ) उपदेशमाला ? (२२) अन्यदर्शन वादविवाद ? (२३) गणपाठ ?

(१) जब कोई स्त्री अथवा पुरुष मरता है तो भक्तजन शोक न मनाकर उत्सव मनाते हुए मुर्दे को ले जाते हैं।

(२) आपण पइ प्रभु होइअ, कई प्रभु कीजइ हत्थि।
कज्ज करिवा माणुसह, बीजउ मागु न अत्थि ॥
( प्र चि पृ १३२ )

मालवे में था तभी हेमाचार्य उसके पास पहुँच थे क्योंकि उनकी माता

---

९ वासुदेव १२ चक्रवर्ती)। कुमारपाल इस ग्रंथ को सुनहरी व रुपहरी अक्षरों में सुन्दर लिखवाकर अपने महल में ले गया और रात को जागरण करवाकर प्रातःकाल पट्टगज पर पधराकर इस पुस्तक को बड़ी धूम-धाम से महोत्सव मनाता हुआ धर्मशाला में लाया और वहां पर विधिपूर्वक पूजन करके हेमाचार्य के मुख से उसका श्रवण किया। इसी प्रकार योगशास्त्र, विंशति वीतरागस्तवन ११ अंग १२ उपांग की भी एक एक प्रति स्वर्णादि अक्षरों में लिखवाकर उसने उपर्युक्त विधि से उनका श्रवण किया था।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमाचार्य रचित ग्रंथों की सूची इस प्रकार है :—

क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्व्याश्रया—
लङ्कारौ प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्रं नवम्।
तर्कः संजनितो नवो जिनवरादीनां चरित्रं नवं
बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतो दूरतः॥"

(१) अध्यात्मोपनिषद् (योगशास्त्र) (२) शब्दानुशासन (आठ प्रकरणों में १८ हजार श्लोकों का पूरा ग्रंथ) (३) अनेकार्थसंग्रह (निर्णयसागर प्रेस द्वारा अभिधानसंग्रह के दूसरे भाग में प्रकाशित) (४) अनेकार्थकोष (५) अभिधान चिन्तामणि (हैमीनाम माला निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित) (६) अभिधान चिन्तामणि परिशिष्ट (निर्णयसागर से प्रकाशित) (७) अलंकारचूडामणि काव्यानुशासनवृत्ति (अलंकार का ग्रन्थ) (८) उणादिसूत्र वृत्ति उणादिसूत्र विवरण छन्दोनुशासन वृत्ति (९) देशी नाममाला रत्नावली किंवा देशी शब्द संग्रहवृत्ति (बम्बई संस्कृत माला अंक १७) (१०) धातुपाठ और वृत्ति, धातु पारायण और वृत्ति धातुमाला निघण्टुकोष (११) बलाबलसूत्र बृहद् वृत्ति विभ्रमसूत्र (हेमचन्द्र का रचित है या नहीं?) (१२) सिद्ध हेमशब्दानुशासन [illegible] धातुगर्भ गणरत्नमाला और शेषसंग्रह सारोद्धार (१३) लिंगानुशासन लिंगानुशासन वृत्ति और लिंगानुशासन विवरण (१४) त्रिषष्टि शलाकापुरुषचरित्र परिशिष्ट पर्व (१५) हेमन्यायार्थमंजूषा—मंजूषिका (१६)

के मरणोत्सव(१) के समय कुछ शैवों ने मार धाड़ की थी, इसलिए उन्होंने सोचा कि 'या तो अपना राज्य हो अथवा राजा अपने वश मे हो, तब काम चल सकता है।'(२) उदयन मन्त्री ने आचार्य का राजा से परिचय कराया और राजा ने भी खम्भातवाली भविष्यवाणी तथा अपनी प्रतिज्ञा को याद करके उनका बहुत आदर सत्कार किया और स्वस्थ मन से उनसे बातें करने लगा। राजा पर हेमचन्द्र के बढते हुए प्रभाव को देखकर उनके पास रहने वाले ब्राह्मण बहुत डरे, और उन्होंने उस समय उन पर बहुत से अपवाद भी लगाए। उनमे से शायद सबसे बडा भारी अपवाद यह था कि वे सूर्य का पूजन नहीं करते थे। हेमचन्द्र राजनीति जानते थे और अपने विपक्षियों के धर्म पर आक्षेप करने व उसका विरोध करने की अपेक्षा अपने धर्म की विशालता प्रमाणित करने की अधिक इच्छा रखते थे इसलिए उन्होंने ऐसा उत्तर

---

सस्कृत द्व्याश्रय, और वृत्ति ( इतिहास और व्याकरण साथ साथ सिखाने के लिए रचा हुआ ग्रथ ) (१६) प्राकृत द्व्याश्रय और वृत्ति (इ तिहास और व्याकरण का ग्रथ ) (१७) महावीरद्वात्रिंशिका ( लघुजैन काव्यमाला में प्रकाशित ) (१८) हेमवादानुशासन, वीतराग स्तोत्र ? पाडव-चरित्र ? (२०) जातिव्यावृत्ति (न्याय) ? ( २१ ) उपदेशमाला ? (२२) अन्यदर्शन वादविवाद ? (२३) गणपाठ ?

(१) जब कोई स्त्री अथवा पुरुष मरता है तो भक्तजन शोक न मनाकर उत्सव मनाते हुए मुर्दे को ले जाते हैं।

(२) आपण पइ प्रभु होइअ, कई प्रभु कीजइ हत्थि।
कज्ज करिवा माणुसह, बीजउ मागु न अत्थि॥
( प्र चि पृ १३२ )

दिया कि जिससे क्षत्रियों के महान् देवता सूर्य में उनकी आस्था होने की बात राजा के समझ में आ गई। उन्होंने उत्तर दिया 'इस तेज के महिमाधाम भंडार ( सूर्य ) को मैं निरन्तर अपने हृदय में रखता हूँ(१), और इसके अस्त होने पर मुझे इतना दुःख होता है कि मैं भोजन नहीं करता हूँ। (२) उन्होंने अपने इस नीतिपूर्ण कथन के प्रमाण जैन तथा हिन्दू दोनों ही शास्त्रों में से दिए। इसी प्रकार जब एक बार कुमारपाल ने पूछा कि 'तुम सोच कर मुझे कोई ऐसा धर्म-कार्य बताओ कि जिसमें मैं धन खर्च करूँ' तो उस समय उन्होंने समुद्र की लहरों की थपेट से भग्न हुए देवपट्टण स्थित सोमेश्वर के ( काष्ठमय ) देवालय का जीर्णोद्धार कराने की सलाह दी।(३)

---

(१) खैरखंभ के विषय में देखो टिप्पणी पृ १८ १८ (पूर्वार्द्ध में)

(२) यह अस्तागमी व्रत कहलाता है।

श्री हेमचन्द्राचार्य का कहा हुआ श्लोक इस प्रकार है —

अधाम धामधामाई वयमेव हृदिस्थितम्।

यस्यास्तव्यसने जाते त्यजामो भोजनं यतः ॥'

(३) भावनगर के प्राकृत और संस्कृत लेखों की अंग्रेजी पुस्तक पृ १८६ में भावबृहस्पति का यह कार्य सौंपने के विषय में लेख है।

अस्ति श्रीमति कान्यकुब्जविषये वाराणसी विश्रुता

पुर्य्यस्यामधिदेवता कुलपदं धर्मस्य मोक्षस्य च।

तस्यामीश्वरशासनाद् द्विजवरोऽभूद् ब्राह्मणमग्रम्

... पाशुपतव्रत च विदधे गंडेश्वरः सर्ववित् ॥५॥

भावार्थ—कान्यकुब्ज देश में वाराणसी नाम की विख्यात पुरी है जो अधिदेवता ( विश्वनाथ ) का निवासस्थान और धर्म तथा मोक्ष का धाम है।

द्व्याश्रय मे इस जीर्णोद्धार का वर्णन मिलता है और राजपूताना के इतिहास लेखक को भी देवपट्टण मे देवकाली के मन्दिर मे इस विषय का एक लेख मिला था। यह लेख पहले सोमेश्वर के मंदिर

---

वहा पर महादेवजी की आज्ञा से ( भाव बृहस्पति के रूप में एक उत्तम ब्राह्मण के घर नन्दीश्वर ने अवतार लिया। ( क्योंकि शिवजी ने जीर्णोद्धार कराने की आज्ञा नन्दीश्वर को ही दी थी ) उस विद्वान् ब्राह्मण ने महादेव जी से दीक्षा ली और फिर वह तपोनिधि तीर्थयात्रा करने व राजाओं को दीक्षा देने के लिए तथा धर्मस्थलो की रक्षा करने के लिए काशी से रवाना हुआ। वह फिरता फिरता धारा नगरी में जा पहुचा।

> यद्यन्मालवकान्यकुब्जविषयेऽवन्त्या सुतप्त तपो
> नीता' शिष्यपद प्रमारपतय सम्यङ्मठा पालिता ।
> प्रीत श्रीजयसिहदेवनृपतिर्भ्रातृत्वमात्यन्तिकम्
> तेनैवास्य जगत्त्रयोपरिलसत्यद्यापि धीजृम्भितम् ॥८॥

भावार्थ—वहाँ से वह यात्रा करता हुआ मालव, कान्यकुब्ज, और अवन्ती देश में गया, जहाँ तप किया और परमार राजाओं को अपना शिष्य बनाया तथा मठों का भली प्रकार रक्षण किया। उस समय अवन्ती में जयसिंह देव राजा राज्य करता था जिसने प्रसन्न होकर उससे अत्यन्त भ्रातृभाव स्थापित किया। इसीलिए आज भी तीनों लोकों में उसकी बुद्धि की प्रशसा फैली हुई है।

'जब चक्रवर्ती सिद्धराज जयसिंह स्वर्ग गया तब उसकी गद्दी पर अति प्रतापशाली और राजा बल्लाद ( ल ) तथा अन्य जगली राजाओं रूपी हाथियों के मस्तकों पर आघात करने में सिंह के समान कुमारपाल बैठा। राजा कुमारपाल तीनों लोकों में कल्पतरु के समान था। उसके समय में भाव ( विद्वान् ) बृहस्पति ने उससे देवपट्टण के जीर्ण देवालयों का उद्धार करने के लिए प्रार्थना की। इस पर कुमारपाल ने प्रसन्न होकर गार्गेय वशोत्पन्न भावबृहस्पति को सर्वेश गण्डेश्वर की पदवी दी और तुष्टिदान में आभूषण तथा राजमुद्रा (मोहर)

में था इसमें वलभी संवत् ८५० ( विक्रम संवत् १२२५ व ११६९ ई० ) खुदा हुआ है और निम्नलिखित वृत्तान्त लिखा है:—

कनौज का ब्राह्मण भाव बृहस्पति यात्रा करने के लिये काशी से निकला और अवन्ती तथा धारा नगरी में आकर पहुँचा। उस समय

---

दी। भावबृहस्पति ने कैलास जैसा विशाल महादेव का प्रासाद तैयार कराया और राजा ने इससे प्रसन्न होकर उसकी वंशपरम्परा के लिए गंडस्थ ( मेऌठा ) का पद दिया।

> स्वमर्यादा विनिर्म्माय स्थानकोद्धारहेतवे।
> पञ्चोत्तरां पञ्चशतीमार्याणा योऽभ्यपूजयत् ॥२३॥
> देवस्य दक्षिणे भागे उत्तरस्यां तथा दिशि।
> विधाय विषमं दुर्गं प्राकारमतमः पुरम् ॥२४॥

मर्यादापूर्वक स्थानों का जीर्णोद्धार कराने के लिये ५ ५ आर्यपुरुषों (ब्राह्मणों) का वरण (पूजन) किया। देवमन्दिर के दक्षिणी और उत्तरी भाग में कोट बैठवाकर नगर का विस्तार किया।

> गौर्या भीमेश्वरस्याथ तथा देवकपर्दिनः।
> सिद्धेश्वरादिदेवाना यो हेमकलशान् दधौ ॥२५॥
> नृपशाला च यश्चक्रे सरस्वत्याश्च कूपिकां।
> महानसस्य शुद्ध्यर्थं सुस्नापनकलाय च ॥२६॥
> कपर्दिन पुरोभागे सुस्तम्भा पट्टशालिका।
> रौप्यप्रणाल देवस्य मत्तकासनमेव च ॥२७॥
> पापमोचनदेवस्य प्रासादं जीर्णमुद्धृतम्।
> तत्र चीनं पुण्यरश्चक्रे तथा सोपानमेव च ॥२८॥
> येनाऽकिमत्त महुशो ब्राह्मणाना महापथा।
> विष्णुपूजनदानादीनां च मौद्धारमचीकरत् ॥२९॥

वहाँ जयसिंहदेव राज्य करता था। परमार राजा तथा उसके कुटुम्ब के सभी लोगों ने उसको गुरु करके माना और राजा ने उसको 'भाव' कह कर सम्बोधन किया।"

---

नवीननगरस्यान्त' सोमनाथस्य चाध्वनि ।
निर्मिते वापिके द्वे च तत्रैवापरचण्डिका ॥३०॥ युग्मम्
गंडेनाकृत वापिकेयममला स्फारप्रमाणामृत—
प्रख्या स्वादुजला महेलविलसन्नूत्कारकोलाहलै ॥
भ्राम्यद्भूरितराग्नट्टघटिकामुक्ताम्बुधाराशतै—
र्या पीत घटयोनिनापि हसतीवाम्भोनिधिं लक्ष्यते ॥३१॥
शशिभूषणदेवस्य चण्डिका सन्निधिस्थिता ।
यो नवीना पुनश्चक्रे स्वश्रेयोराशिलिप्सया ॥३२॥

उपर्युक्त श्लोकों में गड बृहस्पति ने जो जो कार्य किये उनका वर्णन है:—

एतस्याऽभूदिंदुसुन्दरमुखी पत्नी प्रसिद्धान्वया
गौरीव त्रिपुरद्विषो विजयिनी लक्ष्मी मुरारेरिव ।
श्रीगगेव सरस्वतीव यमुनेवेहाप्रकीर्त्या गिरा
कान्त्या सोढलसम्भवा भुवि महादेवीति या विश्रुता ॥३५॥

जैसे महादेवजी की पार्वती और विष्णु की लक्ष्मी, इसी प्रकार कीर्ति में गगा जैसी, वाणी में सरस्वती के समान और कान्ति में यमुना के सदृश, सोढल वश में उत्पन्न हुई ससार में महादेवी के नाम से विख्यात उसकी पत्नी हुई।

सिद्धाश्चत्वारस्ते दशरथसमेनास्य पुत्रोपमाना. ॥
आद्यस्तेषामभवदपरादित्य नामा ततोभूद्रत्नादि ।
त्य • ....... हे ॥
अन्य. सोमेश्वर इति कृती भास्करश्चापरोभू—
देते रामादिभिरुपमिता सत्यसौभ्रात्रयुक्ता. नि
द्रव विनिहिता वाहव श्रीमुरारे ॥३८॥

स्वर्गारोहण के समय सिद्धराज जयसिंह चक्रवर्ती राजा था। उसके बाद कुमारपाल उसकी गद्दी पर बैठा और भाव बृहस्पति उसका प्रधान मन्त्री हुआ। कुमारपाल तीनों लोकों में कल्पतरु के समान था। उसने अपनी राजमुद्रा भण्डार और सब कुछ बृहस्पति के अधिकार में दे दिए और आज्ञा दी कि 'देवपट्टण का देवालय गिर गया है जाओ और उसका जीर्णोद्धार कराओ।' भाव बृहस्पति ने देवालय का जीर्णोद्धार करवा कर उसको कैलास के समान सुन्दर बनवा दिया और पृथ्वीपति [ राजा ] को अपना काम दिखाने के लिए बुलाया राजा उसके कार्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और गुरु की प्रशंसा करने लगा। उसने कहा 'मेरा हृदय बहुत प्रसन्न हुआ है। मेरे राज्य में जो मुख्य स्थान है यह मैं तुम्हें व तुम्हारे पुत्र को देता हूं।"

इस मंदिर का जीर्णोद्धार ( १ ) कराने के लिए एक समिति नियुक्त की गई थी जब इसकी नींव रखी गई तो समिति ने कुमारपाल

[illegible] की तरह उसके चार पुत्र हुए जिनमें पहला अपरादित्य, दूसरा [illegible] तीसरा [illegible] और चौथा भास्कर था।

(१) पाटन [illegible] भी संवत् ८५ (वि सं. १२२५, ई सं ११६९) का [illegible] है उससे विदित होता है कि सोम अर्थात् चन्द्रमा ने इस मंदिर [illegible] बनाया [illegible] फिर [illegible] ने इसको रूपा (चांदी) का बनवाया [illegible] और फिर कुमारपाल ने [illegible] पर्वत जैसा बना दिया।

[illegible] अपनी [illegible] की अवस्था में सन् १२९९ ई० में हिन्दुस्थान की यात्रा करने के लिए आया था। उस समय वह पाटण भी गया था।

के पास शुभ समाचार भेजा। राजा ने वह पत्र हेमाचार्य को दिखाया और पूछा कि 'अब ऐसा उपाय बतलाओ कि जिससे यह कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जावे।' इस पर सूरि ने मन्दिर के शिखर पर ध्वजा चढने तक मासाहार अथवा स्त्री-प्रसग का त्याग करने की सलाह दी। राजा ने इस बात को स्वीकार किया और महादेव जी की मूर्ति पर जल छोड कर कहा "मैं मासाहार का त्याग करता हूँ।" जब दो वर्ष बीतने पर मन्दिर बनकर तैयार हो गया और कुमारपाल उसका शिखर चढाकर

---

उसने अपने 'बोस्तों' नामक ग्रन्थ के आठवें भाग के अन्तिम प्रकरण 'हिकायत सफर हिन्दुस्तान और मूर्ति पूजकों की गुमराही' मे यहा का हाल लिखा है। वह लिखता है कि "सोमनाथ में मैंने एक हाथीदात की मूर्ति देखी, वह जडाऊ थी और मक्का में जैसी मनात नाम की मूर्ति है वैसी ही विशाल तथा उसी आकृति की यह मूर्ति थी। वह ऐसी थी कि उसके जोड़ की दूसरी मूर्ति देखने में नहीं आई। इस सुन्दर मूर्ति के दर्शन करने के लिए दूर दूर के यात्री आते थे और चीन तथा महाचीन के लोग इसमें बहुत श्रद्धा रखते थे। मेरा एक साथी था, उसने कहा, 'यह मूर्ति चमत्कारिक है और आशीर्वाद देने के लिए हाथ ऊपर उठाती है, यदि तुम्हें चमत्कार देखना है तो आज रात को यहां पर ठहरो।' मैं रात को वही पर ठहर गया, मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई पहलवान अन्धकूप में गिर गया हो। जिंध लोग मेरे आसपास पूजन कर रहे थे। उन्होंने हाथ भी नहीं धोये, उन साधुओं को पानी का नाम भी नही सुहाता था और उनमें से जगल में पडे सड़ते हुए मुर्दे की सी दुर्गन्ध आती थी। सुबह होते ही गाव के तथा बाहर के लोग खचाखच मन्दिर में भर गए और मैं रात के जागरण तथा गुस्से से घबरा गया। उसी समय मूर्ति ने हाथ ऊँचा किया। तब मेरे साथी ने हसकर कहा, "अब तो तुम्हे विश्वास हो गया होगा कि मैंने सच कहा था।' उसी सनय मैं हाथीदात की मूर्ति के पास गया, उसका चुम्बन किया और उसको मानने के लिए कुछ दिन काफिर बन कर रहा तथा जिंध पुस्तकों की बातें मानकर ब्राह्मण बना। जब मन्दिर के सब लोगों का मुझ—

ध्वजा फहराने की तैयारी करने लगा, तब उसने आचार्य से कहा 'अब मुझे इस शपथ से मुक्त कर दो।' हेमचन्द्र ने कहा "देखो!

---

विश्वास हो गया तो एक दिन रात के समय किवाड़ बन्द करके मैं चारों तरफ तलाश करने लगा। तब मैंने देखा कि एक पुजारी हाथ में डोरी लिए हुए एक के पर्दे की आड़ में बैठा हुआ है। जब वह डोरी खींचता था तो मूर्ति का हाथ ऊँचा हो जाता था। मुझे देखकर वह ब्राह्मण बहुत शर्मिन्दा हुआ और भागने लगा परन्तु मैंने उसे पकड़ कर कुए में डाल दिया। जो मनुष्य मेरा साथी बना हुआ था उसको भी मैंने यह समझ कर मार डाला कि पूरा हाल मालूम होने पर वह मुझे जीता न छोड़ेगा। इसके बाद वहाँ से निकलकर यमन व अरब के मुल्कों में होता हुआ मैं यहाँ आ पहुँचा।"

कितने ही लोगों का कहना है कि शेख सैअदी ने जिस मूर्ति के विषय में लिखा है वह सोमनाथ की ही मूर्ति थी परन्तु प्रायः शिव मन्दिरों में तो मूर्तियों की प्रतिष्ठा न होकर लिंग की प्रतिष्ठा होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त वर्णन किसी जैन मन्दिर का है क्योंकि शेख साहब ने जिस जिंद अथवा जिन्द शब्द का प्रयोग किया है वह 'जिन' का अपभ्रंश मालूम होता है। पुजारियों का वर्णन करते हुए भी उन्होंने लिखा है कि उनमें गंध आती थी और उन्हें पानी अच्छा नहीं लगता था यह बात भी उन्हीं (जिन जैन) लोगों के लिए लागू पड़ती है।

कुमारपाल के बाद लगभग एक सौ वर्ष तक इस मन्दिर में कोई परिवर्तन नहीं हुआ जान पड़ता परन्तु, जब सन् १२९७ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने भाई अलफखाँ और प्रधान मन्त्री नुसरत खाँ को गुजरात विजय करने के लिए भेजा तब उस मूर्ति को आघात पहुँचा। इस घटना के एक सौ वर्ष बाद मुजफ्फर शाह प्रथम ने पाटण पर चढ़ाई की और हिन्दुओं के समस्त देवालयों का नाश करके उनकी जगह मस्जिदें बनवाईं अथवा उनका आकार ही बदल दिया। इसके बाद १४९१ ई० में फरिश्ता के लेखानुसार, महमूद शाह प्रथम ने जूनागढ़ के राव पर चढ़ाई की और उस समय उसने सोमपुर के देवालय

तुमने इस व्रत का पालन किया है इसीलिए तुम महादेव के सम्मुख खडे होने योग्य हुए हो, जब तुम यात्रा करके वापस लौटोगे तब इस प्रतिज्ञा को छोड़ने का अवसर आवेगा।" ब्राह्मणों ने राजा को समझाया कि हेमचन्द्र सोमनाथ को नहीं मानते, इसलिए यात्रा मे राजसघ के साथ चलने की आज्ञा इनको भी होनी चाहिए, इससे सब

---

को नष्ट किया और वहाँ से बहुत सा धन लूट कर ले गया। फिर, महमूद बेगढ़ा नें (१४५६–१५१२ ई०) इस देवालयं को तोड कर इसके स्थान पर मसजिद बनवाई। अन्तिम आक्रमण मुजफ्फर द्वितीय का हुआ जान पड़ता है १५१३–१५२६ ई०)। इन बातो से पता चलता हैकि मुसलमान लोग मन्दिर और मूर्तियाँ तोड जाते थे और हिन्दुओं द्वारा उनमें पुन स्थापना की जाती थी। बाद में बहुत से देवालयो का बाहरी आकार मस्जिद का सा बनवाया जाने लगा, इसका कारण यह जान पडता है कि वे लोग उनको मुसलमानी इमारत समझ कर नुकसान नही पहुँचाते थे।

कुमारपाल के बाद, सरस जीर्णोद्धार, जूनागढ के चूडासमा रा' चौथे खँगार (स० १२७६–१३३३ में) ने कराया जिसका वृतान्त गिरनार पर मिले हुए दो लेखों से ज्ञात होता है।

मेरठ की तवारीख से विदित होता है कि मुसलमानों ने सोमनाथ के मन्दिर को तोड़फोड़ कर मसजिद के आकार का बना दिया था और वह बिलकुल खडहर मात्र रह गया था। सवत् १८४० ( १७८३ ई० ) तक, जब न्यामत खाँ के बाद शेखमियाँ गद्दी पर बैठा था, उसका जीर्णोद्धार नही हुआ था। होल्कर मल्हार राव बहादुर की महागुणवती रानी अहल्याबाई ने इसको फिर से बनवाया। अहल्याबाई (१७६५–१७९५ ई०) ने अपने पौत्र मल्हार राव की मृत्यु के बाद में सारा राजकाज अपने हाथ में लिया था। उसने सोमनाथ के मन्दिर के जीर्णोद्धार के अतिरिक्त जगन्नाथ, नासिक, इलोरा, नीमार, महेश्वर, द्वारका गया, केदारनाथ, रामेश्वर आदि पवित्र स्थानों का भी पुनर्निर्माण कराया था।

कुछ विदित हो जावेगा। राजा ने इस सलाह को मानकर इसके सार ही कार्य किया। हेमचन्द्र ने तत्काल उत्तर दिया 'मुझे मनुष्य भोजन करने के लिए आग्रह करने की आवश्यकता नहीं है। साधु तो जीवन ही यात्रा है इसमें राजाज्ञा की आवश्यकता ही क्या ' यह तय हुआ कि धीरे-धीरे पैदल यात्रा करते हुए, शत्रुञ्जय और नार के देवस्थानों के दर्शन करते हुए आचार्य कुमारपाल से देवपट्टन में आकर मिलेंगे। अन्त में राजा अपने संघ के साथ आगे हुआ सोमेश्वर के नगर के पास आ पहुँचा। श्री बृहस्पति भी जो काम की देख रेख के लिए नियुक्त थे राजा को उस स्थान पर ले जाने को आ पहुँचे जहां उन्होंने राजसंघ के ठहरने का प्रबन्ध रक्खा था। उधर हेमचन्द्र भी संघ में आ मिले और जब राजा ने आनन्द और राजसी ठाठ बाट के साथ गाजे बाजे सहित नगर प्रवेश किया। फिर सोमेश्वर के मन्दिर की पैड़ियों पर चढ़कर मा जी को साष्टांग दण्डवत की। हेमचन्द्र और बृहस्पति ने भी देव के दरवाजे में खड़े होकर कहा 'इस भव्य देवालय में निश्चय कैलाशवासी महादेव विराजमान हैं।" फिर मन्दिर में प्रवेश करके लिंग (१) का विधिपूर्वक पूजन कर चुकने के बाद वे बोले

---

नर्मदा नदी के तट पर शङ्कराचार्य की पुत्री मुक्ता बाई अपने पति यशवन्त पौड़िया के साथ सती हुई थी। उसके स्मारक में उन्होंने महेश्वर में एक मन्दिर का निर्माण कराया था। इसके १ वर्ष बाद गायकवाड़ सरकार के दीवान विठ्ठलराव देवाजी ने जिनको काठियावाड़ का सूबेदार नियुक्त किया गया था पर अपना बड़ा नक्कारखाना व धर्मशाला बनवाये

(१) कुमारपालप्रबन्ध में इस स्तुति के श्लोक इस प्रकार लिखे हैं—

भगवन् ! तुम्हारा कोई भी स्थान हो, कोई भी काल हो, तुम्हारे कुछ भी नाम हों और कैसी भी प्रकृति हो, परन्तु तुम्हारी स्थिति है। तुम वह हो जिसमे पाप-कर्म नहीं है, जिसमे कर्म के फलस्वरूप पाप नहीं है, तुम एक ईश्वर हो, मै तुमको प्रणाम करता हूँ। जिसने, माया के उन बन्धनों को तोड दिया है जो ससार में आवागमन के बीजस्वरूप हैं, मै उस परमात्मा को नमस्कार करता हूँ, चाहे वह ब्रह्मा हो, चाहे विष्णु हो अथवा शिव हो।" जब हेमाचार्य इस प्रकार प्रार्थना कर रहे थे तब राजा व उसके समस्त कर्मचारी आश्चर्यचकित एव निश्चेष्ट होकर खडे रहे। प्रार्थना समाप्त करके हेमाचार्य ने शिवजी को साष्टाग प्रणाम किया। फिर बृहस्पति के निर्देशानुसार राजा ने श्रद्धापूर्वक शिवजी का

---

आर्या—भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥१॥

भव अर्थात् पुनर्जन्म के अकुर उत्पन्न करने वाले रागादि (कारण) जिसके नष्ट हो गए हैं ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, हर अथवा जिन (नाम से सम्बोधित) भगवान्) को नमस्कार है। ॥१॥

रथोद्धतावृत्तम्—यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोषकलुष सचेद् भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तुते ॥२॥

जिस किसी भी समय में, जो कोई भी आप, जिस किसी भी नाम से सम्बोधित हो, ऐसे दोषादि कालुष्य से रहित भगवान् आप एक ही हो ! आपको नमस्कार है ॥२॥

शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्—त्रैलोक्य सकल त्रिकालविषय सालोकमालोकितम्
साक्षाद्येन यथा स्वय करतले रेखात्रय साङ्गुलि।
रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो
नाल यत्पदलङ्घनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥३॥

कुछ विदित हो जावेगा।' राजा ने इस सलाह को मानकर इसके अनुसार ही कार्य किया। हेमचन्द्र ने तत्काल उत्तर दिया "भूखे मनुष्य को भोजन करने के लिए आग्रह करने की आवश्यकता नहीं है। साधु का तो जीवन ही यात्रा है इसमें राजाज्ञा की आवश्यकता ही क्या है?' यह तय हुआ कि धीरे धीरे पैदल यात्रा करते हुए, शत्रुञ्जय और गिरनार के देवस्थानों के दर्शन करते हुए आचार्य कुमारपाल से देवपट्टण में आकर मिलेंगे। अन्त में राजा अपने संघ के साथ आगे बढ़ता हुआ सोमेश्वर के नगर के पास आ पहुँचा। श्री बृहस्पति भी जो इस काम की देख रेख के लिए नियुक्त थे राजा को उस स्थान पर लिवा ले जाने को आ पहुँचे जहाँ उन्होंने राजसंघ के ठहरने का प्रबन्ध कर रक्खा था। उधर हेमचन्द्र भी संघ में आ मिले और अब राजा ने बहुत आनन्द और राजसी ठाठ बाट के साथ गाजे बाजे सहित नगर में प्रवेश किया। फिर, सोमेश्वर के मन्दिर की पैड़ियों पर चढ़कर महादेव जी को साष्टांग दण्डवत की। हेमचन्द्र और बृहस्पति ने भी देवालय के दरवाजे में खड़े होकर कहा 'इस भव्य देवालय में निश्चय ही कैलाशवासी महादेव विराजमान हैं। फिर मन्दिर में प्रवेश करके शिवलिंग (१) का विधिपूर्वक पूजन कर चुकने के बाद वे बोले "हे

---

नर्मदा नदी के तट पर अहल्याबाई की पुत्री मुक्ता बाई अपने पति यशवन्तराव पाँधिया के साथ सती हुई थी। उसके स्मारक में उन्होंने महेश्वर में एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया था। इसके १ वर्ष बाद गायकवाड़ सरकार के दीवान विट्ठलराव देवाजी ने जिनको काठियावाड़ का सूबेदार नियुक्त किया गया था, यहाँ पर अपना बड़ा नक्कारखाना व धर्मशाला बनवाये

(१) कुमारपालप्रबन्ध में इस स्तुति के श्लोक इस प्रकार लिखे हैं—

हेमाचार्य ने उत्तर दिया, "पुराणों में जो बातें लिखी हैं उन पर इस समय विचार करने का अवसर नहीं है। मैं तुम्हें इसी समय महा-महिमामय भगवान् शिवजी का साक्षात् दर्शन कराता हूँ और जो कुछ सत्य है वह तुम उन्हीं के मुख से सुन लोगे। इसमे सन्देह नहीं है कि भगवान् यहीं छुपे हुए हैं, धर्माचार्यों ने जो रीति बताई है उसी के अनुसार अचल ध्यान करने से तुमको और मुझको दोनों ही को उनका दर्शन हो सकता है। लो, मैं ध्यान करता हूँ और तुम इस अगर से धूप जलाते रहो। जब तक स्वय त्रिनेत्र शिव प्रकट होकर बन्द न करें तब तक निरन्तर इस काम मे लगे रहना।" इस प्रकार वे दोनों अपने काम मे लग गए और मन्दिर का निज-मण्डप धूप की धुआ से इतना भर गया कि दरवाजे और तीनों कोनों मे जो दीपक रखे हुए थे उनका प्रकाश भी मन्द पड गया। अचानक सूर्य के प्रकाश के समान तेज पुञ्ज फैलता हुआ दिखाई दिया। राजा चौक उठा और उसने प्रकाश-पुञ्ज की चकाचौंध से घबड़ाकर दोनों हाथों से आखों को ढक कर, धीरे धीरे देखने का प्रयत्न किया। उसी क्षण, उसने देखा कि जलहरी मे वर्तमान पवित्र शिवलिंग से एक योगी की आकृति प्रकट हो रही है, जिसके शिर पर जटा है, अनुपम शोभा है, और तपे हुए सोने के समान जिसकी कान्ति है, जिसकी ओर मृत्युलोक के निवासी दुर्बल मानव के लिए सीधा देखना अशक्य है। राजा ने अपने हाथों

---

रुपी समुद्र की रचना का पारदृश्वा है (अर्थात् इससे पहले की स्थिति को भी जाननेवाला है) जिसके वचन में पहले और बाद में कही हुई बात में विरोध नही है, वह वचन अनुपम और निष्कलक है, जो साधु पुरुषों द्वारा वन्द्य है, सब गुणों का निधान है और जिसके दोष रूपी शत्रु ध्वस्त (नष्ट) हो गये हैं ऐसे बुध, वर्द्धमान, ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव की वन्दना करता हू ॥ ८ ॥

पूजन किया अपना तुलादान किया तथा हाथी आदि दान में दिए और इसके बाद शिवजी की कपूर से आरती उतारी। जब यह सब पूरा हो चुका तो सबको बाहर जाने की आज्ञा देकर कुमारपाल और हेमाचार्य मन्दिर के निजमण्डप में बैठे और दरवाजा बन्द करवा दिया।

कुमारपाल ने हेमाचार्य से कहा,— 'संसार में जितने धर्म हैं, उनमें से मैं एक ही ऐसे धर्म का पालन करना चाहता हूँ जिसमें मेरा पूर्ण विश्वास हो जावे। आज सोमेश्वर के समान और कोई देवता नहीं है, मेरे समान राजा नहीं है और तुम्हारे समान कोई साधु नहीं है। मेरे सौभाग्य से इन तीनों का संयोग हुआ है इसलिए इन महादेव के समक्ष तुम मुझे ऐसा देवता बताओ जिसकी उपासना से मुझे मुक्ति प्राप्त हो।"

---

अतीत अर्थात् जहां जीव की गति नहीं है ऐसे आकाश सहित तीनों लोक (भूर्भुवः स्वः अथवा स्वर्ग मर्त्य और पाताल) और तीनों काल (भूत वर्तमान और भविष्यत्) जिसके ज्ञान रूप अंगुलियों सहित करतल की रेखाओं के समान (उजाले) में स्पष्ट प्रतिबिंबित हैं और राग द्वेष भय आमय (रोग) अन्तक (काल) जरा (बुढ़ापा) लोलत्व (चञ्चलता) और लोभ आदि भी जिसके पदका उल्लङ्घन करने में समर्थ नहीं हैं उस महादेव को मैं वन्दना करता हूँ ॥२॥

स्रग्धरावृत्तम्:—यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयं।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तम्।
बुद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥४॥

जो जानने योग्य सभी वस्तु (जगत्) को जानता है जो विश्व की उत्पत्ति

हेमाचार्य ने उत्तर दिया, "पुराणों में जो बातें लिखी हैं उन पर इस समय विचार करने का अवसर नहीं है। मैं तुम्हें इसी समय महा-महिमामय भगवान् शिवजी का साक्षात् दर्शन कराता हूँ और जो कुछ सत्य है वह तुम उन्हीं के मुख से सुन लोगे। इसमे सन्देह नहीं है कि भगवान् यहीं छुपे हुए हैं, धर्माचार्यों ने जो रीति बताई है उसी के अनु-सार अचल ध्यान करने से तुमको और मुझको दोनों ही को उनका दर्शन हो सकता है। लो, मैं ध्यान करता हूँ और तुम इस अगर से धूप जलाते रहो। जब तक स्वय त्रिनेत्र शिव प्रकट होकर बन्द न करे तब तक निरन्तर इस काम मे लगे रहना।" इस प्रकार वे दोनों अपने काम मे लग गए और मन्दिर का निज-मण्डप धूप की धुआ से इतना भर गया कि दरवाजे और तीनों कोनों मे जो दीपक रखे हुए थे उनका प्रकाश भी मन्द पड गया। अचानक सूर्य के प्रकाश के समान तेज पुञ्ज फैलता हुआ दिखाई दिया। राजा चौक उठा और उसने प्रकाश-पुञ्ज की चकाचौंध से घबडाकर दोनों हाथों से आखों को ढक कर, धीरे धीरे देखने का प्रयत्न किया। उसी क्षण, उसने देखा कि जलहरी मे वर्तमान पवित्र शिवलिंग से एक योगी की आकृति प्रकट हो रही है, जिसके शिर पर जटा है, अनुपम शोभा है, और तपे हुए सोने के समान जिसकी कान्ति है, जिसकी ओर मृत्युलोक के निवासी दुर्बल मानव के लिए सीधा देखना अशक्य है। राजा ने अपने हाथों

---

रुपी समुद्र की रचना का पारदृश्वा है (अर्थात् इससे पहले की स्थिति को भी जाननेवाला है) जिसके वचन में पहले और बाद में कही हुई बात में विरोध नही है, वह वचन अनुपम और निष्कलक है, जो साधु पुरुषों द्वारा वन्द्य है, सब गुणों का निधान है और जिसके दोष रूपी शत्रु ध्वस्त (नष्ट) हो गये हैं ऐसे बुध, वर्द्धमान, ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव की वन्दना करता हू ॥ ४ ॥

से स्पर्श करके देखा कि साक्षात् भगवान् शरीर धारण करके उसके समक्ष विद्यमान हैं। अत्यन्त भक्ति के साथ साष्टांग प्रणाम करके वह इस प्रकार प्रार्थना करने लगा "हे जगत्पते ! आपका दर्शन करने से मेरी आंखों को उनकी इष्ट वस्तु प्राप्त हुई अब कुछ आदेश प्रदान कीजिए जिससे मेरे कर्णयुगल भी कृतार्थ हों।' घनघोर रात्रि के पश्चात् फैलते हुए प्रातःकालीन तेज के समान भगवान् का मुखकमल आलोकित हो उठा और इस प्रकार वचन-माधुरी निःस्यन्दित हुई— 'राजन् ! यह साधु समस्त देवताओं का अवतार है यह निष्कपट है और सम्पूर्ण देवता इसके हस्तगत मोती के समान हैं। यह त्रिकालज्ञ है और इसका बताया हुआ मार्ग निश्चय ही तुम्हारे लिए मुक्तिप्रद होगा।" यह कह कर भगवान अन्तर्धान हो गए। राजा उनके अन्तर्हित होने पर पश्चात्ताप कर ही रहा था कि साधु हेमचन्द्र भी ध्यान मुक्त होकर श्वास लेने लगा। अपने इष्टदेव के कहे हुए वचनों का स्मरण करते हुए राजा ने अपने राजत्व का अभिमान छोड़कर धर्मगुरु के आगे मस्तक झुका दिया और उनसे प्रार्थना करने लगा कि 'जो कुछ मेरे करने योग्य हो वही आज्ञा कीजिए। फिर उसी स्थान पर हेमचन्द्र ने राजा से आमरण मद्यमांस का त्याग करने की प्रतिज्ञा कराई।

इतिहासकार लिखते हैं और शास्त्रों में भी लिखा है कि वृद्ध ब्राह्मण को सोमेश्वर के मन्दिर का अधिकारी नियुक्त किया गया था परन्तु कुछ दिन बाद जब राजा पर हेमचन्द्र का पूर्ण प्रभाव जम गया तो कुछ समय के लिए उसको जैनधर्म की निन्दा करने के अपराध में पृथक् कर दिया गया था। फिर जब उसने बहुत नम्रतापूर्वक आचार्य की विनती की और उन्होंने कुमारपाल से कहा सुना तो वह पुनः अपने स्थान पर नियुक्त कर दिया गया।

इसके बाद अणहिलपुर लौट कर आचार्य ने राजा को भी जिनदेव के मुख से निकली हुई वाणी का ज्ञान कराया और उसको अर्हन्त के अनुयायियों मे सर्वश्रेष्ठ ठहराया। आचार्य की आज्ञा के अनुसार उसने गुजरात के अट्ठारह परगनों मे, जहा उसकी दुहाई फिरती थी, चौदह वर्ष के लिए, जीवहिंसा वन्द करवा दी। द्वयाश्रय मे लिखा है कि(१)

---

१ द्वयाश्रय के बीसवें सर्ग में लिखा है कि एक दिन कुमारपाल मार्ग में एक मनुष्य को पॉच छ बकरो को खींचकर ले जाते हुए देखा। उसने पूछा, 'इन मरे हुए से बकरो को कहाँ ले जाते हो ?" उसने उत्तर दिया "कसाई के घर ले जाकर इनके कुछ पैसे खडे करूगा और कुछ दिन के लिए अपना दारिद्रय टालूगा।' इस पर कुमारपाल ने मासाहार की बहुत निन्दा की और अपने मन में कहा कि, मेरे ही दुर्विवेक से आज ये लोग हिसा में प्रवृत्त हो रहे हैं। उसने उस मनुष्य को तो जाने दिया और तुरन्त ही अधिकारियों को कह कर यह आज्ञा जारी करवाई कि, जो झूठी प्रतिज्ञा करे उसे शिक्षा देने के लिए दण्ड दो, जो परदारगमन करे उसे और भी अधिक दण्ड दिया जावे और जो जीवहिसा करे उसे तो और भी अधिक दण्ड मिले, ऐसी हमारी आज्ञा है इसको हमारे राज्य भर म जो त्रिकूटाचल (लका) तक है, प्रसिद्ध करो। जीवहिंसा वन्द करने से जिन लोगों को नुकसान हो उन्हें तीन तीन वर्ष तक खाने भर का अन्न दे दिया जावे, इसका फल यह हुआ कि शराब पीने की चाल बन्द हो गई और यज्ञों में बकरों की एवज जौ की आहुति दी जाने लगी।

एक बार रात्रि के समय जब कुमारपाल सो रहा था तो उसने किसी के रोने की आवाज सुनी। यह आवाज कहा से आती थी, इसका तलाश करने के लिए वह स्वय अकेला ही निकल पड़ा। कुछ दूर जाकर उसने एक सुन्दरी स्त्री को रोते हुए देखा। उसे आश्वासन देकर राजा ने रोने का कारण पूछा। स्त्री ने कहा, "मेरा पति और पुत्र दोनो मर गए हैं, अब मैं इसलिए रोती हू कि पुत्र न होने के कारण मेरी सम्पत्ति स्वत्वहीन समझी जायगी और राजा उस पर अधिकार कर लेगा। अब मेरा गुजर होने के लिए कोई उपाय नही है।" राजा ने उसे

ब्राह्मण लोग अपने यज्ञों में जो जीवों का बलिदान करते थे वह बन्द कर दिया गया और पशुओं के स्थान में अन्न की आहुतियां दी जाने लगीं। पल्ली देश में भी राजा की आज्ञा मानी गई और यहां के योगियों को जो मृगचर्म से शरीर ढकते थे बड़ी कठिनाई पड़ी। पांचाल देश के लोगों को भी जो बड़े भारी जीवहिंसक थे कुमारपाल के अधि

---

आश्वासन दिया राज्य द्वारा उसकी सम्पत्ति न लिए जाने का वचन दिया और धर्मकार्य में अपने धन व जीवन को बिताने की सलाह दी। इसके पश्चात् उसने अपने राज्य में मृतक की सम्पत्ति को न लेने की घोषणा करवा दी जिससे प्रजा बहुत प्रसन्न हुई।

कुमारपाल के क्रमानुयायी अजयपाल देव (१२२९ ई १२३२ ई) के मन्त्री यशपाल रचित 'मोहपराजय' नाटक में भी एक ऐसी ही घटना का वर्णन है। कुबेरनामा निःसन्तान कोट्याधिप श्रेष्ठी की मृत्यु पर उसकी माता दुःख विह्वल हो जाती है। राजा का ध्यान उसकी 'मृतधनापहरण नीति' के प्रति आकर्षित किया गया। वह बहुत उद्विग्न हुआ। उसने कुबेर की माता को आश्वस्त किया और पञ्चकुल (पञ्च महाजनों) के सामने राज्य में निःसन्तान मृतक की सम्पत्ति ग्रहण न करने की घोषणा करवा दी।

निःपुत्रे म्रियते न यन्नृपतिभिस्त्यक्तं क्वचित् प्राक्तनैः
पत्न्याः हार इव त्वदेव पतिमृतौ यस्यापहारः किल ।
आपापोऽपि कुमारपालनृपतिर्दौ स्वया धनं
बिभ्राणः सत्य प्रभास्तु हृदयं मुञ्चत्यतद् स्वयम् ॥

(मोहपराजय अङ्क ३ गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज में प्रकाशित)

राजा की इस घोषणा से प्रजा में बहुत बड़ा सामाजिक एवं राजनीतिक युग-प्रवर्तक सुधार हुआ।

कार मे होने के कारण, जीवहिंसा बन्द करनी पड़ी। मास का व्यापार करने वालों का धन्धा बन्द हो गया और उनकी हानि के बदले मे उनको तीन वर्ष की उपज दी गई। एक मात्र काशी के आसपास के लोगों ने जीवों का बलिदान करना जारी रक्खा।

एक दिन किसी ने आकर राजा को समाचार दिया कि केदार के खसराज ने यात्रियों को लूट लिया और इतना ही नहीं, उसने केदारेश्वर के देवालय का जीर्णोद्धार भी नहीं कराया जिससे वह पूर्ण खण्डहर हुआ जा रहा है।' राजा ने खसराज को दोषी ठहराया और अपने मन्त्री

---

श्री हेमचन्द्राचार्य ने इस अवसर पर राजा की प्रशस्ति में लिखा है —

न यन्मुक्त पूर्वै रघुनहुषनाभागभरत—<br>
प्रभृत्युर्वीनाथै कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि ।<br>
विमुञ्चन् कारुण्यात्तदपि रुदती वित्तमधुना।<br>
कुमारक्ष्मापाल ! त्वमसि महता मस्तकमणि ॥६६६॥<br>
( प्रभावक–चरित–हेमचन्द्रसूरिचरित )

"रोती हुई (विधवा) के वित्त को कृतयुग म उत्पन्न होने वाले रघु नहुष, नाभाग और भरत आदि राजा भी न छोड सके, उसीको हे राजा कुमारपाल करुणावश होकर आपने छोड़ दिया। निश्चय ही आप महापुरुषों के मुकुटमणि है।

एक बार एक दूत ने आकर खबर दी कि खस राजा ने केदार प्रासाद को खण्डहर कर दिया है। इस पर उसने खस राजा को ठीक करके अपने मत्री वाग्भट्ट के द्वारा सोमनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। अणहिलपुर में उसने श्री पार्श्वनाथ का भव्य चैत्य बनवाया। इसके बाद स्वय महादेव ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा "मैं तुझ से प्रसन्न हू और तेरे नगर म रहना चाहता हू।" इस पर कुमारपाल ने कुमारपालेश्वर महादेव का देवालय बनवाया।

को केदारेश्वर के देवालय का जीर्णोद्धार कराने के लिए भेजा।

एक समय स्वयं महादेव ने स्वप्न में दर्शन देकर आज्ञा दी 'मैं तेरी सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ अब मैंने अणहिलपुर में आकर निवास करने का निश्चय किया है।' इस पर राजा ने उसी नगर में कुमारपालेश्वर महादेव का देवालय बनवाया। इसके अतिरिक्त उसने वहीं पारसनाथ का भी एक मन्दिर बनवाया जिसका नाम कुमारविहार रखा और उसमें मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। देवपट्टण में उसने जैन धर्म का एक ऐसा सुन्दर मन्दिर बनवाया कि उसके दर्शन करने के लिए मुल्क के मुल्क यात्री उमड़ पड़े।

अब कुमारपाल ने जैन धर्म की बारहों प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कीं। (१)

---

(१) बारह व्रत इस प्रकार हैं—

(१) हिंसात्याग—जीवदया के समान कोई धर्म नहीं है इसलिए कुमारपाल ने कर्णाटक गुजरात कोंकण राष्ट्र कीर, जालन्धर, सपादलक्ष मेवाड़ दीव और आभीर आदि अठारह देशों में डौंडी पिटवाकर तथा काशी और गजनी आदि चौदह देशों में धन विक्रम और मैत्री के बल पर जीव रक्षा करवाई।

(२) असत्य त्याग—झूठ बोलने से सब पापों की अपेक्षा अधिक पाप लगता है।

(३) अन्य ग्रहण त्याग—जो दूसरे का धन हरण करता है उसे जन्म जन्मान्तर में दासत्व प्राप्त होता है और दूसरे के घर पर गुलामी करनी पड़ती है। पराया धन हड़पने वाले का दान शील और तप तथा पूर्वकृत महापुण्य निष्फल हो जाता है। इसी सिद्धान्त को मानते हुए कुमारपाल ने अपने राज्य में निपुत्रों का धन लेने की चाल बन्द करदी और इस प्रकार लगभग बहत्तर लाख की वार्षिक आय का त्याग कर दिया। उसने बाराशास्त्र (कानून)

तीसरी प्रतिज्ञा लेते समय आचार्य ने उसे शिक्षा दी कि जो लोग अपुत्र मर जाते हैं उनका धन लेकर राजकोष मे जमा कर लेना महापाप

---

की पुस्तक में से इस धारा को निकलवा कर अठारह देशों में डिंडोरा पिटवा दिया कि, "पति के मर जाने पर विधवा स्त्री के घाव पर नमक के समान लगने वाले जिस धन-हरण के नियम को पहले के निर्दय राजा लोग नही तोड़ सके उसका, प्रजा के प्रति दयार्द्र भाव धारण करने वाला समुद्र—मर्यादित पृथ्वी का राजा, कुमारपाल त्याग करता है ।'

(४) परस्त्रीत्याग और स्वदारसन्तोष—धर्मार्थी पुरुष परस्त्री का त्याग करे, परस्त्रीगमन का फल अपकीर्ति, कुलक्षय और दुर्गति होता है। इस अब्रह्मण्य फल का विचार करके सुज्ञ पुरुष पर-स्त्री पर दृष्टि न डाले ।

बारह व्रत लेते समय राजा ने सब से पहले यह व्रत लिया कि 'परस्त्री को माता तथा बहन के समान समझूंगा'। धर्म—प्राप्ति के पहिले उसके अनेक रानियाँ थी, परन्तु वे सब थोड़ी २ आयुष्य पाकर ही मर गई, इसलिए जिस समय उसने ये व्रत लिए थे उस समय केवल पटरानी भूपालदेवी ही जीवित थी। राजाने उसी से सन्तोष मानकर फिर दूसरा विवाह नही किया।

(५) अपरिमित परिग्रहत्याग और इच्छा परिमाण—धन के पीछे दौड़ने वाला क्रिया-हिंसक जीव क्या पाप से बच सकेगा ? धन के संपादन, रक्षण और क्षय से उत्पन्न हुए दु खानल में कौन नही जला ? सबसे प्रथम इन बातों पर विचार करके पागलपन से उत्पन्न हुई स्पृहा का त्याग करो, जिससे जीवन में पाप और संताप को स्थान ही न मिले ।

तृष्णा से तप्त मनवाले पुरुषों का पद पद पर अपमान होता है। मम्मण को परिग्रह से क्लेश और क्लेश से नरकगति प्राप्त हुई। इस बात का विचार करके धर्म की शोध करनेवाले व सुखार्थी पुरुषों को स्वल्प परिग्रह रखना चाहिए।

है। इस आशय के अनुसार उसने प्रतिज्ञा की कि अपनी स्वयं

---

कुमारपाल ने सौत्व समझकर अपने पूर्वजों और अन्य महापुरुषों मतानुसार नीचे लिखे प्रमाण से परिग्रह का परिमाण निश्चित किया—

| | |
|---|---|
| छः कोटि सोनैया | एक हजार हाथी |
| आठ कोटि रुपैया | अस्सी हजार ग्राम |
| एक हजार तोला महामूल्यवान रत्न | पांच सौ घर |
| अनेक कोटि दूसरे द्रव्य | पाँच सौ बजारें |
| दो हजार घड़े घी तेल इत्यादि | पाँच सौ सभा |
| दो हजार खाँडी धान्य | पाँच सौ गाड़ियाँ |
| पाँच लाख घोड़े | एक हजार ऊँट |

इस प्रकार सामान्य परिग्रह रखा और सेना में ग्यारह सौ हाथी ? हजार रथ, ग्यारह लाख घोड़े और अठारह लाख पैदल रखे।

(६) दिग्गमनत्याग—दशों दिशाओं में गमन करने की मर्यादा इसको दिग्विरति नामक पहला गुणव्रत कहते हैं। क्या लोहगोलक के गोले तरह सब दिशाओं में अनियमित रूप से घूमने वाला प्रमादी जीव सफल नहीं करेगा ? लोभ से पराभव पाया हुआ पुरुष तीनों भुवनों में करने का मनोरथ करे। विवेकी पुरुष सर्वदा और विशेषतः चातुर्मास में दया के निमित्त सर्व दिशाओं में जाने की निवृत्ति करे।

कुमारपाल ने चौमासे ( वर्षा ऋतु ) के चार महीनों में पाटण के से बाहर न जाने और साधारणतया नगर में भी देवदर्शन और गुरुवन्दना बिना कोई काम न करने का नियम लिया। कठिन प्रसंग आने पर भी उसने नियम का त्याग नहीं किया। उसके ऐसा नियम ले लेने की बात चारों ओर गई यहाँ तक कि गजनी के गुप्तचरों ने जाकर वहा के दुर्धर यवनाधिप राजा से सब हाल कह सुनाया। गुजरात की समृद्धि पर ललचाकर उसने इधर प्र कर दिया। गजनी से आनेवाले गुप्तचरों ने कुमारपाल से भी ये समाचार

मेहनत से जो कुछ प्राप्त होगा उसके अतिरिक्त कोई वस्तु ग्रहण नहीं

---

सुनाए। राजा चिन्तित होकर अमात्य के साथ गुरु के पास गया और कहने लगा, "हे प्रभो, बलवान् तुर्काधिपति ने गजनी से गुजरात की ओर प्रस्थान कर दिया है, मैंने वर्षा ऋतु में नगर से बाहर पैर न रखने का नियम ले रखा है, अब, कहिए क्या किया जावे ?" हेमाचार्य ने कहा, 'चिन्ता न करो, तुम जिस धर्म की आराधना करते हो वही तुम्हारी सहायता करेगा।' थोड़ी ही देर में राजा देखता है कि पलग सहित गजनी का राजा उसके सामने आ गया और यों कहने लगा, 'हे राजेन्द्र ! मैं यह नही जानता था कि आपको देवताओं की इतनी सहायता प्राप्त है, अब मैं सदा के लिए आपसे सन्धि करता हू।" कुमारपाल ने उसको अपने महल में ले जाकर पूर्ण सत्कार किया और जीवदया की शिक्षा दी। इसके बाद अपने विश्वासपात्र सेवकों के साथ गजनीपति को उसके डेरे में भेज दिया।

(७) भोगोपभोग का परिमाण—अन्न, कुसुम आदि का एक ही बार सेवन किया जा सकता है, उनके सेवन को भोग कहते हैं, और आभूषण, स्त्री आदि जिनका अनेक बार सेवन किया जावे वह उपभोग कहाता है। भोग और उपभोग की मात्रा निश्चित होनी चाहिए इसको भोगोपभोगमान नाम का दूसरा गुणव्रत कहते हैं। दयालु पुरुष २२ अभक्ष्य और ३२ अनन्तकाय को त्याज्य समझकर उनसे दूर रहे।

कुमारपाल ने मास, मद्य, माखन आदि २२ अभक्ष्य और ३२ अनन्तकाय ( कन्दमूल ) के लिए रोग आदि महाकष्ट के समय को छोड कर बाकी कभी न सेवन करने का नियम लिया।

(८) अनर्थदण्ड का त्याग—आर्त और रौद्र इन दोनों दुष्ट ध्यानों का सेवन करना, हिंसा के उपकरणों को इकट्ठा करना पापयुक्त आचार का उपदेश करना और प्रमादी होना, ये निरर्थक पाप के कारण होने से अनर्थदण्ड कहलाते हैं। इसका निवारण करना ही अनर्थदण्ड-विस्मरण नाम का तीसरा गुणव्रत कहलाता है। इसलिए विवेकी पुरुष अनर्थदण्ड का त्याग करे।

करूंगा। इस प्रकार की आय ग्रहण करना बन्द कर देने पर उसकी

---

कुमारपाल ने सर्वत्र सात व्यसनों का निषेध कराया और स्वयं ने भी प्रमाद क्रीड़ा हास्य उपचार, शरीर का अतिशय सत्कार और विकथा (अर्थात् जिसका धर्म से सम्बन्ध न हो ऐसे देश स्त्री और भोजन सम्बन्धी वार्ता) आदि का त्याग करके वह निरन्तर जाग्रत धर्मध्यान रूपी अमृतसागर में निमग्न रहा।

(६) सामायिक व्रत—मन वचन और शरीर से पापयुक्त व्यापार का त्याग और पापरहित व्यापार का सेवन करने वाला पुरुष मुहूर्त मात्र के लिए समता में रहे यह सामायिक नाम का पहला शिक्षाव्रत है।

कुमारपाल ने प्रतिदिन दो सामायिक करने का व्रत लिया था। पिछली रात्रि के सामायिक में वह पहले योगशास्त्र के बारह प्रकाश और वीतराग-स्तवन का पाठ करता था और फिर दूसरा काम करता था। दूसरे सामायिक में वह पौषधशाला में रहता था और उस समय गुरुजी के अतिरिक्त और किसी से बात चीत नहीं करता था।

(१ ) देशावकाशिक व्रत—दिग्व्रत में किए हुए परिमाण से दिन तथा रात्रि में कमी करे ऐसे पुरुष का कारणभूत देशावकाशिक नामका दूसरा शिक्षाव्रत कहते हैं। जिस प्रकार औषधि शरीर में व्याप्त हुए विष को अंगुली आदि में लाकर रोक देती है उसी प्रकार विवेकी पुरुष दिग्व्रत के परिमाण को तथा दूसरे व्रतों के परिमाण को भी नित्य रात दिन कम करे। जैसे पृथ्वी जल अग्नि वायु, वनस्पति और जीवों की हिंसा आदि को सर्वथा अथवा अशक्य कम करे, राग द्वेष से दूषित असत्य न बोले और विशेषकर परकार्य के सम्बन्ध में तो बिल्कुल ही न बोले धर्म के सम्बन्ध में प्रमाण से बात करे भोजन अथवा धन में से किसी को दिए बिना ग्रहण न करे। इस प्रकार सभी व्रतों में समझना चाहिए।

(११) पौषधोपवास व्रत—अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वतिथियों में सब प्रकार के आहार, अङ्गसत्कार, अब्रह्म और असावद्य व्यापार का त्याग करे। यह भवरूपी रोग के लिए औषध के समान पौषध नाम का तीसरा शिक्षा व्रत है।

प्रजा मुक्तकण्ठ से कहने लगी 'यह राजा सत्ययुग के रघु, नहुष और भरत से भी बढकर हुआ है।(१)

---

कुमारपाल पर्वतिथियों में सदा पोषध लेता था और उस दिन उपवास करके रात्रि को बिलकुल नहीं सोता था। वह गुरु की वन्दना में तत्पर रहता, खुले मुँह बात नही करता, प्रमार्जन किए विना न चलता, अधिक समयतक कायोत्सर्ग में लगा रहता और दर्भासन पर बैठ कर प्राणायाम करता।

(१२) अतिथि-सविभाग—जो महात्मा तिथियों और पर्वोत्सवों का त्याग करते हैं उनको छोडकर बाकी के अभ्यागत कहलाते हैं। अतिथियों को न्यायोपार्जित अन्न, वस्त्र, पान, आश्रम आदि का देश काल पात्र के विचारपूर्वक श्रद्धा और सत्कार से दान करना अतिथि सविभाग नाम का चौथा शिक्षाव्रत कहलाता है।

कुमारपाल ने अपने राज्य में श्रावकों से कर लेना बन्द कर दिया। इस कर से लगभग ७२ लाख रुपये की वार्षिक आमदनी होती थी। प्रत्येक गरीब सधार्मिक आश्रयार्थी को एक हजार दीनार देने के लिए आभड सेठ को आज्ञा दी। हेमाचार्य से राज्य में नगे भूखे श्रावकों की खबर रखने के लिए विनती की। यह सब आज्ञा जारी करने के एक वर्ष बाद इस कार्य में जो खर्चा हुआ उसका हिसाब मगवाया जो एक करोड़ के लगभग आया। आभड सेठ ने इसको लेने से नाही की परन्तु अपने व्रत की रक्षा के निमित्त राजा ने आग्रहपूर्वक यह धन चुकाया और कितने ही वर्षों तक अपने व्रत का इसी प्रकार पालन करता रहा।

(कुमारपालप्रबन्ध पृ० २०१)

(१) बर्नियर ने औरङ्गजेब के पिता द्वारा उसके नाम लिखा हुआ एक पत्र उद्धृत किया है जिसमें लिखा है—'हमारी नौकरी में जो मनुष्य हैं उनमें से जब कोई मर जाता है तो उसके वारिस हम हैं, ऐसा प्रसिद्ध करके पुरानी रीति को चालू रखने की तुम्हारी इच्छा जान पडती है। अपने यहाँ ऐसी चाल है कि जब कोई उमराव या कोई धनवान् पुरुष मर जाता है ( अथवा कभी कभी तो

इसके बाद सोरठ के राजा समरसी(१) अथवा साउंसर का शिक्षा देने के लिए कुमारपाल ने वढ़वाण में एक सेना इकट्ठी की और उसका

---

उसका प्राणान्त होने के पहले ही उसके कार्यकर्ताओं और माल-मिल्कियत की सूची बनाकर तुरन्त जब्त कर लेते हैं और उसके कारिन्दों तथा बन्धु बान्धवों को कैद में डाल देते हैं या मरवा देते हैं। यह रीति अपने लिए लाभदायक तो है परन्तु यह कार्य घातक और न्यायविरुद्ध है हम इससे ना नहीं कर सकते।'

(२) कुमारपाल ने सोरठ के समर राजा को पकड़ने के लिए अपने मन्त्री उदयन को सेनापति बनाकर भेजा था। प्रबन्धचिन्तामणि में इस राजा का नाम सुसर ( सुसर ) लिखा है। एक प्रति में संउसर है—कितनी ही जगह सँसर अथवा साम्सर लिखा है। यह नाम गुजरात की प्राचीन मेर जाति के सावर अथवा सान्वर नाम से मिलता हुआ है। आज्ञानुसार उदयन रवाना होकर वढ़वाण आया और फिर सब सामन्तों को साथ से आगे बढ़ा। पालीताणा पहुँच कर उसने भक्तिभाव पूर्वक श्री ऋषभदेव का पूजन तथा चैत्यवन्दन किया। पूजन करते समय उसने देखा कि नक्षत्रमाला ( दीपमाला ) में से एक दीपक उठाकर एक चूहा ले गया और उस काष्ठमय प्रासाद के एक भाग में जा बैठा। मन्दिर के रक्षकों ने यद्यपि चूहे से दीपक छुड़ा ली परन्तु मंत्री की समाधि भंग हो गई। उदयन ने अपने मन में सोचा कि यह जीर्ण काष्ठमय प्रासाद खतरे में है इसलिए उसने उस प्रासाद को पाषाण का बनवाने का निश्चय किया और जब तक यह कार्य पूर्ण न हो जावे तब तक ब्रह्मचर्य से रहने एक बार भोजन करने जमीन पर सोने और ताम्बूल न खाने—इन चार बातों का नियम लिया। इसके बाद शत्रु से लड़ाई होते समय उसके बहुत से सैनिक भाग गये परन्तु रणरसिक उदयन खेत में डटा रहा और शत्रु के प्रहार से जर्जरित हो जाने पर भी अपने हाथ से समर राजा का वध किया। फिर जब समर के पुत्र को गद्दी पर बिठा कर उसकी समृद्धि को साथ लेकर लौटने लगा तो शरीर पर लगे हुए घावों की पीड़ा से अधीन होकर वह मूर्छित हो गया। जब पवन शीतल जल आदि उपचारों से उसकी चेतना लौटी तो वह करुणापूर्ण स्वर से क्रन्दन करने लगा।

अधिनायक उदयन मंत्री को बनाया। इस लडाई मे उदयन की हार होते होते बची और वह स्वय भी बहुत घायल हुआ। अन्त मे, शत्रुञ्जय और भडौंच मे देवालय बनवाने का काम अपने पुत्रों, वाग्भट्ट (वाहड) और आम्रभट्ट के भरोसे छोडकर वह चल बसा। शत्रुञ्जय का कार्य वाहड ने ११५५ ई० मे पूर्ण किया। उसने वहीं पास ही में एक शहर भी बसाया जो उसी के नाम पर वाहडपुर (१) कहलाया।

---

सामन्तों ने इसका कारण पूछा तो उसने कहा "मेरे हृदय में चार शल्य ( काटे ) रह जावेंगे, वे ये हैं कि (१) आम्बड ( आम्रभट्ट ) दण्डनायक हो, (२) श्री शत्रुञ्जय पर पाषाणमय प्रासाद बने (३) श्री गिरनार पर नई पैड़िया बनाई जावें और (४) चोथा शल्य यह है कि इस समय ( मेरे मरते समय ) मेरे सामने कोई निर्यायक ( तारनेवाला ) गुरु नहीं है।' सामन्तों ने कहा कि, 'पहली तीन प्रतिज्ञाएँ तो आपका पुत्र वाहड ( वाग्भट्ट, वाहड़ ) पूर्ण करेगा इसलिए इनकी चिन्ता छोड दीजिए।' चौथी बात पूरी करने के लिए वे किसी आदमी को साधु का वेष पहनाकर उसके सामने ले आए। मन्त्री ने उस साधु को गोतमस्वामी के समान मानकर वन्दना की। पापों की निन्दा और पुण्यों की प्रशसा करते हुए आत्मध्यान में निमग्न हो वह स्वर्ग चला गया।

[ कुमारपाल प्रबन्ध गु० भा पृ १७६, प्रबन्ध-चिन्तामणि हिन्दी अनुवाद पृ० १०४ ]

(१) वाहड ने अपने पिता की इच्छानुसार अपने सौतेले भाई आँबड ( आम्रभटट, अम्बड ) को दण्डनायक ( सेनापति ) की पदवी दिलाई और स्वय कुमारपाल की आज्ञा लेकर गिरनार पर गया। वहा पर अम्बिका द्वारा डाले हुए अक्षतों के मार्ग से सुगम पगडण्डी का रास्ता बनवाया और इसमें तरेसठ लाख नाणा ( सिक्का विशेष ) खर्च किया। फिर कपर्दी मन्त्री को अपना काम सौंप कर, चार हजार सवारों सहित शत्रुञ्जय की तलहटी में जाकर डेरा डाला और बहुत से सूत्रधारों को इकट्ठा किया। बहुत से दूसरे व्यापारी भी इस तीर्थ का उद्धार करने के लिए धन ले लेकर आए और मन्त्री वाग्भट

भड़ौंच के शकुनिका-विहार बनवाने का भार आम्रभट्ट ने अपने सिर पर लिया। इस कार्य में यद्यपि नगर के किले की दीवारों के नीचे होकर बहने वाली नर्मदा नदी की बाढ़ों ने अचानक आ आकर अनेक बार बाधाएं उपस्थित कीं परन्तु अन्त में उसको पूर्ण सफलता हुई। लगभग उसी समय कुमारपाल ने भी एक नया चैत्य बनवाया था। यह चैत्य खम्भात में उस उपासरे के पास बनवाया गया था जहां पहले पहल उसकी भेंट उदयन और हेमाचार्य से हुई थी।

---

से कहने लगे कि, 'आप अकेले ही इस तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ हैं परन्तु इस महापुण्य में सम्मिलित करके हमें भी कृतार्थ कीजिये।' यह कह कर उन्होंने सोने का ढेर लगा दिया। शुभ मुहूर्त देख कर मन्त्री ने जीर्ण काष्ठमय प्रासाद का उतरवा लिया। नींव में विधिपूर्वक वास्तुमूर्ति पधरा कर शिला से ढँकवा दी और फिर दो वर्ष में पाषाणचैत्य बनवा कर तैयार करा दिया। देवप्रासाद में जो विघ्न होगया था उसका कारण ढूँढ निकाल कर, जो बिना प्रदक्षिणा का प्रासाद बनवाये वह निर्वंश जाय यह जानते हुए भी उसने पत्थर दसा दिये। इस प्रकार तीन वर्ष में यह तीर्थोद्धार का काम पूरा हुआ। इन पुरुषों का कहना है कि वाहड़ ने इस कार्य में दो करोड़ सत्तानवे लाख द्रम्म खर्च किए थे। मेरुतुंग का मत है कि इस कार्य में एक करोड़ साठ लाख ही द्रम्म खर्च हुए थे।

इसके बाद उसने हेमाचार्य तथा संघ को बुलाकर संवत् १२११ में शनिवार के दिन मान के स्वर्णकलश और ध्वजा चढ़ाकर प्रतिष्ठा की तथा देवपूजा के निमित्त ग्राम और २४ बाग पुण्य किए। तलहटी में अपने नाम पर वाहड़पुर नगर बसाया और वहां पर श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा से अलंकृत त्रिभुवनपाल विहार बँधवाया। उसके इन उदार-कार्यों से कुमारपाल बहुत प्रसन्न हुआ।

वाहड़पुर के खण्डहर अब भी पालीताना नगर के पूर्व की ओर मौजूद हैं वहां पर [illegible] की [illegible] जालियां, खंभों के पत्थर और मूर्तियां आदि दिखाई देती हैं।

कुमारपाल की अन्तिम चढाई सपादलक्ष (सवालाख गाँवों के) देश पर हुई जान पडती है। उदयन का पुत्र, वाहड, (१) इस समय से पूर्व ही राजा की सेवा में आ गया था। उस देश का जानकार होने के

---

(१) प्रबन्धचिन्तामणि में बाहाड ( वाहाड ) नाम लिखा है, उसी के अनुसार यहा पर भी वही नाम लिखा गया है। कुमारपालप्रबन्ध में ऐसा लिखा है कि, "सपादलक्ष देश के राजा के पास उत्तरासन वस्त्र भेजा गया था परन्तु उसने स्वीकार नही किया इसलिए कुमारपाल उस पर बहुत क्रुद्ध हुआ और अपने मत्रीपुर चाहड को, जो बाहड और अम्बड ( आम्रभट्ट ) से छोटा था, उस पर चढाई करने के लिए भेजा।" मालवा के राजपुत्र चाहड-कुमार को, जब सिद्धराज की पादुका का पूजन होता था उस समय, गद्दी पर नही बिठाया गया था, इसलिए वह नाराज होकर सपादलक्ष के आन्न राजा की सेवा में चला गया, ऐसा चतुर्विंशति प्रबन्ध में लिखा है। "मालवा का राजपुत्र चाहड़कुमार" इस लेख से यह कल्पना होती है कि वह कोई राज-पूत था और अपने बाद गद्दी पर बिठाने के लिए सिद्धराज उसको धर्मपुत्र बनाकर अपने पास रखता था। चाहड उदार था। एक बार बहुत से भिक्षुक इकट्ठे होकर उसके पास मागने के लिए आये। उसने भिक्षुकों को दान देने के लिये कोषाध्यक्ष से रुपया मागा परन्तु उसने नही दिया। इस पर चाहड़ ने कोषाध्यक्ष को मार भगाया और भिक्षुको को यथेच्छ दान देकर राजी किया। फिर, एक एक उँटनी पर दो दो सुभटों के हिसाब से चौदह सौ सुभटों को साथ लेकर तुरन्त ही बिम्बेरा के पास आ पहुँचा। वहां पर उस दिन ७०० कन्याओं का लग्न था इसलिये उस धर्मकार्य को पूरा करने के निमित्त नगर के चारों ओर रक्षा करने के लिये घेरा डाल कर पडाव जमा दिया। कडवा कुणबी लोग बारह बारह वर्ष में लग्न निश्चित करते हैं इसलिए जब लग्न आता है तो एक साथ बहुत सी कन्याओं का विवाह करना पडता है। इस बात से ज्ञात होता है कि उस गाव में कैडवा कणबी लोगों की बस्ती ज्यादा थी। आजकल यह गाव बबेरा अथवा बेबार कहलाता है।

जिस सोनिंग ने ईडर लिया था उसके वश में आजकल राव राठौड

कारण इस बार यही सेनानायक चुना गया। उसने तुरन्त ही बाबरा नगर के किले को जीत कर नष्ट कर दिया और वहां पर कुमारपाल की

---

अभयसिंह उमेदसिंह हैं। पहाड़ा नामक डूंगरी की आधी ऊंचाई पर बसे हुए पहाड़ा ग्राम इनके अधिकार में है और यह बारह गांव के ठाकुर कहलाते हैं। इन्हीं बारह गांवों में से भेरा भी एक है। भेरा लगभग २ - २५ घरों की बस्ती का गांव है जिनमें लगभग १५ घर केवल कुणबियों के हैं। इस गांव से करीब १॥ मील की दूरी पर थियासिमू गांव है वहां भी २५ घर कुणबियों के हैं। इस प्रकार आसपास में कुल मिला कर इधर की तरफ ४ घर केवल कुणबियों के हैं। इससे विदित होता है कि कुमारपाल के समय में यहां पर इन लोगों की और भी अधिक बस्ती रही होगी। भेरा गांव के आसपास बहुत से घरों के खण्डहर पड़े हुए हैं दो पुरानी बावड़ियां भी हैं जिनमें से अब तक लोग पानी का उपयोग करते हैं। चार शिव मन्दिर हैं जिनका अधिकांश भाग टूट फूट गया है परन्तु निज-मन्दिर अभी बचे हुए हैं इसलिए उनमें शिवलिंग मौजूद हैं, एक बीस भुजाओं वाली माता की मूर्ति है इनके अतिरिक्त दो मूर्तियां और भी और एक हनुमानजी की भी है।

प्रातः काल होते होते बाहड ने नगर जीत लिया। वहां से उसको सात करोड़ सोनैया और ग्यारह हजार घोड़े मिले। यह सब वृत्तान्त लिखकर उसने पाटन को भेज दिया और बब्बर के किले को व नगर को जीत कर सर्वत्र कुमारपाल का झण्डा फहराकर नये अधिकारियों की नियुक्ति करके ७ कुशल शालवी (साड़ी बनाने वाले कारीगरों को) साथ लेकर वापस पाटण आया। कुमारपाल उसके पराक्रम से बहुत प्रसन्न हुआ और उसको 'राज घरट्ट' की पदवी प्रदान की तथा उसके छोटे भाई सोलाक को सामन्त (मन्त्री) छत्रागार का पद दिया।

[ उभय लेखमें बाहड और चाहड नामों की गड़बड़ी है। हमारे पास जो प्रति है उसमें इस प्रकार पाठ है —

सपादलक्ष प्रति सैन्ये सञ्चलिते श्री वाग्भटस्यानुजन्मा चाहडनामा मंत्री दानशौण्डतया भाण्ड वृत्तिकोऽपि पराभग्रशिष्य नृपतिना सेनापतिश्चक्रे।
[प्र चि फार्बस गुजराती सभा ग्रन्थावली ग्र १४]

दुहाई फिरवा दी। लौट कर आने पर राजा ने उसे बहुत धन्यवाद दिया परन्तु साथ ही इस चढाई मे बहुत अधिक खर्च कर देने के लिए उपालम्भ भी दिया। (२) दिल्ली में फीरोजशाह की लाट पर ११४६ ई० का खुदा हुआ एक लेख मिलता है जिसमें शाकम्भरी के शासक का का नाम विग्रहराज लिखा है। इसी मीनारे पर एक दूसरा नाम वीसलदेव भी लिखा है। अनुवादकों को इस विषय में सन्देह है कि ये दोनों नाम (विग्रहराज और वीसलदेव) एक ही राजा के हैं अथवा दो भिन्न भिन्न राजाओं के हैं। इस विषय मे दूसरे प्रमाण मिले विना इसी लेख के आधार पर कुछ भी निर्णय करना असभव है। वीसलदेव चौहान के क्रमानुयायियों के नाम चन्द बारहट ने लिखे हैं परन्तु उनमे से कोई भी नाम ऐसा नहीं है जो इस लेख मे लिखे हुए नामों से समानता रखता हो। हम पहले लिख चुके हैं कि वीसलदेव के पौत्र, आन्न राजा ने कुमारपाल का सामना किया था इस लिए इस स्थान पर जिस राजा का नाम लिखा है वह या तो उसके (वीसलदेव के) पुत्र जयसिंह

---

गुजराती अनुवाद की टिप्पणी में 'वाहड़ाम्बडानुजन्मा श्री वाहडनामा मत्री' पद लिखा है जो समझ में नही आता क्यों कि बाहड और अम्बड का अनुजन्मा चाहड़ था न कि वाहड़। (देखिए कुमारपाल प्रबन्ध भा पृ ६६)। अतः जो पाठ हमारी प्रति में है वही ठीक प्रतीत होता है।

कुमारपाल रासो से विदित होता है कि बवेरी नगर के पास केवल पटोलु (वस्त्र विशेष) लेने के लिए दूत भेजा गया था परन्तु उसने इनकार कर दिया इसलिए कुमारपाल ने वाहड को सेना लेकर भेजा। वाहड ने उसे परास्त किया और ७००० सात हजार सालवी लाकर पाटण में बसाए।

(२) इसके लिए उसे 'राजघरट्टा' उपाधि दी गई।

का नाम हो अथवा उसके पौत्र आनो या आनन्ददेव का नाम हो। दोनों नाम तथा 'विग्रहराज' सब एक ही (१) अर्थ को सूचित करते हैं इस लिए एक दूसरे के उपनाम मात्र हो सकते हैं।

प्रबन्धचिन्तामणि में एक वार्ता लिखी है जिससे फीरोजशाह की लाट पर लिखे हुए संशयात्मक लेख पर उपस्थित हुए विवादग्रस्त विषय पर एक आश्चर्यजनक प्रकाश पड़ता है। ग्रन्थकार लिखता है कि एक समय सपादलक्ष देश के राजा का प्रतिनिधि कुमारपाल के दरबार में आया। राजा ने साम्भर के राजा का कुशल समाचार पूछा। उत्तर में दूत ने कहा "उसका नाम विशल (विश को धारण करने वाला) है, उसकी कुशल क्यों न होगी?" उस समय कुमारपाल का प्रीतिपात्र और विद्वान मन्त्री कपर्दी पास ही बैठा था उसने कहा शल् अथवा श्वल् धातु का अर्थ 'जल्दी जानेवाला' है इसलिए विशल का अर्थ यह हुआ कि यह वि (पक्षी) के समान जल्दी ही उड़ने वाला (अर्थात् नष्ट हो जाने वाला) है। जब उस दूत ने लौटकर अपने स्वामी को उसके नाम की उड़ाई हुई दिल्लगी का हाल कहा तो उसने पण्डितों को बुलाकर 'विग्रहराज' की उपाधि ग्रहण की। दूसरे वर्ष वही दूत विग्रहराज का प्रतिनिधि होकर फिर कुमारपाल के दरबार में उपस्थित हुआ। इस बार कपर्दी ने 'विग्रहराज' का अर्थ बिना नाक का शिव और ब्रह्मा (वि=बिना ग्र=नाक, हर=शिव अज=ब्रह्मा) बतलाया। अबकी बार राजा ने कपर्दी की हँसी से तंग आकर अपना नाम 'कवि बान्धव' (कवि का भाई) रख लिया।

( ) Asiatic Researches Book, vll p p. 130
नरसिंह – विजय करने वाला सिंह; आनन्द=पृथ्वी' विग्रह=लड़ाई

इसके बाद एक बार शत्रुञ्जय की यात्रा करते हुए अपने सघ सहित कुमारपाल ने अणहिलवाडा नगर के बाहर एक मन्दिर के पास ही पड़ाव डाला। अचानक ही उसे समाचार मिला कि दाहल (१) का कर्णराज उस पर चढाई करके आ रहा है। इस अचानक हुई चढ़ाई का हाल सुनकर राजा घबराया और वाग्भट्ट तथा हेमाचार्य से मन्त्रणा करने लगा। हेमाचार्य ने कहा 'शीघ्र ही शुभ समाचार मिलेगा'। इसके बाद तुरन्त ही समाचार मिला कि रात्रि के समय कर्णराज(२)हाथी पर बैठकर रवाना हुआ। मार्ग मे उसे उ घाई आ गई। इतने ही मे वह हाथी एक पवित्र बड के पेड के नीचे होकर सरपट दौडता हुआ निकला। राजा को उ घाई मे कुछ ध्यान नहीं रहा और वह एक डाल से टकराकर नीचे गिर पड़ा और मर गया। इस हमले के डर से मुक्त होकर कुमारपाल ने (३) अपनी यात्रा में आगे प्रस्थान किया। जब वह धुधूका ग्राम मे पहुँचा तो उसने वहा हेमाचार्य के जन्म-स्थान

---

(१) चेदि, जबलपुर के आसपास का प्रदेश। यहा का कुलचरी अथवा हैहय।

(२) कलचुरी वश का गयाकर्ण हो सकता है। इसका एक लेख चेदी सवत् ६०२ (ई० सन् ११५२) का है और इसके पुत्र नरसिहदेव का लेख चेदी सवत् ६०७ अथवा ई० स० ११५७ का है। गयाकर्ण का मृत्युकाल ११५२ से ११५७ ई० तक का है।

(३) कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि मार्ग में रात पड़ी और वह निद्रावश हो गया। इतने ही में किसी वृक्ष की शाखाए उसके गले में लिपट गई, हाथी उसके नीचे से निकल गया और उसका शरीर आधा लटकता रह गया। शाखाए फांसी की तरह उसके गले में लिपट गई थी इसीलिए सास रुक जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

पर 'मोलिका विहार (१) नामक चैत्य बनवाया। वहां से वह शत्रुंजय को चला और इस पवित्र पर्वत पर पहुंचने के लिए श्रीवाग्भट्ट की मन्त्रणानुसार एक सड़क बनवाने में बहुत सा धन व्यय किया।

उन दिनों अणहिलवाड़ा के दरबार में पराक्रमी सोलंकीवंश का अंकुर आनाक अथवा आर्णोराज भी रहता था जो कुमारपाल की मौसी का पुत्र था। इसने राजा को अपनी सेवाओं से प्रसन्न करके सामन्तपद एवं व्याघ्रपल्ली अथवा वाघेल (बघेरे का नगर) नामक गाँव प्राप्त किया था। इसी स्थान पर उसके वंशज बहुत वर्षों तक रहते रहे थे। एक दिन राजा अपने महल के सबसे ऊपर वाले कमरे में पलंग पर लेटा हुआ था और सामन्त आनाक दरवाजे पर पहरा दे रहा था। राजाने किसी को भीतर आते हुए देखकर पूछा, "कौन है?" आनाक ने आने वाले मनुष्य को रोक कर देखा तो वह उसीका सेवक निकला। वह उसको समाचार पूछने के लिए बाहर लाया। सेवक ने बधाई मांग कर कहा 'आपके कुंवर का जन्म हुआ है।" नौकर को विदा करके आनाक फिर अपने स्थान पर खड़ा हो गया। पुत्र-जन्म के शुभ समाचार को सुनकर उसका मुख-कमल प्रफुल्लित हो गया और मुख के

---

प्रबन्ध चिन्तामणि के तीर्थ-यात्रा प्रबन्ध में लिखा है कि कर्ण सोते जाता हुआ हाथी पर बैठा जा रहा था इतने ही में उसकी सुवर्णशृंखला (हमेल) बड़ की डाल में उलझ गई हाथी निकल गया और उसकी मृत्यु हो गई।

(१) यह नगर दाय ऊंचा था यहां पर उसने स्नात्र महोत्सव तथा ध्वजारोपण किया। यहां से वलभीपुर की सीमा पर पहुंच कर उसने स्थाप और ईस्पाद्य नाम की टेकरियों पर दो मन्दिर बनवाए और उनमें क्रमशः ऋषभदेव और महावीर स्वामी की मूर्तियां स्थापित कीं।

समान चमकने लगा।' राजा ने पूछा, "क्या बात है ?' आनाक ने उत्तर दिया, 'महाराज ! मेरे यहा कुवर का जन्म हुआ है।' यह सुन कर राजा ने विचार करके कहा, "इसके जन्म की बधाई लेकर आने वाले नौकर को किसी द्वारपाल ने नहीं टोका इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम्हारा यह पुत्र महागुणवान होगा और गुजरात का राज्य पावेगा, परन्तु, वह सेवक बधाई देने के लिए इस स्थान से उतर कर नीचे गया इसलिए वह कुवर इस नगर में और इस धवल-गृह मे राज्य नहीं करेगा वरन् किसी दूसरे नगर मे उसका राज्य होगा।" इस प्रकार इस भाग्यशाली कुवर का नाम लवणप्रसाद रखा गया और उसके वशज इतिहास मे वाघेला वश के राजपूत कहलाए।

अब कुमारपाल को राज्य करते तीस वर्ष पूरे हो गये थे और मूलराज के वश को कच्छ के राजा लाखा फूलाणी की माता(१) का दिया

---

(१) मेरुतग ने उसका नाम कामलता लिखा है। कुमारपालप्रबन्ध में कामलदेवी नाम मिलता है और इसीको कच्छ में सोनल नाम की अप्सरा कहते हैं। जब लाखा फूलाणी १२४ वर्ष की अवस्था में आटकोट के पास मूलराज के हाथ से मारा गया था तब लाखा की अप्सरा माँ ने आकर उसको शाप दिया था। कुमारपाल के मन में यह बात बसी हुई थी। वह इस समय तक बहुत अनुभवी हो गया था। हेमाचार्य को वह उपकारकबुद्धि से देखता था और उनके वचन पर श्रद्धा भी रखता था, फिर भी उसने अपनेवशपरपरागत शैवधर्म को नहीं छोड़ा था। प्रभासपट्टण में सोमनाथ के देवालय का जीर्णोद्धार उसीने कराया था। हेमचन्द्र ने द्व्याश्रय के अन्तिम सर्ग के १०१ वें श्लोक में लिखा है कि महादेवजी ने कुमारपाल को स्वप्न में दर्शन देकर कहा 'मैं तुम्हारे नगर में आकर रहना चाहता हू।' इसीलिए उसने कुमारपलेश्वर महादेव का देवालय बनवाया। इसी सर्ग के ६०, ६१ और ६२ आदि श्लोकों से पता चलता है कि जब खस राजा ने केदारेश्वर के प्रासाद को भग्न कर

हुआ शाप भी अपना प्रभाव दिखाने लगा था। इसी के फलस्वरूप राजा को कोढ़ का दुष्ट रोग लग गया। हेमचन्द्र की भी अवस्था अब चौरासी वर्ष की हो गई थी इसलिए उन्होंने अपना अन्त-समय निकट हा जानकर अन्तिम पूजा की और अन्न जल का त्याग कर दिया

---

[1] एक दिन कुमारपाल ने अपने अमात्य वाग्भट को बुलाकर कहा, "जिस प्रकार तुम्हारी भक्ति मेरे प्रति है उसी प्रकार मेरी भक्ति अति उत्तम श्री शम्भु के प्रति है। मेरे इष्टदेव खण्डित मन्दिर में पड़े हुए हैं और मैं यहाँ पर सुन्दर महलों में बैठा हुआ हूँ इसके लिए मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। तुम कारीगर, मजदूरे आदि सहित एक अधिकारी को धन देकर वहाँ भेज दो और तुरन्त ही देवालय को ठीक करा दो।" ऐसे श्रद्धालु राजा की देवी पर आस्था होना स्वाभाविक है। राजा को धर्म के विषय में तटस्थ रहना चाहिए। अपने राज्य में प्रचलित विभिन्न मतों व धर्मों के प्रति सम्मान प्रकट करना उसका कर्तव्य है। वह स्वयं किसी भी धर्म का माननेवाला हो परन्तु इससे दूसरे धर्मवालों को हानि नहीं पहुँचनी चाहिए क्योंकि बहुत से मतों में कितनी ही बातें तो समान होती हैं। जीव हिंसा करना प्रायः सभी आर्य-धर्मावलम्बियों को बुरा मालूम पड़ता है। धर्म के निमित्त वे भले ही हिंसा करते हों परन्तु सामान्यतया यह उन्हें अच्छा नहीं लगता। इस प्रकार जिन-धर्म पर श्रद्धा रखने वाले कुमारपाल को यह अप्रिय लगती हो तो कोई विशेष बात नहीं है। एक बार नवरात्र के दिनों में कण्टेश्वरी देवी के पुजारियों आदि ने सप्तमी अष्टमी के दिन सदा की भाँति पशु-बलि चढ़ाने के लिए कहा। परन्तु राजा ने ऐसा करने की इच्छा प्रकट नहीं की। कुमारपालप्रबन्ध व चतुर्विंशति प्रबन्ध में इस बात का सविस्तार विवेचन किया गया है। इससे विदित होता है कि देवी के बलि चढ़ाने के लिए जितने पशु बँधे हुए थे उन सब जीवित पशुओं को बेच कर उनकी आय में उसने देवी के कपूर नैवेद्य आदि का प्रबन्ध कर दिया। इतना होने पर भी उस श्रद्धालु राजा के मन में धुकधुकी बनी रही। वह ध्यान-मग्न होकर बैठ गया। त्रिशूलधारिणी कण्टेश्वरी देवी ने उसे दर्शन देकर कहा "हे चौलुक्य! मैं तेरी कुलदेवी कण्टेश्वरी हूँ। तेरे पूर्वज परम्परा से पशु-बलि चढ़ाते

कि जिससे उन्हें यम के आ पहुँचने की खबर पहले ही मिल जाय। राजा ने इस पर बहुत खेद प्रकट किया। तब आचार्य ने कहा, "तुम्हारी आयु के भी छ ही महीने बाकी हैं, तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है इस लिए तुम भी जो कुछ करने के काम हैं उन्हें कर डालो।" इस प्रकार

---

आए हैं। तुम्हें कुलक्रमाचार का उल्लंघन नही करना चाहिए।" यह सुन कर राजा ने कहा, "हे कुलदेवते! विश्ववत्सले! मैं जीवहिंसा नहीं करता हूँ, आपको भी ऐसा नही करना चाहिए क्योंकि देवता तो दया से प्रसन्न होते हैं। आप भी मुझे जीव-दया के कार्य में सहायता दीजिये और मैंने जो कर्पूरादि भोग आपके चढाया है उसीसे सन्तुष्ट हो जाइए।" उसके ऐसे वचन सुनकर देवी कुपित हो गई और उसके मस्तक में त्रिशूल मार कर अन्तर्धान हो गई। इस दिव्य घाव से राजा का शरीर लूताग्रस्त हो गया। प्रात-काल होते ही राजा ने वाग्भट को बुलाकर माता के कोप का पूरा वृत्तान्त कह सुनाया।

वाग्भट्ट ने आत्मरक्षा का विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए कहा कि यदि आत्मरक्षा करने के लिए देवी को पशु भी अपर्ण करने पडे तो करना ही चाहिए। कुमारपाल ने कहा, "मैंने दयामय धर्म का ग्रहण किया है, इसमें किसी प्रकार की न्यूनता न रहे इसीलिए मैंने यह पाप कर्म नही किया और यह न करने के कारण ही मुझे कोढी होना पड़ा। मुझे यह अच्छा नही लगता, मैं तो सवेरा होते होते जलकर प्राण छोड दूंगा। तुम चन्दन की चिता तैयार कराओ।" वागभट्ट ने विनय पूर्वक कहा, "इस विषय में पहले हेमाचार्य से सलाह लेनी चाहिए। सहसा साहस करना उचित नही है।" हेमचन्द्र ने थोडा सा पानी अभिमन्त्रित करके राजा को दिया जिसको शरीर पर लेपने व पीने से लूतारोग जाता रहा और राजा का शरीर पहले के समान ही कांतिमान हो गया।

दूसरे स्थल पर कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि एक बार राजा अपने पलंग पर सो रहा था उसी समय काले रंग की क्रूर आकृतिवाली देवी ने प्रकट होकर कहा, "मैं लूता रोग की अधिष्ठात्री देवी हूँ। पूर्व शाप के अनुसार तेरे

अपने राजवंशी शिष्य को उपदेश देकर हेमचन्द्र ने शरीर छोड़ दिया। शोकग्रस्त राजा ने महाचार्य की दाहक्रिया की और उनकी भस्म को परम पवित्र समझ कर उसने व उसके सामन्तों ने ललाट पर लगाई। बहुत दिनों तक राजा शोक में डूबा रहा उसने राज काज छोड़ दिया

---

शरीर में प्रवेश करने के लिए आई हूँ।" यह कहकर वह देवी अदृश्य हो गई और राजा को बहुत पीड़ा होने लगी। उसने अनेक उपाय किए परन्तु शान्ति न मिली। हेमचन्द्र ने भी कहा—

"भावी भावी भवत्येव नान्यथा सोऽमरैरपि ।
पूर्वं कामलादेव्या यच्छापितो मूलभूपतिः ।

इस रोग में औषधियें काम नहीं चल सकता। जो होनहार है वह होकर ही रहता है देवताओं में भी इससे विपरीत नहीं होता। कामलादेवी ने जो मूलराज को शाप दिया था यह उसी का विपाक है। परन्तु, इसके निवारण का एक उपाय हो सकता है वह यह है कि यदि राज्य किसी दूसरे को दे दिया जावे तो राजा रोग से मुक्त हो सकता है। अब राज्य चाहे मुझे ही दे दिया जावे (ततोऽस्मात्क्रमेण राज्यमस्तु) संसार में अभयदान से बढ़ कर कोई दान नहीं है।" इसके पश्चात्—'श्रीगुरुः सर्वसंमतेन राज्ये स्वयमुपविश्य' तत्क्षणमेव राज्ञो व्यथा सूरिशरीरे संक्रान्ता।" श्री हेमाचार्य गुरु सर्व सम्मति से राज्यासन पर बैठे और उसी क्षण राजा की व्यथा ने सूरि के शरीर में प्रवेश किया। यह देखकर राजा को बहुत खेद हुआ। सूरि ने एक पका हुआ कोल्हा मंगाकर उसमें प्रवेश किया और बाहर निकलते समय सूता भी उसी में छोड़ दिया। बाद में उस कोल्हे को गहरे कुए में डलवा दिया।

अजयपाल कैसा था इस बात का पता तो सबको था ही, इसलिए कुमारपाल के बाद गद्दी पर कौन बैठे इस झगड़े को निबटाने के लिए ही यह सब योजना की गई थी परन्तु वह पार न पड़ सकी। पहले हेमचन्द्र देवलोक गए फिर कुमारपाल। ऊपर हमने यहाँ वाग्भट का नाम लिखा है वहाँ कितने ही उदयन का नाम लिखते हैं परन्तु जो संस्कृत प्रति हमारे देखने में आई है

और ध्यान-मग्न रहने लगा। अन्त में, उसकी आत्मा शरीर-द्वार में से निकल कर स्वर्ग को चली गई।

बढवाण के साधु ( मेरुतुग ) ने यह वृत्तान्त लिखा है, परन्तु हेमचन्द्र महाचार्य के मरण के विषय मे जैनों और ब्राह्मणों मे दूसरी ही अद्भुत दन्तकथाए प्रचलित हैं।

ब्राह्मणों की बातों मे तो प्रचलित है कि राजा कुमारपाल ने मेवाड की कुवरी के साथ विवाह किया था जो सीसोदिणी रानी कहलाती थी। जब राजा ने उसके साथ फेरे लेने के लिए खाडा भेजा था उसी समय उसको विदित हो गया था कि कुमारपाल के यहा यह नियम है कि प्रत्येक रानी को पहले हेमाचार्य के उपासरे मे जाकर जैनधर्म की दीक्षा लेनी पडती है और फिर महल मे घुसने दिया जाता है। इसलिए उसने पट्टण जाने से इनकार किया और यह कहा कि यदि कोई मुझे इस बात का वचन दे कि मुझे हेमाचार्य के उपासरे मे नहीं भेजा जावेगा तो मैं पट्टण जाने को तैयार हूँ।' इस पर जयदेव नामक कुमारपाल का घरू भाट जामिन ( प्रतिभू ) बना और रानी ने अणहिलपुर जाना स्वीकार कर लिया। अणहिलपुर पहुँचने के कुछ दिन बाद हेमाचार्य ने राजा से कहा "सीसोदिणी तो कभी हमारे चैत्य मे नहीं आई।' इस पर राजा ने स्वय रानी से उपासरे मे जाने का आग्रह किया परन्तु वह निरन्तर नाहीं करती रही। इसके कुछ दिन बाद रानी बीमार पडी और भाट जाति की स्त्रिया उससे मिलने आईं।

---

उसमें वाग्भट का ही नाम लिखा है। यही ठीक भी मालूम पडता है क्योंकि उस समय उदयन की मृत्यु हो चुकी थी और उसकी जगह उसका पुत्र कार्य करता था जो वाग्भट, वाह[illegible] नाहड कहलाता था।

अपने राजवंशी शिष्य को उपदेश देकर हेमचन्द्र ने शरीर छोड़ दिया। शोकग्रस्त राजा ने महाचार्य की दाहक्रिया की और उनकी भस्म को परम पवित्र समझ कर उसने व उसके सामन्तों ने ललाट पर लगाई। बहुत दिनों तक राजा शोक में डूबा रहा उसने राज काज छोड़ दिया

---

शरीर में प्रवेश करने के लिए आई हूँ।" यह कहकर वह देवी अदृश्य हो गई और राजा को बहुत पीड़ा होने लगी। उसने अनेक उपाय किए परन्तु शान्ति न मिली। हेमचन्द्र ने भी कहा—

'भावी भावी भवत्येव नान्यथा सोऽमरैरपि ।
पूर्वं कामलादेव्या यच्छापितो मूलभूपतिः ।

इस रोग में औषधियें काम नहीं चल सकता। जो होनहार है वह होकर ही रहता है देवताओं में भी इससे विपरीत नहीं होता। कामलादेवी ने जो मूलराज को शाप दिया था यह उसी का विपाक है। परन्तु इसके निवारण का एक उपाय हो सकता है वह यह है कि यदि राज्य किसी दूसरे को दे दिया जावे तो राजा रोग से मुक्त हो सकता है। अब राज्य चाहे मुझे ही दे दिया जावे (त्वोऽस्माकमेव राज्यमस्तु) संसार में अभयदान से बढ़ कर कोई दान नहीं है।" इसके पश्चात्—"श्रीगुरुः सर्वसम्मतेन राज्यं स्वयमुपविष्ट' तत्क्षणमेव राज्ञो व्यथा सूरिशरीरे संक्रान्ता।" श्री हेमाचार्य गुरु सर्व सम्मति से राज्यासन पर बैठे और उसी क्षण राजा की व्यथा ने सूरि के शरीर में प्रवेश किया। यह देखकर राजा को बहुत खेद हुआ। सूरि ने एक घड़ा रखा कान्ना मंगाकर उसमें प्रवेश किया और बाहर निकलते समय व्यथा को उसी में छोड़ दिया। बाद में उस कोन्हे को गहरे कुए में डलवा दिया।

अजयपाल कैसा था इस बात का पता तो सबको था ही, इसलिए कुमारपाल के बाद गद्दी पर कौन बैठे इस झगड़े को निबटाने के लिए ही यह सब योजना की गई थी परन्तु यह पार न पड़ सकी। पहले हेमचन्द्र देवलोक गए फिर कुमारपाल। ऊपर हमने जहाँ बाग्भट का नाम लिखा है वहाँ कितने ही उच्चन का नाम लिखते हैं परन्तु जो संस्कृत प्रति हमारे देखने में आई है

और ध्यान-मग्न रहने लगा। अन्त में, उसकी आत्मा शरीर-द्वार में से निकल कर स्वर्ग को चली गई।

वढवाण के साधु ( मेरुतुग ) ने यह वृत्तान्त लिखा है, परन्तु हेमचन्द्र महाचार्य के मरण के विषय मे जैनों और ब्राह्मणों मे दूसरी ही अद्‌भुत दन्तकथाए प्रचलित हैं।

ब्राह्मणों की बातों मे तो प्रचलित है कि राजा कुमारपाल ने मेवाड की कुवरी के साथ विवाह किया था जो सीसोदिणी रानी कहलाती थी। जब राजा ने उसके साथ फेरे लेने के लिए खाडा भेजा था उसी समय उसको विदित हो गया था कि कुमारपाल के यहा यह नियम है कि प्रत्येक रानी को पहले हेमाचार्य के उपासरे मे जाकर जैनधर्म की दीक्षा लेनी पडती है और फिर महल मे घुसने दिया जाता है। इसलिए उसने पट्टण जाने से इनकार किया और यह कहा कि यदि कोई मुझे इस बात का वचन दे कि मुझे हेमाचार्य के उपासरे मे नहीं भेजा जावेगा तो मैं पट्टण जाने को तैयार हूँ।' इस पर जयदेव नामक कुमारपाल का घरू भाट जामिन ( प्रतिभू ) बना और रानी ने अणहिलपुर जाना स्वीकार कर लिया। अणहिलपुर पहुँचने के कुछ दिन बाद हेमाचार्य ने राजा से कहा "सीसोदिणी तो कभी हमारे चैत्य मे नहीं आई।' इस पर राजा ने स्वय रानी से उपासरे मे जाने का आग्रह किया परन्तु वह निरन्तर नाहीं करती रही। इसके कुछ दिन बाद रानी बीमार पडी और भाट जाति की स्त्रिया उससे मिलने आई।

---

उसमें वाग्भट का ही नाम लिखा है। यही ठीक भी मालूम पड़ता है क्योंकि उस समय उदयन की मृत्यु हो चुकी थी और उसकी जगह उसका पुत्र कार्य करता था जो वाग्भट, वाहड अथवा बाहड कहलाता था।

उसकी करुणकथा सुनकर उन्होंने बहुत दुःख प्रकट किया। फिर वे अपने में से किसी एक की पोशाक पहना कर उसे चुपचाप अपने घर ले आईं। रात को भाटों ने नगर की दीवार में एक छेद निकाला और उसमें होकर रानी को घर पहुंचाने के लिए बाहर ले आए। जब कुमारपाल को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो दो हजार घोड़े साथ लेकर उसके पीछे चढ़ा और ईडर से पंद्रह मील की दूरी पर उसने उन लोगों को जा पकड़ा। भाट ने रानी से कहा 'ईडर पहुँचने के बाद तो तुम सुरक्षित हो जाओगी। मेरे पास दो सौ घोड़े हैं, जब तक हम में से एक भी मनुष्य जीवित रहेगा तब तक तो कोई भी तुम्हारे हाथ नहीं लगा सकता। यह कह कर वह तो आक्रमणकारियों की ओर मुड़ गया परन्तु, रानी हिम्मत हार गई और उसने गाड़ी में ही आत्मघात कर लिया। लड़ाई चलती रही और आक्रमणकारी रथ की ओर बढ़ने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि दासी ने चिल्लाकर कहा 'अब लड़ना व्यर्थ रानी तो मर चुकी। यह सुनकर कुमारपाल सेना-सहित वापस लौट गया।

जब जयदेव भाट ने सोचा कि 'मेरी तो बात ही चली गई, इसलिए जीना व्यर्थ है। यह सोचकर वह सिद्धपुर आया और वहां से अपनी जाति के लोगों के पास कुंकुमपत्रियां भेजीं जिनमें लिखा था कि 'अपनी जाति की प्रतिष्ठा चली गई है, इसलिए जो लोग मेरे साथ जल मरने के लिए राजी हों वे तैयार हो जावें। फिर एक सांठों (ईख) का ढेर लगवाया और उसमें जो लोग अपनी स्त्रियों सहित मरने को तैयार थे उन्होंने दो दो और जो अकेले मरना चाहते थे उन्होंने एक एक सांठा निकाल कर ले लिया। इसके बाद उन्होंने चिताएं और

जमोरें (१) बनाई । पहली जमोर सिद्धपुर मे सरस्वती के किनारे बनाई गई, दूसरी पट्टण से एक तीर के फासले पर और तीसरी नगर–द्वार के बिलकुल पास ही बनाई गई थी। प्रत्येक जमोर पर सोलह भाट अपनी अपनी स्त्रियों सहित भस्म हो गए। जयदेव का एक भानजा कन्नोज में था, । उसके पास भी कुकुमपत्री भेजी गई थी परन्तु उसकी माता ने उसे छुपा ली, क्योंकि वह उसके एक ही पुत्र था। बाद मे, जब भाटों के कुलगुरु भाटों की भस्म लेकर उसे बैलों पर लाद कर गगा में बहा देने के लिए निकले और कन्नौज पहुँचे तो जयदेव के भानजे ने उनसे पूछताछ की और कर मागा क्योंकि वह वहा के राजा की ओर से राह-दारी का नाकादार था और उसने उन बैलों पर व्यापारी माल लदा हुआ समझा था। उसके पूछताछ करने पर कुलपुरोहितों ने जो कुछ पट्टण मे हुआ था वह सब कह सुनाया। अब वह भाट भी अपने कुटुम्ब को लेकर आ गया तथा एक जमोर पर चढकर भस्म हो गया। इस घटना के कुछ ही दिन बाद एक स्त्री के पुत्र उत्पन्न हुआ और वह स्त्री उस बालक को कुल-पुरोहित के सरक्षण में छोड कर चिता पर जल मरी। पट्टण के परगने में जो भाट हैं वे अपने को उसी बालक के वशज बतलाते हैं।

ब्राह्मणों और जैनों के पारस्परिक वैमनस्य की इस कथा को सुन कर ही शकराचार्य अणहिलपुर पट्टण आए थे। इस समय तक वहा जैनों की सख्या एक लाख हो गई थी। एक दिन पालकी में बैठकर राजा बाजार मे जा रहा था। वहीं उसे हेमाचार्य का शिष्य मिला। उससे राजाने

---

(१) एक शव के लिए चिता बनाई जाती है, और एक से अधिक शवों के लिए जो चिता तैयार की जाती है वह जमोर कहलाती है।

पूछा "महाराज आज कौनसी तिथि है ? वास्तव में उस दिन अमावास्या थी परन्तु भूल से उस यति के मुख से 'पूर्णिमा' निकल गई। यह बात सुनकर पास ही में एक ब्राह्मण हँस पड़ा और जैन साधु की हँसी करते हुए बोला अरे ! मुण्डी ! तुझे क्या मालूम है ? आज तो अमावास्या है'। घर पहुँच कर कुमारपाल ने हेमाचार्य और ब्राह्मणों के मुखिया दोनों को बुलाया। उधर हेमाचार्य का शिष्य जब उपाश्रय में पहुँचा तो अपनी भूल के कारण बहुत खिन्न और उदास दिखाई पड़ा। आचार्य ने पूछा, 'क्या बात हुई ? उदास क्यों हो ?' जब शिष्य ने सब कुछ हाल कह सुनाया तो आचार्य ने कहा 'कुछ चिन्ता मत करो सब कुछ ठीक हो जावेगा। इतने ही में राजा का दूत आ पहुँचा और हेमाचार्य उसके साथ ही महल को रवाना हो गए। राजा ने फिर पूछा 'आज कौनसी तिथि है ?' ब्राह्मण ने उत्तर दिया 'आज अमावास्या है।' हेमाचार्य ने कहा 'नहीं आज पूर्णिमा है। ब्राह्मण ने कहा, शाम होते ही अपने आप निर्णय हो जायगा यदि पूर्णिमा होगी तो पूर्ण चन्द्रमा दिखाई देगा और हम सब ब्राह्मण राज्य छोड़कर चले जायेंगे। परन्तु यदि चन्द्रमा उदित न हुआ तो समस्त जैनों को देश छोड़कर जाना होगा।' हेमाचार्य इस प्रस्ताव को स्वीकार करके घर लौट आए। उन्होंने एक योगिनी को प्रसन्न कर रखा था। उसी (योगिनी) ने ऐसी माया रची कि सबको पूर्व दिशा में उगता हुआ चन्द्रमा दिखाई दिया। अब इस बात की ढोंडी पिट गई कि ब्राह्मण हार गए, और वे देश छोड़कर चले जायेंगे। (१)

---

(१) कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि राजा ने हेमचन्द्र सूरि से पूछा 'आज कौनसी तिथि है ? उत्तर में सूरि के मुंह से अमावस के बदले

इसी समय भाटों की बात सुनकर शकराचार्य स्वामी (१) का मन इधर आकृष्ट हुआ था और वे सिद्धपुर चले आए थे। जब ब्राह्मणों ने यह हाल सुना तो यह जानकर कि, 'सुबह तो हम लोगों को नगर छोडकर जाना ही होगा' रातों रात वे उन्हे पट्टण ले आए। प्रातःकाल होते ही राजा कुमारपाल ने ब्राह्मणो को बुला कर अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। शकर स्वामी ने आगे बढकर कहा, 'राज्य के बाहर जाने की क्या आवश्यकता है? आज नो बजे तो समुद्र अपनी मर्य्यादा छोडकर सारे देश को डुबो ही देगा।" यह सुनकर हेमाचार्य ने जैनमत का अभिप्राय बतलाते हुए राजा से कहा, "नहीं, न तो यह ससार बना है, न नष्ट होगा।" शकर स्वामी ने कहा, "एक जलघडी रख लो और देखो क्या होता है।" अब, तीनो आदमी (राजा, हेमाचार्य, और शकर स्वामी) घडी रखकर उसके पास ही बैठ गए। ज्यों ही नो बजे, वे महल के ऊपर के खण्ड मे चले गए और खिडकी मे

---

पूनम (पूर्णिमा) निकल गया। यह सुनकर देवबोधि (शैव सन्यासी) हँस पडे और कहने लगे, "लोक में जो अमावास्या है, वह आज भाग्य से पूर्णिमा हो जायेगी।' सूरिने कहा, 'रात होने पर सब मालूम हो जावेगा।' इसके बाद उन्होंने एक घडी में चार योजन चलने वाले ऊटो पर पूर्व दिशा में अपने मनुष्य भेजे। कहते हैं कि हेमाचार्य ने देवताओ से पूर्व-प्राप्त श्रीसिद्धचक्र मन्त्र का प्रयोग किया जिससे पूर्व दिशा में सध्यासमय चन्द्रमा का उदय हुआ और ठीक पश्चिम दिशा में अस्त हुआ। इस चमत्कार को देखने के लिए जिन मनुष्यों को भेजा गया था उन्होंने आकर सब वृत्तान्त निवेदन किया जिससे सब को आश्चर्य हुआ।

(१) आदि शङ्कराचार्य नही, वरन् उनके परपरागत शिष्य देवबोधाचार्य।

पूछा 'महाराज आज कौनसी तिथि है ? वास्तव में उस दिन अमावास्या थी परन्तु भूल से उस यति के मुख से 'पूर्णिमा' निकल गई। यह बात सुनकर पास ही में एक ब्राह्मण हँस पड़ा और जैन साधु की हँसी करते हुए बोला अरे ! मुखड़ी ! तुझे क्या मालूम है ? आज तो अमावास्या है'। घर पहुँच कर कुमारपाल ने हेमाचार्य और ब्राह्मणों के मुखिया दोनों को बुलाया। उधर हेमाचार्य का शिष्य जब उपाश्रय में पहुँचा तो अपनी भूल के कारण बहुत खिन्न और उदास दिखाई पड़ा। आचार्य ने पूछा क्या बात हुई ? उदास क्यों हो ?' जब शिष्य ने सब कुछ हाल कह सुनाया तो आचार्य ने कहा 'कुछ चिन्ता मत करो सब कुछ ठीक हो जावेगा। इतने ही में राजा का दूत आ पहुँचा और हेमाचार्य उसके साथ ही महल को रवाना हो गए। राजा ने फिर पूछा 'आज कौनसी तिथि है ? ब्राह्मण ने उत्तर दिया 'आज अमावास्या है । हेमाचार्य ने कहा नहीं आज पूर्णिमा है। ब्राह्मण ने कहा, 'शाम होते ही अपने आप निर्णय हो जायगा यदि पूर्णिमा होगी तो पूर्ण चन्द्रमा दिखाई देगा और हम सब ब्राह्मण राज्य छोड़कर चले जावेंगे। परन्तु, यदि चन्द्रमा उदित न हुआ तो समस्त जैनों को देश छोड़कर जाना होगा।" हेमाचार्य इस प्रस्ताव को स्वीकार करके घर लौट आए। उन्होंने एक योगिनी को प्रसन्न कर रखा था। उसी (योगिनी) ने ऐसी माया रची कि सबको पूर्व दिशा में उगता हुआ चन्द्रमा दिखाई दिया। अब इस बात की डौंडी पिट गई कि ब्राह्मण हार गए, और वे देश छोड़कर चले जावेंगे। (१)

---

(१) कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि राजा ने हेमचन्द्र सूरि से पूछा 'आज कौनसी तिथि है ?' उत्तर में सूरि के मुंह से अमावस के बदले

जैनधर्म की पुनमिया (१) शाखा के श्री पूज्य उमेदचन्दजी अथवा उमेद प्रभु सूरि जो पट्टण में हैं उनसे प्राप्त हुई है।

सूरि का कहना है कि, हेमाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करके उनको जीतने के लिए एक दण्डी (२) योगी कर्णाटक से आया। वह बहुत दिनों तक (अणहिलवाडा) में रहा और अपनी इच्छा पूर्ण करने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु उसके सभी उपाय निष्फल गए। हेमाचार्य के दो मुख्य शिष्य थे, एक का नाम रामचन्द्र था और दूसरे का नाम बालचन्द्र। (३) आचार्य बालचन्द्र से अधिक प्रसन्न नहीं थे। इसी समय

---

(१) अमावास्या को पूर्णिमा बतला देने के कारण यह शाखा पूनमिया शाखा कहलाई।

(२) शंकराचार्य हाथ में दण्ड रखते थे इसलिए उनका नाम दण्डी पड़ा, यहाँ जैन लोग इस नाम को अपमानसूचक भाव से बोलते हैं।

(३) कुमारपालप्रबन्ध और चतुर्विंशतिप्रबन्ध से विदित होता है कि हेमचन्द्र के शिष्य-वर्ग में दो पक्ष थे। एक पक्ष में रामचन्द्र मुनि था जो बहुत विद्वान् था और जिसने प्रबन्धशत निर्भयभीमव्यायोग आदि पुस्तकों की रचना की थी, वह हेमसूरि का शिष्य था। गुणचन्द्र मुनि जो देवसूरि का शिष्य था और जिसने तत्वप्रकाशिका और हेमविभ्रमसूत्र टीका ग्रन्थ की रचना की थी, वह दूसरे पक्ष में था। बालचन्द्र विरोधी पक्ष में था। उसने कुमारपाल के भतीजे अजयपाल से मैत्री कर ली थी और उसके पास सब गुप्त खबरें पहुंचाता रहता था। एक बार, कुमारपाल, हेमचन्द्र और आहड रात के समय इस बात पर विचार करने लगे कि बाद में गद्दी का मालिक कौन हो? हेमचन्द्र ने राजा से कहा, 'प्रतापमल्ल तुम्हारा भानजा है (शायद कुमारी लीला का पुत्र) उसीको गद्दी का उत्तराधिकारी बनाओ, क्योंकि वह धर्म की रक्षा करेगा। अजयपाल दुराशयी, झूठा, और अधर्मी है। राजनीति में कहा है कि धर्मशील, न्यायी, पात्रदाता, गुणानुरागी और प्रजावत्सल राजा होना चाहिए। अजयपाल तुम्हारे बनवाये हुए धर्म-स्थानों को नष्ट करवा देगा।" बालचन्द्र को इस बातचीत का

से पश्चिम की ओर देखने लगे। उन्होंने देखा कि समुद्र की लहरें वेग से आगे बढ़ रही हैं और इतनी आगे बढ़ आई हैं कि नगर के सब घर डूब गए हैं। दोनों आचार्य और राजा और भी ऊपर के खण्ड में चढ़ते चले गए परन्तु पानी ऊपर आता ही गया। अन्त में वे सब से ऊपर के सातवें खण्ड में पहुँच गए और वहां से दिखाई दिया कि ऊँचे ऊँचे घर बड़े बड़े पेड़ और देवालयों के शिखर आदि सब पानी में डूब गए हैं। कुमारपाल ने घबराकर शंकर स्वामी से पूछा 'क्या अब बचने का कोई उपाय नहीं है?' उन्होंने कहा 'पश्चिम दिशा से एक नाव बहती हुई आवेगी वह इस खिड़की के बिलकुल पास में आ आवेगी हम तीनों में से जो कोई जल्दी से उसमें कूद पड़ेगा वही बच जावेगा। अब तीनों ने अपनी अपनी कमर कस ली और नाव में कूदने की तैयारी करने लगे। दूर से एक नाव आती हुई दिखाई दी। वह खिड़की की ओर आगे आने लगी। शंकर स्वामी ने राजा का हाथ पकड़ते हुए कहा 'हम दोनों कूदने में एक दूसरे की मदद करेंगे। इतने ही में नाव खिड़की के पास आ पहुँची और राजा कूदने का प्रयत्न करने लगा परन्तु, शंकर स्वामी ने उसे पीछे की ओर खींच लिया और हेमाचार्य एकदम खिड़की से कूद पड़े। समुद्र का चढ़ाव और नाव आदि सब माया का खेल थे। वह (हेमाचार्य) नीचे पत्थरों की फर्श पर गिर पड़े और वहीं मर गए। फिर जैनधर्म के अनुयायियों की कत्ल आम जारी हुई और कुमारपाल शंकर स्वामी का शिष्य हो गया।

अब इसी प्रसंग से सम्बद्ध जैन लोगों में जो बात प्रचलित है वह लिखते हैं। इसमें ब्राह्मणों के आचार्य का मुख्य रूप से वर्णन आता है। यह कथा हमको किसी साधारण जगह से प्राप्त नहीं हुई है परम

जैनधर्म की पुनमिया (१) शाखा के श्री पूज्य उमेदचन्दजी अथवा उमेद प्रभु सूरि जो पट्टण मे है उनसे प्राप्त हुई है।

सूरि का कहना है कि, हेमाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करके उनको जीतने के लिए एक दण्डी (२) योगी कर्णाटक से आया। वह बहुत दिनों तक (अणहिलवाडा) मे रहा और अपनी इच्छा पूर्ण करने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु उसके सभी उपाय निष्फल गए। हेमाचार्य के दो मुख्य शिष्य थे, एक का नाम रामचन्द्र था और दूसरे का नाम बालचन्द्र। (३) आचार्य बालचन्द्र से अधिक प्रसन्न नहीं थे। इसी समय

---

(१) अमावास्या को पूर्णिमा बतला देने के कारण यह शाखा पूनमिया शाखा कहलाई।

(२) शंकराचार्य हाथ में दण्ड रखते थे इसलिए उनका नाम दण्डी पड़ा, यहाँ जैन लोग इस नाम को अपमानसूचक भाव से बोलते हैं।

(३) कुमारपालप्रबन्ध और चतुर्विंशतिप्रबन्ध से विदित होता है कि हेमचन्द्र के शिष्य-वर्ग में दो पक्ष थे। एक पक्ष में रामचन्द्र मुनि था जो बहुत विद्वान् था और जिसने प्रबन्धशत निर्भयभीमव्यायोग आदि पुस्तकों की रचना की थी, वह हेमसूरि का शिष्य था। गुणचन्द्र मुनि जो देवसूरि का शिष्य था और जिसने तत्वप्रकाशिका और हेमविभ्रमसूत्र टीका ग्रन्थ की रचना की थी, वह दूसरे पक्ष में था। बालचन्द्र विरोधी पक्ष में था। उसने कुमारपाल के भतीजे अजयपाल से मैत्री कर ली थी और उसके पास सब गुप्त खबरें पहुंचाता रहता था। एक बार, कुमारपाल, हेमचन्द्र और आहड रात के समय इस बात पर विचार करने लगे कि बाद में गद्दी का मालिक कौन हो? हेमचन्द्र ने राजा से कहा, 'प्रतापमल्ल तुम्हारा भानजा है (शायद कुमारी लीला का पुत्र) उसीको गद्दी का उत्तराधिकारी बनाओ, क्योंकि वह धर्म की रक्षा करेगा। अजयपाल दुराशयी, झूठा, और अधर्मी है। राजनीति में कहा है कि धर्मशील, न्यायी, पात्रदाता, गुणानुरागी और प्रजावत्सल राजा होना चाहिए। अजयपाल तुम्हारे बनवाये हुए धर्म-स्थानों को नष्ट करवा देगा।" बालचन्द्र को इस बातचीत का

से पश्चिम की ओर देखने लगे। उन्होंने देखा कि समुद्र की लहरें वेग से आगे बढ़ रही हैं और इतनी आगे बढ़ आई हैं कि नगर के सब घर डूब गए हैं। दोनों आचार्य और राजा और भी ऊपर के खण्ड में चढ़ते चले गए परन्तु पानी ऊपर आता ही गया। अन्त में, वे सब से ऊपर के सातवें खण्ड में पहुँच गए और वहाँ से दिखाई दिया कि ऊँचे ऊँचे घर, बड़े बड़े पेड़ और देवालयों के शिखर आदि सब पानी में डूब गए हैं। कुमारपाल ने घबराकर शंकर स्वामी से पूछा 'क्या अब बचने का कोई उपाय नहीं है?' उन्होंने कहा 'पश्चिम दिशा से एक नाव बहती हुई आवेगी वह इस खिड़की के बिलकुल पास में आ जावेगी हम तीनों में से जो कोई जल्दी से उसमें कूद पड़ेगा वही बच जावेगा।' अब तीनों ने अपनी अपनी कमर कस ली और नाव में कूदने की तैयारी करने लगे। दूर से एक नाव आती हुई दिखाई दी। वह खिड़की की ओर आगे आने लगी। शंकर स्वामी ने राजा का हाथ पकड़ते हुए कहा 'हम दोनों कूदने में एक दूसरे की मदद करेंगे। इतने ही में नाव खिड़की के पास आ पहुँची और राजा कूदने का प्रयत्न करने लगा परन्तु, शंकर स्वामी ने उसे पीछे की ओर खींच लिया और हेमाचार्य एकदम खिड़की से कूद पड़े। समुद्र का चढ़ाव और नाव आदि सब माया के खेल थे। वह (हेमाचार्य) नीचे पत्थरों की फर्श पर गिर पड़े और वहीं मर गए। फिर जैनधर्म के अनुयायियों की कत्ल आम जारी हुई और कुमारपाल शंकर स्वामी का शिष्य हो गया।

अब इसी प्रसंग से सम्बद्ध जैन लोगों में जो बात प्रचलित है वह लिखते हैं। इसमें ब्राह्मणों के आचार्य का मुख्य रूप से वर्णन आता है। यह कथा हमको किसी साधारण जगह से प्राप्त नहीं हुई है वरन्

जैनधर्म की पुनमिया (१) शाखा के श्री पूज्य उमेदचन्द्रजी अथवा उमेद प्रभु सूरि जो पट्टण में हैं उनसे प्राप्त हुई है।

सूरि का कहना है कि, हेमाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करके उनको जीतने के लिए एक दण्डी (२) योगी कर्णाटक से आया। वह बहुत दिनों तक (अणहिलवाडा) में रहा और अपनी इच्छा पूर्ण करने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु उसके सभी उपाय निष्फल गए। हेमाचार्य के दो मुख्य शिष्य थे, एक का नाम रामचन्द्र था और दूसरे का नाम बालचन्द्र। (३) आचार्य बालचन्द्र से अधिक प्रसन्न नहीं थे। इसी समय

---

(१) अमावास्या को पूर्णिमा बतला देने के कारण यह शाखा पूनमिया शाखा कहलाई।

(२) शंकराचार्य हाथ में दण्ड रखते थे इसलिए उनका नाम दण्डी पडा, यहाँ जैन लोग इस नाम को अपमानसूचक भाव से बोलते हैं।

(३) कुमारपालप्रबन्ध और चतुर्विंशतिप्रबन्ध से विदित होता है कि हेमचन्द्र के शिष्य-वर्ग में दो पक्ष थे। एक पक्ष में रामचन्द्र मुनि था जो बहुत विद्वान् था और जिसने प्रबन्धशत निर्भयभीमव्यायोग आदि पुस्तकों की रचना की थी, वह हेमसूरि का शिष्य था। गुणचन्द्र मुनि जो देवसूरि का शिष्य था और जिसने तत्वप्रकाशिका और हेमविभ्रमसूत्र टीका ग्रन्थ की रचना की थी, वह दूसरे पक्ष में था। बालचन्द्र विरोधी पक्ष में था। उसने कुमारपाल के भतीजे अजयपाल से मैत्री कर ली थी और उसके पास सब गुप्त खबरें पहुंचाता रहता था। एक बार, कुमारपाल, हेमचन्द्र और आहड रात के समय इस बात पर विचार करने लगे कि बाद में गद्दी का मालिक कौन हो? हेमचन्द्र ने राजा से कहा, 'प्रतापमल्ल तुम्हारा भानजा है (शायद कुमारी लीला का पुत्र) उसीको गद्दी का उत्तराधिकारी बनाओ, क्योंकि वह धर्म की रक्षा करेगा। अजयपाल दुराशयी, झूठा, और अधर्मी है। राजनीति में कहा है कि धर्मशील, न्यायी, पात्रदाता, गुणानुरागी और प्रजावत्सल राजा होना चाहिए। अजयपाल तुम्हारे बनवाये हुए धर्म-स्थानों को नष्ट करवा देगा।" बालचन्द्र को इस बातचीत का

हेमाचार्य के आदेशानुसार कुमारपाल पारसनाथ का मन्दिर बनवा रहा था और बालचन्द्र इस इमारत के पूरे होने में रोड़ा अटकाने के उपाय सोच रहा था। हेमाचार्य ने पारसनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करने का शुभ मुहूर्त निकाल लिया था और बालचन्द्र को आज्ञा दे दी थी वह ठीक ठीक निश्चित घड़ी का ध्यान रखकर सूचना दे दे। उसने धोखा करके अशुभ वेला में सूचना दे दी जिसका फल यह हुआ कि मन्दिर में आग लग गई और वह नष्ट प्राय हो गया। इस दुःखदायक समाचार को सुनने से वृद्ध हेमाचार्य के हृदय को बड़ा भारी धक्का लगा। कुमारपाल

---

पता चल गया और उसने यह सब समाचार अजयपाल को कह सुनाया। इसका फल यह हुआ कि जब कुमारपाल ने प्रतापमल्ल को गद्दी पर बिठाने की योजना की तो राज्य में गड़बड़ी मच गई। कहते हैं कि अजयपाल ने किसी दुष्ट के द्वारा राजा को ज़हर दिला दिया था। जब राजा को यह ज्ञात हुआ कि उसे ज़हर दिया गया है तो उसने मल्लिकार्जुन के भण्डार में विष उतारनेवाली औषधि का तलाश कराया जो आम्बड़ ने लाकर रखी थी। परन्तु मालूम हुआ कि अजयपाल इस औषधि को पहले ही चुराकर ले गया था। प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि ८४ वर्ष की आयु में हेमचन्द्र ने अनशन आरम्भ कर दिया और अन्त समय में जो आराधना एवं क्रिया की जाती है वह करने लगे। कुमारपाल को इससे बहुत दुःख हुआ। तब हेमाचार्य ने कहा "राजन्! तुम शोक क्यों करते हो, छः मास में तुम्हारी आयु समाप्त होने वाली है इसलिए तुम भी अपनी उत्तर क्रिया कर डालो" इस प्रकार राजा को बोध देकर हेमाचार्य मर गए। कुमारपाल ने बहुत शोक किया और फिर अपना समय आने पर आचार्य ने जिस प्रकार समझाया था वैसे ही क्रिया आदि करके वह भी समाधिस्थ होकर देवलोक को चला गया। इस वृत्तान्त से पता चलता है कि इन दोनों में से किसी की भी मृत्यु ज़हर देने के कारण नहीं हुई वरन् स्वाभाविक रीति से ही उनका देहान्त हुआ था।

ने देवालय को फिर से बनाने की सलाह पूछी, परन्तु धर्माचार्य ने कहा, 'अब पुन बनवाने से क्या लाभ? तुम्हारी और मेरी जिन्दगी के अब केवल छ महीने ही बाकी हैं, इसके बाद तो हमारी मृत्यु हो ही जावेगी।' (१) यह सुनकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ और उसने अपना मनसूबा छोड़ दिया।

थोडे समय बाद, हेमाचार्य ने, उस समय रामचन्द्र के अनुपस्थित होने के कारण, बालचन्द्र को किसी श्रावक के घर से भोजन लाने के लिए भेजा। वह भोजन लेकर लौट रहा था कि मार्ग मे उसे दण्डी योगी मिला जिसने कहा, "तुम इतने उदास क्यो हो? मैं जानता हूँ कि तुम्हारे गुरु की तुम पर कृपा नहीं है-यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम्हारे गुरु का वशीकरण कर दूँ।" ऐसा कहकर उसने

---

(१) प्रबन्धचिन्तामणिकार का कहना है कि गद्दी पर बैठने के समय कुमारपाल की अवस्था ५० वर्ष की थी। उसने लगभग ३१ वर्ष राज्य किया और सन् ११७४ (सवत् १२३०) में उसकी मृत्यु हुई। कहते हैं उसकी मृत्यु लूता नाम के रोग से हुई थी। कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि उसके भतीजे अजयपाल ने उसे कैद कर लिया था और यह भी लिखा है कि कुमारपाल ने ३० वर्ष ८ महीने २६ दिन राज्य किया। उसके राज्यकाल का आरम्भ मार्गशीर्ष सुदि ४ सवत् ११६६ (११४३ ई०) से माना जावे तो उसकी अन्तिम तिथि कार्तिक से आरम्भ होने वाले वर्ष के अनुसार सवत् १२२६ के भाद्रपद में आती है, और यदि गुजराती पचाङ्ग के अनुसार आषाढ में शुरू होने वाले वर्ष से गणना की जावे तो सवत् १२३० के भाद्रपद में आती है। इन दोनो में से कौन सा वर्ष सही है यह विचारणीय है। भिल्सा (भेलसा) के पास उदयपुर में वैशाख शुक्ला ३ सवत् १२२६ के एक लेख में अणहिलवाडा के शासक का नाम अजयपाल लिखा है। इससे विदित होता है कि कुमारपाल की मृत्यु सवत् १२२६ के वैशाख मास से पहले हो चुकी थी (सन् ११७३)। एक प्राचीन

हेमाचार्य के आदेशानुसार कुमारपाल पारसनाथ का मन्दिर बनवा रहा था और बालचन्द्र इस इमारत के पूरे होने में रोड़ा अटकाने के उपाय सोच रहा था। हेमाचार्य ने पारसनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करने का शुभ मुहूर्त निकाल लिया था और बालचन्द्र को आज्ञा दे दी थी वह ठीक ठीक निश्चित घड़ी का ध्यान रखकर सूचना दे दे। उसने धोखा करके अशुभ वेला में सूचना दे दी जिसका फल यह हुआ कि मन्दिर में आग लग गई और वह नष्ट प्राय हो गया। इस दुःखदायक समाचार को सुनने से वृद्ध हेमाचार्य के हृदय को बड़ा भारी धक्का लगा। कुमारपाल

---

चला चला गया और उसने यह सब समाचार अजयपाल को कह सुनाया। इसका फल यह हुआ कि जब कुमारपाल ने प्रतापमल्ल को गद्दी पर बिठाने की योजना की तो राज्य में गड़बड़ी मच गई। कहते हैं कि अजयपाल ने किसी दुष्ट के द्वारा राजा को जहर दिला दिया था। जब राजा को यह ज्ञात हुआ कि उसे जहर दिया गया है तो उसने मल्लिकार्जुन के भण्डार में विष उतारनेवाली औषधि का पता कराया जो आबड़ से लाकर रखी थी। परन्तु, मालूम हुआ कि अजयपाल इस औषधि को पहले ही चुराकर ले गया था। प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि ८४ वर्ष की आयु में हेमचन्द्र ने अनशन आरम्भ कर दिया और अन्त समय में जो आराधना पाठ किया की जाती है वह करने लगे। कुमारपाल को इससे बहुत दुःख हुआ तब हेमाचार्य ने कहा, राजन्! तुम शोक क्यों करते हो छः मास में तुम्हारी आयु समाप्त होने वाली है इसलिए तुम भी अपनी उत्तर क्रिया कर डालो। इस प्रकार राजा को सीख देकर हेमाचार्य मर गये। कुमारपाल ने बहुत शोक किया और फिर अपना समय आने पर आचार्य ने जिस प्रकार समझाया था वैसे ही क्रिया आदि करके वह भी समाधिस्थ होकर परलोक को चला गया। इस वृत्तान्त से पता चलता है कि इन दोनों में से किसी की भी मृत्यु जहर देने के कारण नहीं हुई वरन् स्वाभाविक रीति से ही उनका

# कुमारपाल विषयक विशेष वृत्तान्त*

सोमेश्वरकृत कीर्तिकौमुदी के दूसरे सर्ग मे लिखा है —

महीमण्डलमार्तण्डे, तत्र लोकान्तर गते ।
श्रीमान कुमारपालोऽथ, राजा रञ्जितवान् प्रजा ॥४०॥
पृथुप्रभृतिभि पूर्वैर्गच्छद्भि पार्थिवैर्दिवम् ।
स्वकीयगुणरत्नाना, यत्र न्यास इवार्पित ॥४१॥
न केवल महीपाला सायकैः समराङ्गणे ।
गुणैर्लोकम्पृणैर्येन, निर्जिता पूर्वजा अपि ॥४२॥
सुकृतैकरतेर्यस्य, मृतवित्तानि मुञ्चत ।
देवस्येव नृदेवस्य, युक्ताऽभूदमृतार्थिता ॥४३॥
करवालजलै' स्नाता, वीराणामेव योऽग्रहीत् ।
धौता बाष्पाम्बुधाराभिर्निर्वीराणा न तु श्रियम् ॥४४॥
शूराणा सम्मुखान्येव, पदानि समरे ददौ ।
य पुनस्तत्कलत्रेषु, मुख चक्रे पराङ्मुखम् ॥४५॥
हृदि प्रविष्टयद्बाणक्लिष्टेनाघूर्णित शिर ।
'जाङ्गल'क्षोणिपालेन, व्याचक्षाणै परैरपि ॥४६॥
चूडारत्नप्रभाकम्र नम्र गर्वादकुर्वत ।
कणश 'कुङ्कणेश'स्य यश्चकार शरै शिर ॥४७॥

---

* यह वृत्तान्त मूल ग्रन्थ में नही है परन्तु गुजराती भाषान्तर में अवश्य है । मूलग्रन्थो के उद्धरण एव अन्य आवश्यक टिप्पणिया अनुवादक ने दिए हैं ।

जो दूध बालचन्द्र ले आ रहा था उसको अपनी अंगुली से हिला दिया और अपने नाखून के नीचे छुपाए हुए जहर को उसमें मिला दिया। लौटकर बालचन्द्र ने हेमाचार्य को वह दूध दिया और वे उसको पीकर मर गए। इस तरह पारसनाथ का मन्दिर कभी पूरा न हुआ और आचार्य की मृत्यु के बाद बराबी साधु जैनधर्म को हानि पहुँचाने लगा।

---

पट्टावली है जिससे विदित होता है कि कार्तिक सुदि २ से मार्गशीर्ष सुदी ४ संवत् ११९९ तक सिद्धराज की पादुका गद्दी पर रखकर मन्त्रियों ने काम चलाया था। इसके पश्चात् पौष सुदि १२ संवत् १२२९ तक ३ वर्ष १ मास ७ दिन कुमारपाल ने राज्य किया।

# कुमारपाल विषयक विशेष वृत्तान्त*

सोमेश्वरकृत कीर्तिकौमुदी के दूसरे सर्ग मे लिखा है —

महीमण्डलमार्तण्डे, तत्र लोकान्तर गते ।
श्रीमान कुमारपालोऽथ, राजा रञ्जितवान् प्रजा ॥४०॥
पृथुप्रभृतिभि पूर्वैर्गच्छद्भि पार्थिवैर्दिवम् ।
स्वकीयगुणरत्नाना, यत्र न्यास इवार्पित ॥४१॥
न केवल महीपाला मायकै समराङ्गणे ।
गुणैर्लोकम्पृणैर्येन, निर्जिता पूर्वजा अपि ॥४२॥
सुकृतैकरतेर्यस्य, मृतवित्तानि मुञ्चत ।
देवस्येव नृदेवस्य, युक्ताऽभूदमृतार्थिता ॥४३॥
करवालजलै स्नाता, वीराणामेव योऽग्रहीत ।
धौता बाष्पाम्बुधाराभिर्निर्वीराणा न तु श्रियम् ॥४४॥
शूराणा सम्मुखान्येव, पदानि समरे ददौ ।
य पुनस्ततकलत्रेपु, मुख चक्रे पराङ्मुखम् ॥४५॥
हृदि प्रविष्टयद्बाणक्लिष्टेनाघूर्णित शिर ।
'जाङ्गल'क्षोणिपालेन, व्याचक्षाणे परैरपि ॥४६॥
चूडारत्नप्रभाकम्र नम्र गर्वाद्कुर्वत ।
कणश 'कुङ्कणेश'स्य यश्चकार शरै शिर ॥४७॥

---

* यह वृत्तान्त मूल ग्रन्थ में नही है परन्तु गुजराती भाषान्तर म अवश्य है । मूलग्रन्थो के उद्धरण एव अन्य आवश्यक टिप्पणिया अनुवादक ने दिए हैं ।

रागाद् भूपास्तस्मात्स-मल्लिकार्जुन'योर्मुखे ।
गृहीतौ येन मूर्धानौ स्तनाविव जयश्रिय ॥४८॥
'पविमधितिपं जित्वा, यो जग्राह द्विपाद्वयम् ।
तत्परोभि करिष्यामो विरलं नरयद्विपद् वयम् ॥४६॥
विहार कुर्वता वैरिवनिताकुचमण्डलम् ।
महीमण्डलमुद्दण्डविहारं येन निर्ममे ॥५०॥
पादलग्नैर्महीपालै पशुभिरप तृणानने ।
य' प्रार्थित इवास्यधर्महिंसाप्रसममहीन ॥५१॥

'महीमण्डलमें मान्त रुद्र के समान सिद्धराज के स्वर्गगमन के बाद कुमार पाल गद्दी पर बैठा । वह प्रजारंजितमान था अर्थात् उसने प्रजा को अपने प्रति अनुरागिणी बना लिया था । पृथु आदि पूर्व राजाओं ने उसमें अपने अपने गुणों की स्थापना की थी । जिस प्रकार उसने अपने बाहु से सब राजाओं को जीत लिया था उसी प्रकार लोकप्रिय होने के कारण अपने असाधारण गुणों से अपने पूर्वजों को भी विजित कर लिया था । वह वीतराग का भक्त था और इन्द्र के समान अमृतार्थी था (अर्थात् मृत (मरे हुए) के अर्थ (पैसे) का ग्रहण नहीं करता था । तलवार के पानी में स्नान की हुई शूरवीरों की लक्ष्मी का ही वह अधिकार करता था और पाल्यजलधार (अश्रु जल) में धोई हुई कायर की लक्ष्मी को लेने के लिए मन नहीं करता था । युद्धप्रसंग में शूरों के सामने आगे पड़ता था परन्तु उनकी स्त्रियों को सदैव पीठ ही दिखलाता था अर्थात् उन पर कुदृष्टि नहीं डालता था । जंगलपति के हृदय में कुमारपाल का बाण पार चला गया था इसलिए वह शीशधारा कहलाने लगा था । कोंकणेश्वरा — [illegible] ( मल्लिकार्जुन ) का मस्तक चूड़ारत्न की प्रभा से चमकता था

और वह गर्व से किसी को नमस्कार नहीं करता था । कुमारपाल ने उसके ऐसे मस्तक को बाणों से वेध कर टुकडे टुकडे कर दिया था। उसने बल्लाल और मल्लिकार्जुन के मस्तकों को युद्ध में बडे प्रेम से जयश्री के दोनों स्तनों के समान ग्रहण किए। दक्षिण के राजाओं को जीतकर उसने उनसे दो हाथी लिए तथा इस प्रकार विश्व को विपद्-विहीन कर दिया। पैरों में पड़े हुए राजाओं और मुह मे तृण लिए हुए पशुओं की प्रार्थना पर उसने अहिंसाव्रत धारण किया था।

कुमारपालप्रबन्ध मे कुमारपाल के दिग्विजय के विषय मे इस प्रकार लिखा है।

पूर्व मे—कुरु, सूरसेन (मथुरा), कुशार्त, पाचाल, विदेह दशार्ण और मगध आदि देश।

उत्तर—काश्मीर उड्डियान, जालधर, सपादलक्ष और पर्वत पर्यन्त देश।

दक्षिण मे—लाट, महाराष्ट्र और तिलग आदि देश।

पश्चिम में—सुराष्ट्र, ब्राह्मणवाहक, पचनद, सिन्धु और सौवीर देश।

इन सब देशों को जीत कर वह कई करोड का धन ले गया। जब दिग्वजय करके अलिहवाडा वापस लौटा उस समय उसके साथ ग्यारह लाख घोडे, ११०० हाथी, पाच हजार रथ, बहत्तर सामन्त और अठारह लाख पैदल सिपाही थे।

श्रीवीरचरित्र मे इस दिग्विजय के विषय मे लिखा है—

आगङ्गमैन्द्रीमाविन्ध्य याम्यामासिन्धु पश्चिमाम् ।
आतुरुष्क च कौबेरीं चौलुक्य साधयिष्यति ॥

पूर्व में गगा नदी, दक्षिण मे विन्ध्याचल, पश्चिम में सिन्धु नदी

रागाद् भूपाल'वस्तास-मल्लिकार्जुन'योषु'वे ।
गृहीतौ येन मूर्धानौ स्तनाविव जयश्रिय ॥४८॥
'वरिरणशिरिषं छित्वा यो जग्राह छिपत्रयम् ।
तद्यशोभि करिष्यामो विरवं नरमद्भिपद्मयम् ॥४६॥
विहारं कुर्वता वैरिवनिताकुचमण्डलम् ।
महीमण्डलमुदण्डविहारं येन निममे ॥५०॥
पादलग्नैर्महीपालैः पशुभिरच तृणाननै ।
य मार्पित इवास्यवमहिंसाव्रतमग्रहीत् ॥५१॥

'महीमण्डलमें मात्र एक के समान सिद्धराज के स्वर्गगमन के बाद कुमार पाल गद्दी पर बैठा। वह प्रजारंजितवान् था अर्थात् उसने प्रजा को अपने प्रति अनुरागिणी बना लिया था। पृथु आदि पूर्व राजाओं ने उसमें अपने अपने गुणों की स्थापना की थी। जिस प्रकार उसने अपने बाहु से सब राजाओं को जीत लिया था उसी प्रकार लोकप्रिय होने के कारण अपने असाधारण गुणों से अपने पूर्वजों को भी विजित कर लिया था। वह वीतराग का भक्त था और इन्द्र के समान अमृतार्थी था (अर्थात् मृत (मरे हुए) के अर्थ (पैसे) को ग्रहण नहीं करता था। तलवार के पानी से स्नान की हुई शूरवीरों की लक्ष्मी को ही वह अङ्गीकार करता था और बाष्पजलधार (अश्रु जल) से धोई हुई कायर की लक्ष्मी को लेने के लिए मन नहीं करता था। युद्धप्रसंग में शूरों के सामने आगे बढ़ता था परन्तु उनकी स्त्रियों को सदैव पीठ ही दिखलाता था अर्थात् उन पर कुदृष्टि नहीं डालता था। जंगलपति के हृदय में कुमारपाल का बाण पार चला गया था इसलिए वह शौराष्ट्रा कहलाने लगा था। कोंकणदेश के राजा ( मल्लिकार्जुन ) का मस्तक चूड़ारत्न की प्रभा से चमकता था

और वह गर्व से किसी को नमस्कार नहीं करता था । कुमारपाल ने उसके ऐसे मस्तक को बाणों से वेध कर टुकडे टुकडे कर दिया था। उसने बल्लाल और मल्लिकार्जुन के मस्तकों को युद्ध मे बडे प्रेम से जयश्री के दोनों स्तनों के समान ग्रहण किए। दक्षिण के राजाओं को जीतकर उसने उनसे दो हाथी लिए तथा इस प्रकार विश्व को विपद्-विहीन कर दिया। पैरों में पडे हुए राजाओं और मुह मे तृण लिए हुए पशुओं की प्रार्थना पर उसने अहिंसाव्रत धारण किया था।

कुमारपालप्रबन्ध मे कुमारपाल के दिग्विजय के विषय मे इस प्रकार लिखा है।

पूर्व में—कुरु, सूरसेन (मथुरा), कुशार्त, पाचाल, विदेह दशार्ण और मगध आदि देश।

उत्तर—काश्मीर उड्डियान, जालधर, सपादलक्ष और पर्वत पर्यन्त देश।

दक्षिण मे—लाट, महाराष्ट्र और तिलग आदि देश।

पश्चिम मे—सुराष्ट्र, ब्राह्मणवाहक, पचनद, सिन्धु और सौवीर देश।

इन सब देशों को जीत कर वह कई करोड का धन ले गया। जब दिग्विजय करके अलिहवाडा वापस लौटा उस समय उसके साथ ग्यारह लाख घोडे, ११०० हाथी, पाच हजार रथ, बहत्तर सामन्त और अठारह लाख पैदल सिपाही थे।

श्रीवीरचरित्र मे इस दिग्विजय के विषय मे लिखा है—

आगङ्गमैन्द्रीमाविन्ध्य याम्यामासिन्धु पश्चिमाम् ।<br>
आतुरुष्क च कौबेरीं चौलुक्य साधयिष्यति ॥

पूर्व में गगा नदी, दक्षिण मे विन्ध्याचल, पश्चिम में सिन्धु नदी

रागाद् भूपाल'वल्लाल-मल्लिकार्जुन योर्मृधे ।
गृहीतौ येन मूर्धानौ स्तनाविव जयश्रियः ॥४८॥
'दक्षिणक्षितिप' जित्वा यो जग्राह द्विपद्वयम् ।
तद्यशोभिः करिष्यामो विरदं नरमद्द्विपद्वयम् ॥४६॥
विहारं कुर्वता वैरिवनिताकुचमण्डलम् ।
महीमण्डलमुद्दण्डविहारं येन निर्ममे ॥५०॥
पादलग्नैर्महीपालैः पशुभिरथ तृणाननैः ।
यः प्रार्थित इवात्यर्थमहिंसामग्रमहीत् ॥५१॥

'महीमण्डलमें मात्र यज्ञ के समान सिद्धराज के स्वर्गगमन के बाद कुमार पाल गद्दी पर बैठा। वह मजारंजितधाम् था अर्थात् उसने प्रजा को अपने प्रति अनुरागिणी बना लिया था। पृथु आदि पूर्व राजाओं ने उसमें अपने अपने गुणों की स्थापना की थी। जिस प्रकार उसने अपन बाहु से सब राजाओं को जीत लिया था उसी प्रकार लोकप्रिय होने के कारण अपन असाधारण गुणों से अपने पूर्वजों को भी विजित कर लिया था। वह वीतराग का भक्त था और इन्द्र के समान असुतार्थी था (अर्थात् मृत (मरे हुए) के अर्थ (पैसे) को ग्रहण नहीं करता था। तलवार के पानी से स्नान की हुई शूरवीरों की लक्ष्मी को ही वह अङ्गीकार करता था और बाष्पजलधार (अश्रु जल) से धोई हुई कायर की लक्ष्मी को लेने के लिए मन नहीं करता था। युद्धप्रसंग में शूरों के सामने आगे बढ़ता था परन्तु उनकी स्त्रियों को सदैव पीठ ही दिखलाता था अर्थात् उन पर कुदृष्टि नहीं डालता था। जंगलपति के हृदय में कुमारपाल का बाण पार चला गया था इसलिए वह शीराकरा कहलाने लगा था। कोंकणदेश के राजा ( मल्लिकार्जुन ) का मस्तक चूड़ारत्न की प्रभा से चमकता था

और वह गर्व से किसी को नमस्कार नहीं करता था । कुमारपाल ने उसके ऐसे मस्तक को बाणों से वेध कर टुकडे टुकडे कर दिया था । उसने बल्लाल और मल्लिकार्जुन के मस्तकों को युद्ध में बडे प्रेम से जयश्री के दोनों स्तनों के समान ग्रहण किए । दक्षिण के राजाओं को जीतकर उसने उनसे दो हाथी लिए तथा इस प्रकार विश्व को विपद्-विहीन कर दिया । पैरों में पड़े हुए राजाओं और मुंह मे तृण लिए हुए पशुओं की प्रार्थना पर उसने अहिंसाव्रत धारण किया था ।

कुमारपालप्रबन्ध मे कुमारपाल के दिग्विजय के विषय मे इस प्रकार लिखा है ।

पूर्व मे—कुरु, सूरसेन (मथुरा), कुशार्त, पाचाल, विदेह दशार्ण और मगध आदि देश ।

उत्तर—काश्मीर उड्डियान, जालधर, सपादलक्ष और पर्वत पर्यन्त देश ।

दक्षिण मे—लाट, महाराष्ट्र और तिलग आदि देश ।

पश्चिम मे—सुराष्ट्र, ब्राह्मणवाहक, पचनद, सिन्धु और सौवीर देश ।

इन सब देशों को जीत कर वह कई करोड का धन ले गया । जब दिग्वजय करके अलिहवाडा वापस लौटा उस समय उसके साथ ग्यारह लाख घोडे, ११०० हाथी, पाच हजार रथ, बहत्तर सामन्त और अठारह लाख पैदल सिपाही थे ।

श्रीवीरचरित्र मे इस दिग्विजय के विषय में लिखा है—

आगङ्गमैन्द्रीमाविन्ध्य याम्यामासिन्धु पश्चिमाम् ।
आतुरुष्क च कौबेरीं चौलुक्य साधयिष्यति ॥

पूर्व में गगा नदी, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में सिन्धु नदी

और उत्तर में तुर्किस्तान तक के देश कुमारपाल जीतेगा।

दूर दूर के देशों में जो शिलालेख मिलते हैं उनसे कुमारपाल के राज्यविस्तार की पुष्टि होती है।

वाग्भट्ट अथवा जिसका प्रसिद्ध नाम बाहड़ था और जिसको कुमारपाल ने अपना अमात्य बनाया था उसने रंगाविक जिले के सगवाड़ नामक गांव का आधा भाग दान में दिया था। इसका लेख भीलसा के पास उदयपुर (ग्वालियर) ग्राम में एक जीर्ण देवालय में मिलता है। यह लेख कुमारपाल के नाम का है और मिती वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) संवत् १२२२ (ई० स० ११६६) का है। उक्त लेख के नीचे ही एक लेख और है जिसका संवत् तो जाता रहा है परन्तु इतना स्पष्ट मालूम होता है कि यह पौष शुक्ला १५ गुरुवार को जब चन्द्रग्रहण पड़ा था तब का लिखा हुआ है। उस समय उदयपुर में कुमारनियुक्त महामात्य श्री यशोधवल उस सूबे का अधिकारी था और समस्त मुद्रा व्यापार (सिक्का सही आदि) का काम करता था। उसने श्रीदेवश्रीस्वामी कोई धर्म-कार्य किया था, उसी सम्बन्ध का यह लेख है। इस लेख की कितनी ही पंक्तियां जाती रही हैं इसलिए पूरी हकीकत तो मालूम नहीं पड़ती परन्तु भावार्थ यह है कि उस समय वहां पर कुमारपाल का राज्य था। (१)

(प्राचीन गुजरात)।

मारवाड़ में जोधपुर का रतनपुर नामक एक जागीरी गांव है इसके पूर्वी दरवाजे के बाहर ही एक प्राचीन शिवालय है। इस शिवालय की पश्चिमी ... में एक शिलालेख है जिसका संवत तो ठीक ठीक

(१) इण्डियन एन्टीक्वेरी खण्ड १७ पृष्ट १४१।

नहीं पाया जाता परन्तु वह सवत् ११९९ से १२३० के बीच के समय का है । लेख का भावार्थ इस प्रकार है-

'समस्त—राजावली—विराजित–महाराजाधिराज–परमभट्टारक परमेश्वरनिजभुजविक्रमरणाङ्गणविनिर्जित पार्वतीपतिवरलब्ध प्रौढप्रतापश्रीकुमारपालदेवकल्याणविजयराज्ये रत्नपुर-चोराशी के महाराज भूपाल श्री रायपाल देव से प्राप्त हुआ है आसन (गद्दी) जिसको, ऐसे श्री पूतपाक्ष देव की महारानी श्री गिरजादेवी ने अमावस पर्व तथा दूसरी श्रेष्ठ तिथियों को प्राणीहिंसा न हो, ऐसा जीवों को अभयदान दिया । इसलिए ग्यारस, चौदस, अमावस, और अन्य श्रेष्ठ तिथियो को जीवहिंसा न हो, ऐसा निश्चय हुआ, क्योंकि यह ससार असार है । उक्त तिथियों मे जीवो को छोडने के उपलक्ष मे उपज होने के लिए भूमिदान भी दिया तथा यह भी निश्चित किया कि इन तिथियों को जो जीवहिंसा करे उस पर ४ द्रम दण्ड किया जावे । नड्डूलपुर (नाडोलपुर) वासी प्राग्भट वश के शुभकर नामक धार्मिक सुश्रावक साधु के यतिग और सालिग नाम के दोनों पुत्रों के हस्ताक्षरों से यह जीवहिंसा-निषेधक शासन प्रसिद्ध कराया गया है, स्वहस्त श्रीपूतपाक्ष देवस्य लिखितमिद पारि लक्ष्मीधरसुत जसपालेन प्रमाण इति० ।' (१)

मारवाड मे बाडमेर जिले के नीचे हाथमा के पास कि राडु नामक गाव है जो बाड़मेर से लगभग दश गांवों की दूरी पर है । यहा पर एक देवालय के स्तम्भ पर माघ बदि १४ शनिवार सम्वत् १२०९ का कुमारपाल के समय का लेख है जिसका भाव इस प्रकार है—'राजाधिराज परमेश्वर उमापतिवरलब्ध प्रौढप्रतापनिर्जितसकलराजभूपाल श्रीमॅत कुमार-

---

(१) आर्कियालाजिकल सर्वे आफ, इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, सन् १९०८ई पृ ५१-५२

पालदेवविजयराज्ये श्रीमहादेव के हस्तक ( हाथ में ) श्रीकरणादि समस्त मुद्रा-व्यापार (सही मोहर सिक्का आदि) का काम था। ईश्वर की कृपा से श्री किराटदूप लाट और दूद प्राप्त हुए इसलिए श्री आलण देव ने महाशिवरात्रि के दिन प्राणियों के लिए अभयदान शासन प्रसिद्ध कराया। इसमें यह निश्चित किया गया था कि सुदी तथा वुदि पक्ष की अष्टमी एकादशी और चतुर्दशी के दिन इन तीनों नगरों में जो जीव हिंसा करेगा अथवा करावेगा उसको शिक्षा देने के लिए देहान्तदण्ड दिया जावेगा। कोई पापिष्ठतर जीववध करे तो उससे पांच द्रम दण्ड के लिए जावें। राजकुटुम्ब में से यदि कोई प्राणिवध करे तो उस पर एक द्रम दण्ड किया जावे। ( यह कटारी) स्वयं महाराज श्री आल्हणदेव के हाथ की है। महाराज श्री केल्हणदेव की सम्मति है उनके पुत्र महाराज सि० साधिविमहिक ह० लेखावित्य। श्रीनलद्रपुर (नाडोल) वासी प्राग्वट वंश के शुभंकर नामक श्रावक के पुत्र—पुतिग तथा सालिग ने जो पृथ्वी में धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध हैं दोनों ने प्राणियों के लिए इस अभयदान शासन को प्रसिद्ध किया (भावनगर के संस्कृत तथा प्राकृतिक लेखों की अ मजी पुस्तक पृ १७२ तथा २०६)। (१)

चित्तौड में ब्रह्मा का मन्दिर है जो खातन मन्दिर (२) कहलाता है। इस मन्दिर में संवत १२०७ (ई० स० ११५१) का कुमारपाल का लेख है जिसका महीना और तिथि खुदा हुआ भाग तो टूट गया है परन्तु उसका भावार्थ यह है कि मूलराज से कितनी ही पीढ़ियों पीछे सिद्धराज हुआ और फिर कुमारपाल राजा हुआ जिसने अपने दुर्जय मन

---

(१) इण्डियन एण्टीक्वेरी जल्द ११ पृष्ठ ४४ भी देखिए।
(२) मोकलजी का मन्दिर।

और बलवान् शत्रुओं को अपने वश में किया, जिसकी आज्ञाओं को दूसरे पृथ्वीपतियों ने शिरोधार्य की, शाकम्भरी के राजा को भी जिसके चरणों में मस्तक झुकाना पड़ा, जो सेवालक व शालपुरी तक चढ़ाई करता हुआ चला गया और जिसने उमापति को नमस्कार करके वरदान प्राप्त किया। (१)

---

(१) एपिग्राफिया इण्डिका खण्ड २, ० ४२१-२८

इनके अतिरिक्त कुमारपाल से सम्बन्धित कुछ और भी शिलालेख द्रष्टव्य हैं। इनमें से अधिकतर राजस्थान के भूतपूर्व जोधपुर व उदयपुर राज्यों में प्राप्त हैं। कुछ गुजरात में जूनागढ, काठियावाड एवं प्रभासपट्टण में पाये जाते हैं। कतिपय विशिष्ट लेखों की सूची नीचे दी जा रही है।

राजस्थान में—

(१) किराडू के विक्रम संवत् १२०५ व १२१८ के लेख। (अपर अप्रकाशित लेख के लिए देखिए-राजपूताना का इतिहास-गो० ही० ओझा पृ० १८३)

(२) आबू का शिलालेख संवत् १२८७ जिसमें यशोधवल का उल्लेख है। एपिग्राफिआ इण्डिका वाल्यूम ८, पृ० २१०-२११

(३) सुप्रसिद्ध चित्तौड का शिलालेख जिसमें चौलुक्य राजाओं की कुमारपाल तक की तालिका मिलती है। संवत् १२०७, एपि० इण्डिका भाग २ पृ ४२२

(४) पाली ( मारवाड ) का विक्रम संवत् १२०९ का लेख ( आर्कियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, १९०७-८, पृ० ४४-४५)

(५) भट्टुंड या मडोंद (मारवाड़) का लेख। (आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, १९०७-८, पृ० ५१-५२)

(६) नादोल या नंद्रपुर (मारवाड़) के लेख। एपिग्राफिआ इण्डिका वॉल्यूम ९, पृ० ६२-७९

हेमचन्द्र ने कुमारपाल को सात क्षेत्रों का पोषण करने के लिए उपदेश दिया। (१) जिन-मन्दिर (२) जिन-प्रतिमा (३) जिनागम (४) जिन-साधु (५) जिन-साध्वी (६) श्रावक और (७) श्राविका ये सात क्षेत्र कहलाते हैं इनमें न्यायपूर्वक धन का उपयोग करना चाहिए। कुमारपाल ने इसीके अनुसार किया भी।

(१) जिन-मन्दिर बनवाने वाले की सम्यक्त्व शुद्धि होती है, इससे तीर्थङ्कर पद और शुद्धि की प्राप्ति होती है इसलिए राजाओं को

---

(७) नाली (मारवाड़) का वि० सं १२१६ का लेख। (आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया वेस्टर्न सर्किल १६ ०८ पृ ४४-४५)

(८) जालोर (जाबालिपुर) का वि स १२२१ का लेख। (इण्डियन एण्टीक्वेरी भा ११ पृ ५४-५५) (?)

(९) नैदलाई का वि स १२२८ का लेख (इण्डियन एन्टीक्वेरी भा ११ पृ ४७-४८) (?)

गुजरात (काठियावाड़) में —

(१) मांगरोल का शिलालेख संवत् १२ २ (भावनगर संस्कृत एण्ड प्राकृत इन्सक्रिप्शन्स पृ १५८ १६)

(२) दोहद का शिलालेख संवत् १२ २ (इण्डि एण्टी भा १ पृ १५६)

(३) बड़नगर का लेख संवत् १२ ८ (एपिग्राफिआ इण्डिका वॉल्यूम १ न्यूफिरीज पृ २६३-३ ५)

(४) गिरनार के लेख संवत् १२२२-२३ (रिवाइज्ड लिस्ट ऑफ एन्टीक्वेरियन रिमेन्स इन बोम्बे प्रेसीडेन्सी पृ ३५६)

(५) जूनागढ के लेख (पूना ओरियन्टलिस्ट भाग १ व २ पृ १६)

(६) प्रभासपट्टण का वलभी संवत् ८५ का लेख (भावनगर संस्कृत एण्ड प्राकृत इन्सक्रिप्शन्स)

(७) गाला शिलालेख संवत् ११६३ (पूना ओरियण्टलिस्ट, भाग १ भा २ पृ ४)

तो ऐसे मन्दिर बनवाकर उनके निर्वाह (प्रबन्ध) के लिए बड़े बड़े भंडार ग्राम, नगर, तालुका और गोधन आदि भी अर्पण करने चाहिए।

नया मन्दिर बनवाने की अपेक्षा जीर्णोद्धार कराने में आठ गुणा पुण्य होता है।

(२) जो लोग हीरा, इन्द्रनील, अंजन, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, रेखाङ्क, कर्केतन, प्रवाल, सोना, चांदी, पत्थर और मिट्टी की जिन-प्रतिमाएं बनवाते हैं वे मनुष्य-लोक तथा देवलोक में महासुख पाते हैं और जो तीर्थङ्करों की प्रतिष्ठा कराते हैं वे तीर्थङ्कर की प्रतिष्ठा पाते हैं। जो एक अङ्गुल से लेकर १०८ अङ्गुल तक की हीरों आदि की प्रतिमा बनवाते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। ऋषभदेव आदि तीर्थङ्करों की अङ्गुष्ठ-प्रमाण वीरासन वाली मूर्ति बनवानेवालों को स्वर्ग मे उत्तम प्रकार की पुष्कल ऋद्धि भोगने के लिए अनुत्तर पद प्राप्त होता है।

(३) जिनागम–जिन शास्त्र–जिन-वचन, जिनागम लिखाने वाले, उनका व्याख्यान करने-वाले, उनकी कथा करने वाले और कथा पढवाने वाले देव और मोक्ष गति को प्राप्त करते हैं। कुशास्त्र से उत्पन्न हुए कुसंस्कारों रूपी विष का उच्छेद करने मे जिन शास्त्र मंत्र के समान काम करते हैं। धर्म, कृत्या कृत्य, गम्यागम्य और सारासार का विवेचन करने में जिनागम हेतुभूत हैं।

(४) साधु आदि जो संसार-त्याग की इच्छा रखकर मुक्ति के लिए यत्न करते हैं, उनमें उपदेश देकर लोक को पवित्र करने की शक्ति होने के कारण वे तीर्थ कहलाते हैं। जिनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता ऐसे साधुओं को तीर्थङ्कर भी नमस्कार करते हैं। जिनके द्वारा सत्पुरुषों का कल्याण होता है, जिनकी स्फूर्ति उत्कृष्ट है, जिनमें सब

गुण निवास करते हैं ऐसे साधु साध्वी श्रावक और श्राविका पूजन करने के पात्र हैं।

इस प्रकार इन सात क्षेत्रों में धन खर्चने से पुण्य होता है, ऐसा जानकर कुमारपाल ने इस आज्ञा के अनुसार ही कार्य किये।

(१) पाटण में २५ हाथ ऊँचा ७२ जिनालयों से युक्त और १२५ अंगुल उन्नत श्रीनेमिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित अपने पिता के कल्याणार्थ त्रिभुवनपाल विहार बनवाया।

(२) पहले ऊदर नामक व्यक्ति का द्रव्य अपहरण किया था उसके प्रायश्चित्त में ऊदर वावड़ी बनवाई।

(३) पहले रास्ते में जाते समय देवश्री नाम की स्त्री से करबा (जौ की बनी रोटी दही में डाली हुई) लिया था इसलिए उसी स्थान पर करंबकसाहिका (वावड़ी) बनवाई।

(४) मांस-भक्षण न करने का नियम लेने से पूर्व किए हुए पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए एक देहरी में आमने सामने सोलह सोलह की पंक्तियों में ३२ प्रासाद बनवाकर उनमें से प्रत्येक में २४ वर्तमान तीर्थंकर ४ विहरमान तीर्थंकर तथा रोहिणी समवसरण अशोकवृक्ष और गुरुपादुका की स्थापना की।

(५) खेरालु से लगभग ७ मील की दूरी पर टींबा नामक ग्राम के पास तारण नाम का पर्वत है। इस पर्वत की महिमा को शत्रुंजय के समान जानते हुए उसने वहां पर २४ हाथ की ऊँचाई का अजितनाथ-प्रासाद बनवाया और उसमें १११ अंगुल की ऊंचाई की प्रतिमा की स्थापना की।

(६) स्तम्भतीर्थ (आधुनिक खम्भात) में, जहां पर उसने हेमाचार्य से दीक्षा ली थी उस स्थान पर, आलीग नाम की वस्ती बसाई और श्री महावीर स्वामी की रत्नमय मूर्ति तथा हेमाचार्य की सुवर्णमयी पादुका का स्थापन किया।

(७) वाग्भट, वाहड अथवा वाहड ने, जो उसका मन्त्री था, एक प्रासाद बनवाया था। कुमारपाल ने वहां जाकर वाग्भट से कहा, "यदि तुम यह प्रासाद मुझे दे दो तो मैं इसमें यह २१ अंगुल की श्रीपार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित करूं जो चन्द्रकान्तिमणि की बनी हुई है और जो नेपाल के राजा ने मुझे भेंट की है।' मंत्री ने प्रसन्न होकर विनम्र-भाव से कहा, 'इस महाप्रासाद का नाम कुमारविहार हुआ।' इसके पश्चात् इस प्रासाद को २४ जिनालयों से युक्त अष्टापद के समान बनवाया।

इन सब चैत्यों में श्री हेमाचार्य ने महोत्सवपूर्वक अपने हाथ से विधि विधान से प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की थी। पूजा के लिये बडे बडे पेडों व फूलदार वृक्षों से सुशोभित बाग भी अर्पण किए। फिर अपने अधीन राजाओं के नाम मन्त्री से सही कराकर आज्ञापत्र भेजे कि, तुम लोग जो कर हमें देते हो उस रकम से अपने अपने देश में हिमालय के समान ऊंचे ऊंचे शिखरों वाले विहार बनवाओ। गुजरात, लाट, सौराष्ट्र भंभेरी, कच्छ, सैन्धव, उच्च, जालन्धर, काशी, सपादलक्ष, अन्तर्वेदि (गंगा यमुना के बीच का प्रदेश), मारवाड (मरु) मेवाड (मेदपाट) मालवा, आभीर, महाराष्ट्र, कर्णाटक और कोंकण (कुंकण) इन अठारह देशों में कुमारपाल के बनवाए हुए विहार शोभित हैं।

इस प्रकार कुमारपाल ने १४०० (१४४४) नये विहार बनवाए

और १६ ००० का जीर्णोद्धार करवाया। (देखो कुमारपालप्रबन्धभाषान्तर पृ० २२६–२३०)

Tod's Travels in Western India नामक पुस्तक के पृ० १८२ में एक विचित्र और सन्देहजनक बात लिखी है। वह यह है कि कुमारपाल ने खार नामक जाति को अपने राज्य में से निकाल दिया था। इस खार जाति का दक्षिणी गुजरात के खाट अथवा खाड जाति के बनियों से कोई सम्बन्ध था, यह बात असंभव प्रतीत होती है।

'पूर्व रेखांश ४४–५८ के बीच में खारस्तान नामक प्रदेश है अखात से उत्तर का भोर कारमान आ गया है, उससे वायव्य कोण में फारस है ईशान तथा वायव्य कोण में मकरान आ रहा है।

'ईरान के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इस प्रान्त की उपज कम है इसलिए इसकी स्थिति दुर्बल समझी जाती है। ठेठ ईरान के अखात के किनारे तक इसमें मैदानों और पहाड़ियों की श्रेणी चली गई है। इस भाग में मीठे पानी की इतनी कमी रहती है कि यहां के लोग वर्षा ऋतु में टांके भर लेते हैं और उन्हीं से वर्ष भर काम चलाते हैं। थोड़े बहुत जौ गेहूँ तथा खजूरों के आधार पर ही इन लोगों का गुजर होता है, यदि इतनी सी भी उपज इस प्रदेश में न होती तो यहां पर कोई भी न बसता।

नौशेरवां का एक शाहज़ादा खारिस्तान से समुद्री रास्ते होकर सूरत आया उसके साथ १८००० मनुष्य थे। यहां के राजा ने उसका खूब सत्कार किया।

Tod's Travels in Western India के पृष्ठ १८३-८४ में कुमारपाल-चरित्र के अनुसार ऐसा लिखा है कि गज़नी के खान

ने कुमारपाल पर चढाई की तब ज्यौतिषियों ने बरसात का मौसम देख कर उसे लडाई करने से रोक दिया और मन्त्रशास्त्र के बल से सोते हुए खान को उसके पलंग सहित राजा के महल मे मगवा लिया। फिर उन दोनो मे घनिष्ठ मित्रता होगई। कुमारपाल रास मे लिखा है—

चौपाई—बात इसि परदेशि जसि, मुगल गिजनी आव्यो तसि।
सबल सेन लेइ निज साथ, गज रथ घोडा बहु सबात।
आकस बाजी लेई करी, वाटई मुगल पाटण करी।
आव्या मुगल जाणया जसि, दरवाजा लई भीड्या तसि।
चिंतातुर हुआ जन लोक, पाटण माहि रह्या महि फोक।
एक कहि नर खडी जहि, एक कहि नर मण्डी रहि।
एक कहि काई थाइसें, एक कहि ए भागी जासे।
एक कहि ए निसन्तराय, एक कहि नृप चढी न जाय।
एक कहि नृप नासि आज, एक कहि क्षत्रीनी लाज।

मुसलमानों के लश्कर से डर कर लोग उदयन मत्री के पास गए, उसने उनको धीरज बँधाया और स्वय हेमाचार्य के पास गया। उन्होंने चक्रेश्वरी देवी का आह्वान किया—

गुरु वचन देवी सज थई, निशा भरी मुगल दलमा गई।
आवी जहा सूतो सुलतान, निद्रा देई कीधु विज्ञान।
प्रहि उगमती जागे जसि, पासि कोई न देखी तसि।
पेखई क्षत्रीनो परिवार, असुर तब हइडि करि विचार।

होश मे आने पर बादशाह को बहुत पश्चात्ताप हुआ, परन्तु कुमारपाल ने कहा, "मै चालुक्यवशी राजा हूँ, बन्धन में पड़े हुए को नहीं मारता, इसलिए तुम्हें नहीं मारूँगा।' ऐसा कहकर उसने उसका

बहुत सत्कार किया। इससे बादशाह प्रसन्न हुआ और कुमारपाल के साथ मैत्री करके अपना लश्कर वापस ले गया। कुमारपाल का यह काम उसके लिए हुए दर्शनों मत के अनुसार हुआ था।

इस ग्रन्थकार ने भाग्य ही से कहीं किसी का विशेष नाम लिखा है। यह तो प्राय उसकी पदवी अथवा उपाधि लिखकर ही काम चलाता है। इसीलिए इस बात की गड़बड़ी पड़ती है कि यह गजनी का स्थान कौन था और उसका नाम क्या था? मुसलमान इतिहासकारों में से कोई भी यह नहीं लिखता कि गजनी के अमुक बादशाह ने कुमारपाल के समय में हमला किया था। निर्वासित शाहजादे जलालुद्दीन ने सिन्ध पर चढ़ाई करके उमरकोट के राजा को पकड़ लिया था इसके विषय में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही ग्रन्थकार एकमत हैं। यदि इसी बात को इस तरह लिख दिया हो कि गजनी के खान ने कुमारपाल पर आक्रमण किया तो कुछ कहा नहीं जा सकता। कर्नल टॉड ने लिखा है कि मन्त्र शास्त्र के बल से बादशाह को पाटण में पकड़ मंगवाने की बात पाटण पर अधिकार करने के बाद में आडी गई है। इस वार्ता का उपसंहार भी बड़ा मनोरञ्जक है। कहते हैं कि कुमारपाल की मुसलमानों के साथ इतनी अधिक मैत्री हो गई कि मुसलमानी धर्म के मूल तत्वों का सार भी वह आकृष्ट हो गया था। हेमाचार्य ने इसमें पहल की और यदि वह अपने राज्यकाल के ३१ वें वर्ष में ही जहर देने के कारण न मर जाता तो कुमारपाल हेमचन्द्र के समान मुसलमानी धर्म में परिवर्तित हो जाता। आगे कहते हैं कि दूसरे ही वर्ष हेमाचार्य मर गए और मरते समय उन्होंने बस्लाह, बस्लाह पुकारते हुए प्राण छोड़े। एक सुप्रसिद्ध महान् जैन आचार्य द्वारा मत-परिवर्तन की बात को छुपाने व उस पर लगाया हुआ आरोप दूर

करने के लिए लोग कहते हैं कि अन्तिम समय में सन्निपात के कारण वे इस प्रकार चिल्लाये थे। परन्तु, उनके मुसलमानी धर्म में मिल जाने की बात इसलिए भी सिद्ध हो जाती है कि मृत्यु के बाद उनकी लाश को जलाने की एवज गाडा गया था।

कुमारपालप्रबन्ध मे यह प्रमाणित किया गया है कि हेमाचार्य का अग्निदाह किया गया था। उसमें लिखा है कि, चन्दन, अगर और कपूर आदि उत्तम पदार्थों द्वारा आचार्य की देह को जलाया गया। उनकी भस्म को पवित्र मानकर राजाने तिलक किया और नमस्कार किया। यह देखकर राजा के सामन्तों और दूसरे लोगों ने भी ऐसा ही किया। भस्म के बीत जाने पर लोग वहां से मिट्टी भी खोद ले गए जिससे एक विशाल खड्डा पड़ गया। यह खड्डा पाटण में 'हेमखाडा' के नाम से प्रसिद्ध है।

---

# प्रकरण १२

## अभयपाल–बालमूलराज–भीमदेव (द्वितीय)

आचार्य मेरुतुंग लिखते हैं कि, संवत १२३० वि० (११७४ ई०) में अजयदेव गद्दी पर बैठा। (१) कृष्णाजी इसी बात को इतनी और बढ़ाकर लिखते हैं कि, 'सिद्धराज की गद्दी पर बैठकर कुमारपाल ने तेतीस वर्ष राज्य किया परन्तु उसके कोई कुंवर नहीं था इसलिए उसका भतीजा जिसका नाम अजयपाल था गद्दी पर बैठा और उसने तीन वर्ष राज्य किया।" (२)

द्वयाश्रय के कर्ता का कहना है कि अजयपाल मरनेवाले राजा (कुमारपाल) के भाई महिपाल का पुत्र था।

कुमारपाल के क्रमानुयायी अजयपाल ने अपने राज्य के आरम्भ में ही जैन-धर्मानुयायी राजा (कुमारपाल) के बनवाए हुए धार्मिक स्थानों के विरुद्ध घोर लड़ाई शुरू करदी। (३) जैन मतावलम्बी ग्रन्थकारों ने

---

(१) पौष सुदि १२ संवत् १२२९ वि० को गद्दी पर बैठा और फाल्गुन सुदि १२ संवत् १२३२ को मृत्यु होगई, इस प्रकार तीन वर्ष राज्य किया।

(२) सिद्धराय आसन कुंवरपाल राज्यो वरष इकतीस सु।
तनकु पुनि नहि पुत्र सौ सुत भ्रात को बैठ्यो जु ॥१७॥
तिन मास है अजयपाल सो, तिहुं वर्ष राज्यभुक्तो सु

(३) जब अजयपाल पूर्वजों द्वारा निर्मापित मन्दिरों को तुड़वाने लगा तो 'सीलण' नामक एक कौतुकी ने उसका हृदय परिवर्तन करने के लिए एक नाटक का

उसके विषय में लिखा है कि वह भ्रष्ट बुद्धिवाला, पितृवर्मघातक, और नास्तिक था, परन्तु (सनातन) धर्म मानने वालों ने भी उस पर ऐसे ही दोष लगाए हों, ऐसी दन्तकथाएं प्रचलित नहीं हैं। (१) इससे यही

---

प्रसग उपस्थित किया। वह एक रोगी का अभिनय करता है और पाच तृण-विनिर्मित देवमन्दिर अपने पुत्रो को भक्ति-भाव-पूर्वक सुरक्षार्थ सौंपता है। उसका अन्त समय आया भी न था कि उसके छोटे पुत्र ने उन मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तब रोगी पिता ने कहा 'अरे पुत्राधम! श्री अजयदेव ने तो अपने पिता के परलोक गमन के बाद उनके मन्दिरों को भग्न किया है, तू तो मेरे जीवनकाल में ही इन्हें तोड़ रहा है। अत तू अधम से भी अधम है।" यह प्रसङ्ग देखकर राजा लज्जित हुआ और जैन-मन्दिरों को तुड़वाना बन्द कर दिया। इसी के परिणाम-स्वरूप कुमारपाल के बनवाए हुए कुछ विहार अब तक विद्यमान हैं। तारिङ्गा-दुर्ग-स्थित अजितनाथ के मन्दिर को अजयपाल के नाम से अङ्कित कर के चतुर (?) लोगों ने बचा लिया।

राजाओं को अपनी सनक में आकर कुकार्यों में प्रवृत्त होने से रोकने के लिए ऐसे दरबारी कवि, चारण और भांड (भाण प्रहसनादि अभिनय करने वाले) आदि रखने की प्रथा थी। ये लोग समयानुकूल कविता, गीत और अभिनय प्रस्तुत करके उनको सत्पथ पर ले आते थे।

(१) सुकृतसकीर्तन के कर्त्ता अरिसिंह ने लिखा है कि,

"अथोरुधामाऽजयदेवनामा ररक्ष दक्षः क्षितिमक्षतौजाः।
न केऽपि काराकुहरेऽप्यरण्य–देशेऽपि नो यस्य ममुर्द्विषन्त ॥ (२४४)
सपादलक्षप्रभुणा प्रदत्ता रौक्मी बभौ मण्डपिका समायाम्।
सेवागतो मेरुरिव स्थिरत्वजितो भृश यस्य कृशप्रताप ॥ (२४५)

कुमारपाल के बाद, चतुर और अक्षयबलशाली अजयदेव गद्दी पर बैठा, जिसके शत्रुओं से कारागृह (जेल) और जगल भरे हुए थे। सपादलक्ष देश के राजा ने उसको एक सोने की मडपिका भेंट की थी, वह सभा में ऐसी शोभित होती थी कि मानों, जिसकी स्थिरता जीतली गई है और जो इस राजा के सामने मन्दप्रताप

अनुमान लगाया जा सकता है कि इस नवीन राजा के समय में तीर्थंकरों के पवित्र मत के विरुद्ध, किसी न रा तक, आन्दोलन खड़ा हुआ होगा

---

हो गया है ऐसा सुमेरु पर्वत ही उस (अजयपाल) की सेवा में उपस्थित हुआ है।

कीर्तिकौमुदी का कर्ता सोमेश्वर देव था जिसने सुरथोत्सव, कर्णामृत प्रपा और रामशतक आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। यह गुजरात के राजाओं का पुरोहित था। सोमेश्वर के पिता का नाम कुमार था जिसको अजयपाल ने सूर्य-ग्रहण के अवसर पर बहुत सा सोना और रत्न देना चाहा परन्तु उसने कुछ नहीं लिया। कुमार बटुकेश्वर महादेव का पूजन करता था और उनको प्रसन्न करके उसने लड़ाई में पड़े हुए अजयपाल के गहरे घावों की पीड़ा का निवारण भी किया था, ऐसा सुरथोत्सव में लिखा है। इस लेखक ने अजयपाल को कुमारपाल का पुत्र लिखा है। सम्भव है उसने ऐसा इसलिए लिख दिया हो कि कुमारपाल के बाद यही गद्दी पर बैठा था।

कीर्ति कौमुदी के द्वितीय सर्ग म लिखा है —

'नृपालोऽजयपालोऽभूत् कल्पद्रुमसमस्ततः ।
चक्रे वसुन्धरा येन कल्पानेर[प्य]किञ्चना ॥५२॥
दण्डे मण्डपिका हैमी, सप्तमत्तमतंगजैः ।
दत्वा पार्श्वे गले येन जाङ्गलेशादगृह्यत ॥ ५३ ॥
रामतुल्य स्वधाम[धाम]भर्त्सितभास्करः ।
क्षमाक्षालिता भार्गी क्षोणिरक्षाम्बर यः ॥५४॥
दानानि ददतो नित्यं नित्यं दण्डयतो नृपान् ।
नित्यमुद्दण्डता मारीर्यस्याऽऽसीत् त्रिगण: समः ॥५५॥

'अजयपाल ने सोने का दान दे दे कर लोगों को धनवान बना दिया था जांगलेश ( कुरु देश के पास वाला प्रदेश के ) राजा के मस्तक पर लात मार कर उसने दण्ड में एक स्वर्ण की मण्डपिका और अनेक मदोन्मत्त हाथी लिए थे उसके परशुराम के समान उद्दाम प्रताप के आगे सूर्य को भी नीचा देखना पड़ता था उसने पृथ्वी को क्षत्रियों के रुधिर से धोकर

परन्तु साथ ही यह भी कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि अजयपाल ने अपने क्रूर, उन्मत्त और द्वेषी स्वभाव का परिचय अवश्य दिया था। उसने सबसे पहला काम तो यह किया कि, कुमारपाल के प्रीतिपात्र मन्त्री कपर्दी से प्रधान का पद ग्रहण करने के लिए आग्रह किया परन्तु, ऐसा करने मे यही धारणा प्रबल रही होगी कि यदि कपर्दी को प्रधान पद दे दिया जावेगा तो वह प्राय राजा को कुछ न कुछ कहता सुनता रहेगा और इस प्रकार शीघ्र ही उसके विरुद्ध कोई न कोई बहाना मिल जावेगा। उसने काम हाथ मे लिया ही था कि उसके विरुद्ध राजा से बराबरी करने का दोष लगाकर उसे तप्त तैल के कडाह मे डलवा कर मरवा दिया गया। (१) सौ प्रबन्धों का रचयिता रामचन्द्र

---

वेदपाठी ब्राह्मणों को दान में दे दी थी, वह धर्म अर्थ और काम, इन तीनो पुरुषार्थों का समान भाव से प्रतिदिन सेवन करता था क्योंकि ब्राह्मणों को दान देकर धर्म को साधता था, राजाओ से दण्ड लेकर अर्थ को साधता था और नवीन स्त्रियों से विवाह करके काम की साधना करता था।

(१) जब कपर्दी से महामात्यपद ग्रहण करने के लिए कहा गया तो उसने उत्तर दिया "प्रात काल शकुन देखकर पद ग्रहण करूगा।" फिर वह शकुन-गृह में गया और वहा दुर्गादेवी से सप्तविध शकुन की याचना करते हुए पुष्पाक्षत आदि से पूजन किया। इसके बाद जब वह नगर में आनन्द मनाता हुआ जा रहा था तो ईशानकोण में गर्जन करता हुआ साड ( आखला ) दिखाई पडा। उसने इसको शुभ समझा, परन्तु एक मारवाडी ने उससे कहा 'यह शकुन तो विपरीत पडेगा क्योंकि—

नद्युत्तारेऽध्ववैषम्ये तथा सनिहिते भये।
नारीकार्ये रणे व्याधौ विपरीतः प्रशस्यते ॥'

जब मति भ्रष्ट हो जाती है तो प्रतिकूल को भी लोग अनुकूल ही मान लेते हैं, इसलिए उसने उस मारवाड़ी का कहना नहीं माना। फिर जब उसको

नामक जैन अधिकारी उसका दूसरा शिकार था। उसको बहुत यातना दी गई थी यहां तक कि इस घोर यातना से मुक्त होने के लिए वह अपनी जीभ काटकर मर गया। (१)

मेरुतुंग लिखता है कि उसके सभी सामन्त आम्रभट्ट (राज पितामह) की महानता को न देख सके और अवसर पाकर एक बार उसको नवीन राजा को नमस्कार करने के लिए ले आए। वह जैन

---

तप्त तैल के कड़ाह में डाला गया तो उसने दृढ़ता के साथ कहा'—

> अर्थिभ्यः कनकस्य दीपकपिशा विश्राणिता कोटयो
> वादेषु प्रतिवादिनां विनिहता शास्त्रार्थगर्भा गिरः।
> उत्खातप्रतिरोपितैर्नृपतिभिः शारैरिव क्रीडितम्
> कर्तव्यं कृतमर्थिता यदि विधेस्तत्रापि सज्जा वयम् ॥

अर्थ—दीपक की लौ के समान पीले रंग की करोड़ों मोहरें अर्थी लोगों को दान में दे चुका, शास्त्रार्थ में प्रतिपक्षियों के सामने शास्त्रगर्भित वाणी की व्याख्या कर चुका, शतरंज के मोहरों के समान राजाओं को उखाड़ कर पुनः स्थापित कर चुका, इतने कर्तव्य कर चुकने बाद अब भी जो कुछ विधाता मुझसे करवाना चाहता है वही करने के लिए मैं तैयार हूं।'

(१) रामचन्द्र को तपाए हुए गरम गरम तांबे के पट्टे पर बिठाकर मारा गया था उसने यह गाथा कही थी—

> महि वीढह सचराचरह जिण सिरि दिह्ना पाय
> तसु अत्थमणु दिणेसरह होउत होइ चिराय ॥
> (महीपीठे सचराचरे येन श्रीः दत्ता पादाः।
> तस्यास्तमनं दिनेश्वरस्य भवितव्यं भवत्येव चिराय ॥)

"जिसने सचराचर पृथ्वीमण्डल को प्रकाश दिया उस दिनेश्वर सूर्य का (भी) अस्त होना ही है और बहुत समय के लिए होता भी है।

मतावलम्बी था, इसीलिए अजयपाल उस पर कुपित हुआ था, परन्तु, वह निडर होकर कहने लगा, "मेरा धर्म तो वीतराग है, गुरु हेमाचार्य हैं और राजा कुमारपाल है।" अजयदेव ने क्रोधित होकर कहा, "तू राजद्रोही है।" आम्रभट्ट सच्चा शूरवीर था। वह बिना युद्ध किए ही घातक के आगे सिर झुकाने वाला न था, इसलिए उसने जिनेश्वर की मूर्ति की पूजा करके अपने मनुष्यों को हथियारों से सज्जित किए और घर से निकल कर राज-महलों पर आक्रमण कर दिया। जिस प्रकार हवा के भारी तूफान में रूई के फैलों का ढेर तितर बितर हो जाता है उसी प्रकार राज-द्वार के बाहरी रक्षक उसके वेग के आगे न ठहर सके और सबके सब जी बचाकर भाग निकले। वह तुरन्त ही महल के घटिका-गृह में आ पहुँचा और ज्योंही उसने घातक लोगो के संसर्ग-दोष के कल्मष को धारा-तीर्थ में धो डाला त्योंही स्वर्ग में अप्सराए, जो युद्ध का कौतुक देख रही थीं, चिल्ला उठीं, "इसको मैं वरूँगी, पहले मैं वरूँगी।" इस प्रकार उदयन का पराक्रमी पुत्र देवलोक को चला गया। उसके मरने पर लोग शोक करने लगे और कहने लगे कि, अन्य मरने वाले योद्धाओं जैसे तो पृथ्वी पर फिर पैदा हो सकते हैं, परन्तु उदयन के पुत्र के मर जाने से तो पृथ्वी पण्डितों से शून्य होगई। (१)

---

(१) श्रीमान् आम्रभट, जिन्होंने राजपितामह की उपाधि प्राप्त की थी, का प्रताप न सह सकने वाले सामन्तों ने अवसर पाकर उसको अजयपाल के दरबार में नमस्कार करने के लिए बुलाया,। उसने कहा, "इस जन्म में तो मैं देवबुद्धि से श्री वीतराग जिनेन्द्र को, गुरुबुद्धि से श्री हेमाचार्य को और स्वामी-बुद्धि से कुमारपाल को ही नमस्कार करता हूँ।"

अजयदेव का राज्यकाल जितना ही उपद्रवों और रक्तपात से हुआ था उतना ही अचिरस्थायी भी था। पुराण में लिखा है कि

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते ॥

'तीन वर्ष तीन मास तीन पक्ष अथवा तीन दिन में फिर बड़े भारी पाप तथा पुण्य का फल इसी लोक में मिल जाता है। के अनुसार ऐसी घटना हुई कि जब अजयपाल को राज्य करते हुए वर्ष हो गए तो एक दिन विजयपाल नामक एक द्वारपाल ने उसके में छुरी भोंक दी और "धर्म स्थानों को तुड़वाने वाला उस पापी को ने सा डाला तथा नरक की ओर पहुँचाने वाला वह दुष्ट आँसं

---

आम्रभट्ट की प्रशंसा में निम्न लिखित पद्य है जिसका भावार्थ दिया गया है:—

वरं भट्टैर्भाव्यं वरमपि च मिष्टैर्घनकृते
वरं वेश्याचार्यैर्वरमपि महाकूटनिपुणैः ।
दिवं याते दैवादुदयनसुते दानजलधौ
न विद्वद्भिर्भाव्यं कथमपि बुधैर्भूमिवलये ॥

धन प्राप्ति के लिए भाट वेश्यागामी वेश्याचार्य और कूटनीति होना अच्छा परन्तु दान के समुद्र उदयन-पुत्र (आम्रभट्ट) की मृत्यु हो पर चतुर मनुष्यों को इस पृथ्वी-मण्डल पर विद्वान् नहीं होना चाहिये अब विद्वानों का सम्मान करने वाला नहीं रहा।

इस प्रकार जैन धर्मकर्ताओं को दूर करके अजयपाल ने सोमेश्वर अपने महामात्य पद पर नियुक्त किया था। यह बात उदयपुर के एक लेख विदित होती है जो इस प्रकार है—

'संवत् १२२९ वैशाख शुदि ३ सोमे अद्येह श्रीमदणहिल्ल समस्तराजावलिविराजितमहाराजाधिराजपरमेश्वरअजयपालदेवकल्याण विजय तत्पादपद्मोपजीविनि महामात्यश्रीसोमेश्वरे श्रीकरणादौ।"

श्रोझल हो गया।"(१)

अजयपाल (२) के बाद मूलराज (द्वितीय) अथवा बाल मूलराज सन् ११७७ ई० में गद्दी पर बैठा और उसने दो वर्ष (सन् ११७६ ई०) तक राज्य किया। मेरुतुंग ने जो कुछ थोड़ा सा वृत्तान्त उसके विषय मे लिखा है वह पूर्णरुप मे यहां उद्धृत करते हैं —' उसकी माता नायकी

---

(१) 'इति पुराणोक्तप्रामाण्यात् स कुपतिर्वयजलदेवनाम्ना प्रतीहारेण क्षुरिकया हतो धर्मस्थानपातनपातकी कृमिभिर्भक्ष्यमाण प्रत्यह नरकमनुभूय परोक्षतां प्रपेदे। स० १२३० पूर्वमजयदेवेन वर्ष ३ राज्यं कृतम्।" (प्र० चि ४, पृ० १५६)

(२) डाक्टर बूलर के लेख संग्रह में अंक ५-६-७ के लेखो में पृष्ठ ७०, ७५ और ८४ में तथा इण्डियन एण्टीक्वेरी के भाग ६ के पृ० १६६-२०० और २०१ में अजयपाल के विषय में निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं —

महाराजाधिराज-परमेश्वर-परम-भट्टारक — हेला-करदीकृत-सपादलक्ष-क्ष्मापाल-श्रीअजयदेव ॥५॥

परमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरममाहेश्वरहेलाकरदीकृतसपादलक्ष-क्ष्मापालश्रीअजयपालदेव ॥६॥

परमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरममाहेश्वरप्रबलबाहुदण्डरूपकन्दर्प-हेलाकरदीकृतसपादलक्षक्ष्मापालश्रीअजयपालदेव ॥७॥

अंक ८-६ और १० के लेखों में 'परम' के स्थान पर 'महा' शब्द लिखा है, केवल इतना ही अन्तर है।

इस राजा के दिए हुए ताम्रपट्टों में 'परममाहेश्वर' और 'महामाहेश्वर' की उपाधि मिलती है, इससे विदित होता है कि जैन-धर्म का नाश करके पुन शैव-धर्म का प्रचार करने का प्रयत्न इसके राज्यकाल में हुआ था, और इसीलिए जैन ग्रन्थकारों ने इसके विषय में बहुत थोड़ा वृत्तान्त लिखा है और वह भी इसकी निन्दा से भरा हुआ है।

देवी, परमर्दिराज (१) की पुत्री थी उसने बालक राजा को अपनी गोद में लिए हुए गाडराघट्ट नामक पहाड़ी पर युद्ध किया। वर्षा एवं प्रतिकूल ऋतु ने उसकी असहायता में सहायता पहुँचाई इसीलिए उसने म्लेच्छराज (२) को परास्त कर दिया।

---

(१) सातवें प्रकरण की टिप्पणियों में पृ. २१५ पर जेजाभुक्ति अथवा महोबा के चन्देल राजाओं की तालिका दी गई है उसमें १८ वी संख्या पर परमरदेव (परमर्दिदेव) का नाम है। यह परमर्दिदेव संवत् १२२२ (१२२४) अथवा सन् ११६५ ई. से १२०१ तक था। इस राजा के सिक्के व लेख भी प्राप्त होते हैं। नायकी देवी इस राजा की पुत्री होगी अथवा कदम्बकुल के राजा परमर्दि अथवा शिवचित्त की जिसने ११४७ ई. ११७५ ई. तक राज्य किया था। जगदेव परमार कथा की टिप्पणी में पृ. २४७ में लिखा है कि जगदेव परमर्दिराज के दरबार में गया था। यह परमर्दिराज कुन्तल का राजा था परन्तु इसका समय बहुत पीछे पड़ जाता है। कल्याण के चालुक्य राजा कृष्ण का पुत्र सोमम उसका पुत्र परमर्दी अथवा परमाडी ११२८ ई. में था। इसका पुत्र त्रिभुवनमल्ल अथवा विक्रम ११४९–११६७ ई. में था। संभव है यह उसकी बहन हो।

(२) यह म्लेच्छराज मोहम्मद गोरी (शहाबुद्दीन) जान पड़ता है। इस मूलराज को बालार्क अथवा बालमूलराज लिखा है। डाक्टर बूलर ने चालुक्यों के विषय में ११ लेख प्रकाशित किए हैं जिनमें से तीन इसके विषय में हैं—

लेख क्रमांक १ (संवत् १२११ श्रावण सुदि २ रवौ)

'परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरपराभूतदुर्जयगर्ज्जनकाधिराज-श्रीमूलराजदेवपादानुध्यात.'

लेख क्रमांक ४ (संवत् १२८ पौष सुद १ भौमे)

'महाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकउमापतिवरलब्धप्रसादप्रौढ प्रतापम्लेच्छभालस्वपराभूतदुर्जयगर्ज्जनकाधिराजश्रीमूलराजदेवपादानुध्यात,"

मूलराज (दूसरा) अजयपाल का पुत्र था। आबू पर्वत पर अचलेश्वर का एक देवालय है, उसमे एक लेख (१) है, जिसमे लिखा है कि "उसके (कुमारपाल के) बाद अजयपाल ने राज्य किया, उसका पुत्र मूलराज (२) था, उसका छोटा भाई प्रसिद्ध भीम (३) आजकल भूमि-भार को धारण करता है।"

---

लेख अ क ५ (सवत् १२८३ श्रावण शुद १५.)

"परमेश्वरपरमभट्टारकम्लेच्छतमनिचयच्छन्न(मही)वलयप्रद्योतनबालार्क्क-महाराजाधिराजश्रीमूलराजदेवपादानुध्यात"

रासा वालों ने लिखा है कि मूलराज (द्वितीय) का मुसलमानो से झगड़ा हुआ था। इस बात की पुष्टि उक्त लेख से भी होती है। लेख में लिखा है कि, 'जिसको जीतना कठिन है, ऐसे गर्ज्जन के राजा को युद्ध में हराया है जिसने, ऐसा मूलराज राजा था'

(१) एशियाटिक रिसर्चेज भाग १६ पृ० २८८।

(२) मिस्टर विल्सन ने इस लेख का अनुवाद करते समय यह नोट लिखा है कि "अनुजन्मा' शब्द का अर्थ साधारणतया 'पीछे जन्म लेने वाला' (भाई) होता है, सभवत. इसका अर्थ पुत्र भी हो सकता है, परन्तु पहले अर्थ (छोटाभाई) को ठीक मान लेने के लिए बहुत से कारण मौजूद हैं।" जब मूलराज बचपन ही में मर गया था तब भीमदेव द्वितीय पूर्ण वयस्क था, ऐसा ज्ञात होता है। इसलिए उसको अजयपाल का भाई मान लेना ही अधिक सगत होगा। मि० विल्सन का अभिप्राय अगले पैरे में और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है—जहा लिखा है कि "भीम, अजयपाल के पुत्र मूल का छोटा भाई।'

(३) अजयपाल का पुत्र मूलराज था, और नीचे लिखे प्रमाणों से तो यह विदित होता है कि भीम भी उसका पुत्र था, परन्तु उसके कार्यों को देखकर बहुत से लोग ऐसा मानते हैं कि वह (भीम) अजयपाल का छोटा भाई था। यह बात बहुत ध्यान देने योग्य है, परन्तु इसका कोई प्रमाण अब तक नहीं मिल सका है।

वर्ष पीछे फिर अणहिलवाडा की सीमा पर चढाई की थी । फरिश्ता

---

लता के फूल समझकर तुर्कों के मस्तकों को ग्रहण कर लिया था । (अर्थात् जिसने मुसलमानों के मस्तकों को काट डाला था । )

यस्मिन् मदोच्चैः शिरसि प्रतीची महीभृति स्फारबलाम्बुराशौ ।
अस्त समस्तारियश.शशाङ्कप्रतापचण्डद्युतिमण्डलाभ्याम् ॥ ४६ ॥

जिसकी सेना का विस्तार समुद्र के विस्तार के समान था ऐसा, पश्चिम दिशा का राजा, गजशिरोमणि मूलराज शत्रुओं के यश रूपी चन्द्रमा और अपने प्रतापरूपी सूर्य मण्डल के साथ अस्त हो गया ।

श्रीभीमदेवोऽस्ति निरर्गलोग्रभुजार्गलग्रस्तसमस्तशत्रु ।
बिभ्रत्करे भूवलय पयोधिवेलामिलन्मौक्तिकमस्य बन्धु ॥ ४७ ॥

उसका भाई भीमदेव है, जिसने अपनी निरर्गल उग्र भुजाओं रूपी अर्गला से समस्त शत्रुओं को बाँध लिया है और जिसने, जहा पर मोती प्राप्त होते हैं ऐसी, समुद्र-वेला-पर्यन्त पृथ्वी को अपने हाथ में ले लिया है ।

आजन्मसद्म द्युसदा मदेकक्षणप्रदानात् क्षयमेष मागात् ।
इति स्मरन् य कनकानि दातुमुन्मूलयामास न हेमशैलम् ॥४०॥

यह (सुमेरु पर्वत) शुरू से ही देवताओं का निवास स्थान रहा है और मेरे दान कर देने से एक ही क्षण में समाप्त हो जावेगा' इसी विचार से जिसने (भीमदेव ने) सुमेरु पर्वत को नही तोड़ा (अर्थात् अपर्याप्त समझ कर रहने दिया) ।

यद्दानमश्रावि सदानुभूतमेवार्थिभिर्गीतिषु खेचरीणाम् ।
विलासहेमाद्रिसुमेरुपादाधियाचकाना स्वगृहोपकण्ठे ॥४६॥

जिसके (भीमदेव के) विलास के लिए बने हुए सोने के क्रीडा पर्वत पर, अपने घर सुमेरु शिखर की भ्रान्ति से उतर कर आई हुई अप्सराओं की गीतियों में, उसके निरन्तर होते रहने वाले दान के विषय में याचक लोग सदा ही चर्चा सुनते रहते थे ।

कीर्तिकौमुदी के द्वितीय सर्ग में लिखा है कि —

"धृतपार्थिवनेपथ्ये निष्क्रान्तेऽत्र शतक्रतौ ।
जयन्ताभिनय चक्रे मूलराजस्तदङ्गज. ॥५६॥

लिखता है कि ११७८ ई० में मोहम्मद शाहबुद्दीन गोरी गज़नी से

---

चापलादिव बालेन रिङ्खता समराङ्गणे ।
तुरुष्काधिपतेर्येन विप्रकीर्णा वरूथिनी ॥ ५७ ॥
यच्छिन्नम्लेच्छकङ्कालस्थपुटैर्विलोकयन् ।
पितुः मालेयशैलस्य न स्मरत्यर्बुदाचलः । ॥५८ ॥

इन्द्र ने बालगोपाल का रूप धारण किया था, रणभूमि रूपी रंगभूमि पर अपना कार्य करके वह ही चला गया और उसके पुत्र मूलराज ने बसन्त का अभिनय किया । रणभूमि में क्रीड़ा करते हुए ही उसने (मूलराज ने) तुर्कराज की सेना को तितर बितर कर दिया । जिसके (मूलराज के) द्वारा मारे गये म्लेच्छों के कंकाल (अस्थिपञ्जर) के ढेर को देखकर अर्बुदाचल (आबू पहाड़) अपने पिता हिमालय को भी भूल गया ।

द्रागुन्मीलिते तत्र धात्रा कल्पद्रुमाङ्कुरे ।
तस्यानामानुजन्मास्य भीमभीम इति भूपतिः ॥५९॥
भीमसेनेन भीमोऽयं नृपतिर्न कदाचन ॥
बकापकारिणा तुल्यो राजहंसदमक्षमः ॥ ६० ॥
मन्त्रिभिर्माण्डलीकैश्च बलवद्भिः शनैः शनैः
बालस्य भूमिपालस्य तस्य राज्यं व्यभज्यत ॥६१॥

कल्पद्रुम के अंकुर रूपी मूलराज को विधाता ने शीघ्र ही उखाड़ लिया इसलिए उसका अनुजन्मा ( छोटा भाई ) भी भीम राजा हुआ।

राजहंसों का (राजा रूपी हंसों का) दमन करने में समर्थ यह भीमराज बक (राक्षस अथवा बगुला) के अपकार (नाश) करने वाले भीमसेन के बराबर कभी भी नहीं हो सकता ( अर्थात् उससे बढ़कर है क्योंकि उसने तो बक को ही नष्ट किया था और इसने राजहंसों का दमन किया है ) ।

बलवान् मन्त्रियों और मांडलिकों ने धीरे धीरे उस बालक राजा के राज्य को बांट लिया था ॥ ६१ ॥

रवाना होकर ऊच्च और मुल्तान के रेतीले मैदानों के रास्ते से गुजरात पहुँचा था। (१)"राजा भीमदेव (महमूद गजनवी का सामना करने वाले

(१) इस समय का मुसलमानों का इतिहास जानना भी आवश्यक है इसलिए हमें जो कुछ उसका हाल प्राप्त हुआ है उसे यहां विस्तारपूर्वक लिखते हैं —

गोरीवंश का अलाउद्दीन जहांसोज, गजनी को पैमाल करके फीरोजकोह के तख्त पर बैठा था। उस समय उसके दो भतीजे थे, गयासुद्दीन-मुहम्मद शाम और मौजुद्दीन मुहम्मद शाम उर्फ शाहबुद्दीन जो सुलतान बहाउद्दीन शाम का शाहजादा था और जिसको उसने वैरिस्तान के किले में कैद कर रखा था और उसके गुजारे के लिए वार्षिक रकम बांध रखी थी।

सुल्तान अलाउद्दीन के बाद शाहजादा सुलतान सैफुद्दीन गद्दी पर बैठा। इस सुलतान ने अपने दोनों चचेरे भाइयों को कैद से छोड़ दिया। शाहजादा गयासुद्दीन तो फीरोजकोह में ही बादशाह सैफुद्दीन की सेवा में रहने लगा और शाहबुद्दीन (मौजुद्दीन) अपने चाचा फखरुद्दीन मसूद की सेवा में आमियान चला गया।

सैफुद्दीन की त्रासदायक मृत्यु के बाद गोर के तख्त पर गयासुद्दीन बैठा। जब यह बात फखरुद्दीन ने सुनी तो उसने अपने भतीजे शाहबुद्दीन से कहा 'तुम्हारे भाई के शिर पर तो बोझा आ पड़ा है, अब तुम्हारा क्या कर्तव्य है?" उसने अपने काका को सादर नमस्कार किया और तुरन्त ही फीरोजकोह के लिए रवाना हो गया। वहां पहुचकर उसने अपने भाई को नमस्कार किया और एक वर्ष तक वहीं उसकी सेवा में रहा। फिर एक बार किसी बात में अपना अपमान समझकर वह सीजिस्तान में मलिक शमशुद्दीन के पास चला गया और एक जाडे भर वहीं रहा। इसके बाद उसको वापस बुलाने के लिए हलकारे भेजे गए। वापस आकर पहुचते ही उसको उजूरान और ईस्तिया (हिरात और गजनी के बीच का पहाड़ी गोर प्रदेश) के मुल्क सौंप दिये गए। इसी समय गयासुद्दीन ने गर्मशीर पर अपनी सत्ता स्थापित करली और वहां के सबसे बडे शहर तकीनाबाद को अपने भाई के आधीन कर दिया। इतने ही में उधर गजनी के लश्कर और उसके नेता ने विद्रोह कर दिया इसलिए वह

गुजरात के राजा भीमदेव (भीमदेव ?) का वंशज) सेना लेकर मुसलमानों का सामना करने के लिए आया और बहुत मारकाट के बाद उनको

---

वहाँ बारह वर्ष तक रहा और खुसरूशाह व खुसरू मलिक के हाथ में से देश छीन लिया परन्तु शाहबुद्दीन तकीनाबाद से कभी कभी हमला करके हैरान करता रहा।

अन्त में, सन् ११७३ ई० (५६६ हि० स०) में गयासुद्दीन ने गज़नी को जीत लिया और अपने भाई शाहबुद्दीन को वहां की गद्दी पर बिठाकर वापस गोर लौट गया। इस शाहज़ादे ने गज़नी को स्वाधीन करने के दो वर्ष बाद ही गुर्दैज जीत लिया और तीसरे वर्ष (हि० स० ५७१, ई० स० ११७५) अपनी फौज लेकर मुलतान तक जा पहुँचा और कर्मातिन (करमन) के लोगों से उनका देश हस्तगत कर लिया। इसके बाद उसने भाटिया लोगों से उच्च को ले लिया और वहां तथा मुल्तान में अली करमाख को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके गज़नी लौट गया।

इन सब घटनाओं का समय फरिश्ता ने ५७२ हि० स० लिखा है और यह भी लिखा है कि सुलतान ने उच्च के चारों ओर घेरा डाल दिया था इसलिये वहां का राजा किले में जाकर रहने लगा। परन्तु सुल्तान इस बात को जानता था कि किले को ले लेना कोई आसान बात न थी इसलिये उसने युक्ति से ही काम निकालने की सोची। उसको किसी तरह इस बात का पता चल गया था कि राजा पर रानी का बहुत प्रभाव है इसलिए उसने रानी को ही अपनी ओर मिला लेने का निश्चय किया। उसने अपने आदमी रानी के पास भेजे और कहलाया 'यदि तुम्हारी मदद से नगर मेरे कब्जे में आ जावेगा तो मैं तुम्हें राजरानी बनाऊँगा।' शाहबुद्दीन का दबदबा देखकर रानी उसके फुसलाने में आ गई और सोचा कि वह यहां से विजय किए बिना नहीं लौटेगा। उसने उत्तर भिजवाया "मैं तो आपकी सेवा के योग्य नहीं हूं परन्तु यदि आप मेरे मालमते को न छेड़ें तो मेरी अत्यन्त रूपवती पुत्री को आपकी भेंट कर सकती हूं और राजा को मरवाने का उपाय भी कर सकती हूं।" शाहबुद्दीन ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और कुछ ही दिनों बाद रानी ने राजा को मरवा दिया तथा उच्च नगर

(मुसलमानो को ) हरा दिया। लौटते समय गजनी पहुचने से पहले उनको वहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पडा । इस समय तक

---

सुल्तान के कब्जे में आ गया। इसके बाद अपनी प्रतिज्ञानुसार उसने राजकुमारी को मुसलमानी धर्म में बदलकर उसके साथ निकाह किया और गजनी भेज दिया। राजकुमारी की माताने पुत्री के वियोग में तुरन्त ही प्राण छोड़ दिए और दो वर्ष बाद उसकी पुत्री भी मर गई। इस प्रकार उन दोनों को ही बादशाह की मुलाकात से कोई फल प्राप्त नहीं हुआ।

इसी वर्ष, सकरान ( शकरान, सेनकरान ) के लोगों ने भी धोखा करके बहुत उपद्रव मचाया इसलिए शाहबुद्दीन ने उन पर चढाई करदी और उनमें से बहुतों को तलवार के घाट उतार दिया।

कुरान में लिखा है कि, सकरान के लोग अपने देश के लिए लडे थे, इसीलिए कितने ही लेखकों ने उन्हें गाजी लिखा है। उन्होंने कुछ काजियों की अध्यक्षता में विद्रोह खडा किया था इसीलिए शाहबुद्दीन को कितने ही राजनैतिक कारणों से उन्हें भी दण्ड देना पडा।

इस उपद्रव को दबाने के बाद (हि० स० ५७४, ई० स० ११७८) उसने ऊच्च और मुल्तान होते हुए थरपाकर मार्ग से अणहिलवाड़ा ( नहरवाल ) पर चढाई की। उस समय वहा का राजा भीमदेव बालक था ( तबकाते नासरी )। फरिश्ता लिखता है कि, उस समय गुजरात की हकूमत वीरमदेव के वशज भीमदेव के हाथ में थी।

(यह लडाई सन् ११७८ में हुई थी, उस समय बालमूलराज गुजरात का राजा था और भीमदेव उसकी ओर से राजकाज चलाता था। ऐसा जान पड़ता है कि उसकी मृत्युके बाद ११७९ई० में भीम गद्दी पर बैठा था। )भीमदेव ने सुल्तान को हरा दिया और बहुत से मुसलमान मारे गए। सुल्तान बहुत कठिनाई से गजनी पहुंचा और फिर वहा से ५७५ हि० स० में पेशावर चला गया। खुलासा तवारीख का लेखक लिखता है कि यह घटना हि० सन् ५७७ की है।

"प्रख्यात भीमदेव' गद्दी पर नहीं बैठा था वरन् अपनी मामी और बालक राजपुत्र की ओर से एक सच्चे राजभक्त शूरवीर की भांति राजकाज चला रहा था।

---

यह कहता है कि गुजरात फतह करने के इरादे से सुलतान उच्च और मुलतान होता हुआ थरपारकर के मार्ग से आया और सामने ही भीमदेव फौज लेकर उसका सामना करने के लिए तैयार मिला। दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ परन्तु, इस समय सुल्तान का लश्कर बहुत दूर चलकर आया था और मार्ग में बहुत सी कठिनाइयां भोगनी पड़ी थी इसलिए काफी थका हुआ और पस्त था। उधर भीमदेव के सैनिक ताजा और बेपरवाह थे इसलिए तीरों तलवारों और बन्दूकों से उन्होंने बहुत से मुसलमानों को जख्मी कर दिया। इस प्रकार अनायास ही भीमदेव की विजय हो गई और सुल्तान का बहुत नुकसान हुआ तथा वह इस संकट से प्राण बचाकर गजनी भाग गया।

'जब सुल्तान महमूद गजनवी ने देवपट्टण पर चढ़ाई की थी उस समय जूनागढ़ के स्वधर्मरक्षक राजा मंडलिक ने अणहिलवाड़ा के राजा भीमदेव प्रथम का साथ दिया था ऐसा सोरठ के इतिहासकार रणछोड़जी दीवान ने लिखा है, परन्तु, सर बेली अपने गुजरात के इतिहास में लिखते हैं कि, यह बात मोहम्मद शाह ( शाहबुद्दीन गोरी ) के हमले के समय लागू पड़ती है। हमको ऐसा जान पड़ता है कि महमूद गजनवी के हमले के समय भीमदेव प्रथम था और गोरी की चढ़ाई के समय भीमदेव द्वितीय था। नामसाम्य के कारण रणछोड़जी ने मोहम्मद गोरी के समय की घटना को गजनवी के समय में लागू करके लिख दिया है। वे लिखते हैं कि "मुसलमानों पर हिन्दू लोग बिजली के समान टूट पड़े वायु के समान वेग धारण करके बन्दरों के समान कूद फांद करते हुए और बाल-मृगों के समान पुलांचें भरते हुए वे मुसलमानों के पीछे दौड़ पड़े। मुसलमानों में से कितने ही तो हिन्दुओं की तलवारों से मारे गये और कितने ही के मस्तक राजपूतों की गदा से चकनाचूर हो गए। राजा का सौभाग्य पूर्ण उच्च स्थिति पर पहुंच गया। मुहम्मदशाह अपना जी बचाकर भाग गया हुआ परन्तु उसके लश्कर में से बहुत से स्त्री पुरुष पकड़ लिए गये।

अजयपाल का छोटा भाई भीमदेव (द्वितीय) अथवा जिसको भोला भीम भी कहते हैं, ११७६ ई० मे गद्दी पर बैठा (१) और ३६ वर्ष राज्य किया। मेरुतुग लिखता है कि, उसके राज्यकाल मे मालवा के

---

मुसलमानों के धर्मशास्त्र में लिखा है कि, तुर्क, अफगान और मुगल स्त्रिया जब तक क्वारी रहती हैं तब तक पवित्र समझी जाती हैं। इसी के अनुसार ऐसी स्त्रियों के साथ विवाह कर लेने में कोइ आपत्ति नही समझी गई। जो दूसरी स्त्रिया थी उनको जुलाब आदि देकर शुद्ध कर लीगई और उन्ही के धर्मशास्त्रानुसार जो भली थी उनका भलों के साथ और जो दुष्टा थी उनका दुष्टों के साथ विवाह कर दिया गया। जो इज्जतदार मनुष्य थे उनकी दाढिया मुडवाकर उनको शेखावतो में मिला लिया गया और शेखावतो को वाढेल जाति के राजपूतों में शामिल कर लिया गया। जो नीच श्रेणी के थे उनको कोली, खाट, बावरिया और मेर जाति के लोगों में मिला लिया गया। शादी, जन्म, मरण आदि की रस्मों के विषय में इन्हे आज्ञा दे दी गई कि वे अपने ही रीति रिवाज मानें परन्तु और लोगो से अलग रहें। इसमें कहा तक सत्य है, यह परमेश्वर ही जानता है।

(१) भीम देव (द्वितीय) ने ३६ वर्ष राज्य किया, इस हिसाब से उसके राज्य-काल का अन्त १२१५ ई० में ही होता है, परन्तु यह बात गलत है। मेरूतुग के लेखानुसार उसने ६३ वर्ष राज्य किया और उसके दिए हुए ताम्रपट्टों से भी यही बात सिद्ध होती है। आबू के १२३१ ई० के लेख में भीमदेव को 'राजाधिराज' लिखा है और इसी लेख का आधार मि० फार्बस ने इस पुस्तक में लिया है, शायद ६३ के अकों को उलट पुलट पढ लेने के कारण भूल से ६३ के स्थान ३६ पर लिख दिए हैं। मेरुतुग ने प्रबन्धचिन्तामणि में स्पष्ट लिखा है कि, "सवत् १२३५ पूर्व वर्ष ६३ श्री भीमदेवेन राज्य कृत" अर्थात् सवत् १२३५ वि० से ६३ वर्ष पर्यन्त सवत् १२९८ (ई० स० १२४१-४२) तक भीमदेव ने राज्य किया। मेरुतुग के लिखे अनुसार भीमदेव के ताम्रपट्ट मिलते आते हैं। उसका अन्तिम ताम्रपट्ट (जो डा० बूलर के प्रकाशित किए हुए ११ ताम्रपट्टों में से ९ वा है) सवत् १२९५ वि० का है। उसके बाद में स १२९८-

राजा श्री सोहडदेव ने गुजरात को नष्ट करने के लिए चढ़ाई की थी परन्तु भीम ने उसको धमकी दी कि 'राजा-मार्त्तण्ड (सूर्य) जो सूर्य वंश को कान्ति प्रदान करता है, केवल पूर्व दिशा में ही प्रदीप्त होता है, वही सूर्य जब पश्चिम दिशा में पहुँचता है तो कान्तिहीन हो जाता है।"(१) इस धमकी को सुनकर सोहडदेव वापस लौट गया। मेरुतुंग ने लिखा है कि बाद में उसके पुत्र अर्जुनदेव ने गुजरात को लूटा था। इस कथन की पुष्टि मालवा के अर्जुनदेव के एक लेख (२) से हो

---

वि (१२४१-४२ ई ) का ताम्रपट्ट राजा त्रिभुवनपाल का मिलता है। इस लिए भीमदेव ने संवत् १२९८ वि ( १२४१ ४२ ई ) तक राज्य किया।

गुजराती अनुवादक ने लिखा है कि 'हमारे पास एक पट्टावली है जिसके अनुसार बाल मूलराज ने संवत् १२३२ की फाल्गुण कृष्णा १२ से १२३४ वि की चैत्र शुक्ला १४ तक २ वर्ष और १ महीने राज्य किया उसके बाद सं १२३४ की चैत्र सुदि १४ से उसके भाई भोले भीम ने राज्य करना आरम्भ किया।

विचारश्रेणी में लिखा है—

"ततस्तद्देशोऽपि श्री भीमदेव राज्या इति राजावली'

इसमें तथा हमारे पास एक दूसरा जैनपत्र है जिसमें लिखा है कि भीमदेव संवत् १२३५ में गद्दी पर बैठा इससे इस बात में सन्देह नहीं कि सन् ११७८ ई में भीमदेव राज्य करता था क्योंकि अणहिलवाडा के पालनपुर के पास केरालु नामक एक कस्बा ग्राम है यहां के ११७८ ई (संवत् १२३५) के एक लेख से विदित होता है कि यह प्रख्यात विजयी भीमदेव के राज्यकाल में लिखा गया था।

(१) 'प्रतापो राजमार्त्तण्ड पूर्वस्यामेव राजते।
स एव विलयं याति पश्चिमाशावलम्बिना॥" प्र चि पृ. १५९

(२) बंगाल एशियाटिक सोसायटी जर्नल ५ वां पृष्ठ १८ ।

जाती है जो सन् १२१० ई० का लिखा हुआ है और जिसमे लिखा है कि 'सुभटवर्म (सोहडदेव) ने, जो अर्जुनदेव का पिता था, अपना क्रोधायमान् पराक्रम दिखलाने के लिए गुजरात नगर पर गर्जन किया,' और अर्जुन राज ने जो बालक ही था, खेल ही खेल मे जयसिंह राज (१) को भगा दिया। १२८० ई० का ही एक और लेख है जिसमे बालमूलराज के क्रमानुयायी भीमदेव (द्वितीय) के दिये हुए दान का वर्णन है और उसमे लिखा है कि 'भीमदेव दूसरा सिद्धराजदेव और नारायण का अवतार है। (२)

गुजरात के इतिहास-लेखकों ने भीमदेव (द्वितीय) विषय मे बहुत थोडा वर्णन लिखा है परन्तु इस कमी को मुसलमान इतिहासकारों और उसके प्रतिस्पर्द्धी चौहानों के इतिहासलेखक चन्द बारहठ(३) ने पूरी कर दी है। चन्द के सुन्दर चित्रोपम काव्य मे अणहिलवाडा के भोला परन्तु वीर भीमदेव का स्थान गौण नहीं है। अब आगे लिखे जा रहे वृत्तान्त का आधार यही उपर्युक्त इतिहास है।

---

(१) मालवा विजय करने वाले अणहिलवाडा के राजा के बाद में होने वाले राजा (जयन्तसिंह ?) के विषय में यह बात लागू हो सकती है।

(२) सवत् १२८० का लेख जयसिंह देव का है उसमें 'नारायणावतार-श्री भीमदेव' ऐसा लिखा है (देखिए—डाक्टर बूलर द्वारा प्रकाशित लेख न० ११)।

(३) फार्बस साहब ने पृथ्वीराज रासो के कर्त्ता चन्द को बारहठ (Bharot Chund) लिखा है, यह भूल है। गुजराती अनुवादक भी यथावत् बारहठ ही लिखते हैं। वास्तव में चन्द भाट विरदाई था, बारहठ चारण नहीं था। अत पुस्तक में जहां जहां बारहठ लिखा गया है वहा वरदाई पढना चाहिए।

चारहट चन्द ने लिखा है कि जब अनंगपाल (१) दिल्ली में राज्य करता था उसी समय कमधज अथवा राठौड़ राजा विजयपाल ने उस पर चढ़ाई करने की तैयारी की। उस समय सांभर में आनन्ददेव का पुत्र सोमेश्वर देव राज्य करता था। जब उसने सुना कि कमधजों और तँवरों में युद्ध होने वाला है तो क्षत्रिय होने के नाते घर बैठे रहना उचित न समझा। 'मैं आम्नराज के कुल की कीर्ति को बढ़ाऊंगा अथवा कैलास या इन्द्रासन को प्राप्त करूंगा' यह कहकर उसने रणभेरी बजाई और कनभज के विरुद्ध दिल्लीश्वर की सहायता के लिए रवाना हुआ। सोमेश्वर और अनंगपाल श्वेत छत्र धारण करके विजयपाल (१) का सामना करने के लिए आगे बढ़े। लड़ाई में सोमेश्वर ने विजयपाल को घायल किया और वह भाग गया। शक्तिशाली कमधज को पराजित करने के कारण दिल्ली में सोमेश्वर का यशोगान होने लगा और

---

(१) तंवर वंश में अनंगपाल नाम के तीन राजा हुए हैं उनमें से यह तीसरा अनंगपाल था जिसको कार्लाइल ने अकबरी में आकपाल लिखा है। इसने सन् ११२८ ई० से ११४९ ई० तक २१ वर्ष २ महीने और १५ दिन राज्य किया। दिल्ली की राजवंशावलि में इसका अंक १९ वां है।

(२) कन्नौज के राठौड़ राजों की राजावलि में विजयपाल का नाम नहीं मिलता है परन्तु पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि यह जयचंद का पिता था। Coins of Mediaeval India के पृष्ठ ८४-८५ में चन्द्रदेव ( १ ५ ) के पुत्र मदनपाल का समय १०८० से ११९५ ई० लिखा है और गोविन्दचन्द्र का समय १११५ से ११५५ ई० तक लिखा है।

विजय चन्द्र ( जयचन्द ) का समय ११६५ से ११९१ ई० तक का है अब बीच में विजयचन्द्र या विजयपाल नामक व्यक्ति के लिए कोई अवकाश ही नहीं रहता। राजमाला निर्णय के पृ० ११ में जयचन्द के पिता का नाम विजय चन्द्र राठौड़ लिखा है परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं दिया है इसलिए यह बात

अनगपाल ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करके दृढ़-सम्बन्ध स्थापित कर लिया। इसके बाद पूर्ण आदर सहित उसकी विदाई की और सोमेश भी विजय दुन्दुभि बजाता हुआ अजमेर लौट गया।

ऐसा मालूम होता है कि अनगपाल के कोई पुत्र न था। उसकी दोनों पुत्रियों मे से एक कमलादेवी तो अजमेर के सोमेश्वर को व्याही थी और दूसरी का विवाह कन्नौज के राजा जयचन्द राठौड के साथ हुआ जो अनगपाल की भूआ के लड़के विजयपाल का पुत्र था। तँवर कुँवरी के पेट से सोमेश्वर के पुत्र सुप्रसिद्ध पृथ्वीराज ने जन्म लिया, जिसने दिल्ली और अजमेर की गद्दी को एक कर दिया था और जिसने मुसलमानों के साथ अपूर्व युद्ध करते हुए शरीरत्याग किया था। चन्द वरदाई लिखता है कि, कन्नौज, अणहिलपुर और गजनी मे यमदूतों ने पृथ्वीराज के जन्म के समाचार प्रसिद्ध किए। पृथ्वीराज के पृथा नाम की एक बहन थी, जिसका विवाह उसके पिता सोमेश्वर ने चित्तौड़ के रावल समरसिंह (१) के साथ किया था।

---

विश्वास योग्य नहीं समझी जा सकती है। विजयचन्द्र अथवा विजयपाल के स्थान पर यदि गोविन्दचन्द्र लिखा होता तो रासो की बात मानने योग्य समझी जा सकती थी।

(१) राजा गुहसेन अथवा गुहिल का समय ५३९ ई० से ५६९ ई० तक का है। गोहिल अथवा गेलोटी राजपूत, जो आजकल शिशोदिया कहलाते हैं और जो राजपूताना और काठियावाड़ में राज्य करते हैं, इसी गुहिल राजा के वशज हैं। इस गुहसेन राजा का बड़ा पुत्र धरसेन (द्वितीय) अपने पिता के बाद वलभीपुर की गद्दी पर बैठा और उसके छोटे भाई गुहादित्य को ईडर का राज्य मिला। इसी के वशज ईडर से चित्तौड़ ( मेवाड़ ) चले गये थे और वहीं पर अब तक राज्य करते रहे हैं। गुहादित्य की कुछ पीढियों बाद बप अथवा बप्पा हुआ जिसने मेवाड़ में चित्तौड की गद्दी प्राप्त की थी।

उन दिनों राजा भोला भीम गुजरात में अणहिलपुर का शृंगार था। यह अगाध समुद्र के समान बलवान् और अजेय चतुरंगिणी सेना का स्वामी था त्रैलोक्य उस वासुकुम्भराज की शरण में था और बड़े बड़े

---

'भावनगर के प्राचीन शोध संग्रह' से एक दूसरा ही अभिप्राय विदित होता है। वह इस प्रकार है कि जब वलभी के सातवें राजा शिलादित्य की मृत्यु हुई उस समय उसकी सगर्भा स्त्री पुष्पवती आरासुर में अम्बा भवानी की यात्रा करने गई हुई थी। जब उसने पति की मृत्यु का समाचार सुना तो वह वहीं ठहर गई। एक गुफा में उसने पुत्र को जन्म दिया इसलिए उस बालक का नाम गुहादित्य पड़ा। इसके बाद रानी ने अपने पुत्र को राजोचित शिक्षा मिले इस अभिप्राय से एक योग्य ब्राह्मण को सौंप दिया और स्वयं सती हो गई। गुहादित्य जब बड़ा हुआ तो भाडेरे के भीलों का राजा हुआ। वह ब्राह्मण के कुल में पला था इसलिए ब्राह्मण धर्म का ही पालन करता था। उसका पुत्र बप्पा हुआ, वह भी ब्राह्मण धर्म का ही पालन करने लगा और हारीत मुनि की सेवा करने लगा। इन हारीत मुनि ने एकलिंग भगवान् शंकर को प्रसन्न करके उनसे एक सोने का कड़ा प्राप्त किया था। बप्पा की सेवाओं से प्रसन्न होकर वही कड़ा उसको देने लगे तब बप्पा ने कहा "महाराज! सोने का कड़ा तो क्षत्रियों को शोभा देता है।" इस पर हारीत मुनि ने उसको क्षात्रतेज प्रदान किया और उसने अपना ब्राह्मणत्व मुनि को भेंट कर दिया तथा उनसे स्वर्ण कटक एवं क्षात्रतेज प्राप्त किया। गोहिल कुल के पूर्वज पहले ब्राह्मण कुल को आनन्द देने वाले थे इस आशय का किसी कवि का श्लोक महाराणा कुम्भकर्ण ने अपने एकलिंग-माहात्म्य में उद्धृत किया है—

आनन्दपुरसमागतविप्रकुलानन्दनो महीदेवः।
जयति श्रीगुहदत्तः प्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य॥

आनन्दपुर (बड़नगर) से आए हुए, ब्राह्मण कुल को आनन्द देने वाले श्री गुहिलवंश में उत्पन्न हुए श्री गुहिलदत्त राजा की जय हो।

नीचे लिखे अनुसार समरसिंह बप्पारावल की १८ वीं पीढ़ी में हुआ था। देखो अचलेश्वर, आबू पर अचलगढ़ के पास वाले मठ का लेख (संवत् १३४२, ई० स० १२८५) मार्गशीर्ष शुक्ला १ (भावनगर प्राचीन शोध संग्रह पृ० ५२)

गढपति उसकी सेवा में रहते थे। सिन्ध के जहाजों पर उसका अधिकार था और धारा की धरती में उसकी फौजी छावनी थी।

---

इस वशावली में दिए हुए पुरुषो के नाम पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र के क्रम से ही नही दिए गए हैं अपितु कही कही भाई भतीजों के नाम भी आ गए हैं.—

१—बप्पा
२—गुलिल
३—भोज
४—शील
५—कालभोज
६—भर्तृभट्ट
७—सिंह
८—महायिक
९—खुमाण
१०—अल्लठ
११—नरवाह
१२—शक्तिकुमार
१३—शुचिवर्म्मा
१४—नरवर्म्मा
१५—कीर्तिवर्म्मा
१६—वैरट
१७—वैरिसिंह
१८—विजयसिंह
१९—अरिसिंह
२०—चोड़सिंह
२१—विक्रमसिंह
२२—क्षेमसिंह
२३—सामन्तसिंह
२४—कुमारसिंह
२५—मथनसिंह
२६—पद्मसिंह
२७—जैत्रसिंह
२८—तेजसिंह
२९—समरसिंह

[ इस विषय में ओझाजीकृत 'राजपूताने का इतिहास' भा.१पृ ३९४—४००देखें]

अमरसिंह शेवड़ा नामक एक जैन साधु उसकी (भीमदेव की) सेवा में रहता था, वह मन्त्रों द्वारा स्त्री पुरुष और देवताओं को वश में करना जानता था। पारकर (१) के यादव और सोढा उसके वश में थे। उसने ब्राह्मणों के घरों को भस्म करके उन्हें देश से निष्कासित कर दिया था। मालवा में पल्ली भदेरा और आबू की पहाड़ियों पर वह घूमता फिरता था।

उन दिनों आबू पर जैतसी परमार राज्य करता था। (२) उसके सलख नामक एक पुत्र और इच्छनकुमारी नाम की एक पुत्री थी जो इतनी रूपवती थी कि उसके रूप की सर्वत्र चर्चा और प्रशंसा होती थी। भीमदेव ने उससे विवाह करने की इच्छा की। आबू परमार राजा और इच्छनी के विषय में जब कोई बात करता तो वह बहुत मन लगाकर सुनता और इस बात का विचार न करता कि कहने वाले ने सच कहा था या झूठ। उसका रोग इतना बढ़ गया था कि उसे सपने भी इच्छनकुमारी के ही आने लगे। अन्त में, इच्छनकुमारी की मांग करने के लिए उसने अमरसिंह को आबू भेजा।

परन्तु, उसकी सगाई पहले ही चौहानपुत्र के साथ हो चुकी थी। जब भीमदेव के प्रतिनिधि को यह बात मालूम हुई तो उसने कहा, हे पर्वतपति ! भोला वीर चालुक्य इच्छनकुमारी की बातको सुनकर उसे भूल नहीं सकता है, वह तुमसे तुम्हारी कन्या की मांग करता है, यदि तुम इसे अस्वीकार करोगे और अपनी कन्या का विवाह चौहान के साथ कर दोगे तो वह तुमको आबू के परकोटे से बाहर निकाल देगा। उसके

---

(१) पारकर के यादव तथा कच्छ के जाडेजों के भाई-बन्धु।

(२) पृथ्वीराज चौहान (११७८ ई०—११९२ ई०) के समयमें ही आबू का राजा धारावर्ष (११६३–१२१९ ई०) था जिसके अनेक शिलालेख मिलते हैं।

लिए परमारों से युद्ध करना उतना ही सरल है जितना कि अर्जुन के लिए किसी तुच्छ से युद्ध करना।' जैतसी ने भीमदेव के प्रधान की बातें बहुत शान्ति के साथ सुनी और उसको पाच दिन तक बहुत आदर सत्कार के साथ अपने दरबार मे रक्खा, तदनन्तर अपने मन्त्रियों के साथ सलाह की कि, क्या उत्तर देना चाहिए। अन्त में, जैतसी का पुत्र तलवार लेकर खडा हो गया और कहने लगा, "यदि भीमदेव मेरा राज्य मागता तो मैं उसे सहर्ष दे देता परन्तु, उसने जैनमत को अपना लिया है, वह दगाबाज है, वह वशीकरण करता है और भुरकी डालता है, इन्हीं उपायों के द्वारा उसने इतनी पृथ्वी प्राप्त करली है, परन्तु उसे उत्तर दिशा वाले शत्रु का ज्ञान नहीं है।" जैतसी ने भी कहा, "मरुदेश में नौ लाख योद्धा बसते हैं, आबू के नीचे अठारह राजगद्दियाँ हैं और साम्भरपति मेरे साथ है, यदि ये सब मिलकर भी मेरी रक्षा न कर सके तो जिसने माता के पेट मे परीक्षित की रक्षा की थी, जिसने जलते हुए जङ्गल में से छोटे छोटे बच्चों को बचाया था, जिसने अपने मामा का वध करके माता पिता की रक्षा की थी, जिसने गोवर्धन को उठाकर व्रज को बचाया था वही गोकुल का स्वामी श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करेगा।" यही उत्तर देकर उसने भीमदेव के प्रधान को विदा किया।

जैतसी ने अपने पाच सम्बन्धियों के हाथ में आबू की रक्षा का भार सौंप दिया और फिर अपने पुत्र से कहा 'अब अपने को चौहान से सहायता मागनी चाहिए।' ऐसा कहकर सोमेश्वर के पुत्र के साथ जल्दी से जल्दी इच्छनकुमारी का विवाह हो जाने के विषय में एक पत्र अपने हाथ से इस प्रकार लिखा, 'सलख की बहन और जैत की पुत्री को भोला भीम मांगता है और कहता है कि, या तो इच्छनकुमारी का विवाह

उसके साथ करदें अन्यथा यह आबू को उजाड़ कर देगा। क्या सिंह का भाग गीदड़ के हाथ पड़ जायगा ? यह मेरे राज्य में लूट करता है, इसलिये नित्य उसकी शिकायतें आते हैं, मेरी प्रजा दिनों दिन गरीब होती जा रही है।" चौहान ने परमार का स्वागत किया। पृथ्वीराज ने दिल्ली कहला भेजा "मैं भीम का सामना करने के लिए सलख के साथ जाता हूं।" सोमेश्वर का पुत्र घर से निकला वह सलख परमार के साथ उसके घर जाने को तैयार हुआ।

जब भोलाभीम ने ये बातें सुनी तो मानों उसके मुंह पर थप्पड़ पड़ा। उसने अपने मन्त्रियों को बुलाकर तैयार होने की आज्ञा दी और रणदुन्दुभि बजा दी। "ऐसा कौन है जो चालुक्य के शत्रु को शरण देकर सोते हुए सिंह को जगाता है, पृथ्वी को धारण करने वाले मणि धर सर्प के मस्तक पर से मणि लेने का प्रयास करता है जानबूझ कर यम के मुंह में अपना हाथ देता है ? ऐसा कहते हुए शौर्य से उसका शरीर प्रकम्पित होने लगा उसने कच्छ और सोरठ में आज्ञा पत्र भेजे। धूल के बादल आकाश में छा गए, चारों ओर से बड़ी बड़ी सेनाएं आकर एकत्रित होने लगीं। गिरनार का राजा सोहाया कटारी वीरदेव बाघेला राम परमार पीरम का राजा राणिङ्ग मकवा, सोढा *राणा देव और गंगाधामी आदि सभी* शूरवीर उपस्थित हुए। अमरसिंह शेवड़ा और जैन मन्त्रीश्वर बाहिग तो वहां थे ही। जब भोलाभीम ने आबू पहुँचकर गढ़ को चारों ओर से घेर लिया। कितने ही दिनों तक चालुक्य और परमार की सेनाओं में युद्ध होता रहा। अन्त में सलख और उसका पिता जैत पीछे हट गये परन्तु ज्यों ज्यों वे पीछे हटते गए भूमि को रक्त से लाल करते गए। भीम आगे बढ़ा और अचलेश्वर पर उसका अधिकार हो गया। परमार मरुदेश की ओर भाग गये। गढ़

चालुक्यों के हाथ में आगया और भीम जयध्वजा फहराता हुआ आबू के शिखर पर चढ़ गया।

इसी समय इन राजपूतों का एक और सामान्य शत्रु इनके शिर पर मेघ के समान गर्जन कर रहा था। वह इनके आपसी झगड़ों की ताक ही लगाए बैठा था। यह शाहबुद्दीन गोरी था। वह कहता था कि, यह पृथ्वी न हिन्दुओं की है न म्लेच्छों की है, जिसकी तलवार में जोर है वही इसका स्वामी है।" उस समय भीमदेव के पास कुछ बुद्धिमान् सलाहकार थे और यदि वह उनकी सीख मान लेता तो भारतवर्ष की ऐसी दुर्दशा कदापि न होती। परन्तु भोले अथवा पागल भीम ने अपना नाम सार्थक करते हुए उनमें से एक की भी न सुनी। पीरम के गोहिल सामन्त ने कहा, "लड़ाई बन्द कर देनी चाहिए, परमार का कोई बड़ा अपराध नहीं है, यदि वह सिंह की सी कमरवाली इच्छनी को भेट करदे तो बस यही पर्य्याप्त है। हमे इसी के लिए प्रयत्न सोचने चाहिए।" राणिङ्गझाला ने कहा "युद्ध के समय हमें युद्ध की ही बात सोचनी चाहिए, व्यर्थ बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, हां, इस बात का विचार करना चाहिए कि शाह से दुश्मनी न बध जावे।" वीरदेव बाघेला ने कहा, "हमे चौहान से पारस्परिक समझौता कर लेना चाहिए और मिलकर शाह का सामना करना चाहिए। उसको हराने से हमारे राज्य का विस्तार और कीर्ति का प्रसार होगा।" अमरसिंह ने धीरे से कान में कहा, "तुम लोग जो कुछ कहते हो वह सब सही है, परन्तु राजा को इनमें से एक भी बात अच्छी न लगेगी।" उधर राजा स्वय अपने झगड़े को चालू रखने का निश्चय किए बैठा था। वह कहता था "यदि राजपूत ने एक बार अपमान सहन कर लिया तो कोई भी उसका

अपमान करने की हिम्मत कर बैठेगा, हजारों गोपों का पाप उसके सिर पर मँढ़ आवेगा वह नरक में पड़ेगा, और कोई भी उसका उद्धार न कर सकेगा? राजपूत तो अपनी तलवार ही के बल पर संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है यही उसके भाग्य का विधान है। हिन्दुओं में परमार और चौहान दो ही बड़े लड़ाकू समझे जाते हैं जब मैं चौहानों को निर्मूल कर दूंगा तभी गोरी से मुकाबला करूंगा।" इस प्रकार भीम ने इस सम्बन्ध में दृढ़ संकल्प व्यक्त किया और रण भरी सभा की।

इधर चौहान पर दोनों ओर से आक्रमण हुआ और साम्भर के राजा की दशा गोरी और गुर्जर के बीच में ढोल के समान हो गई वह दोनों ओर से पिटने लगा। अपने हिन्दू शत्रुओं के विरुद्ध तो वह भवानी से इस प्रकार प्रार्थना करने लगा— हे दुर्गे! जैन धर्म ने चारों ओर अधिकार कर लिया है अब तू इन निरामिषभोजियों को वश में करले अब राजाओं का कोई मान नहीं रहा है सामन्तों की सत्ता नष्ट हो चुकी है जहां वेद ध्वनि गूंजती थी और पर्वपाठ से वायुमंडल गुंजरित होता था वहां अब जैनों की अपवित्र बातों का प्रचार होता है। हे चामुण्डे! अपनी शक्तिशालिनी तलवार को ग्रहण कर और रक्षा कर हे स्वामी! महामसानवासिनी यमदूतों का रूप धारण करके इन जैनों का नाश करके तू पापों पर विजय प्राप्त करने वाली है, देवताओं की रक्षा करने वाली है और दानवों का दमन करनेवाली है इसलिए इनका नाश करदे। हरि जय हो! जय हो!" रात्रि के समय स्वयं चंद परदल ने गुर्जरों की सेना पर आक्रमण किया। यद्यपि उस समय शत्रुओं की सेना भादों के दुर्ग की दीवारों के समान दृढ़ थी चारों ओर हाथी मद में और जाटजा का बखान करने वाले

तथा कच्छ और पाञ्चाल को लूटने वाले वीर झालों का कड़ा पहरा भी लगा हुआ था, परन्तु दुर्गा के प्रताप से चन्द की पूर्ण विजय हुई। उस समय रात्रि के अन्धकार मे ऐसी गडबडी मची कि भीम के योद्धा आपस मे ही एक दूसरे को मारने लगे और यद्यपि स्वय राजा ने भी उस युद्ध मे भाग लिया तथा उसके हाथी के मर जाने व तलवार के टूट जाने पर भी एक मात्र कटार से बराबर लड़ता रहा परन्तु अन्त मे उसका बड़ा भारी नुकसान हुआ और उसको पीछे हटना ही पड़ा।

इसके बाद भीम की गतिविधि पर दृष्टि रखने के लिए थोडी सी फौज को छोडकर और सेना का बडा भाग अपने साथ लेकर चौहान सुल्तान से मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ा और उसको भी युद्ध में परास्त किया।

भीमदेव के काका का नाम सारङ्गदेव था। जब वह मरा तो उसके सात लड़के थे, जिनके नाम, प्रतापसिंह, अमरसिंह, गोकुलदास, गोविन्द हरिसिंह श्याम और भगवान थे। ये सब के सब वीर योद्धा थे और इन्होंने महाबली राणिङ्ग झाला का बध किया था। किसी अज्ञात कारण वश भीमदेव इनसे अप्रसन्न हो गया था इसलिए ये लोग सोरठ की पहाड़ियों में रहते थे और यादवों के देश में लूटपाट करके अपना निर्वाह करते थे। धीरे धीरे ये लोग इतने बली हो गए कि भीमदेव को इन पर चढाई करनी पडी। राजा का डेरा एक नदी के किनारे पर लगा हुआ था और उसका हाथी नदी मे स्नान कर रहा था, इतने ही मे प्रताप और अमरसिंह ने आकर उस हाथी और उसके महावत को मार डाला। इस अपमान से भीमदेव के तन बदन मे आग लग गई। पहले तो उसने इनको पकड़ लेने का ही विचार किया था परन्तु, अब तो उसने

उनको पकड़ कर मार डालने में भी कोई दोष न समझा। जब भाइयों को उसके इस मनसूबे की खबर मिली तो उन्हें गुजरात छोड़कर भागने के अतिरिक्त और कुछ न सूझा और वे युवक पृथ्वीराज की शरण में चले गए। पृथ्वीराज ने उनका बहुत आदर सत्कार किया और उनको गावों के पट्टे तथा शिरोपाव आदि दिए।

एक बार सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज दरबार में अपने सिंहासन पर विराजमान था और सामन्तों के मध्य तारागण के बीच में नवीन चन्द्रमा के समान शोभित हो रहा था। उसी समय प्रतापसिंह सोलंकी और उसके भाई भी राजा को नमस्कार करने के लिए दरबार में उपस्थित हुए। राजसभा में उस समय महाभारत का प्रसंग चल रहा था और चौहानों के पराक्रम का गुणगान हो रहा था। कहते हैं कि उसी समय प्रतापसिंह ने अपनी मूंछ पर हाथ रखा और पृथ्वीराज के काका कन्ह चौहान ने इसको प्रत्यक्ष अपमान समझकर बहुत क्रोध किया तथा तलवार खींचकर प्रतापसिंह के शरीर के दो टुकड़े कर डाले। सोलंकी के मरते ही उसके भाई अमरसिंह और उसके साथियों में भी उत्तेजना फैल गई और बदला लेने के लिए वे सभा-भवन में घुस गए। पृथ्वीराज उठ कर महल में चला गया और युद्ध की दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी। जिस प्रकार दीपक पर पतंगे टूट टूट कर पड़ते हैं उसी प्रकार सोलंकी वीर कन्ह पर आक्रमण करने लगे। एक प्रहर तक तलवार और जमदंत (१) (कटारी) की मारामार चलती रही लाशों पर लाशें पड़ने लगी। अन्त में एक एक करके प्रतापसिंह के सभी भाई सूर्यमंडल को बेध कर स्वर्ग चले गए। इस प्रकार विधाता के समान कुपित,

---

(१) इसको जमदन्त या बंकिया कहते हैं।

सोमेश्वर के भाई, कन्ह ने भीम के सातों भाइयों को यमलोक पहुंचा कर अपना क्रोध शान्त किया।

पृथ्वीराज ने जब यह समाचार सुना तो उसने कन्ह को बहुत कुछ कहा सुना, "तुमने यह क्या किया ? सब लोग कहेंगे कि चौहानों ने चालुक्यों को घर बुलाकर मार डाला।" तीन दिन तक अजमेर नगर में हडताल रही और चारों ओर 'शोक ! शोक !' का शब्द छा गया। शहर की गलियों में खून की नदिया बह चलीं। चन्द वरदाई ने कीर्ति-गान किया, "धन्य ! धन्य !! चालुक्य ! तुम्हारे माता पिता धन्य हैं, तुमने स्वप्न मे भी युद्ध से भागने का विचार नहीं किया।"

जिस प्रकार पवन के द्वारा गन्ध चारो ओर फैल जाती है उसी प्रकार यह समाचार भी शीघ्र ही देश देशान्तर में जा पहुँचा। जब भीम-देव चालुक्य ने सुना कि सारङ्गदेव के पुत्र मारे गए हैं तो वह क्रोध और शोक से उबल पडा। उसने चौहान को बदले के लिए चुनौती भेजी और उसने भी इस आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके बाद भीम ने अपने सामन्तों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी, परन्तु उसके प्रधान वीरदेव ने वर्षाऋतु के बाद हमला करने की सलाह दी। भीमदेव ने इस बात को मान लिया और शरद् ऋतु में चढाई करने का विचार किया। बात की बात मे समय निकल गया और राजा का क्रोध स्वत. कम पड गया।

चद बारहट यहीं से गुजरात के विषय में लिखना बन्द कर देता है और यह वर्णन करने लगता है कि किस प्रकार अनङ्गपाल तपस्या करने के लिए वदरिकाश्रम चला जाता है और पृथ्वीराज गद्दी पर आसीन होता है। यह युवक राजा गोरी के शाह को अनेक बार परास्त

करता है, फिर कन्नौज के शक्तिशाली शासक जयचन्द को हराकर वह उसकी वाग्दत्ता देवगिरि की राजकुमारी शशिव्रता को हर लाता है। इसके अतिरिक्त उसने इस राजपूत रोलैण्डो (१) के अन्यान्य पराक्रम पूर्ण कार्यों का भी विस्तृत वर्णन किया है। इस विवरण के अनन्तर कवि पुनः भीमदेव को ग्रहण करके उसके और चौहानों के अनेक झगड़ों के कारणों का वर्णन करता है। पाठकों को इस राजपूत-काव्य की शैली से परिचित कराने के लिए इस स्थल से हम प्रायः चन्द कवि का ही अनुसरण करते हुए लिखेंगे।

महामहिमशाली दुर्दमनीय और भीम-पराक्रम गुजरात नरेश चालुक्य भीमदेव के हृदय में सांभर का सोमेश्वर सदैव चुभता रहता था और दिल्लीपति पृथ्वीराज अंगारे के समान जलन पैदा करता था। उसने अपने मंत्रियों को बुलाया और चतुरंगिणी सेना तैयार की। वह कहने लगा 'अब मैं शत्रुओं को कुचल डालूंगा और समस्त पृथ्वी पर एक छत्र राज्य करूँगा।' फिर उस चालुक्य ने वीर मकवाणा रायकरण को बुलाया और मानों वह आग ही से तपाया गया हो इस प्रकार

---

(१) रोलैण्डो अथवा रोलाण्ड (Roland) आठवीं शताब्दी में होने वाले फ्रांस के प्रख्यात राजा शार्लमन (Charlemagne) का प्रसिद्ध सामन्त एवं भतीजा था। वह बहुत नेक वीर एवं स्वामिभक्त था। उसके पराक्रमपूर्ण कार्यों का वर्णन योरप की प्रसिद्ध वीररसपूर्ण पुस्तक 'दी सांग्स् आफ रोलाण्ड' में किया गया है। इस पुस्तक की रचना १०६६ ई० से १०९४ ई० के बीच में हुई थी। स्पेन विजय के लिए जब शार्लमन ने चढ़ाई की थी तब रोलाण्ड उसके साथ था। वापस लौटते समय उन लोगों पर सरैसनों (मुसलमानों) ने अचानक आक्रमण कर दिया उसी हमले में रोलैण्डो मारा गया था। यह सन् ७७८ ई० की बात है। [ दी न्यू स्टैण्डर्ड एन्साइक्लोपीडिया पृ० १०६६ ]

आवेश की गर्मी मे आकर अपना हृदय उसके आगे खोलकर रख दिया। उसने सभी अच्छे अच्छे योद्धाओ को निमन्त्रित किया और उनसे कहा, "अब हम लोगों को जल्दी चढाई करनी चाहिए और जिस प्रकार जवान हाथी पृथ्वी पर से धूल को उलीच देता है उसी प्रकार चौहान के राज्य को नष्ट कर देना चाहिए, जिस प्रकार भील लोग चूहों के बिलो को नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार हम लोगों को साभर देश को नष्ट कर देना चाहिए।" कनककुमार, राणिकराज, चौरासिम [चूडासमा] जयसिंह, वीर धवलागदेव, और सारगमकवाणा आदि सभी योद्धागण निमन्त्रित किए गए थे। पिछले झगडे की याद करते हुए उसने कहा, "भीम और काठी युद्ध मे बहुत वीरता दिखाते है, चलो हम वीरों की तरह बदला लेगे, रणघोप मेरे हृदय को आनन्द से भर रहा है। जहा पर मधुमक्खियों के छत्ते लगे हुए हैं ऐसी गुफा में गर्मी, जाडा और बरसात सहते हुए तपस्या करके तपस्वी लोग कितने ही वर्षों मे जिस मुक्ति को प्राप्त करते हैं उसको हम लोग क्षण भर मे प्राप्त कर लेंगे।' भीम ने फिर अपने साथियों को इस प्रकार उत्तेजित किया "जिस प्रकार राहु चन्द्रमा से लडा था उसी प्रकार हम चौहानों से युद्ध करेंगे। हमे जीवन का मोह छोडकर युद्ध करना है, तभी तो पृथ्वी हमारे हाथ मे आवेगी, निर्भय होकर सती के द्वारा फेंके हुए अक्षतों के समान जो अपने जीवन को (अभोग्य) समझता है वही पृथ्वी का स्वामी होता है।

जिस प्रकार छोटे छोटे सोते आ आ कर नदी में मिलते हैं उसी प्रकार भिन्न भिन्न राजों की सेनाएँ इकट्ठी होने लगीं। इन योद्धाओं के साथ बहुत से हाथी और हवा से बातें करने वाले घोड़े थे। हाथियों की

चिंघाड़ ऐसी मालूम होती थी मानों समुद्र गरज रहा हो अथवा बादल गड़गड़ा रहा हो। सूर्यास्त के समय जिस प्रकार समुद्र प्रसन्न दिखाई देता है उसी प्रकार योद्धागण भी हर्षातिरेक से युक्त थे उन्हें अपने घरों और जागीरों की चिन्ता न थी वे तो ब्रह्म के ध्यान में निमग्न थे। जिस प्रकार सती अपने पति के साथ प्राण देने को उत्सुक रहती है उसी प्रकार ये लोग भी युद्ध में अपने स्वामी का साथ देने के लिए तत्पर हो रहे थे। जिस प्रकार क्षितिज से उठ उठ कर बादल इकट्ठे होते हैं उसी प्रकार यह विशाल सेना भी निरन्तर बढ़ती जा रही थी। भीम के सिर पर छत्र था, यह युद्धनद का जल पीने के लिये तृषार्त था। हाथों में धनुषबाण लिए हुए, काजल के समान काली भयंकर आकृतिवाले भील लोग उसकी सेना के आगे चल रहे थ। उनके पीछे पीछे हाथियों की कतार चल रही थी जिनकी चिंघाड़ से पर्वत और जंगल गूंज उठे थे। उनके गले की छोटी घंटियां और कमर पर लटकते हुए बड़े बड़े घण्टे निरन्तर बजते जा रहे थे और दूर से देखने पर तो व ऐसे दिखाई पड़ते थे मानों पहाड़ के पहाड़ ही उछलते चले आ रहे हों। वे मार्ग में पेड़ों को तोड़ते व उखाड़ते जाते थे उनकी दन्तपंक्ति सारसों की पंक्ति के समान चमकती थी और इनके चलने से पृथ्वी कम्पायमान हो रही थी। हाथियों क पीछे पीछे भालों व तलवारों से सुसज्जित पैदल सिपाहियों की पंक्तियां चल रही थी। योद्धाओं के इस विशाल समूह को देखकर यह संदेह होता था कि मानों अपनी मर्यादा को छोड़कर समुद्र ही बढ़ा चला आ रहा हो। इस सेना के दबदबे से स्वर्ग मृत्यु और पाताल तीनों लोक कांपने लग थ।

ज्योंही सोमेश्वर की सीमा में सेना पहुँची कि उस देश के निवासी घर बार छोड़कर भाग गय और सेना न लूट मचा दी। अपनी प्रजा की

पुकार सुनकर सोम घोड़े पर चढ़कर उसी प्रकार शीघ्र तैयार हो गया जिस प्रकार सती अपने पति के साथ जाने को तैयार हो जाती है। मूर्तिमान् क्रोध के समान पृथ्वीराज को तो उसने दिल्ली मे ही रहने दिया और दूसरे सामन्तों को अपने साथ लिया जिनमे खींचीराव प्रसग जाम यादव, देवराज, शत्रुओं का सहार करने वाला भानु भाटी, उत्तीग-वाहु, वलीभद्र और कैमास मुख्य थे। इसके बाद, स्नान, ध्यान, पुण्य दान करके अपने इष्टदेव की माला फेर कर, प्रातःकालीन प्रकाश को देखकर खिले हुए कमल के समान प्रसन्न-मुख, सोम ने असख्य सेना साथ लेकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। कन्हदेव चौहान और युद्ध मे पर्वत के सनान अचल रहने वाला जयसिहदेव उसके साथ थे। पृथ्वी डोलने लगी, भार के मारे शेपनाग का मस्तक झुकने लगा। चालुक्य-राज भी आ पहुचा, साम्भरपति उसका सामना करने को तैयार हुआ और रणवाद्य वजने लगे। सोम की सेना को देखकर शत्रुओ का कलेजा आधा रह गया।

अब, दोनों सेनाओ मे युद्ध शुरू हुआ। सोम भी उत्साही था और भीम भी रणक्षेत्र मे पीठ दिखाना न जानता था। दोनों ओर के सिपाहियों की ढालें इधर उधर हिलती हुई ऐसी शोभित होती थीं मानों तम्बाकू के नये नये पत्ते पवन से प्रकम्पित हो रहे हों। कन्ह ने युद्ध आरम्भ किया, नौबतें वजनें लगी, तलवारें खडकने लगीं, भयकर मार काट जारी हुई और तीन घण्टे तक कन्ह पर तीरों और तलवारों की निरन्तर वर्षा होती रही। अन्त मे बिजली के समान चमकती हुई तलवार को फिराते हुए कन्ह ने ऐसी वीरता दिखाई कि भीम की सेना को पीछे हटना पडा। उसने बड़े बडे घमण्डियों को पकड़ कर जमीन पर पछाड दिया जैसे बड़े बड़े वृक्षों को पवन का वेग पृथ्वी पर लिटा

चिंघाड़ ऐसी मालूम होती थी मानों समुद्र गरज रहा हो अथवा बादल गड़गड़ा रहा हो। सूर्यास्त के समय जिस प्रकार समुद्र प्रसन्न दिखाई देता है उसी प्रकार योद्धागण भी हर्षातिरेक से युक्त थे उन्हें अपने घरों और जागीरों की चिन्ता न थी, वे तो प्रभु के ध्यान में निमग्न थे। जिस प्रकार सती अपने पति के साथ प्राण देने को उत्सुक रहती है उसी प्रकार ये लोग भी युद्ध में अपने स्वामी का साथ देन के लिए तत्पर हो रहे थे। जिस प्रकार क्षितिज से उठ उठ कर बादल इकट्ठे होते हैं उसी प्रकार यह विशाल सेना भी निरन्तर बढ़ती जा रही थी। भीम के सिर पर छत्र था वह युद्धनद का जल पीने के लिये तृषार्त था। हाथों में धनुषबाण लिए हुए, यमराज के समान काली भयंकर आकृतिवाले भील लोग उसकी सेना के आगे चल रहे थे। उनके पीछे पीछे हाथियों की कतार चल रही थी जिनकी चिंघाड़ से पर्वत और जंगल गूंज उठे थे। उनके गले की छोटी घंटियां और कमर पर लटकते हुए बड़े बड़े घण्टे निरन्तर बजते जा रहे थे और दूर से देखने पर तो वे ऐसे दिखाई पड़ते थे मानों पहाड़ के पहाड़ ही उलटते चले आ रहे हों। वे मार्ग में पेड़ों को तोड़ते व उखाड़ते जाते थे उनकी दन्तपंक्ति सारसों की पंक्ति के समान चमकती थी और उनके चलने से पृथ्वी कम्पायमान हो रही थी। हाथियों के पीछे पीछे ढालों व तलवारों से सुसज्जित पैदल सिपाहियों की पंक्तियां चल रहीं थी। योद्धाओं के इस विशाल समूह को देखकर यह संदेह होता था कि मानों अपनी मर्यादा को छोड़कर समुद्र ही बढ़ा चला आ रहा हो। इस सेना के दबदबे से स्वर्ग, मृत्यु और पाताल तीनों लोक कांपने लगे थे।

ज्योंही सोमेश्वर की सीमा में सेना पहुँची कि उस देश के निवासी बार छोड़कर भाग गये और सेना ने लूट मचा दी। अपनी प्रजा की

पुकार सुनकर सोम घोड़े पर चढ़कर उसी प्रकार शीघ्र तैयार हो गया जिस प्रकार सती अपने पति के साथ जाने को तैयार हो जाती है। मूर्तिमान् क्रोध के समान पृथ्वीराज को तो उसने दिल्ली मे ही रहने दिया और दूसरे सामन्तों को अपने साथ लिया जिनमे खींचीराव प्रसग जाम यादव, देवराज, शत्रुओं का सहार करने वाला भानु भाटी, उत्तीग-बाहु, बलीभद्र और कैमास मुख्य थे। इसके बाद, स्नान, ध्यान, पुण्य दान करके अपने इष्टदेव की माला फेर कर, प्रात कालीन प्रकाश को देखकर खिले हुए कमल के समान प्रसन्न-मुख, सोम ने असख्य सेना साथ लेकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। कन्हदेव चौहान और युद्ध मे पर्वत के सनान अचल रहने वाला जयसिहदेव उसके साथ थे। पृथ्वी डोलने लगी, भार के मारे शेपनाग का मस्तक झुकने लगा। चालुक्य-राज भी आ पहुचा, साम्भरपति उसका सामना करने को तैयार हुआ और रणवाद्य बजने लगे। सोम की सेना को देखकर शत्रुओ का कलेजा आधा रह गया।

अब, दोनों सेनाओ मे युद्ध शुरू हुआ। सोम भी उत्साही था और भीम भी रणक्षेत्र मे पीठ दिखाना न जानता था। दोनों ओर के सिपाहियों की ढालें इधर उधर हिलती हुई ऐसी शोभित होती थीं मानों तम्बाकू के नये नये पत्ते पवन से प्रकम्पित हो रहे हों। कन्ह ने युद्ध आरम्भ किया, नौबतें बजनें लगी, तलवारें खडकने लगीं, भयंकर मार काट जारी हुई और तीन घण्टे तक कन्ह पर तीरों और तलवारों की निरन्तर वर्षा होती रही। अन्त मे बिजली के समान चमकती हुई तलवार को फिराते हुए कन्ह ने ऐसी वीरता दिखाई कि भीम की सेना को पीछे हटना पड़ा। उसने बड़े बड़े घमण्डियों को पकड़ कर जमीन पर पछाड़ दिया जैसे बडे बड़े वृक्षों को पवन का वेग पृथ्वी पर लिटा

देता है। बहुत से अश्वों की पीठ सूनी हो गई और यमदूतों की भूख को मिटाते हुए उसने भीम की सेना को आधी रक्खी। हाथों में खप्पर लेकर शाकिनियां वहां आ पहुंचीं और आनन्द मनाने लगीं मांसाहारी भूत भी भर पेट भोजन मिलने के कारण तृप्त हो गए।

सोमेश्वर चौहान और भीम में भयंकर युद्ध हुआ। पृथ्वी भय से कांपने लगी और ऐसा मालूम होने लगा मानों दो पहाड़ ही आपस में भिड़ पड़े हों। लाश पर लाश पड़ने लगी खून की नदियां बह चलीं और पृथ्वी रक्त से भीग कर इस प्रकार सिक्त हो गई मानों वर्षा हुई हो। युद्ध के मद में मतवाले योद्धा खून से लथपथ होकर भी शस्त्र लिए लड़ते रहे, प्राणों के साथ प्राण मिलगए और एक भी अप्सरा अविवाहिता न रही। अपने मित्रों की दाहिनी बाहु यादव जाम इस तरह गरज रहा था मानों पृथ्वी का नाश ही कर डालेगा। उधर से मानों पृथ्वी पर आग लगाता हुआ अंगार उसका सामना करने के लिए आ खड़ा हुआ। प्रतिष्ठा की घाटी में दोनों कूद पड़े और मतवाले सांडों की तरह जूझने लगे। जिन हाथियों पर वे प्रहार करते थे वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों काले पहाड़ों पर से रक्त के झरने झर रहे हैं। देवता दानव और नाग उन्हें देखकर आनन्दित हुए, आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी।

बायीं ओर सफेद हाथी पर बैठकर बलीभद्र युद्ध कर रहा था उसके घोड़े भी सफेद रंग के ही थे चवरों और घंटियों का झुनझुनाव हो रहा था।

अब स्वयं सोमेश्वर आगे आया और गुजरात के स्वामी की ओर

इस प्रकार देखने लगा मानों मुचकुन्द (१) ही नींद से उठकर देख रहा हो। दोनों राजाओं के बीच इस तरह बाण चल रहे थे मानों बृहस्पति और शुक्र के बीच मे मन्त्र-प्रसार हो रहा हो। दोनों ही देश रक्षक राजा थे, छत्रपति थे, दोनों कवच पहने हुए थे, दोनों के आगे नौबते बज रहीं थी, दोनों ही बडे बडे उपाधि धारी थे, दोनों ही हिन्दू-धर्म की मर्य्यादारूप थे और दोनों ही सच्चे राजपुत्र थे। उस समय रणक्षेत्र

---

(१) जब श्रीकृष्ण ने कंस को मार डाला तो उसके श्वसुर जरासंध ने उनको मथुरा से भगा देने के लिए कितने ही विफल प्रयत्न किये। अन्त में वह अपने साथ कालयवन को लाया जिसने भगवान् कृष्ण को भगा दिया और वे भाग कर सोरठ के गिरनार पर्वत में जा छिपे। कालयवन ने उनका पीछा किया। जब श्रीकृष्ण गिरनार की गुफा में आए तो उन्होंने वहां मुचकुन्द को सोते हुए पाया और बिना कुछ छेडछाड़ किए ही अपना पीताम्बर उसको उढा दिया। मुचकुन्द ने बड़े भारी प्रयत्न से ऋषियों को प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि जो कोई उसको नींद से जगायेगा वही उसकी दृष्टि पडते ही भस्म हो जायगा। श्रीकृष्ण का पीछा करते करते जब कालयवन वहां पहुचा तो उसने समझा कि पीताम्बर ओढे हुए श्रीकृष्ण सो रहे हैं इसलिए उसने तुरन्त एक लात मारी और पीताम्बर खींच लिया। मुचकुन्द की नींद उड़ गई और उसके देखते ही कालयवन जल कर भस्म हो गया। इसके बाद श्रीकृष्ण ने मुचकुन्द को वरदान दिया कि, अगले जन्म में तू मेरा प्रसिद्ध भक्त होगा और मोक्ष प्राप्त करेगा।' यह कथा प्रेमसागर के ५२ वें अध्याय में लिखी है। गुजरात के लोग मानते हैं कि जूनागढ का प्रसिद्ध कवि नरसी महता मुचकुन्द का ही अवतार था। नरसी बड़नगर का नागर ब्राह्मण था। वह अपने कुल में पहला पुरुष था जिसने महादेव की भक्ति छोड़कर श्रीकृष्ण की भक्ति की थी इसीलिए उसको बहुत से दुःख भी भोगने पडे। यह लगभग ५०० वर्ष पहले हुआ था और इसकी कविता गुजराती भाषा में बहुत लोकप्रिय है। राजस्थान में भी 'नरसी भक्त का माहेरा' भक्त लोग प्रायः सर्वत्र गाते हैं

ऐसा दिखाई पड़ रहा था मानों वर्षाऋतु की घनघोर काली व भयानक और तूफानी रात्रि में पर्वतों पर दावानल जल रहा हो। रणवाद्य सुनकर महादेव की समाधि टूट गई वे उठकर तालियां बजाकर नाचने कूदने लगे और अपनी मुण्डमाला को हिलाने लगे नारद भी आनन्दित हो गए, अप्सराएं अपने अपने विमानों में बैठकर आकाश में आ पहुँची और एक दूसरी से होड़ करने लगी यक्ष और गन्धर्व भी चकित होकर इस दृश्य को देखने लगे और सोचने लगे कि अब महाप्रलय का समय निकट ही आ पहुँचा है। इस रणयात्रा में प्राणत्याग करने वाले योद्धा सीधे बैकुण्ठ को चले गए। मरुधा शूरवीर सोमेश्वर योद्धा इस युद्ध में खण्ड खण्ड होकर गिर पड़ा। जब उसके सामन्तों ने देखा कि सचमुच ही उनका सरदार लहू लुहान होकर धराशायी हो गया है तो उनमें से बहुतों ने लड़ते लड़ते उसी के साथ इस संसार से मुक्ति प्राप्त की। उस समय वह रणक्षेत्र महाभारत के रणक्षेत्र के समान हो रहा था। सोमेश सोम (चन्द्र) लोक को चला गया और बासुक्य ने अपना हाथ रोक लिया। पृथ्वी जय जयकार के शब्द से गूंज उठी और देवता 'शोक! शोक!!' चिल्ला उठे क्योंकि उन्हें भय हुआ कि सोमेश्वर स्वर्ग में आकर उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेगा।

जब पृथ्वीराज ने लड़ाई के समाचार सुने तो उसने बची हुई सेना को वापस बुला लिया और अपने पिता के निमित्त योग्य पिण्ड दान किया। बारह दिन तक उसने पृथ्वी पर शयन किया एक बार भोजन किया और स्त्रियों के संसर्ग से दूर रहा। उसने ब्राह्मणों को असामान्य दान दक्षिणा दी। सोने से सींग और खुरी मंढी हुई तथा दूसरे आभूषणों से सुसज्जित आठ हजार श्रेष्ठ गौएं उसने ब्राह्मणों

को दान मे दे दीं। इस प्रकार षोडश-दान की दूसरी वस्तुएँ भी विप्रों को भेट कीं।

इसके बाद उसने अपने पिता का बदला लेने का निश्चय किया और जब तक बदला न ले ले तब तक पगड़ी न बाधने की प्रतिज्ञा की। उसने बार बार कहा, "भीम चालुक्य को मार कर मैं उसकी अ तडियों में से अपने पिता को निकालू गा। धिक्कार है उस पुत्र को जो अपने पिता का बदला न ले।" यह कहते हुए राजा की आंखे क्रोध से लाल लाल हो गई और वह आपे से बाहर हो गया। उसने एक सेना तैयार की और पहले सिंहासन पर बैठ कर फिर युद्ध में जाने का निश्चय किया। अभिषेक का कार्य सपादन करने के लिए पृथ्वीराज ने, राजाओं की रीति भाति को जानने वाले, धार्मिक, यज्ञ और बलि के काम में निपुण, ब्रह्म के समान पापों का नाश करने मे कुशल, भूत, वर्तमान, और भविष्य को जानने वाले ब्राह्मणों को बुलवाया। अब, सोमेश के निमित्त प्रायश्चित्त करने के लिए बलि आदि की क्रियाए ठाटबाट के साथ सम्पादित होने लगीं। शत्रु के देश में जाकर युद्ध मे विजयप्राप्ति की कामना से राजा ने विपुल दान दिया, उसने ब्राह्मणों को एक एक हजार मोहरें और एक एक हजार रुपये आदर सहित भेंट किये। निगमबोध नामक स्थान पर, जहा युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ था, पृथ्वीराज का शास्त्रोक्त विधि के अनुसार राजतिलक हुआ। चन्द्रमा के समान (कान्तिमान्) मुखमण्डल वाली मृगनयनी स्त्रियों ने मङ्गलगान किया। उनके कण्ठों मे बहुमूल्य हार सुशोभित थे और उनका स्वर कोयल के स्वर के समान मधुर था। 'जय! जय!! पृथ्वीराज! जय!' का शब्द चारों ओर गूँज रहा था। इच्छनी देवी और पृथ्वीराज का गठबन्धन हुआ और वे उस समय शची और पुरन्दर के समान विराजमान हुए।

नगर की भी उस समय ऐसी शोभा हो रही थी मानों इन्द्र ने ही इन्द्रासन ग्रहण किया हो। सामन्तों को धन, हाथी, घोड़े और रथ प्रदान किए गये। फिर दरबारियों ने राजा को भेंट की। कन्ह चौहान ने सबसे पहले राजतिलक किया और एक हाथी भेंट किया। उसके बाद निड्डर राठौड़ ने राजतिलक किया और फिर अन्य दरबारियों ने। सफेद घोड़े के बालों के चंवर राजा पर डुलाए जा रहे थे जो ऐसे मालूम होते थे मानों चन्द्रमा के पीछे सूर्य रश्मियां खेल रही हों सोने के दण्ड पर श्वेत छत्र उसके शिर पर शोभित था। सुल्तान को कितनी ही बार पकड़ कर छोड़ देने वाले महा शूरवीर पृथ्वीराज की उस समय अनुपम शोभा थी। इसके बाद यज्ञयागादिक से नवग्रह की शान्ति हुई समस्त प्रजा ने राजा को नमस्कार किया और परम महोत्सव मनाया।

पृथ्वीराज के हृदय में भीम निरन्तर सालता रहता था शत्रु के प्राण लिए बिना उसकी प्रबल कोपाग्नि शान्त नहीं हो सकती थी। वह अपने सामन्तों के सामने बार बार इन शब्दों को दुहराता था 'भीम ने सोमेश्वर वध किया हरि! हरि!'" परमार ने उसको बहुत समझाया और कहा "तुम अपने पिता के लिए दुखी मत हो जिसका शरीर युद्ध में तलवार की धार से कट जाता है उसकी कीर्ति सुरलोक तक फैल जाती है, यही क्षत्रिय का परम धर्म है।" सिन्ध परमार ने कहा 'मेरी बात सुनो गुजरात को उजाड़ करदो इससे स्वर्गवासी सामेश की आत्मा को शान्ति मिलगी। सुलतान भी तुम्हारे नाम से कांपता है फिर चालुक्य तो चीज ही क्या है?" पृथ्वीराज न कहा मैंने स्नान करके पिता का पिण्डदान देते समय प्रतिज्ञा की ": कि मैं पिता का बदला लूंगा, भीम को कैद करके मैं उससे सोमरा

को मागूँगा, योगिनी, वीर और वैताल आदि को तृप्त करूँगा।" यह कहकर पृथ्वीराज शयन कक्ष में चला गया। प्रातःकाल होते ही योद्धागण पुनः एकत्रित हुए। राजा ने कन्ह चौहान को बुलाया। जब वह आया तो समस्त दरबारी हाथ जोडकर खड़े हो गये क्योंकि कन्ह को 'नरव्याघ्र' का पद प्राप्त था। वज्र के समान दृढ शरीर वाला, रातदिन आँखों पर पट्टी बाधे हुए वह साकलो से जकडे हुए शेर के समान दिखाई देता था। जाम यादव, बलीभद्र, राजाधिराज कूर्मदेव, चन्द पुण्डीर आतिथेय चौहान जो पाण्डव भीम के सदृश था, युद्धक्षेत्र मे अग्नि के समान तेजस्वी लगरीराय और विजयी गहलोत तथा अन्य सभी छोटे मोटे सामन्तों ने सभा मे यथास्थान आसन ग्रहण किए। दयामयी दुर्गादेवी जिस पर प्रसन्न थी, ऐसा चन्द वरदायी भी उपस्थित हुआ। सभी को सम्बोधित करके पृथ्वीराज ने कहा, "मेरे पिता का बदला लेने के लिए आप लोग चलिए, सेना तैयार कीजिए और गुर्जर से युद्ध करने के लिए कटिबद्ध हो जाइये। हमे चालुक्य वश को जड़ मूल से उखाड फेंकना है। सोमेश्वर को पराजित करके भीम ने अपना घट लबालब भर लिया है, अब हमें चालुक्य-वश को कच्चे बच्चे सहित नष्ट कर देना है। वह यदि घोर से घोर वन मे भी जाकर छुपेगा तो हम उसे खोज लेंगे। यदि मैं ऐसा करने मे समर्थ न हुआ तो यह समझूंगा कि ब्राह्मणों ने मेरा नाम पृथ्वीराज निरर्थक रखा है।"

पृथ्वीराज के कथन से सभी सामन्त सहमत हुए और 'मुहूर्त देखकर चलने से ही हमारी जय होगी' यह कहकर उन्होंने ज्योतिषराय को बुलाया। ज्यौतिषी ने आकर शकुन का विचार किया। जगज्ज्योति ज्योतिषी ने राजा को उत्साहित करते हुए कहा, "यही घड़ी बहुत शुभ है, तुरन्त रवाना होने से महाराज की जय होगी और वैर का बदला

पूरी तरह किया जा सकेगा, इस समय ऐसा ही लग्न पड़ा है कि महाराज के हृदय में जो भी भाव हो वही पूरी होगी। शत्रु के मद मन्द पड़े हुए हैं। यदि वह देवता भी हो तो उसे इस समय परास्त होना ही पड़ेगा।" यह सुनकर चौहान राजा बहुत प्रसन्न हुआ। जगज्ज्योति ने फिर कहा, "महाराज आप भीम को परास्त करेंगे और उसे बांध लेंगे। यदि इस शकुन में मेरे कथनानुसार आपका कार्य सिद्ध न हो तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज के बाद मैं ज्योतिष-शास्त्र के अध्ययन का कार्य छोड़ दूँगा।'

पृथ्वीराज न अपनी सेना सज्जित की और निश्चित घड़ी आते ही नौबत बजवाई। सेना लेकर वह नगर से बाहर आया और एक उपयुक्त स्थान पर जहां विशाल वृक्ष खड़े हुए थ और जहां पृथ्वी दृढ थी खेमा गाड़ दिया गया। देवों और दानवों ने श्रम उपकार किया। प्रातःकाल होते ही चारों ओर सेनाएं आ आकर सांभर में चौहान के चारों ओर जमा होने लगीं। लड़ाई के गीत आरम्भ हुए और पांचों प्रकार के रणवाद्य बजने लग। गुजरात का नाश करने के लिए सेना लेकर पृथ्वीराज रवाना हुआ। भीम के गुप्त चरों ने आकर खबर दी कि युद्धशील पृथ्वीराज चौसठ हजार योद्धाओं के साथ गुजरात पर चढ़ाई करके आ रहा है, उसकी सेना समुद्र की उत्ताल तरंगों के समान उमड़ती हुई बढ़ रही है। महादेव के शिर पर जल छोड़कर रुद्र चौहान तथा गोविन्दराज द्वारा की हुई प्रतिज्ञा का हाल भी उन्होंने कह सुनाया और प्रार्थना की 'महाराज अब अपने को भी तलवार से उसका सामना करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।'

यह समाचार सुनकर भीम बहुत कुपित हुआ । उसके अंग प्रत्यग शौर्य से फड़क उठे और आंखें लाल हो गई । उसने तुरन्त ही राज मन्त्रियों को बुलाकर युद्ध के लिए तैयारिया करने की आज्ञा दी। बात की बात मे सभी परगनों मे आज्ञा पहुँच गई, बहुत से राजा चढ़ आए, धनुषबाण और शस्त्रास्त्र से सुसज्जित दो हजार सवार तैयार हो गए, कच्छ (१) से तीन हजार जिरहबख्तर से सजे हुए लड़ाई के घोड़े और सुदृढ सवार आ पहुँचे, सोरठ से पन्द्रह सौ सवार आए, काकारेज से अचूक निशानेबाज कोली भी आए। कभी युद्ध में पीठ न दिखाने वाले और सदा युद्ध की इच्छा करनेवाले झालावाड़ के झाला भी आ पहुचे, जिसकी चढाई का समाचार सुनते ही समस्त देश पलायमान हो जाता था ऐसा काबाधिपति मुकुन्द भी सदलबल चढ़ आया, जिससे शत्रुओं को न दिन में चैन मिलता था न रात को, ऐसा काठियावाड का काठी राजा भी आया। इनके अतिरिक्त गुजरात के छोटे मोटे सभी प्रान्तों मे से अगणित सेना इकट्ठी हुई।

साभर के गुप्तचर ने जाकर समाचार दिया, "समुद्र के समान गर्जन करती हुई चालुक्य की सेना तैयार हो गई है, उसमें एक लाख योद्धा और एक हजार हाथी हैं। यह सब मैं अपनी आखों से देखकर आया हूँ।" यह सुनकर पृथ्वीराज ने कहा, "यदि युद्ध में भीम मेरे सामने पड़ गया तो जिस प्रकार ग्रीष्मऋतु में पवन की सहायता से अग्नि विशाल जगल को भस्म कर देती है उसी प्रकार मैं इन सब को नष्ट कर दूँगा।"

साझ हो गई थी, इसलिए जो जहा पर था वहीं पर उसने अपना

---

(१) कच्छ के जाम रायधणजी ने यह लश्कर भेजा था।

डेरा जमा दिया किसी ने पास तो किसी ने कुछ दूर। कैमास तलवार बांधकर राजा के पास सोया। जिस प्रकार धार्मिक समाधि लगाने वाले को स्वप्न के मोहक दृश्य वश में कर लेते हैं उसी प्रकार वे सब लोग निद्रा के वश में हो गए। कन्ह भी राजा के पास ही था और आबू के सरदार जैत और सुलख पुण्डीर और दाहिम चामुण्ड राजा हमीर वीर कुम्भ, पहाड़ तंवर लोहाना और सामरी राजा भी वहीं उपस्थित थे। इन सबने एक घड़ी रात रहे शिकार के लिए निकलने का निश्चय किया सामन्त लोग उदास हुए और कहने लगे "यहां कोई भी जीवित प्राणी नहीं है, इसलिए इस श्रम में हमें सफलता नहीं मिलेगी।" इतने में एक जानवर की बोली सुनाई दी। कन्ह ने कहा 'देखो सुनो यह जानवर भविष्यवाणी कर रहा है कि कल सुबह यहां पर घोर संग्राम होगा। सभी सामन्तों ने आश्चर्य किया कि कल सुबह यहां पर लड़ाई कैसे हो सकती है ? कन्ह ने कहा, सोमेश्वर की मृत्यु के पहले जो शकुन हुआ था वही शकुन भीम को हुआ है यदि पृथ्वीराज इस अवसर से लाभ उठाए तो स्वयं यम भी उसके सामने नहीं ठहर सकता।

इस तरह बातें हो ही रही थीं कि सूर्योदय होगया। योद्धाओं ने नारायण को नमस्कार किया और जिस प्रकार सूर्य को देखकर कमल प्रफुल्लित हो जाते हैं उसी प्रकार उनके मन भी प्रसन्न हो गए। इसी समय दूसरा शुभ शकुन हुआ और लगे हाथों तीसरा। सामन्तों ने कहा 'निश्चय ही आज एक घण्टे के भीतर भीतर भयानक युद्ध होने वाला है। पृथ्वीराज ने कहा 'शकुन देखना व्यर्थ है सच्चे योद्धा के लिए तो युद्ध का दिन ही उत्सव का दिन है। मनुष्य जीवित हो अथवा मरा हुआ, उसकी आत्मा तो हमको दिखाई नहीं देती। कीर्ति मिलती भी है

और चली भी जाती है, यही विधाता का विधान है। जो हारेंगे उन्हें दुर्योधन का पद मिल जावेगा, और जो जीतेंगे वे अपने को पाण्डवों के समान समझ लेंगे, इसलिए शकुनों का विचार करना व्यर्थ ही है। हमें तो महाभारत के समान युद्ध करना है और सुई के अग्र-भाग जितनी भी भूमि नहीं छोड़नी है। शकुनों का कोई अन्त नहीं है, वे तो होते रहते हैं और मिटते रहते हैं—अब, आगे बढ़ना चाहिए।"

राजा की बात सुनकर सामन्त लोग सभी ओर से युद्ध की हुंकार करने लगे। नौबत, रणसिंगा, भेरी आदि रणवाद्य बजने लगे, हाथियों के घण्टों का घोष और साकलों की खणखणाहट होने लगी, घोडे हिन-हिनाने लगे और सम्पूर्ण सेना आगे बढने लगी। मुकाम पर मुकाम करते हुए वे पट्टण का नाश करने के लिए तथा जिस प्रकार आकाश से तारे पृथ्वी पर टूट पडते हैं उसी प्रकार शत्रु पर टूट पडने के लिए आगे बढते चले गये। उनकी सख्या चौसठ हजार थी, उनके भार से शेषनाग भी आकुल हो उठा था। पृथ्वीराज पर चवर डुल रहे थे, उसने राज-छत्र अपने चाचा कन्ह के ऊपर लगवा दिया और व्यूह का स्वामी बनाकर उसको सबसे आगे रवाना किया। उसके पीछे पीछे वह स्वय चला। उसके पीछे निड्डर (राठौड) और फिर परमार चलने लगा। जिस प्रकार कोई ज्योतिषी जन्म-पत्री (१) को आगे आगे ही खोलता जाता है और वापस नहीं समेटता उसी प्रकार अपने जीवन का मोह छोड़कर वे

---

(१) यहा पर गोल लिपटी हुई जन्मपत्री से तात्पर्य है आजकल तो पुस्तकाकार भी बनाई जाती हैं।

आगे ही आगे बढ़ते चले गए। देमपाट शूरवीर चौहान जिससे शत्रु कांपते थे आगे बढ़ता चला गया।

भीम के देश में भय छा गया। जिस प्रकार छोटे छोटे गांवों और जंगलों में से शिकार के पक्षी छोटी छोटी टुकड़ियों में उड़ जाते हैं उसी प्रकार लोग घर बार छोड़कर भागने लगे रास्तों पर गर्द छा गई। नदी की बाढ़ के समान सेना आगे बढ़ने लगी धीरे धीरे चलते हुए घोड़े सारसों के सदृश दिखाई देते थे और दौड़ते समय मृगों के समान छलांगें भरते थे। भाले बरछियां और तलवारें सूर्य के प्रकाश में जग-मगा रही थीं।

वैर के बदले का प्रसंग लेकर पृथ्वीराज ने चन्द बारहठ को भीम के पास आगे भेजा। वह भी जाल नसैनी कुदाल, दीपक और हाथी का अंकुश साथ लेकर गुजरात की राजधानी में जा पहुंचा। (१) उसके हाथ में एक त्रिशूल भी था। ज्योंही वह चालुक्य के दरबार में पहुंचा तमाशा देखने वालों की भीड़ लग गई। चन्द ने भोला भीम के पास पहुंच कर घोषणा की 'सांभरपति आ पहुंचा है। भीम ने कहा 'ऐ भाट ! तुम्हारी लाई हुई इन विचित्र वस्तुओं का क्या अर्थ है ? हमें जल्दी बताओ।' चन्द ने उत्तर दिया "पृथ्वीराज की आज्ञा है कि यदि तुम पानी में जाकर छुपोगे तो इस जाल से पकड़ लिए जाओगे यदि आकाश में उड़ोगे तो यह नसैनी मौजूद है यदि पाताल में चले जाओगे तो इस

---

(१) राजा भोज की सभा में भी एक दक्षिणी मल्लाचार्य इसी प्रकार की सामग्री लेकर पहुंचा था जिसको गंगा नामक तेली ने शास्त्रार्थ में परास्त किया था। इस रोचक कथा के लिए देखिए 'राष्ट्रभाषा' जयपुर अंक ५-६ वर्ष २' में मेरा लेख।

कुदाल से खोदकर निकाल लिए जाओगे, अ धेरे में जाओगे तो यह दीपक मौजूद है, इस अ कुश से तुम्हें वश मे किया जाएगा और यह त्रिशूल ही तुम्हारा काम तमाम करेगा। जहां तक सूर्य का प्रकाश पड़ता है वहा तक तुम कहीं भी छुपोगे तो पृथ्वीराज तुम्हारा पीछा करेगा।"

यह सुनकर भीम ने उत्तर दिया, "मुझे जो धमकी देता है मैं उसका वध करता हूँ। मेरा नाम भीम है, मैं भयकर युद्ध करने वाला हूँ और सभी मनुष्य मुझ से डरते हैं, इसलिए इतना आपे से बाहर मत हो, नम्रता से बात कर और जो कुछ पहले हो चुका है उसकी भी याद कर ले।"

चन्द ने कहा, "यदि कभी कोई चूहा बिल्ली को जीत ले, गिद्ध पवित्र राजहस के शिर पर नाचले, लड़ाई में हरिण सिंह का मुकाबला कर ले, मेंढक सर्प को निगल जाय तो इसको विधाता के विधान की विचित्रता ही समझनी चाहिए—ऐसी बातें बार बार होंगी, यह सोचना मूर्खता है। क्या पर्वतों पर छाए हुए जगल को भस्म कर देने वाली दावाग्नि की बराबरी एक छोटा सा दीपक कर सकता है?"

भीम ने कहा, "भाटों के छोकरे तो केवल इस प्रकार गाल बजाना जानते हैं जैसे दैत्य लोग भाई बटवारा करते समय गाली गलौज और मुक्कामुक्की करते हैं, परन्तु, सोमेश्वर का झगड़ा तो मरणान्त ही लड़ना पडेगा। जा, साभर के राजा से कह दे कि यहा कोई कायर नहीं है जो तेरी धमकी से डर जावेंगे।"

इस उत्तर को सुनकर चन्द भी कुछ घबराया और उसकी आखें क्रोध से लाल हो गई। वह तुरन्त पृथ्वीराज के पास लौट आया और

उसका क्रोध बढ़ाने के लिए जो कुछ हुआ था वह यथावत् कह सुनाया। उसने कहा 'भोला भीम ने मुझे कहा कि, 'जिस तरह सोते हुए सांप को कोई मेंढक उसकी पूँछ पर चढ़कर जगाता है और छेड़ता है उसी तरह तुम मुझे छेड़ते हो। गुर्जरनरेश चतुरंगिणी सेना लेकर तुम्हारा सामना करने के लिए आ रहा है मैंने लौटते समय उसकी सेना को अपनी आंखों से देखा है। मैंने जो कुछ कहा उस पर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। मैंने उसको जाल, दीपक और कुदाल भी दिखाई। उसने मुझसे पूछा कि इसमें क्या भेद है? चतुर कैमास जो प्रधान मन्त्री है तुम्हारे साथ क्यों नहीं भेजा गया? चामुण्डराय अथवा चतुर कन्ह या स्वयं सांभर का राजा क्यों नहीं आया? मैंने बहुत बार लड़ कर गुजरात के लिए विजय प्राप्त की है, जिन राजों को तुमने जीत लिया है मुझे उनमें कभी मत समझना। मैंने सांभरपति जैसे हजारों राजों को कत्ल कर दिया है।" जब मैंने यह सुना तो भीम से कह दिया 'संभल जाओ चौहान की चतुरंगिणी सेना आ रही है।'

पृथ्वीराज ने निर्भरराय को अपने पास बुलाया और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा इन सब योद्धाओं में तुम्हीं मुख्य हो तुम्हारा कुल प्राचीन योद्धाकुल है और तुम भी अपने पूर्वजों के समान ही शूरवीर हो। मुझे विश्वास है कि यदि देवता और दानव भी तुम्हारा सामना करने को आए तो तुम उन्हें परास्त कर दोगे। तुम्हारा रण कौशल पाण्डवों के युद्धचातुर्य के समान है। इस धरा का मोह छोड़ दो और अपने सामन्तों को साथ लेकर परमात्मा का ध्यान करते हुए एक-चित्त होकर युद्ध करो।

निर्भरराय ने उत्तर दिया अपने सामन्तों में शत्रुओं को घास की

तरह काट डालने की शक्ति है। हे पृथ्वीराज ! स्मरण रखो कि तुम दानव वंश के हो, तुम्हारे ही बल से तुम्हारे योद्धा भी बलशाली हैं। कन्ह को, बचपन, जवानी और बुढापा, इन तीनों ही अवस्थाओं में युद्ध से आनन्द प्राप्त होता है। वह महाबलशाली है, उसे 'नर-व्याघ्र' कहते हैं और वह साक्षात् भीष्म का अवतार है।

यह बात सुनकर पृथ्वीराज ने अपने गले से एक बहुमूल्य मोतियों की माला उतार कर निर्ड्डरराय को भेंट की। वह माला उसके गले मे ऐसी शोभित हुई मानों सूर्य-मण्डल गगा की धार से घिरा हुआ है। इसके बाद शूरवीर निर्ड्डरराय ने युद्ध की नौबत बजवाई और नौबत का शब्द सुनते ही समस्त सेना वीरोचित प्रणाली से एकत्रित हो गई। उस समय निर्ड्डरराय उन योद्धारूपी तारों मे ध्रुव के समान प्रकाशमान था।

कन्ह को पृथ्वीराज ने अपना राजकीय अश्व अर्पण किया और बहुत आग्रह के साथ उसे उस घोड़े पर बिठाया। कन्ह ने कहा, 'हे रणपति ! मुझे धिक्कार है कि मैंने अभी तक सोमेश्वर के शत्रु का बध नहीं किया और मेरे जीवरूपी हंस को इस शरीर से निकल भागने का मार्ग न मिला।' पृथ्वीराज ने उत्तर दिया, 'एक समय सुग्रीव अपनी पत्नी की रक्षा करने में समर्थ न हुआ, एक बार दुर्योधन कर्ण की रक्षा न कर सका, एक बार स्वय श्रीराम ने वन मे सीता को खो दिया, एक बार पाण्डव द्रौपदी के चीरहरण को न रोक सके—कन्ह ! ऐसी बातों पर शोक नहीं करना चाहिए। मैं तुम्हें अपने इष्टदेव के समान मानता हूँ, जिस तरह मोर की आखों को देखकर सर्प डर जाता है उसी प्रकार तुम्हारे नेत्रों की ज्वाला को देखकर शत्रु भयभीत हो

जाता है।' जब पृथ्वीराज इस प्रकार निर्डरराय और कन्ह का सम्मान कर रहा था उसी समय समाचार मिला कि भीम भी भारी फौज लेकर आ पहुंचा है।

उधर जब भीम ने सुना कि अपने पिता का बदला लेने के लिए शत्रु पहृग के समीप ही आ पहुंचा है तो वह उसी प्रकार क्रोध से भर गया जिस प्रकार पैर से दबा देने पर सांप नींद से जगा देने पर सिंह कुपित हो जाता है अथवा गरमी के दिनों में जरा सी चिनगारी से पूरे जंगल में अग्नि भभक उठती है। उसने अपने योद्धाओं को बुलाया और सब हाल कह सुनाया। ज्योंही उन लोगों ने यह बात सुनी वे सब संसार का मोह त्याग देनेवाले योगियों के समान दिखाई पड़ने लगे और शीघ्र ही दोनों सेनाएं आमने सामने आ डटीं। दोनों ओर गोलियों की बौछारें होने लगी, अग्नि बाण छूटने लगे और आकाश में आग लगती हुई दिखाई देने लगी दोनों ओर से अश्वारोही आगे बढ़े और तलवारें चमकने लगीं।

भीम ने ऐसी व्यूहरचना की थी कि उसको भेद कर शत्रु नगर तक न पहुंच सके। उधर चौहान की सेना का चक्र भी सहज में टूटने वाला न था। युद्ध शुरु हुआ कितनों ही का सांगों की मार से भेजा निकल गया कितने ही तलवार से मारे गए, 'मारो मारो' की पुकार होने लगी कितने ही मस्त युद्ध कर रहे थे कितनों ही के शरीर में से बाण आर पार निकल रहे थे। शिव और काली के आनन्द का ठिकाना न था काली खप्पर भर भर कर रक्तपान कर रही थी शिव मुण्डमाला बनाने में व्यस्त थे। जिस प्रकार किसी बड़े नगर की सड़कें यात्रियों से खचाखच भरी रहती हैं उसी प्रकार स्वर्ग के मार्ग में भीड़ लग रही थी रणमुक्त होकर योद्धागण मुक्ति लूट रहे थे।

जिस प्रकार बादलों मे चमाचम बिजली चमकती है उसी तरह कन्ह की तलवार भी चमकने लगी। एक ओर कन्ह चौहान था दूसरी ओर सारङ्गमकवाणा। दोनों ही मतवाले सिंहों की भांति लड रहे थे, तलवारें चल रही थीं। अन्त मे, सारङ्ग रणमुक्त हुआ और कन्ह विजयी हुआ। हाथियों के समान चिंघाडते हुए योद्धाओं के बीच मे मकवाणा गिर गया। उसके गिरते ही सारङ्ग की धरती विधवा हो गई। पृथ्वीराज के योद्धाओं ने गर्जना की, जिससे शत्रुओं के कलेजे दहल गए। कठिन तपश्चर्या के बाद योगियों को जो स्थान प्राप्त होता है वही शूरवीरों ने एक क्षण मे प्राप्त कर लिया, अपने धन-दौलत को छाया के समान अस्थिर समझकर वे युद्ध में कूद पड़े, उन्होंने सचाई से तलवार चलाई और एक दूसरे पर टूट पड़े, एक मात्र 'मुक्ति प्राप्त करना' ही उनका लक्ष्य था, उनके सामने जीवन स्वप्न मात्र था। 'आज ही रात को हमें तो मरना है, कल सुबह की कौन जाने ?' यही उनके विचार थे। जिस प्रकार पवन से आग फैलती चली जाती है उसी प्रकार लडाई का वेग बढने लगा।

योद्धा लोग जानते थे कि युद्ध मे मरने से उनकी कीर्ति बढेगी, तलवार की धार से उनका शरीररूपी पञ्जर टूट जावेगा तो आत्मारूपी हंस फिर उसमे बद्ध नहीं होगा और पिंजरे का भी कोई मूल्य नहीं रहेगा। लड़ाई का वेग और भी बढा, मनुष्यों के शिरों पर तलवारें निरन्तर बरसने लगीं, कितनी ही जीनें और कवच भी कट गए। जब कायरों के शिर पर तलवार पडती तो वे 'अरे ! अरे !! चिल्लाते परन्तु उनका रोदन रणनौबत के गम्भीर नाद में विलीन हो जाता था। पृथ्वीराज 'शाबास, शाबाश' कह कह कर अपने योद्धाओं का उत्साह बढाता था।

गुजरात की नदी साबरमती के दोनों किनारों पर खून की बाढ़ आ गई थी और उसके प्रवाह में मनुष्य हाथी और घोड़े आदि बहने लगे थे। रणभेरी फिर बजी और आधा घण्टे तक घुमुल युद्ध हुआ, भौंरों के समान सनसनाहट करते हुए बाण हवा में उड़ने लगे। चौहान के बहुत से योद्धा मारे गए और चालुक्य के वीरों की भी पंक्तियां हाथियों की पंक्तियों के समान रणक्षेत्र में लोट गईं। (१)

इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपने पिता का बदला लिया। देवियों ने हाथों में प्याले लेकर मन्त्र पढ़े हिंस्र प्राणियों ने अपनी भूख मिटाई और योद्धाओं के मृत शरीरों से रणक्षेत्र लाल लाल पुष्पों वाले वृक्षों के वन के समान दिखाई पड़ने लगा। जब क्रोध में भरकर पृथ्वीराज ने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया तो उसकी टापों से पृथ्वी कम्पित हुई शत्रुओं की सेना इस प्रकार काँपने लगी जैसे पवन के झोंकों से पीपल के पत्ते काँपते हैं। इतने बाण चल रहे थे कि हवा में पक्षियों को उड़ने के लिए भी रास्ता न रहा और युद्ध की भयंकरता अधिकाधिक बढ़ती गई। एक दूसरे पर वार करते हुए योद्धा ऐसे मालूम होते थे मानों लोहार घन पर चोटें मार रहे हैं। जिन सामन्तों ने युद्ध में प्राणत्याग किया उन्हीं का जीवन सच्चा (जीवन) था।

अन्त में चालुक्य की सेना स्वर्ग के मार्ग को छोड़ कर भाग खड़ी हुई देव और दानव एक साथ बोल उठे 'जो क्षत्रिय सूर्य-मण्डल को भेद कर स्वर्ग को जाता है, वह धन्य है।' घोड़े हिनहिनाने लगे तलवारें खड़खड़ाने लगीं और योद्धा लोग राजा की दुहाई

(१) तात्पर्य यह है कि मृत वीरों का इतना विशाल ढेर लग गया कि देखने पर वह गज-पंक्ति जैसा लगता था।

देकर एक दूसरे को उत्तेजित करने लगे। वामन ने तीन कदम बढाकर एक ही लोक को जीता था परन्तु योद्धा लोग एक ही कदम बढा कर तीनों लोकों को जीत लेते हैं। वे लोग युद्ध की उमग मे उसी प्रकार नाचने कूदने लगे जिस प्रकार रुद्र अपने गणों के साथ नृत्य करते हैं। ज्यों ज्यों चालुक्य की सेना का बल घटता गया त्यों त्यों चौहान की सेना दृढ होती गई। यद्यपि बहुत से वीर घायल हो गए थे परन्तु पृथ्वीराज की सेना ध्रुव के समान निश्चल थी। जिस प्रकार झालर पर मोगरे की मार पड़ती है उसी प्रकार शस्त्रों की वर्षा होने लगी परन्तु सेना डिगी नहीं। यह देखकर चौहान ने कहा, "आज मेरी इच्छा पूर्ण करूगा और गुजरात की धरती को राड बना दूगा।" भीम की ओर घूमकर उसने कहा, "आज तुम मेरे हाथ से नहीं बच सकते, मैं तुम्हें वहीं भेज दूगा जहा सोमेश्वर स्वर्ग मे विराजमान है। कन्ह ने भी पास आकर अपने राजा का साहस बढाया। साभर के राजा ने भीम पर वार किया। जहां पुनर्जन्म का बन्धन था वहीं पर तलवार बैठी और भीम भूमिसात् हुआ। स्वर्ग मे देवताओं ने जय जयकार किया। कोलाहल को सुनते ही शिव की समाधि टूट गई। इस दृश्य को देखने के लिए अप्सराए सभ्रम सहित आगे बढीं और विजयी पृथ्वीराज पर आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। उधर भीमदेव ने स्वर्गीय विमान में बैठ कर सुरलोक को प्रस्थान किया।

---

फार्बस साहब ने यहा निम्न पद्य का अर्थ ठीक न समझने के कारण भीमदेव के मरण की कल्पना करली है। वास्तव में, भीमदेव की मृत्यु इस युद्ध में नहीं हुई थी, न पृथ्वीराजरासो में ही ऐसा लिखा है। रासो में इस प्रकरण को 'भीमवध' नाम से लिखा गया है जिसको सम्भवत 'भीमवध' समझ लिया गया है। इस युद्ध का निर्णायक पद्य नीचे दिया जाता है जिसका तात्पर्य

आनन्द भरे पाचों प्रकार के बाजे बजने लगे भाट चारण आदि पृथ्वीराज की कीर्ति का गान करने लगे उसका रोष शान्त हो गया। पायलों की बेसमाल होने लगी। इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया।

सन्ध्या काली रात में बदल चुकी थी इसलिए योद्धाओं ने वह वहीं पर काटी क्यः सामन्त बुरी तरह घायल हुए थे जिनकी बेस माल होने लगी। सवेरा होते ही कमल खिलने लगे सूर्योदय होते ही चन्द्रमा और तारे पीले पड़ गए देव-द्वार खुलने लगे, चोर चकोर और अभि सारिकायें छुप गई मन्दिरों में शंखध्वनि होने लगी पथिकों ने अपना

---

यह है कि चालुक्य घायल हुआ और पकड़ा गया।

> तिलह मद्धि लगधार, सीस उग्गी ससि सोमै।
> कै नववधु नखछित्त काम कामिनि रस लोमै॥
> मर्म वीर कत्तरी, सिरा द्रुति तिलक पुच्या भर।
> कै कूची स्वंगार, सुभग भामिनि संध्या कर॥
> सोभंति चन्द की कला नभ कल कलंक सुभ्भै न तन।
> छुट्टयौ खेत चालुक नृप दुग्गिय राज तामस मन॥ ७॥

चालुक्य के 'सिलह अर्थात् कवच पर लगी हुई खड्गधार अथवा तलवार की चोट ऐसी शोभित होती थी मानों द्वितीया का चन्द्रमा ही उदित हुआ है अथवा वह नववधू के नखक्षत के समान है जो कामी और कामिनियों को रसलुब्ध कर देता है अथवा वह वीररस की कत्री (कतरी) का मर्म (रहस्य अर्थात् धार है या पूर्ण शिरा (के भाल) का द्युतिमान् तिलक है अथवा सुन्दरी संध्या भामिनी के हाथ में शृङ्गार (सिंगार) की कूची है। परन्तु, चन्द्रमा की कला तो नभ में शोभित होती है— यह कलंक (रूपी चोट) शरीर पर शोभा नहीं पाती। (ऐसे आघातयुक्त) नृप को सामन्तों ने रणक्षेत्र में छुड़ा निकाला जिससे राजा के मन का तामस अर्थात् क्रोध बुझ गया अथवा शान्त हो गया।'

रास्ता लिया और सभी वृक्षों पर पक्षियों की चहचहाट शुरू हो गई। सामन्तों ने आकर पृथ्वीराज के चरणों मे प्रणाम किया, बहुत से योद्धा देवलोक को चले गए, भीम मारा गया, पृथ्वीराज की कीर्ति फैल गई, पृथ्वी का भार हलका हो गया, पन्द्रह सौ घोडे, पाच सौ हाथी और पाच हजार पैदल खेत रहे।

चन्द बारहठ पृथ्वीराज और उसके सामन्तों का यश गाने लगा, "यह जीवन स्वप्न के समान है, जो कुछ दिखाई देता है वह सब नाशवान है परन्तु, जो सामन्त स्वामिभक्त हैं, वे धन्य हैं, जिन्होंने इस कुवेला में स्वर्ग प्राप्त किया है वे यश के भाजन हैं।"

इसके बाद राजा ने जय-पत्र लिखवाया (अपनी इस जीत का हाल खुदवाया) और दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दिया। सांझ होते होते वह अपने सामन्तों सहित नगर में जा पहुँचा, इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपने पिता का बदला लिया।

जो कुछ ऊपर लिखा गया है, वह तो चन्द बारहठ के वर्णन के अनुसार है परन्तु, दूसरे इतिहासकार (जो अधिक प्रामाणिक हैं) लिखते हैं कि मुसलमानों के साथ लडाई मे पृथ्वीराज की हार हुई और वह उसमें मारा गया। भीम उसके बाद भी जीवित रहा और विजेता मुसलमानों के साथ लड़ते लड़ते उसका भी वही परिणाम हुआ जो पृथ्वीराज का हुआ था।

मोहम्मद शाहबुद्दीन गोरी ने गुजरात जीतने का विफल प्रयत्न किया था उसके आठ वर्ष बाद (११८६ ई०) की बात है कि वह (गोरी) धोखे से लाहौर का मालिक बन बैठा और सुलतान खुसरू तथा उसके

कुटुम्ब को कैद करके ग़ूरिस्तान (१) भेज दिया। कुछ दिनों बाद उसने इन सब को कत्ल करवा दिया। इस प्रकार जब महमूद का सम्पूर्ण वंश नष्ट हो गया तो गज़नवी वंश का राज्य गोरी वंश के हाथ में आ गया। (२)

अब हिन्दुस्तान के राजपूत राजों पर बादल टूट ही पड़ने वाला

---

(१) (Ghuristan. Elliot and Dawson ii 281)

(२) हम पहले कह चुके हैं कि सिद्धराज जयसिंह महान् की पुत्री का विवाह साँभर विग्रहराज के साथ हुआ था। अणहिलवाड़ा की इस राजकुमारी के पेट से भोजदेव नामक कुँवर पैदा हुआ जो अपने पिता की मृत्यु के बाद लोद्रवाड़ा की गद्दी पर बैठा परन्तु उसको वहाँ से उखाड़ देने के लिए उसका काका जैसल प्रयत्नशील था इसलिए कुछ समय तक पाँच सौ सोलंकी योद्धा उसकी रक्षा के लिए वहाँ रहे। जैसलमेर के इतिहास में लिखा है कि 'उस समय अणहिलवाड़ा का राजा तातार से आई फौजों से बार बार युद्ध करता रहता था इसलिए जैसल ने सोचा कि, 'यदि तातार के राजा से मिलकर अणहिलवाड़ा पर आक्रमण किया जावे तो यह सोलंकी फौज लोद्रवाड़ा से हट सकती है और इसका यही एक मात्र उपाय है।' इस विचार के अनुसार उसने अणहिलवाड़ा पर चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया और अपने मुख्य सम्बन्धियों के साथ दो सौ घोड़े लेकर पंचनद की ओर रवाना हुआ। वहाँ पर गोर के राजा ने तातार के राजा की फौज को हराकर अपना थाना कायम कर दिया था इसलिए वह उससे मिल गया और उसके साथ सिन्ध की प्राचीन राजधानी आलोर चला गया। वहाँ जाकर उसने अपना विचार प्रकट किया और गोर के राजा के प्रति सदा नमकहलाल रहने की सौगन्ध खाई। इसके बाद अपने भतीजे से राज्य छीनने के लिए फौज लेकर रवाना हुआ और सीधा जाकर लोद्रवाड़े के घेरा डाल दिया। अपने राज्य की रक्षा करते करते भोजदेव मारा गया। नागरिकों को दो दिन की अवधि में अपना मालमता लेकर नगर से निकल जाने की आज्ञा हुई और तीसरे दिन गोर की सेना को लूट करने की छुट्टी मिल गई। इस प्रकार लोद्रवाड़ा की लूट हुई और लूट का माल लेकर करीमखाँ बक्खर को रवाना हुआ।

था, इसके पूर्वरूप में चेतावनी के लिए गुजरात पर (हवा के) सपाटे के समान दो हमले हो चुके थे। बहुत समय पहले हुए सोमनाथ के नाश ने ही मुसलमानों की शक्ति को सिद्ध कर दिया था, परन्तु होनहार के वशीभूत राजपूतों ने इस कटु अनुभव से भी कोई शिक्षा न ली और उस बढ़ती हुई ताकत मे रोक लगाने का कोई प्रयत्न न करके आपस ही मे भ्रातृघाती युद्ध करते हुए मुसलमानों के मार्ग को और भी सुगम बनाते रहे। गुजरात और मालवा, साभर दिल्ली और कन्नौज आपस की लडाइयों से निर्बल हो चुके थे और इन्हीं पारस्परिक जय-पराजयों के कारण वैमनस्य का विष फैलता रहा जिसका स्थायी परिणाम यह हुआ कि इनमे सच्चा मेल होने की घडी कभी आई ही नहीं।

मोहम्मद गोरी का पहला हमला सन् ११६१ ई० मे हुआ था। उस अवसर पर स्थानेश्वर और कर्नाल के बीच मे तिरौरी नामक स्थान पर पृथ्वीराज ने उससे करारी टक्कर ली थी और दिल्ली के राज-प्रतिनिधि चामुण्डराज की सहायता से मुसलमानों को पूर्णत पराजित किया था। इसके दो वर्ष बाद (सन् ११६३ ई० मे) फिर युद्ध हुआ। उस समय दैव ने दृष्टि फेर ली। दोनों सेनाए सरस्वती के किनारे मिलीं और बहुत समय तक लड़ाई होती रही परन्तु अन्त में शत्रु की कुशल व्यूहरचना से टक्कर लेते लेते सूर्यास्त के समय राजपूत सेना थक गई और तभी स्वय मोहम्मद की अध्यक्षता मे मुसलमानों के बारह हजार चुने हुए कवचधारी घुडसवारों ने हल्ला बोल दिया जिससे हिन्दुओं की सेना का कच्चरघाण (नाश) हो गया। चामुण्डराय मारा गया और 'चौहान की विशाल सेना एक बार नींव हिलने पर किसी बड़ी भारी इमारत के समान एक दम धॅसक गई और अपने ही खडहरों में विलीन हो गई।' (१)

---

(१) Reverty का मत है कि फरिश्ता के मूल में ये शब्द नही है।

शूरवीर पृथ्वीराज पकड़ लिया गया और वहीं उसका वध कर दिया गया। इसके बाद मोहम्मद स्वयं अजमेर गया और निर्दयता से उसने कत्ले आम जारी कराया। फिर शहरों को लूटता पाटता वह गज़नी को रवाना हुआ। गज़नी लौटते समय उसने मलिक कुतुबुद्दीन को अपने प्रतिनिधि के रूप में हिन्दुस्तान में छोड़ दिया था। मलिक ने थोड़े ही समय में मेरठ के किले और राजनगर योगिनपुर पर कब्जा कर लिया और कुछ समय बाद अपने स्वामी की मृत्यु के उपरान्त स्वयं गद्दी पर बैठ कर उसने हिन्दुस्तान में 'गुलाम वंश' की बादशाही की नींव डाली।

दूसरे ही वर्ष ११६४ ई० में मोहम्मद गोरी फिर हिन्दुस्तान आया और यमुना नदी के किनारे पर जयचन्द को हराकर उसने कन्नौज एवं काशी को अपने अधिकार में कर लिया तथा वहां पर 'एक हज़ार से भी अधिक देवालयों की मूर्तियों को तुड़वा कर उनको परमात्मा की सच्ची उपासना (नमाज़) के स्थान (मसजिद) में बदल दिया।' राठौड़ राजा ने पवित्र नदी में आत्मत्याग करके हिन्दुओं के मतानुसार अभीप्ट मृत्यु का वरण किया। कन्नौज का विशाल और विचित्र नगर उस समय हिन्दू नगर नहीं रह गया था परन्तु थोड़े ही वर्षों बाद इस अभागे राजा के पौत्रों ने इस नगर पर फिर राठौड़ों की ध्वजा फहरा दी। कालान्तर में यही ध्वजा यहां से मरुदेश में जोधपुर के किले (१) पर जा फहराई जहां से इसने निर्भय होकर कुतुबुद्दीन के राज्य-नाश के दृश्य को अपनी आंखों से साक्षात्कार किया।

---

(१) यद्यपि जोधपुर का किला बाद में बना था परन्तु जोधपुर राज्य की राजधानी होने के कारण ऐसा लिख दिया है।

अब, मुसलमानों के हमले का शिकार होने की गुजरात की वारी आई। 'सन् ११६४ ई० मे कुतुवद्दीन ने फौज लेकर गुजरात प्रान्त की राजधानी नेहरवाला (अणहिलवाडा) पर चढाई की और वहां पर भीमदेव को हराकर अपने स्वामी की दुर्दशा का पूरा पूरा वदला लिया। वह कुछ दिनों तक धनी नगरों को लूटता रहा परन्तु गजनी से वापस लौटने की आज्ञा आने पर उसको अचानक दिल्ली चला जाना पड़ा।'

दूसरी जगह वही मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि, 'जब कुतुबुद्दीन ने अणहिलवाडा के वाहर आकर डेरा डाला तो भीमदेव का सेनापति जीवणराय उसको देखकर भाग गया। फिर, जब उसका पीछा किया गया तो सामने होकर युद्ध किया परन्तु वह मारा गया और उसकी फौज भाग गई। इस पराजय का समाचार सुनते ही भीमदेव भी अपनी राजधानी छोडकर भाग गया।'

कुतुबुद्दीन की जीत अवश्य हुई, परन्तु गुजरात पर उसका स्थाई रूप से अधिकार न हो सका और हार होने तथा राजधानी से भगा दिए जानेपर भी भीमदेव की शक्ति मे कमी न आई। वही ग्रन्थकार लिखता है कि, "दो वर्ष बाद (सन् ११६६ ई० मे) कुतुबुद्दीन को समाचार मिला कि, 'नागौर और नेहरवाला के राजा तथा अन्य हिन्दू राजों ने मेर लोगों के साथ मिल कर मुसलमानों से अजमेर छीन लेने का विचार किया है।' इस समय उसका लश्कर इधर उधर के प्रान्तों मे विखरा हुआ था इसलिए जो कुछ थोडे बहुत विश्वासपात्र सिपाही थे उन्हें को लेकर यथाशक्ति नेहरवाला की सेना की बढ़ती को रोकने के लिए रवाना हुआ, परन्तु उसकी हार हुई। लडाई में वह कितनी ही बार घोड़े पर से गिर पड़ा और उसके छ घातक घाव लगे, परन्तु बाद मे उसके सिपाही उसको बरबस पालकी में डालकर रणक्षेत्र से अजमेर ले गए"।

"मेर लोग इस जीत से बहुत प्रसन्न हुए और गुजराती फौजों के साथ मिलकर अजमेर के आगे आ बैठे। जब गजनी में बादशाह ने यह समाचार सुना तो उसने कुतुबुद्दीन की सहायता के लिए मजबूत फौजें भेजीं। जब तक सहायक फौज आकर पहुँची तब तक तो इन लोगों ने अजमेर को पूरी तरह अपने अधिकार में रक्खा और शत्रु को घेरे रहे परन्तु घावों के ठीक होते ही कुतुबुद्दीन ने घेरा डालने वाली फौज को भगा दिया और नेहरवाला तक उसका पीछा किया। मार्ग में उसने बाली और नांदोल के किले भी हस्तगत कर लिए। इसके बाद उसको खबर मिली कि वालिन और दाराबरस की सेनाएं नहरवाला के राजा के साथ मिलकर सिरोही प्रान्त में आबूगढ़ के पास छावनी डाल कर गुजरात में आने के मार्ग को रोककर पड़ी हैं। मार्ग की कठिनाइयों और धरती के ऊबड़खाबड़पन की परवाह न करते हुए कुतुबुद्दीन आगे बढ़ता चला गया। कहते हैं कि इस प्रसंग में शत्रु के पचास हजार से अधिक मनुष्य मारे गये और बीस हजार कैद कर लिए गये। विजेताओं के हाथ बहुत सा लूट का माल आया। कुछ दिन फौजको आराम देकर कुतुबुद्दीन गुजरात को नष्ट करता हुआ बरोकटोक आगे बढ़ा। उसने नेहरवाला पर अधिकार कर लिया और एक सरदार को एक मजबूत किलेदार के साथ वहां पर नियुक्त कर दिया। इसके बाद वह अजमेर होता हुआ दिल्ली लौटा और गजनी के राजा की सेवा में बहुत सा सोना जवाहरात और गुलाम भेजे।"

फरिश्ता के कथनानुसार परमारवंश के धारावर्ष और प्रल्हादन देव अणहिलवाड़ा के राजा के आश्रित थे और क्रमशः आबू और चन्द्रा-वती उनके अधिकार में थे। वे कुमारपाल के समसामयिक यशोधवल

के पुत्र थे। ऊपर उल्लिखितलेख मे छोटे कुवर प्रल्हादनदेव (१) के विषय में लिखा है कि वह 'आक्रमणकारी दनुजों (मुसलमानों) से श्रीगुर्जरदेश की रक्षा करने वाला बलवान राजा था।' आबू पर्वत पर एक दूसरा लेख है जिसमे लिखा है कि उस समय प्रल्हादनदेव युवराज था क्योंकि उस समय तक धारावर्ष के पुत्र सोमसिह का जन्म नहीं हुआ था।

सन् १२०५ ई० में मोहम्मद गोरी मार दिया गया था और तभी से अपनी मृत्यु-पर्यन्त कुतुबुद्दीन ऐबक ने पांच वर्ष तक दिल्ली की बादशाही की। दूसरे भीमदेव के राज्यकाल की अब और कोई उल्लेखनीय घटना नहीं मिलती है। वह १२१५ ई० (२) मे मर गया और वही मूलराज चालुक्य के वश का अन्तिम राजा हुआ। कुतुबुद्दीन ने जो किलेदार और फौज अणहिलवाड़ा में छोड़ी थी वह या तो वापस बुला ली गई अथवा वे लोग वहीं रहते हुए नष्ट हो गए क्योंकि इसके बाद मे उनका कोई हाल नहीं मिलता। फरिश्ता ने लिखा है कि भीमदेव (द्वितीय) के मरने के पचास वर्ष बाद गयासुद्दीन बलबन दिल्ली का बादशाह हुआ, उसके मन्त्रियों ने उसे गुजरात और मालवा पर, जो 'कुतुबुद्दीन द्वारा साम्राज्य में मिला लिए गए थे परन्तु तभी से जिन्होंने मुसलमानी सत्ता को ठुकरा रक्खा था,' हमला करने की सलाह दी थी। परन्तु गयासुद्दीन अपने मन्त्रियों की इस सलाह के अनुसार कार्य न कर

(१) प्रल्हादनदेव जैसा वीर था वैसा ही विद्वान् भी था। प्रल्हादनपुर अथवा पालनपुर उसीका बसाया हुआ है। सस्कृत में 'पार्थपराक्रम व्यायोग' प्रल्हादन देव की उत्तम कृति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि आबू पर अचलेश्वर के स्थापना महोत्सव के अवसर पर यह नाटक खेला गया था। (सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ६४७—कृष्णामचारी) हि० अ०

(२) यह सही नही है क्योंकि १२४० ई० का उसका ताम्रपत्र मिलता है। टि० पृ० २७२। पर अन्य सूचनाए भी देखिए

सका क्योंकि उसको उत्तरीय मुगलवावार साम्राज्य का निरन्तर भय बना रहता था।(१)

---

(१)ऐसा जान पड़ता है कि भीमदेव (द्वितीय) पर बहुत सी आपत्तियां आ पड़ी थीं इसलिए वह निर्बल हो गया था। कीर्तिकौमुदी में आगे चलकर लिखा है कि "बलवान् मन्त्रियों और माण्डलिक राजाओं के होते हुए भी उसने बालराजा के राज्य को क्षीण हो जाने दिया।'

सुकृतसंकीर्तन में लिखा है—

सततवितरणक्षीणनिःशेषलक्ष्मीरतिविशदविकीर्तिर्भीमभूमिभुजङ्ग ।
बलकलितभूमिमण्डलो मण्डलेश्वरनिकरमुपचितचिन्ताक्रान्तचित्तान्तरोऽभूत्।

निरन्तर दान देते रहने से जिसकी लक्ष्मी क्षीण होगई है बहुत ही शुभ्र कान्तिवाली जिसकी कीर्ति है जिसने अपने बल से भूमण्डल को वश में कर लिया है ऐसा मण्डलेश्वर भीम भूपति चिरकाल से बढ़ती हुई चिन्ता के कारण व्यथितचित्त हो गया।

पौष सुदी १ सोमवार संवत् १२८८ का ताम्रपत्र डा. बूलर ने अपनी प्राचीन लेखावलि के पृ. ५८ से ६८ में दिया है, उसमें लिखा है—

श्रीमदणहिलपुर राजधानी अधिष्ठित अभिनव सिद्धराज श्रीमज्जयन्तसिंहदेव

इससे ज्ञात होता है कि इस जयन्तसिंह ने भीमदेव (द्वितीय) का राज्य छीन लिया था परन्तु, इसके बाद में संवत् १२८६, १२८८, १२९५ और १२९६ के लेख भीमदेव के ही मिलते हैं। इससे यही जान पड़ता है कि भीमदेव ने फिर अपने राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया था।

चैत्र सुदी ६ भीम संवत् १२९८ का लेख इसी पुस्तक में है, उसमें लिखा है—

'श्रीभीमदेवपादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारक-शौर्यौदार्यगाम्भीर्यादिगुणालंकृतश्रीत्रिभुवनपालदेव

इस लेख से ज्ञात होता है कि भीमदेव (द्वितीय) के बाद त्रिभुवनपालदेव राजा हुआ परन्तु इस लेख की राजावली में जयन्तसिंह का नाम शामिल नहीं है।

वास्तव में, तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक गुजरात पर मुसलमानों का पूर्ण अधिकार नहीं हुआ था, परन्तु इसके बाद अलाउद्दीन खिलजी

---

यह त्रिभुवनपाल देव कौन था, इसका पता नही चलता परन्तु उसने सवत् १२९८ से १३०० (१२४२ ई० १२४४ ई०) तक राज्य किया था। डाक्टर भाऊदाजी ने एक पट्टावली प्रकाशित की है, उससे मालूम होता है कि भीमदेव के बाद में ६ दिन तक तो उसकी पादुका को गद्दी पर रखकर मन्त्रियों ने राज-काज चलाया, इसके बाद में त्रिभुवनपाल गद्दी पर बैठा उसने २ महीने (वर्ष ?) और १२ दिन तक राज्य किया।

इस समय के ग्रन्थों में कीर्तिकौमुदी, सुरथोत्सव, सुकृतसकीर्त्तन और चतुर्विंशतिप्रबन्ध के अन्तर्गत वस्तुपालप्रबन्ध, वस्तुपाल-तेजपाल-चरित तथा प्रबन्ध चिन्तामणि हैं।

कीर्ति कौमुदी का कर्त्ता, सोमेश्वर, चालुक्यों का वशपरम्परागत पुरोहित था। उसने सुरथोत्सव काव्य की रचना की है, जिसमें, ऐसा मालूम पडता है कि भीमदेव (द्वितीय) के राज्यकाल की अवस्था के आधार पर ही उसने कथानक की कल्पना की है। सुरथ नामक राजा के अमात्य उसके शत्रुओं से मिल जाते हैं और उसका राज्य छिन जाता है। वह भागकर जगल में चला जाता है और वहीं एक मुनि से उसकी भेंट होती है, जो चण्डीपाठ अथवा सप्तशती में वर्णित भवानी के पराक्रम का वर्णन करके उसे देवी की आराधना करने की सलाह देता है। इसके अनुसार सुरथ तपस्या में लग जाता है और भवानी उससे प्रसन्न होकर दर्शन देती हैं तथा पुन राज्यप्राप्ति का आशीर्वाद प्रदान करती हैं। इतने ही में उसके स्वामिभक्त अधिकारी कृतघ्न अधिकारियो का नाश करके उसकी तलाश में निकलते हैं और वही उससे भेट होते ही बडी धूमधाम से उसको राजधानी में ले जाकर फिर गद्दी पर बिठा देते हैं।

इस प्रकार इस काव्य में सुरथ की ओट में भीमदेव की स्थिति का वर्णन किया गया है। भीमदेव के अमात्यों और माण्डलिकों ने भी उसको बहुत धोखा

मे जिसको गुजरात का प्रत्येक किसान 'लूनी' के नाम से जानता है इस पर अपना पक्षा मजबूती से जमा लिया था।

---

दिया था। जयन्तसिंह ने अणहिलवाड़ा पर कब्जा कर लिया था परन्तु बाद में उसको निकालकर भीमदेव ने फिर अपनी सत्ता हस्तगत करली।

कुमारपाल के पिछले प्रकरण में हम पढ़ चुके हैं कि उसका (कुमारपाल का) मौसेरा भाई आर्णोराज वाघेल में उसके मांडलिक राजा की भांति पूर्ण स्वामिभक्त होकर रहता था। उसके पुत्र लवणप्रसाद के विषय में यह भविष्यवाणी हुई थी कि वह परम प्रतापी होगा। यही लवणप्रसाद भीमदेव के पास राजभवन में पूरा हाथ रखता था, धोलका धुंधका आदि प्रदेश उसके मण्डल में थे उसका पुत्र वीरधवल भी अपने पिता के साथ रहकर जहां जहां अव्यवस्था होती थी वहीं जाकर ठीक ठीक व्यवस्था कायम करता था। गुर्जरदेश की राज्य लक्ष्मी ने भीमदेव को स्वप्न में दर्शन देकर वीरधवल को युवराज बनाने की सूचना दी थी। ऐसा मालूम होता है कि उस समय लवणप्रसाद और वीरधवल की बहुत चलने लग गई थी क्योंकि उस समय के अन्तिम ताम्रपत्रों में वीरधवल के पूर्वजों के नाम पर स्थापित आनलेश्वर और सलखणेश्वर देव के धर्म-स्थानों में ग्राम-दान दिये हुए हैं।

वीरधवल ने बहुत सा प्रदेश अपने कब्जे में कर लिया था और कच्छ में आए हुए भद्रेश्वर के भीमसिंह प्रतिहार के साथ गोधा के घुघुल के साथ दक्षिण के यादवराज सिंघन के साथ तथा उसी प्रसंग में मारवाड़ से आए हुए चार राजु राजों के साथ उसने युद्ध किया था। इस युद्ध में उसने अपना ऐसा पराक्रम दिखाया कि लोगों ने उसको अणहिलवाड़ा के महाराजाधिराज का पद ग्रहण करने के लिए कहा परन्तु भीमदेव के प्रति अपनी कृतज्ञता दिखलाकर उसने यह कह कर कि, "मेरे लिए तो राणक (राणा) ही योग्य पद है' इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया और आजीवन राणा ही बना रहा। भीमदेव की मृत्यु के बाद त्रिभुवनपाल ने १२९८ से १३   वि.   तक राज्य किया। उसके बाद में वीरधवल का पुत्र वीसलदेव अणहिलवाड़ा की गद्दी पर बैठा।

---

# प्रकरण १३

## अणहिलपुर राज्य का सिंहावलोकन

भीमदेव (द्वितीय) की मृत्युपर्यन्त वृत्तान्त लिख चुकने के बाद, हम ऐसे विन्दु पर आ पहुँचे हैं कि, अब एक बार अणहिलवाड़ा की कथा का पुनरवलोकन कर लेना समुचित होगा। सिद्धराज और कुमारपाल के राज्य की अन्तिम विसृष्टि के उपरान्त बहुत समय तक गुजरात में अराजकता का दृश्य दिखाई देता रहा। मुसलमानों की विजय का काम चालू रहा और ऐसे ऐसे छुट पुट आक्रमण होते रहे कि जिनकी गड़-बडी के कारण राज्य की नींव निर्बल पडती गई। ऐसे समय में कभी कभी वनराज के नगर मे स्थित देवालयों और प्राकार-शिखरों पर समुन्नति की सुनहली आभा दृष्टिगत हो जाती थी परन्तु वह अस्तो-न्मुख सूर्य के अन्तिम प्रभामण्डल के सदृश अचिरस्थायिनी थी, हृदय में धड़कन अवश्य मौजूद थी परन्तु हाथ पैर ठण्डे हो चले थे; कवि के निम्नाकित वाक्यों की सी दशा हो रही थी:—

'जिस प्रकार मृत्यु के किनारे पडे हुए घायल पशु की ओर गिद्ध ताक लगाए बैठा रहता है उसी प्रकार इस शानशौकत के पीछे महा-विनाश और अव्यवस्था प्रतीक्षा कर रहे थे।'

अब तक जिन ग्रन्थकारों की कृतियों से सहायता लेकर हम लिखते रहे हैं उन पर भी थोड़ा सा प्रकाश डाल देना उचित होगा। रत्नमाला के कर्ता कृष्णाजी ब्राह्मण थे। उनका इससे अधिक कोई

वृत्तान्त नहीं मिलता। उन्होंने भीमदेव (द्वितीय) की मृत्यु के बाद अपना मन्थ लिखा था परन्तु संभवतः उनके ग्रन्थ का रचनाकाल इस घटना के बहुत समय बाद का नहीं है। उनका काव्य उनके पूर्ववर्ती लेखकों के श्रम पर अवलम्बित है यह बात निम्न छप्पय से विदित होती है-

'छप्पय—ज्यौं दधिमन्थन करत हरत घृत ताक तजी कैं
इक्षु पीळि रस गही नहिं ताइ शेष सजी कैं,
रजतें कंचन लेत देत रज दूर ही डारी,
कुकसतें (१) कन लहे, तिलतें तैल निकारी,
सब ग्रन्थ पंथ अवलोकि कैं सारयुक्त मैं सची
अस ग्रन्थ एहि अभिधानही रत्नमालिका शुभ रची।'

द्वयाश्रय का आरम्भ सुप्रसिद्ध हेमाचार्य द्वारा हुआ जान पड़ता है, जिनकी मृत्यु कुमारपाल के राज्य के अन्तिम समय में ११७४ ई० से पूर्व हुई थी। इसके बाद प्रल्हादनपट्टण (पालनपुर) के लेखाजय तिलक नामक जैन साधु ने इसकी अनुपूर्ति की और संवत् १३१२ वि० (१२५६ ई०) की दीपावली को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। उक्त गणि ने लिखा है कि लक्ष्मीतिलक साधु ने शुद्ध करके इसकी टीका लिखी है। लखाजयतिलक अपने को भी कुमरराज के समय में गुजरात भ्रमण करने आए हुए श्रीवर्द्धमान आचार्य की गुरुपरम्परा में मानते हैं। इस ग्रन्थ का नाम द्वयाश्रय इसलिये पड़ा कि इसमें

---

(१) गालवा भारव भूगा।

ग्रन्थकार ने सस्कृत भाषा का व्याकरण भी समझाया है और सिद्धराज का वर्णन भी किया है, इस प्रकार इसके दो विषय आश्रय बने हुए हैं। इस दोहरे ग्रन्थ की रचना श्लिष्ट पद्यों में हुई है जिनको दो बार पढकर दोनों ओर लगते हुए अर्थ निकाले जा सकते हैं।

प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थ इससे कुछ पीछे की रचना है। यह वर्द्धमानपुर (आधुनिक बढवाण) मे सन् १३०५ ई० अथवा सवत् १३६१ की वैशाख शुक्ला १५ को पूरा हुआ और इसके रचयिता वहीं (बढवाण) के प्रसिद्ध जैन धर्म के आचार्य मेरुतुग थे। श्रीगुणचन्द्र नामक एक दूसरे आचार्य ने इसी नाम का ( प्रबन्धचिन्तामणि ) ऐसा ही ग्रन्थ लिखा है अथवा, जैसा कि स्वय मेरुतुग लिखते हैं, यह भी सम्भव है कि इस ग्रन्थ का आरम्भ ही उन्होंने किया हो। ग्रन्थकर्ता ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है कि पुरानी बातों को सुनकर पण्डितों के मन को तृप्ति प्राप्त नहीं होती है, इसलिए मैं अपने ग्रन्थ प्रबन्ध-चिन्तामणि मे अब के महाराजाओं की बातों का वर्णन मेरी छोटी सी बुद्धि के अनुसार पूर्ण प्रयत्न के साथ करता हूँ ।"

उपर्युक्त ग्रन्थों के ही मुख्य आधार पर हम अब तक लिखते आए हैं परन्तु, इनमे लिखी हुई बातों को और भी विशद करने, समझने और उनका सम्बन्ध जानने के लिए पुराने लेखों, ताम्रपट्टों, मुसलमान इतिहासकारों के लेखों, चन्द बारहठ के रासो, तथा अन्य भाट चारणों आदि की मौखिक वातों और दन्तकथाओं को भी यथास्थान उद्धृत किया है।

बढवाण और पाल्हनपुर के जैन साधुओं द्वारा रचे हुए ग्रन्थों की शैली में बहुत समानता है। उन्होंने यद्यपि राज-प्रकरण को धर्म

प्रकरण के आगे गौण समझा है, परन्तु दोनों ही विषयों में लगातार सम्बद्धता-पूर्वक लिखने का प्रयत्न न करके केवल वार्ताएं लिखकर सन्तोष कर लिया है। उनके लिखे हुए संक्षिप्त विवरणों की रूपरेखा यद्यपि खण्डित है परन्तु असत्य नहीं है क्योंकि उनके लिखे हुए वृत्तान्त और सन्दर्भ यथासम्भव अपेक्षाकृत प्रामाणिक ग्रन्थों से तुलना करने पर पूरे खरे उतरे हैं। अत: यह मान लेना उचित ही होगा कि उनके विषय में ज्यों ज्यों अधिक शोध की जावेगी त्यों त्यों हमें अधिकाधिक सत्य की प्राप्ति होगी। यदि हमें यह ज्ञात हो जावे कि द्व्याश्रय में स्वयं हेमचन्द्र का लिखा हुआ कितना भाग है और मेरुतुंग तथा लक्ष्मीतिलक ने बिना हेर फेर किए कितना भाग उद्धृत किया है तो दोनों प्रमुख राज्यकालों के विषय में समसामयिक लेखकों के मत प्राप्त हो सकते हैं परन्तु, यह प्रत्यक्ष रूप से असंभव है। अतः हम इन जैन-वृत्तान्तों को रचनाकाल के तत्सामयिक रास (परम्पराओं के अभिलेख) मानकर ही सन्तोष कर लेते हैं। ऐसा मान लेने पर भी उनके मूल्य में कोई कमी नहीं आती क्योंकि वे दूसरे साहित्य (१) को समझने और उससे सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते हैं। इतना ही नहीं, कितनी ही बार तो ये घटना की सत्यता की खोज निकालने में सूत्र का काम भी करते हैं। यद्यपि उनमें वर्णित बहुत सी बातें पूरी छान बीन और स्पष्टीकरण के उपरान्त ही विश्वास करने योग्य निकलती हैं फिर भी उस समय के रीतिरिवाजों संस्थाओं मनोभावों और राजप्रजा के विषय में जो पूरी पूरी सूचनाएं मिलती हैं उनको मान्यता न देना नितान्त अनुचित है। मुसलमानी आक्रमणों से पूर्व की शताब्दियों के मध्यकालीन भारत-

(१) जैनेतर साहित्य।

विषयक बहुत ही थोडी जानकारी हमें प्राप्त है और आधुनिक हिन्दू लोगों के विषय में ठीक ठीक अध्ययन करने के लिए उस काल के अविशिष्ट संस्मरण कितने अधिक उपयोगी हैं, इस बात पर ध्यान देने वाला कोई भी विचारवान् मनुष्य इन वर्णनों का अवमूल्यन करना संगत नहीं समझेगा, ऐसा हमारा मत है।

चन्द बारहठ की कविता अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर, चमत्कारपूर्ण, और मनोरञ्जक है परन्तु इसके विषय में सोच विचार कर ही लिखना उचित होगा। जितने भी चारण भाट आदि कविता-लेखक हुए हैं उन मे चन्द की कीर्ति सब से बढकर है। जहां उसकी कविता में सभी प्रकार के दोष पाये जाते हैं वहा सभी प्रसिद्ध गुण भी उपलब्ध हैं। उसे केवल सविवेक आख्याता ही नहीं कहा जा सकता वरन् 'यदि (मदिरा की) लाल घूट का' आस्वाद करके नहीं तो युद्ध और जातीय प्रतिस्पर्धा की मदिरा पीकर उत्तेजित हुआ, चौहानों का घरू भाट भी अवश्य समझा जा सकता है। उसके पाठ मे इतनी गड़बड़ी है कि कहीं कहीं तो कुछ भी समझ मे नहीं आता और जहा पर भावार्थ समझ मे आता है वहा इस बात का पता चलाना कठिन हो जाता है कि इसमें से चन्द का लिखा हुआ मूल भाग कितना है और उसके अनुवर्तियों ने हेर फेर करके कितना भाग प्रक्षिप्त किया है। ऐसे हेर फेर इतने अधिक हैं कि मूल ग्रन्थ की प्रामाणिकता (१) के विषय में भी संदेह हुए बिना

---

(१) चन्द बारहठ प्राय' चन्द वरदायी के नाम से प्रसिद्ध है। इसका लिखा हुआ मूलकाव्य ४००० पद्यों का बताया जाता है जिसका विस्तार होकर १२४०० पद्यों का हो गया है। [Smith, Early Hist of India, 3rd p 387] इस ग्रन्थ के प्रामाणिक संस्करण की अत्यन्त आवश्यकता है परन्तु यह कार्य बहुत कठिन है।

नहीं रहता। हम पहले पढ़ चुके हैं कि चन्द के लिखे अनुसार तो भीमदेव द्वितीय पृथ्वीराज चौहान के हाथ से मारा गया था परन्तु सच बात यह थी कि यह पृथ्वीराज के मरने के बाद भी बहुत वर्षों तक जीवित रहा। दूसरे स्थानों पर चन्द ने गुजरात के जिन जातीय कुटुम्बों के नाम जिन भिन्न भिन्न घटनाओं के आधार पर लिखे हैं, वे घटनाएं दूसरे ग्रन्थकारों के मत से उन जातियों के संस्थापकों के उत्पत्तिकाल से सैकड़ों वर्ष पहले ही घट चुकी थी। चन्द के ग्रन्थ की प्रामाणिकता के विषय में शंका समाधान करते समय भीम के मृत्युकाल की गड़बड़ी के विषय में तो यह कहा जा सकता है कि उसने अपने राजा और नायक की कीर्ति बढ़ाने की आतुरता में ऐसा लिख दिया है, और अन्य जातियों के विषय में यह उत्तर दिया जा सकता है कि जिस काल के विषय में चन्द ने लिखा है उस समय नहीं तो जिस काल में उसने ग्रन्थ रचा उस समय ये जातियां विद्यमान थीं परन्तु उसने जो पीरम के गोहिलों का कीर्ति गान किया है उसके विषय में क्या उत्तर दिया जा सकता है? क्योंकि चन्द के बाद एक शताब्दी व्यतीत होने से पूर्व गोहिलों का अधिकार पीरम पर हुआ ही नहीं था। हमारी समझ में इस बात को मानना ही पड़ेगा कि, सम्पूर्ण रासो जो चन्द का लिखा हुआ माना जाता है, उसका लिखा हुआ नहीं है, और जब यह बात सिद्ध हो जाती है तो यह पता चलाना अत्यन्त कठिन है कि इसका कितना अंश तो स्वयं चन्द का रचा हुआ है और कितना उसके बाद वालों ने कब कब लिखा है।

उपर्युक्त चित्र-लेखकों से हमें अणहिलवाड़ा का जो चित्र प्राप्त होता है उसमें राजा के दरबार का दृश्य मुख्यतम है। उसके आसपास श्वेताम्बर जैन साधु अथवा पुनर्जन्म का जामा पहने हुए ब्राह्मण पुरोहित

उपस्थित हैं। पास ही, सैक्शन विधेयक द्वारा रचित अनौरस विलियम (१) के सामन्तों के समान, कड़ियों का बना कवच पहने हुए राजपूत योद्धा, अथवा युद्धक्षेत्र में वीर, मन्त्रणा में अति चातुर, व्यवहार मे सरल परन्तु क्षत्रियों से भी अधिक क्रोधालु वणिक् मन्त्रीश्वर खड़े दिखाई देते हैं। इस शूरवीर मण्डली के एक ओर गायक और बन्दीजन खड़े हैं, जो स्वय भी किसी अ श में शूरवीरों की गणना मे आ जाते हैं। इनकी एक बाजू, कुछ हटकर शब्द-शूर किसान भेट—स्वरूप में भूमि की उपज लिए टोलिया बनाकर खडे हैं। उनके पीछे, जिनकी शक्ति में अविश्वास नहीं किया जा सकता और हृदय मे आशका होते हुए भी जिनका पहरा रखना ही पड़ता है ऐसे काजल के समान काले, पहाड़ियों और गुफाओं के मूल निवासी हाथों में धनुषबाण लिए अपनी मडली बनाए उपस्थित हैं।

स्वय राजा का चित्र बहुत शानदार है, उसके शिर पर लालरग का राजछत्र शोभित हो रहा है, मस्तक के पीछे सुनहरी सूर्य (प्रभा) मण्डल दमक रहा है, गले में विलासमय मोतियों का कण्ठा विराजित है और उसके बाजूबध चमकदार हीरों के बने हुए हैं। यह सब कुछ होते हुए भी उसकी मूर्ति पुरुषत्व से हीन नहीं दिखाई पड़ती। उसकी मासल भुजाएँ भाले और तलवार से सुशोभित हैं, युद्ध की प्रज्वलित आग से उसकी आखें अ गारे के समान लाल लाल चमक रही हैं और

---

(१) सम्भवत ग्रेटब्रिटेन के विलियम तृतीय से तात्पर्य है जो विलियम द्वितीय और चार्ल्स प्रथम की पुत्री मेरी का पुत्र था। वह पिता की मृत्यु के बाद पैदा हुआ था।

उसके कान जिस प्रकार महलों का गंभीर चौघड़िया (नौबत) सुनने में अभ्यस्त हैं उसी प्रकार युद्ध की प्रचण्ड रणभेरी का निनाद सुनने को भी कम उत्सुक नहीं है। वह रानी का शिशु क्षत्रिय का पुत्र अभिषिक्त राजा और 'हाथवाला मनुष्य' है।

सुन्दरियों का चित्र देखने के लिए हमें दूसरे पट पर दृष्टि डालनी चाहिए। स्वयंवर-मण्डप में अपने मन के मानीते शूरवीर का वरण करती हुई और फिर कामदेव के साथ रति के समान शोभित होती हुई रमणी का रूप हमारे दृष्टिगत होता है। तदनन्तर हम उसे गौरव मयी माता के रूप में अपने युवा पुत्र का राज्य संचालन करती हुई, अथवा उसके बड़े होने पर अपनी सलाह से उसके द्वारा दया और धर्म के कार्य सम्पादन करवाती हुई देखते हैं; अथवा दुःख की बात है कि, हमें उसका दूसरा ही रूप देखने को मिलता है। उसकी आंखें क्रोध के मारे विलक्षण प्रकार से लाल हो रही हैं स्वामी के निर्जीव शरीर को उसने गोद में ले रखा है रणसिंगे की भीषण ध्वनि और उससे भी कठोर और असह्य चीत्कार कानों को कष्ट पहुंचा रही है—इसी बीच में चिता की भीषण ज्वाला भभक उठती है और गहरे धुम्रों के बादल ऊपर फैल जाते हैं मानों वे इस भयानक दृश्य को स्वर्ग की आँखों से छुपाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

भूमिकर भी हिन्दू समाज के इतिहास का एक मुख्य विषय रहा है। जिन पुस्तकों के आधार पर हम लिखते आ रहे हैं उनके लेखकों ने इसको संसार का सर्वसाधारण विषय मानकर कोई विशेष चर्चा नहीं की है और न ऐसा करने की आवश्यकता ही समझी है। परन्तु इधर उधर से जो बातें हमारे जानने में अनायास ही आ गई हैं वे ये हैं कि कभी

तो राजा अपना राजस्व सीधा किसानों से वसूल करता था, कभी कभी उसके प्रतिनिधि बनकर उसके मन्त्री कर उगाहते थे, कभी कृषकों से गांव के अधिपति कर ले लेते थे, उनसे राजा अपना भाग ग्रहण करता था। देश में 'ग्राम' अथवा गाँव बसे हुए थे और उनमे रहने वाले लोग कौटुम्बिक ( कणबी ) अथवा कृषक ( किसान ) कहलाते थे, गाँव का मुखिया पट्टकील अथवा पटैल कहलाता था। किसान लोग जिस प्रकार आज कल अपने काम मे व्यस्त रहते हैं उसी प्रकार उस जमाने में भी रहते थे। जब फसल उग आती तो वे अपने खेतों के चारों ओर काँटेदार झाडियों की कच्ची बाड़ लगाते थे और जब फसल और भी बड़ी हो जाती तो वे अपने अपने खेतों में चिड़ियां उडाने में व्यस्त दिखाई देते थे। किसान स्त्रियां भी, आज कल की भांति ही, अपने धान के खेतों की रखवाली करती हुई मधुर गीतों से वायुमण्डल को गुँजा देती थीं। यदि वर्षा कम होती अथवा बिलकुल न होती तो राजा को अपना भाग वसूल करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता था और किसानों को रोक कर कैद किए बिना इस कार्य की सिद्धि नहीं होती थी। कभी कभी तो इतना होने पर भी, किसान अपना हठ न छोड़ते और असहाय बालक की भाति क्रन्दन करके राजा के हृदय में दया उत्पन्न करने का प्रयास करते। इसके फलस्वरुप दोनों ही पक्षों की कठिनाइया बढ़ जातीं और अन्त में, पञ्च-फैसले पर यह विषय किसी प्रकार तय हो जाता था। आजकल भी देशी राज्यों में कितनी ही जगह यही दशा प्रत्यक्ष देखने में आती है।

देवस्थानों और धर्म-गुरुओं को मुख्यतया राजा की ओर से भूमि प्रदान की जाती थी। इस विषय के बहुत से प्रमाण

सुरक्षित रखे गये हैं। उदाहरणार्थ, सिद्धपुर अथवा सिहोर ब्राह्मणों को और बाकी ग्राम जैनों को मिला हुआ था। इस प्रकार दिया हुआ दान 'ग्रास' कहलाता था और संभवतः यह शब्द 'धार्मिक-दान' के अर्थ में प्रयुक्त होता था। जब मूलराज ने अणहिलवाड़ा में त्रिपुरुषप्रासाद नामक शिव-मन्दिर बनवाया तो उसने मन्दिर के अधिकारी को 'ग्रास' प्रदान किया था और जब कुमारपाल के राज्यकाल में उदयन के पुत्र वाग्भट्ट ने पालीताना के पास वाहड़पुर में राजा के पिता के नाम पर त्रिभुवनपाल-विहार नामक जैन चैत्य बनवाया तो राजा ने मनुष्यों के खाने पीने के प्रबन्ध के लिए जो भूमि प्रदान की थी वह भी ग्रास' ही कहलाती थी। भोजराज के दरबार में माघ नामक एक कवि हुआ है, उसने एक ब्राह्मण की दरिद्रता के विषय में अनुरोध करते हुए कहा है कि, 'जो गृहस्थ ग्रास देना भूल जाता है उसका सौभाग्य सूर्य अस्त हो जाता है। यह कार्य 'शासन' के नाम से प्रसिद्ध है।

राजा के कुटुम्बियों और भाई बन्धुओं को भी जमीनें मिलती थीं जैसे देवसी और वाघेल। कुमारपाल के विषय में यह भी कहा जाता है कि, 'दानियों के अधिपति' सोलंकी राजा ने आलिग नामक कुम्हार को सात सौ गाँवों का पट्टा लिखकर दे दिया था। यह कुम्हार अपने नीच कुल के कारण बहुत लज्जित हुआ और इसी कारण आज तक उसके वंशज 'सगरा' कहलाते हैं। इस दान के विषय में अब कोई पता नहीं चलता है। एक वाघेल को छोड़कर वंशपरम्परानुगत सैनिक सेनाओं के लिए मिली हुई किसी स्थाई जागीर का भी पता नहीं चलता है। गुजरात में जितने किले हैं वे सब राजा के संनिवेश के लिये बने हुए मालूम होते हैं। पटायतों का उनमें कोई भी दखल नहीं था। जितने भी राजपूतों के ठिकाने हैं, जिनके स्वामी जमीनदार व छोटे

छोटे राजे बने हुए हैं, उनमे से एक के भी इतिहास लेखक के लेख से यह प्रमाणित नहीं होता है कि उन्हें ये जमीनें अणहिलवाड़ा के राजों की दी हुई हैं। हा, झाला राजपूत तो अवश्य कहते हैं कि उनके पास जो भूमि है वह अणहिलवाड़ा के अन्तिम राजा कर्ण (द्वितीय) (१) ने उन्हें प्रदान की थी। हम मूलराज के दरबार मे मुकुटधारी राजाओं का तथा अन्य स्थानों पर मडलेश्वरों एव प्रान्तपतियों का वर्णन पढ चुके हैं—उदाहरणार्थ, कुमारपाल के बहनोई कान्हदेव को ही यह पद प्राप्त था और जब उदयन मन्त्री ने सोरठ के साऊसर पर चढाई की थी तब यह लिखा है कि उसने वढवाण आकर समस्त 'मण्डलेश्वरों' को एकत्रित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग अलग अलग प्रान्तों के अधिपति थे, इनके अतिरिक्त दूसरे ऐसे माण्डलिक राजों का भी वर्णन मिलता है कि जिनके देश अणहिलवाड़ा के राजाओं के आधीन तो थे परन्तु गुजरात की सीमा मे नहीं गिने जाते थे। आबू और गिरनार के राजा तथा कोंकण का अधिपति मल्लिकार्जुन इसी वर्ग में गिने जाते थे।

सामन्तों और सैनिक अफसरों को प्राय राजकोष से ही वेतन मिलता था। और जैसा कि बाद में दिल्ली के मुगल बादशाहों के जमाने में हुआ करता था, जितने आदमियों पर वे अधिकारी होते थे उसीके

---

(१) सिद्धराज के पिता कर्ण सोलकी (१०७२-१०९४) से इन्हें १८०० ग्राम मिले थे; कर्ण (द्वितीय) नहीं। इसके विषय में प्रमाण यह है कि पृथ्वीराज की लडाई में झाला थे, ऐसा बहुत सी जगह लिखा हुआ मिलता है। दूसरे कर्ण का समय १२९६—१३०४ ई० है, 'रासो' उससे पहले ११४३ में लिखा गया था इसलिए झालों को उससे पहले होना चाहिए।

अनुसार उनका पद होता था। कहते हैं कि सिद्धराज ने अपने एक खवास (मुख्य सेवक) को 'सौ घोड़ों का सामन्त पद' दिया था और जब कुमारपाल ने आन्नराज पर चढ़ाई की थी उस समय के वर्णन में लिखा है कि, 'उसकी सेना में बीस बीस और तीस तीस सिपाहियों के अधिकारी महाभट्ट और एक एक हजार सिपाहियों के अधिकारी महाराज मौजूद थे। इनसे बड़े अधिकारी 'छत्रपति' और 'नौबतधारी' होते थे अर्थात् उन्हें छत्र और नौबत के राज्य चिन्हों का उपयोग करने का अधिकार मिला हुआ था। इस विषय में यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि इन बड़े बड़े पदों एवं स्वतन्त्र अधिकारों को प्राप्त करने वालों में अधिकतर बनिया जाति के लोग थे जैसे वनराज का साथी (मित्र) आम्ब उसका वंशज सज्जन जयसिंह का सेवक मुञ्जाल उदयन और उसके पुत्र इत्यादि। जो लोग सदा कदा प्रसंगवश सेवा में उपस्थित होते थे वे नौकर न कहलाकर प्रायः सहकारी कहलाते थे। ऐसे सरदारों में कल्याण के राजे और सियाजी राठौड़ (१) थे। 'राजपूत' और 'प्यादे' ये दो नाम अलग अलग लिखे गए हैं इससे मालूम होता है कि 'राजपूतों' से घुड़ सवारों का अभिप्राय है।

राजा का सबसे मुख्य कर्तव्य यह होता था कि वह विदेशी हमलों तथा अन्तरङ्ग बखेड़ों से अपनी प्रजा की रक्षा करे आस पास के छोटे छोटे राज्यों को अपने अधिकार में लेकर राज्य की वृद्धि करे, और

---

(१) मूलराज और गाहरिपु की लड़ाई में कच्छ के लाखा फूलाणी को मारने वाला सियाजी राठौड़ था, यह पहले लिखा जा चुका है, और इसीलिए उसका नाम यहाँ पर सहकारियों में लिखा है परन्तु सियाजी उस समय नहीं था यह तो १२११ ई० में हुआ था।

वास्तव मे आदर्श राजा विक्रमादित्य (२) का अनुकरण करे, 'जिसने चारों दिशाओं मे विजय प्राप्त करके राजमण्डल को अपने आधीन कर लिया था।' इस प्रकार की चढ़ाइया 'विजय-यात्राए' कहलाती थी। कभी कभी किन्हीं विशेष और आवश्यक कारणों से भी लडाइया हुआ करती थीं, जैसे, ग्राहरिपु पर धर्म-विग्रह के कारण चढ़ाई की गई। यशोवर्मा ने सिद्धराज को उत्तेजित किया। परन्तु, फिर भी इन लड़ाइयों का मूल उद्देश्य तो एक ही होता था। जब विजेता के सामने विजित राजा दातों मे तिनका ले आता और कर देना स्वीकार कर लेता तो वह सन्तुष्ट हो जाता और उसके राज्य पर स्थाई रूप से अधिकार न जमाता। जब एक देश पर एक बार आक्रमण हो चुकता और पुन उस पर हमला करना पड़ता तो यह प्राय 'मुलुकगीरी' की रीति का होता था। जीत का अर्थ यह होता कि भूमि की वार्षिक उपज मे से कोई भाग लेने का अधिकार विजेता को प्राप्त हो जाता था और इस प्रकार का हक आवर्तरूप मे चलता रहता था। जिस प्रकार अपने देश के किसानों से राजा अपना भाग लेता था उसी प्रकार दूसरे देशों के राजों से उन पर हमले करके अपना कर वसूल करता था। यह प्रथा बहुत पहले से प्रचलित जान पड़ती है, क्योंकि जब भूवद राजा ने जयशेखर पर चढाई की थी उस समय भी यही रिवाज था। इसीके अनुसार कल्याण के राजा ने भी, अपने अधिकारियों को कर वसूल करने मे सहायता मिले इसलिए गुजरात देश के युवक राजा वनराज को अपना 'सेलभृत' बनाकर भेजा था। एक दन्तकथा ऐसी प्रचलित थी कि, गुजरात बहुत दिनों तक गोदावरी के दक्षिण के राजाओं के आधीन करद राज्य की भाति रहा था। यह

(२) प्रबन्धचिन्तामणि।

चाव चावड़ा वंश के अन्तिम समय तक चलती रही और यहाँ तक कि तैलिप राजा के सेनापति बारप ने जब प्रथम सोलंकी राजा के समय हमला किया था उस समय भी यह प्रसिद्ध थी। इसके बाद वनराज के क्रमानुयायियों ने कच्छ सोरठ उत्तर कोंकण, मालवा और सांभर तथा अन्य देशों पर बहुत से हमले किये परन्तु उन पर उनका स्थाई अधिकार न हो सका। यद्यपि मूलराज ने ग्राहरिपु को हरा दिया और लाखा को मार डाला था परन्तु इससे चाड़ा और यादव वंश की समाप्ति नहीं हुई। यद्यपि जयसिंह ने यशोवर्मा को जीत कर धार पर अधिकार कर लिया था परन्तु इसके थोड़े ही वर्षों बाद मालवा के अर्जुनदेव ने गुजरात को उच्छिन्न कर दिया और यद्यपि सपादलक्ष देश में एक बार अणहिलवाड़ा की विजय पताका सगर्व फहराई गई परन्तु अजमेर के नरेशों और वनराज के वंशजों में निरन्तर शत्रुता चलती रही और अन्त में चौहान और सोलंकी, दोनों ही समान रूप से मुसलमान आक्रमणकारियों के शिकार बन गये।

पड़ौस के शक्तिशाली राज्यों के दरबार में अणहिलवाड़ा की ओर से भेजे हुए 'सान्धि-विग्रहिक' रहते थे जिनका काम संधि और युद्ध करवाने का तथा विदेशी मामलों में पूरी जानकारी रखने का था। यही कार्य दूसरे प्रकार से भी होता था। इसके लिए 'स्थानिक पुरुष' अर्थात् उसी देश के मनुष्य (गुप्तचर) रखे जाते थे जिनको सब कुछ हाल मालूम रहता था परन्तु उनका पता किसी को नहीं चल सकता था।

अणहिलवाड़ा के राजा लोग भूमिकर के अतिरिक्त देश से बाहर जाने वाले माल पर व्यापारियों और यात्रियों से 'कर' वसूल करते थे। समुद्रगमन और व्यापार के विषय में बहुत कम वृत्तान्त प्राप्त

होता है परन्तु, समुद्री जहाजों, व्यापार तथा समुद्री डाकुओं का हाल आवश्य मिलता है। व्यापारी लोग जो 'व्यवहरिया' कहलाते थे बहुत धनवान् होते थे। और, ऐसा कहते हैं कि, जिसके पास एक करोड का धन होता था वह अपने मकान पर 'करोडपति-ध्वजा' (१) फहरा सकता था। योगराज के समय मे घोड़ों, हाथियों और दूसरे सामान से लदा हुआ एक जहाज देवपट्टण में आकर उतरा था, सिद्धराज के समय में समुद्री व्यापारी, सांयात्रिक आदि समुद्री डाकुओं के भय से अपना सोना बोरियों में छुपा कर लाते थे। उस समय, उत्तर कोंकण, गुजरात और उसके द्वीप-कल्प भाग के समुद्री किनारे अणहिलवाडा के राजाओं के अधिकार में थे। उनमे से स्तम्भतीर्थ और भृगुपुर, ये दोनों बन्दरगाह खम्भात और भडौंच के नाम से प्रसिद्ध हैं, सूर्यपुर से सूरत का अभिप्राय होगा और सभवतः गणदेवी ही गणदाबा (१) कहलाता हो। इनके अतिरिक्त बेट, द्वारका, देवपट्टण, महुवा और गोपीनाथ आदि अन्य स्थानों से भी सौराष्ट्र का समुद्री किनारा भरा हुआ था।

जैन और ब्राह्मण उस समय के प्रचलित धर्म थे। इनमे निरन्तर बढ़ाचढ़ी चलती रहती थी और बारी बारी से एक दूसरे को दबाते रहते

---

(१) ऐसा रिवाज था कि एक लाख से लेकर निन्यान्वे लाख तक जिसके घर में जितने रुपये होते थे वह उतने ही दीवे जलाता था। सिद्धराज ने एक मनुष्य के घर पर ९९ दिवे जलते देख कर पूछताछ की तो मालूम हुआ कि वह ९९ लाख का आसामी था, इस पर राजा ने उसे अपने राजकोष से ४ लाख रुपये और देकर करोडपति बना दिया। इसके बाद उस मनुष्य को दीवे न जलाकर केवल एक ध्वजा ही फहरानी पड़ती थी।

(१) यह गणदेवी नहीं वरन् कच्छ के वागड़ परगने का कथकोट किला है।

थे। पहले राजा के समय में जैन धर्म की प्रबलता थी इसका कारण यह हो सकता है कि राजा के बाल्यकाल में उसका संरक्षण इसी धर्म में हुआ था और उसकी माता का भी प्रभाव था क्योंकि वह इसी धर्म में दीक्षित हो चुकी थी। वनराज और उसके क्रमानुयायी तो शैव धर्म को ही मानते रहे परन्तु जब से सिद्धराज ने अर्हन्त का मत सुना और कुमारपाल ने इसको स्वीकृत कर लिया तब से स्थिति में कुछ परिवर्तन हो गया और उसी काल से जहां तक हम आ पहुंचे हैं वहां तक, अजय पाल के अल्पकालीन राज्य को छोड़कर, इस राज्य में जैनधर्म का ही प्राबल्य रहा और यहां के राजा लोग उस धर्म के प्रामाणिक पुरुष माने जाते थे। इन धर्मों के विवाद उग्ररूप में परन्तु नियमपूर्वक चलते रहते थे। हिन्दू होने के नाते राजा सभा के अध्यक्ष पद पर विराजमान होता था। हम देख चुके हैं कि सिद्धराज जो शैव था अथवाद्वार (मत का मानने वाला) था ऐसी धर्मसभा का अध्यक्ष बनकर सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए बैठा था।

यात्रास्थानों में शिव और विष्णु के मन्दिरों में क्रमशः सोमनाथ और द्वारका के मन्दिर ही प्रसिद्ध थे।(२) आरासुर में अम्बाजी और चम्पानेर में कालिकादेवी के मन्दिर भी मौजूद थे और इसी देवी का हिंगलाज नाम से नगर थानसी में भी एक प्रसिद्ध देवालय था। परन्तु

(२) कच्छ के पश्चिमी किनारे पर गोरगाम (आधुनिक नारायण सरोवर) नामक बहुत पुराना तीर्थस्थान है। मूलराज का पिता अपनी रानी की मृत्यु के बाद द्वारका की यात्रा करके गोरगाद की यात्रा करने गया था। वहां से लौट कर अणहिलवाड़ में आते समय कच्छ के लाखा ने अपनी बहन रायाजी का विवाह उसके साथ किया था।

आजकल इस माता के जो देवालय देश मे स्थान स्थान पर पाए जाते हैं उनके विषय में कोई लेख नहीं है। शत्रुञ्जय और गिरनार पर के जैन तीर्थों के विषय मे लेख मिलते हैं। कच्छ के रण के किनारे पर स्थित शङ्खपुर भी इन्हीं के साथ का है और आचार्य मेरूतुग ने शङ्खपुर के नाम से जो वर्णन लिखा है उससे विदित होता है कि इसका जीर्णोद्धार उसीके समय मे हुआ था। माही के सामने के किनारे पर खम्भात और कावी में और ढाढर के किनारे पर गन्धार मे भी जैनों के तीर्थ वर्तमान थे। भीमदेव प्रथम के समय में आबू पर एक जैन देवालय वना और कुमारपाल ने भी इसके पास ही तारिङ्गा के पर्वत पर श्री अजीतनाथ की स्थापना की।

कुमारिका सरस्वती की पतली और मन्द धारा से लेकर नर्मदा के वेगवान् प्रवाह तक वहुत सी पवित्र नदियाँ इस प्रान्त में वहती हैं। ताप्ती, माही, सावरमती और वहुत सी अप्रसिद्ध नदियों पर वहुत से प्रसिद्ध तीर्थस्थान वने हुए हैं जिनकी महिमा उनके माहात्म्यों में वर्णित है।

घरेलू रहन सहन के विषय में भी हमें थोड़ी वहुत सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। राजा को जगाने के लिए प्रात. काल राज-नौवत वजती और शख ध्वनि की जाती है। वह उठ कर घोड़े पर चढकर व्यायाम करने चला जाता है। उसके महल किले के भीतर निर्मित हैं, वहीं पर अन्य राजगृह भी वने होते हैं। कीर्तिस्तम्भ इन राजप्रासादों की शोभा बढ़ाते रहते हैं। एक दरवाजा, जो घटिकाद्वार (अथवा घण्टाघर) कहलाता है, शहर की ओर खुलता है और उसके आगे ही सामने त्रिपोलिया (तीन दरवाजों का एक घेरा) वना होता है। दिन को राजा का

दरबार लगता है, द्वार पर चोबदार (१) छड़ी लिए हुए खड़े रहते हैं और दरबार में आने वालों की रोक टोक करते हैं। युवराज राजा के पास बैठता है और मण्डलेश्वर तथा अन्य सामन्त उसके चारों ओर रहते हैं। मन्त्रीराज अथवा प्रधान भी अपने सहकारियों के साथ वहाँ पर उपस्थित रहता है और बहुत ही गंभीरता के साथ मितव्ययिता की मंत्रणा देता है तथा ऐसे ऐसे पुराने लिखित प्रमाण और उदाहरण प्रस्तुत करता है जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। जब राज का कामकाज हो चुकता है तो विद्वान् और पण्डित आते हैं और, सर्व साधारण की समझ से ऊँची अत न समझने वालों के लिए शुष्क, विद्या और व्याकरण की दम्भपूर्ण बातें आरू होती हैं, अथवा कोई विदेश से आया हुआ भाट या चित्रकार दरबार में आकर राम और विभीषण की प्राचीन कथा का बखान करता है, अथवा किसी दूर देश की ऐसी रमणी की बात चलाता है जिसके अभिनव सौन्दर्य की कल्पना प्रत्येक दरबारी के मन में उतर आती है। वाराङ्गनाओं की उपस्थिति से यह दरबार वञ्चित रहता हो ऐसी बात नहीं है; इन वारनिताओं से संसार में प्रशंसनीय चतुराई प्राप्त होती है, इनके वचन मार्मिक होते हैं, और जिस कठिन कर्म की उलझी हुई ग्रन्थि को सुलझाने में बड़े बड़े पण्डित असफल हो जाते हैं उसी को ये अपने रसभरे अथवा तीक्ष्ण उत्तरों की छुरिका से सहज में काट डालती हैं, कहा भी है —

"देशाटनं पण्डितमित्रता च वाराङ्गनाराजसभाप्रवेशः
अनेक शास्त्राणि विलोकितानि चातुर्यमूलानि भवन्ति पञ्च।

---

(१) चोब अर्थात् लकड़ी की छड़ी धारण करने वाला।

देशाटन, पण्डितों की मित्रता, वाराङ्गना, राज–दरबार मे प्रवेश, और अनेक शास्त्रों का अवलोकन, ये पाचों चतुराई प्राप्त करने के साधन हैं।

हाथी पर सवार होकर अथवा सुखासन मे बैठ कर राजा बाहर निकलता है और उत्सव के दिन, उसके मार्ग मे आने वाली दूकानें सजाई जाती हैं। साय देवपूजा के उपरान्त आरती हो चुकने पर वह ऊपर के महल मे, जो चन्द्रशाला कहलता है, चला जाता है। वहां उसे भोजन सामग्री तैयार मिलती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस सामग्री में मास और मदिरा भी होते हैं क्योंकि हम सामन्त-सिंह को नशे मे चूर देख चुके हैं और जैन-धर्म में परिवर्तित कुमारपाल के मदमास त्याग का विवरण भी पढ चुके हैं। भोजन के अनन्तर उसके अङ्गों पर चन्दन का विलेपन होता है, पान सुपारी भेंट किये जाते हैं और फिर वह छत से साकलों के सहारे लटकते हुए हिन्दोले पर आराम करता है। वह अपने लाल वस्त्र उतार कर पलग पर तकिए के सहारे डाल देता है और विश्राम करने लगता है। पहरेदार पहरे पर सन्नद्ध हो जाते हैं और एक कोने में से दीपक अपना मन्द मन्द प्रकाश फैलाता रहता है।

यहा पर यह न समझ लेना चाहिये कि राजा के कर्तव्य यहीं समाप्त हो जाते हैं। अभी तो उसे वीरचर्या करने के लिए पलग छोड़ना पड़ेगा। हाथ में तलवार लेकर वह अकेला निकल पड़ता है अथवा पानी की झारी लेकर एक सेवक उसके साथ हो जाता है और इस प्रकार रात्रि के समय अपने नगर की शून्य गलियों में वह गश्त लगाता है, अथवा दरवाजे से निकलकर किले के बाहर, जहां रात को गदे पच्ची

फिरते रहते हैं, ऐसे डाकिनियों और योगिनियों के स्थान पर पहुँच कर उनको बहुत से प्रश्नों का उत्तर देने व भविष्य की बातें बताने के लिए बाध्य करता है। द्वयाश्रय के कर्ता ने सिद्धराज के रात्रि-भ्रमण के विषय में लिखा है कि, "जिन लोगों के विषय में उस रात राजा को कोई हाल मालूम हो जाता उन्हें वह दिन में अपने पास बुलाता और कहता, 'तुमको अमुक बात का दुःख है अथवा तुमको अमुक बात की खुशी है' इससे उसकी प्रजा यह समझ लेती कि वह सबके मन की बातें जानता था और देव का अवतार था। अपनी प्रजा के सुख दुख का हाल जानने के लिए वेप बदल कर निकले हुए राजा को जहां भूतों और डाकिनियों का सहवास करना पड़ता वहां कितनी ही बार उसके छोटे-मोटे दुख को दूर करने के साधन भी मिल जाते थे। कभी तो किसी धन-वान् व्यापारी के घर पर चमकते हुए दीपकों को देखकर उसका मन ललचा जाता है, तो कभी छद्मवेप में होते हुए भी किसी उत्सव में उसका स्वागत स्वागत होता है और कभी राग रागिनी व हास परिहास की आवाज से आकृष्ट होकर वह वहां जा पहुंचता है जहां किसी शिव-मन्दिर के मण्डप में कोई सिलावट अपनी वास्तविक बुद्धि से लोगों को आनन्दित कर रहा होता है। जयसिंह महान् के बारे में एक बात हमारे सुनने में आई है कि एक बार रूपमेरुप्रासाद में नाटक हो रहा था। राजा भी वहां जा पहुंचा और एक बनिया उसके साथ वहीं पर बहुत हिलमिल गया। जब नाटक के रस में परिपाक होने लगा तो वह वणिक् आनन्दविभोर होकर राजा के कंधे पर भार डाल कर खड़ा रहा और जिस हाथ ने संगार व यशोवर्मा का मानमर्दन किया था उसी हाथ से पान सुपारी लेकर खाता रहा। दूसरे दिन सवेरे ही जब दरबार में बुलाया गया तो गत रात्रि के साथी को सिंहासन पर विराजमान देख

कर वह हक्कावक्का रह गया, परन्तु वाद मे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करने लगा और राजा ने हसकर उसका स्वागत करके विदा किया। ऐसा जान पड़ता है कि इन खेलों मे पर्याप्त धन खर्च होता था और केवल धनवान् लोग ही इसको वहन कर सकते थे। एक दूसरे समय की वात लिखी है कि एक महाजन ने शिव-मन्दिर मे नाटक करवाया था। जयसिंह भी उसे देखने जा पहुचे। उस समय वे अपने मन मे विचार करने लगे कि 'इस महाजन से मालवा पर चढाई करने के लिए सेना इकट्ठी करने के निमित्त कितना धन कैसे प्राप्त करना चाहिए?

मेरुतु ग और द्व्याश्रय के कर्ता, इन दोनों में से किसी ने भी अपने समय की किसी विशेष अथवा सामान्य इमारत का वर्णन नहीं किया है। कुमारपाल-चरित्र से प्राप्त अणहिलपुर की राजधानी का वर्णन यहा पर उद्धृत करते हैं।

"अणहिलपुर वारह कोस के घेरे में बसा हुआ था, जिसमें बहुत से देवालय और विद्यालय थे, चौरासी चौक थे और चौरासी ही बाजार थे जिनमें सोने रूपे की टकसालें थीं, जिस प्रकार भिन्न भिन्न वर्णों के घर भिन्न भिन्न चौकों (चतुष्कों) में बने हुए थे उसी प्रकार हाथीदात रेशम, हीरा, मोती, आदि के भी अलग अलग बाजार लगते थे, सर्राफों का बाजार अलग था और सुगन्धित द्रव्यों और लेपनादि की वस्तुओं का अलग, एक बाजार वैद्यों का था, एक कारीगरों का और एक सोने चादी के काम करने वाले सोनियों ( स्वर्णकारों ) का। इसी प्रकार नाविकों, भाटों और वही वाचने वाले रावों आदि के लिए अलग अलग स्थान नियुक्त थे। अठारहों वर्ण नगर में वसते थे और सभी आपस में प्रसन्न थे। राजमहल के आसपास ही आयुधागार, फीलखाना

(हस्तिशाला) घुड़साल, रथशाला और हिसाब किताब की तथा दूसरे राजकाज की कचहरियों के लिए इमारतें बनी हुई थीं। नगर में आने जाने व बिकने वाले सभी प्रकार के बहुमूल्य माल जैसे मसाले, फल, दवाइयां, कपूर और धातुओं इत्यादि पर जकात वसूल की जाती थी और इनके लिए अलग अलग राहदारियां नियुक्त थीं। यह नगर सभी प्रकार के व्यापार का केन्द्र था, जकात के एक लाख टंक नित्य वसूल होते थे। नगर में यदि किसी से पानी मांगो तो दूध लेकर आता था। यहां पर बहुत से जैन-मन्दिर भी थे और एक झील के किनारे पर सहस्र लिंग महादेव का विशाल देवालय बना हुआ था। चंपा नारियल गुलाब चन्दन और आमों आदि के पौधों और वृक्षों से भरपूर भांति भांति की रंग बिरंगी बेलों से सजी हुई और जिनमें अमृत-तुल्य जल के झरने बहते थे ऐसी वाड़ियों में घूम फिर कर नगरनिवासी आनन्द प्राप्त करते थे। यहां पर वेद-शास्त्रों की चर्चा निरन्तर चलती रहती थी जिससे श्रोतागण को बोध प्राप्त होता था। जैन-साधुओं की और बचन के पक्के तथा व्यापार में कुशल व्यापारियों की भी यहां पर कमी न थी। व्याकरण पढ़ने के लिए बहुत सी पाठशालाएँ थीं। अणहिलवाड़ा जन-समुद्र के समान था यदि समुद्र के पानी का माप किया जा सके तो वहां के निवासी प्राणियों की गणना की जा सकती थी। वहां की सेना असंख्य थी और बड़े बड़े मदमाती हाथियों की कोई कमी न थी। (१)

परन्तु यह लिखते हुए दुःख होता है कि इस पूरी शानशौकत की अब कुछ भी निशानी नहीं बची है। अणहिलवाड़ा के शुद्ध खण्डहर

(१) टाड कृत वैस्टर्न इण्डिया पृ १५६ १५८ के आधार पर।

आधुनिक पाटण शहर के किले की दीवारों के भीतर की ओर और कुछ बाहर की तरफ के सपाट मैदान में पडे हुए है। परन्तु, वलभीपुर के खण्डहरों की भाति खोद कर शोध करने पर इनका भी पता चल जाता है। वनराज की राजधानी के खण्डहर वेबीलोन की जैसी ईटों के न होकर कोरे आरस पाषाण से बने हुए हैं। जिस आरासर पर्वत की नीली रेखा इस ऊजड़ रेतीले मैदान मे से क्षितिज की ओर दिखाई पडती है उसी का बहुत सा भाग इस नगर के निर्माण के लिए लाया गया होगा। भीम-देव प्रथम की रानी के बनवाए हुए कुए का कुछ भाग अब भी विद्यमान है और इससे थोड़ी ही दूर पर सिद्धराज के बधवाए हुए शोभायमान सरोवर का स्थान जान पड़ता है जिसके बीच मे एक टेकरी पर अब एक मुसलमान की कब्र बनी हुई है। बाकी बचे हुए भाग पर छः लम्बी शताब्दियों और मुसलमानों के अत्याचारों ने अपना काम किया है। जो कुछ 'कम्बाइसिस' (खम्भात) और समय ने बचा रखा है उसको लोभ स्वाहा कर रहा है, और अब, अणहिलवाड़ा की ठडी पडी राख को उसकी महिमा और अपनी अप्रतिष्ठा को न समझने वाले, उसके स्वामी बने हुए, मराठे तुच्छ से अर्थ-लाभ के लिए बेचे जा रहे हैं।

ठेठ हिन्दू काल की रहन सहन की इमारतों के विषय में तो हम उनके बाद की बनी हुई इमारतों को देखकर केवल एक सामान्य कल्पना ही कर सकते हैं। किसानों की झोंपडियां नष्ट हो गई हैं और राजों के महल भी उन्हीं के समान विलीन हो चुके हैं परन्तु सार्वजनिक इमारतों की शोभा के विषय मे अब तक के बचे खुचे खण्डहर प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उन्हीं के आधार पर थोडा सा प्रयास करके हम अवश्य ही उस समय के कुओं, तालावों, कीर्तिस्तम्भों, देवालयों और अणहिलपुर के राजदुर्गों की तस्वीर अपनी आखों के सामने खड़ी कर सकते हैं।

इन खण्डहरों में डभोई और झिंझूवाड़ा के मुख्य किले बहुत ही आकर्षक हैं। यद्यपि इनकी बनावट और विस्तार में बहुत समानता है परन्तु झिंझूवाड़े के किले की बनावट में सुघरता अधिक पाई जाती है और इसकी एकान्त स्थिति के कारण इसको हानि भी थोड़ी ही पहुँच पाई है, इसलिए हम यहां पर वर्णन करने के लिए इसीको चुन लेते हैं—

झिंझूवाड़ा (१) का किला प्रायः वर्गाकार है और उसकी एक भुजा की लम्बाई लगभग आठ सौ गज है। इसके चारों ओर की दीवारें बहुत मजबूत बनी हुई हैं और ऊंचाई में लगभग ४० फीट हैं। (२) चारों ओर दीवारों के बीच में एक एक दरवाजा बना हुआ है जिसके ऊपर की मेढ़ (छज्ज) बाहर निकलते हुए धनुषाकार टोडों के आधार

---

(१) मि. फार्बस् का कहना है कि झिञ्झू नाम के रैबारी के नाम पर इस किले का यह नाम पड़ा था। यह किला अणहिलवाड़ा पट्टण के वत्सार राजा के राज्य की सीमा पर बारहवीं शताब्दी में बंधवाया गया था।

(२) सिबास्तापोल (Sebastapol) के किले की रक्षा के विषय में सन् १८५५ ई. के नवम्बर मास के 'यूनाइटेड स्टेट्स् जर्नल' के अंक में सर जॉन बर्गोइन ने एक लेख लिखा है। इस लेख को हम यहां पर उद्धृत करते हैं जिससे पाठकों को पता चल जायगा कि उस समय झिञ्झूवाड़ा का किला कितना महत्वपूर्ण था।

"रक्षा के मुख्य साधनों में से एक प्रधान साधन तो यह है कि आक्रमणकारी के मार्ग में अटक पैदा कर देना और सर्वोत्तम अटकाव यह है कि मजबूत भींत अथवा पक्का मोर्चा बनवाया जावे। यदि भींत ऊंचाई में १० फीट से अधिक हो तो वास्तव में यह बहुत लाभदायक मालूम होती है—और जब तक यह सहीसलामत (पूरी) रहती है तब तक तो इस पर चढ़ कर नीचे उतर जाने के

पर स्थित है। इन टोडों के सिरे आपस में लगभग मिले हुए से हैं और कमान का काम करते हैं। किले की दीवारें इतनी मोटी हैं कि उनमे एक के बाद एक छ कौंसाकार ( महराबदार ) दरवाजे बने हुए हैं और उन पर पत्थर की सीधी छत पटी हुई है। मुसलमानों ने आकर, गुम्बजदार छत बनवाने मे सुगमता के विचार से कमाने बनवाने का रिवाज चलाया। तदनन्तर बहुत दिनों बाद तक यह चाल प्रचलित रही थी। किले के प्रत्येक कोने पर एक बुर्ज बनी हुई है जिसका सामान्य आकार तो चौरस है परन्तु उसको बनाने वाले हिन्दू कारीगर ने अपनी पसन्द के अनुसार उसमें जगह जगह खोंचे डालकर उसको असाधारण बना दिया है। बीच के दरवाजे और कोने की बुर्ज के बीच बीच मे चार चार आयताकार झरोखे बने हुए हैं। दीवारों को सुन्दर बनाने के लिए थोड़े थोड़े अन्तर पर अन्त तक आड़ी पट्टियों की कुराई करदी गई है जिनके ऊपर की ओर अर्द्धगोलाकार कँगूरे बने हुए हैं, जो ऊपर होकर जाने वाले चौकीदार के मार्ग की आड़ का काम करते हैं। दरवाजों में कुराई का इतना काम हो रहा है कि उसको केवल फोटोग्राफी की कला से ही ठीक ठीक सामने लाकर रखा जा सकता है। दक्षिणी दरवाजे के सामने ही किले के भीतर की ओर पास ही मे एक वृत्ताकार अथवा बहुकोण कुण्ड बना हुआ है जिसका व्यास लगभग ३०० गज है और जिसका पैडियोंवाला घाट इतनी ही दूरी पर जगह जगह पत्थर जडी हुई सड़कों से भग्न है कि

---

सिवाय और कोई उपाय ही नहीं हो सकता। यह एक सैनिक साहसिक कर्म है और जब तक बचाव करने वाले कमजोर न पड़ जावें अथवा कोई आकस्मिक हमला न किया जावे तब तक इस में सफलता मिलना भी बहुत टेढी खीर है।

जिससे जानवर (ढोर) तथा बैलगाड़ियां आदि सुगमता से पानी तक पहुंच सकें। प्रत्येक सड़क की शोभा बढ़ाने के लिए दो मंडप बने हुए हैं जिनके ऊपर शंकु के आकार की छत्रियां बनी हुई हैं। इस कुण्ड के पास ही एक बावड़ी है जिसका वर्णन अभी ठहर कर किया जावेगा। इस किले के चारों दरवाजे अपनी भिन्न भिन्न प्रकार की टूटी फूटी आकृति लिए अब भी खड़े हुए हैं और इनमें से दो को मिलाने वाली एक दीवार भी कोनेवाले झरोखे सहित लगभग ठीक ठीक दशा में विद्यमान है। अब तक हमने जिस समचौरस भाग का वर्णन किया है उससे सम्पूर्ण किले के क्षेत्रफल का लगभग चौथाई भाग व्याप्त है और इसको चारों ओर से एक हलकी सी दीवार और भी घेरे हुए है जो गोलाकार झरोखों से सुदृढ़ बनाई गई है और जिसके बीच बीच में महरावदार दरवाजे बने हुए हैं। इस भाग में आजकल भी शहर बसा हुआ है और यह जगह कोली ठाकुरों के अधिकार में हैं परन्तु किले की अन्तरंग चारदीवारी में जो इमारतें बनी हुई थी वे बिलकुल नष्ट होगई हैं और वहां पर पूर्णरूप से जंगल बन गया है। यहां पर हमें यह लिखना न भूलना चाहिए कि प्राचीन मार्गों में से बचे हुए किन्हीं मार्गों में 'मई श्री ऊदल' ऐसा लेख पाया जाता है। इससे विदित होता है कि इस किले को बंधवाने में उदयन मन्त्री का आदेश काम करता था।

ऊपर लिखा जा चुका है कि डभोई के किले का आकार और विस्तार जिंझुवाड़ा के किले के आकार और विस्तार से मिलता जुलता सा है। इसका आकार अपेक्षाकृत कम नियमित है और इसकी दो भुजाएं जो मिलकर एक संकड़ा कोण बनाती हैं, दूसरी दोनों भुजाओं से अधिक लम्बी हैं। छोटी भुजाओं की लम्बाई लगभग ८०० और बड़ी भुजाओं

की १००० गज है । इस किले की ऊंचाई जिञ्जूवाड़ा के किले की अपेक्षा कुछ कम है और इसके तीन दरवाजे भी उसके दरवाजों की समानता नहीं कर सकते । परन्तु यह कमी इसके चौथे दरवाजे से पूरी हो जाती है, जो हीरा दरवाजा कहलाता है। इस दरवाजे की योजना वहुत यत्न से की गई जान पडती है और यह ऊचाई मे भी वहुत वढ़कर है। इसके कोने की बुर्जों में से एक अभी तक मौजूद है। वह इतनी सुन्दर और अनुपम है कि उसका चित्र देना आवश्यक प्रतीत होता है। इससे विदित होता है कि इस किले की दीवारों का ढाल भीतर की ओर है। इस किले के विषय मे दूसरी ध्यान देने योग्य वात यह है कि इसमे भीतर की ओर दीवार के सहारे सहारे एक स्तभ-पक्ति चली गई है जो कुछेक फीट चौड़ी छत को साधे हुए है। इससे एक लम्वा और ढका हुआ द्वार-मण्डप सा वन गया है जो कितनी ही वार हिन्दू किलेदारों के लिए अमूल्य आश्रयस्थान बना होगा। (१) इस डभोई के किले मे एक विषमाकार कुण्ड अथवा तालाब भी है।

यहा पर यह बात याद रखनी चाहिए कि जिन किलों का हमने वर्णन किया है वे साधारण सीमाप्रान्तीय सैनिक सस्थान थे अन्यथा धोलका आदि दूसरे नगर शानशौकत तथा विस्तार में इनसे बहुत बढ-कर थे और मात्र सगमर्मर के पत्थरों से निर्मित इमारतों से सुशोभित राजधानी का नगर अणहिलपुर तो इन सबसे विशिष्ट था ही।

जो मन्दिर अब तक बच रहे हैं उनमे सबसे प्रमुख सिद्धपुर की रुद्रमाला का देवालय है। यह देखने में सामान्य बनावट की लग-

---

(१) 'ओरियण्टल मैमॉइर्स' के लेखक ने इस स्तम्भपक्ति की तुलना 'पॉम्पिआइ' की सामने वाली बारकों की द्वारपक्ति से की है। (भा २, पृ० ३२५, १८१३ ई० का सस्करण )

भग तीन लाख रू की विशाल इमारत है। इसका मण्डप बाहर से तो देखने में समचौरस ही दिखाई पड़ता है परन्तु इसके स्तम्भ इस प्रकार से लगे हुए हैं कि भीतर से इसकी रचना अष्टकोण-मण्डप की सी जान पड़ती है। (१) तीन बाजुओं में से प्रत्येक के मध्य में एक द्वार मण्डप अथवा रूपचौरी है और चौथी बाजू में निज-मन्दिर अथवा मूर्ति-स्थान का मण्डप है जिसकी बनावट ऊपर से शंकु के आकार की है। यह मध्यमण्डप से बहुत ऊँचा है तथा इसके ऊपर शिखर चढ़ा हुआ है। दो रूपचौरियों के ऊपरी गुम्बज अब अदृश्य हो गये हैं अथवा दूसरे शब्दों में वे छिन्न भिन्न स्थिति में हैं और निजमण्डप का मुखभाग मात्र अवशिष्ट है।

इस मन्दिर के प्रत्येक बाजू में एक कीर्तिस्तम्भ था। उनमें से एक तो अब भी लगभग ठीक ठीक दशा में मौजूद है। अत्यन्त शोभायमान दो स्तम्भों पर सुन्दर कोरणी के काम की एक महराब ठहरी हुई है। अद्भुत सामुद्रिक (दरियाई) हाथियों के मस्तक के ढाल की बनी हुई नागदन्तियां इन स्तम्भों में लगी हुई हैं जो इनकी ऊंचाई के दो तिहाई भाग से आगे की ओर निकली हुई हैं। इन नागदन्तियों के आगे से ही बारीक और सुन्दर कारीगरीयुक्त एक कमान (महराब) आरम्भ होती है जिसको तोरण कहते हैं। इस कमान का मध्य भाग ऊपर के सीधे भाग से स्पर्श करता है। यह कीर्तिस्तम्भ लगभग ३५ फीट ऊंचा है और इसमें नीचे से लेकर ऊपर शिखर तक बहुत बढ़िया खुदाई का काम हो रहा है।

---

(१) बर्गिस कज़िन्स' The Architectural Antiquities of Northern Gujrat, ( Vol.ix, Archetectural Survey in Western India, 1903) chapter vi Sidhapur'

जिस मुख्य देवालय का वर्णन हमने किया है वह सरस्वती के सामने एक विशाल चौक मे बीचो बीच स्थित है। तीनों द्वारमण्डपों के सामने बाहर निकलते हुए तीन बड़े बडे दरवाजे हैं और बिल्कुल सामनेवाले द्वार के आगे ही एक बड़ी भारी छत तथा पवित्र नदी के किनारे किनारे बहुत दूर तक बनी हुई सीढियों की पङ्क्ति है। चौक के चारों ओर की दीवार के सहारे सहारे बहुत छोटे छोटे और भी शिखर-बन्ध मन्दिर बने हुए हैं जिनमे से निज-मन्दिर के ठीक पीछे के तीन मन्दिर तो अब भी विद्यमान हैं परन्तु उनको मुसलमानों ने अपनी मसजिदों में परिवर्तित कर लिया है।

मोढेरा का देवालय कुछ भिन्न योजना के अनुसार बना हुआ है। (१) इसकी ऊंचाई केवल एक ही खण्ड की है। इसमें एक तो गर्भ-मन्दिर है जिसके पास ही रंगमण्डप आ गया और इन दोनों से अलग निकलता हुआ एक खुला द्वारमण्डप है। इसका शिखर गिर गया है और गुमटिया भी नष्ट हो चुकी हैं, परन्तु बाकी सब इमारत लगभग ठीक दशा में मौजूद है, फिर भी, जगह जगह स्तम्भों पर ऐसे बाढ़े (कटाव) पड़े हुए हैं जैसे कि किसी धारदार तेज अस्त्र से लकडी पर पड़ जाते हैं। मुसलमान लोग कहते हैं कि यह उनके दरवेशों की तलवारों के निशान हैं। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई एक सौ पचास फीट और चौडाई पचास फीट है। देवालय के सामने ही और आस पास में दोनों ओर सिद्धपुर के देवालय के समान कीर्तिस्तम्भों के अवशेष हैं।

---

(१) मोढेरा के पुरावशेषों का वर्णन बर्जेस ने उक्त पुस्तक के ७ वें प्रकरण में किया है। इसी में अणहिलवाड़ा, वडनगर एव अन्य प्राचीन स्थानों का वर्णन है।

देवालय के सामने जो कीर्तिस्तम्भ है उसके पास ही से पैड़ियों की एक हार (सरणि) चालू होती है जो दो शोभायमान स्तम्भों के बीच में होती हुई ठेठ कुण्ड तक चली गई है। यह कुण्ड क्षेत्रफल में मन्दिर से लगभग चौगुना है।

पैड़ियों पर उतरते हुए यात्री का मन ऊब न जाय इसलिए तीनों बाजुओं के मध्य भाग में जहां तहां छोटी छोटी देव-गुमटियां व शिखरों-वाले बड़े मन्दिर बना दिए गये हैं। कुण्ड के चारों ओर दूसरी इमारतों के भी निशान हैं परन्तु वे किस प्रकार की थीं इसका अनुमान लगाना अब असम्भव है। प्रधान देवालय से पृथक् जो द्वारमण्डप (१) है वह अब सीता की चौरी कहलाता है और सरोवर रामकुण्ड के नाम से विख्यात है। ये दोनों ही वैष्णवों के प्रसिद्ध यात्रास्थान हैं।

बावेल में भी एक देवालय उपरिवर्णित देवालयों जैसा ही है परन्तु उनकी अपेक्षा उसकी ऊंचाई कम है। इसमें एक खण्ड की ऊंचाई का एक खुला हुआ मण्डप है जिसके ऊपर गुमट है, तीन द्वार मण्डप और एक शिखरबन्ध निज-मन्दिर है।

मोढ़ेरा के कुण्ड जैसे और कुंड सिहोर तथा दूसरे स्थानों में भी पाए जाते हैं। रामकुंड के समान ये भी विभिन्न मन्दिरों से सम्बन्धित मालूम होते हैं, परन्तु इनमें से बहुत से देवालय नष्ट हो चुके हैं।

---

(१) वाड़ोली के मन्दिर के आगे भी एक ऐसा ही पृथक् द्वारमण्डप है। देखिए जम्स् बर्ज़ हैंडबुक ऑफ आर्किटेक्चर के प्रथम भाग का पृष्ठ ११२ और वॉड राजस्थान की दूसरी पुस्तक का पृ ७१२। वाड़ोली का यह द्वारमण्डप लग्न-मण्डप भी कहलाता है और ऐसी दन्तकथा प्रचलित है कि यह हूणों की राजपूत कुंवरी (नववधू) का है।

मोढेरा से थोडी ही दूर पर लोधेश्वर (महादेव) का स्थान है, जिसके आगे ही चार कुण्डों का अद्भुत सयोग देखने में आता है। इन चारों के बीच मे 'ग्रीक क्रास' के आकार का एक गोल कुआ भी है। इन कुंडों के आकार प्राय जिञ्जुवाडा के कुंड के समान बहुकोण अथवा गोल ही होते थे। ऐसे ही कुंड मुञ्जपुर, सायला आदि अन्य स्थानों पर भी पाए जाते हैं जिनमे से बहुतों का व्यास तो लगभग सात सौ गज तक का है। अणहिलपुर का सहस्रलिङ्ग तालाब भी इसी वर्ग का था और उसके बचे खुचे निशानों से अनुमान लगाया सकता है कि वह इन सबसे अधिक लम्बा चौडा था। इस तालाब के किनारे पर भी बहुत से देवालय बने हुए थे और यदि यह कहा जाय कि लगभग एक हजार छोटे मोटे देवालय इसकी पाल पर बने हुए थे तो कोई अत्युक्ति न होगी।

गोगो (गोधा) के पास ही द्वीपकल्प में एक आयताकार अथवा समचौरस तालाब के अवशेष मिलते हैं। यह तालाब 'सोनेरिया तालाव' के नाम से प्रसिद्ध है और सिद्धराज का बनवाया हुआ बताया जाता है। जयसिंह की माता मयणल्ल देवी के कार्यकाल में बहुत सी सुन्दर इमारतें बनी थीं। उसी समय के बने हुए दो प्रसिद्ध तालाब, धोलका का तालाव और वीरमगाव का मानसर थे। इनमें से मानसर यहा पर वर्णनीय है। इसका आकार अनियमित ( टेढ़ामेढ़ा ) सा है, और यह कहा जाता है कि यह हिन्दुओं के रणवाद्य शङ्ख की आकृति का बनाया गया है। साधारणतया घाट तथा पैड़ियों की श्रेणी चारों ओर बनी हुई है और उनपर बहुत से छोटे छोटे शिखरवाले देवमण्डप भी निर्मित हैं, (परन्तु अब तो, इनमें से बहुत से नष्ट हो चुके हैं)। कहते हैं कि, इन देवमण्डपों की संख्या वर्ष के दिनों जितनी थी अर्थात् तीन सौ से ऊपर थी। इस तालाब पर बने हुए एक बाजू के मन्दिर में देव-

प्रतिमा के लिए सिंहासन बना हुआ है और दूसरी बाजू के में असारी अथवा जलाधार। इससे विदित होता है कि पहला मन्दिर श्रीकृष्ण का और दूसरा शिवजी का था। आस पास के प्रदेश से बहकर आया हुआ समस्त जल पहले एक अष्टकोण कुण्ड में एकत्रित होता है जहां पर इसका कूड़ा कचरा बैठ जाता है और पानी निथर आता है। इस कुण्ड के सामने ही एक पत्थर लगा हुआ है जिस पर दोनों ओर खुदी हुई प्रतिमाएं शोभित हैं। इस पत्थर पर होकर एक चुनी हुई (चून मिट्टी की बनी हुई) नहर के द्वारा पानी एक नाले में से तालाब में आता है। यह ढकी हुई नहर तीन पृथक् नालों में बँट गई है जिनकी छत पर एक चबूतरा और शंकु के आकार की गुमटी बनी हुई है। इस इमारत की मरम्मत मरहठों के समय में हुई थी और एक भाग तैयार होते ही वहां पर बहुचरा माताजी का स्थान बना दिया गया था। आस पास के घाट पर जगह जगह छोटी सड़कें बनी हुई हैं जो ठेठ पानी की सतह तक पहुँचती हैं। इन सड़कों में से एक के किनारे पर एक विशाल मन्दिर है जिसमें दो शिखरबन्ध गर्भमन्दिर और एक सभा-मण्डप है, और इसके सामने ही तालाब की दूसरी बाजू समतल छतवाली स्तम्भ-पंक्ति खड़ी है।

धरा के विभिन्न भागों में उस समय के बने हुए कुए भी पाए जाते हैं। ये कुए दो प्रकार के हैं एक तो साधारण गोल कुए हैं, परन्तु उन पर झरोखेदार बैठकें बने होते हैं। दूसरे वे कुए हैं जिनको वाव (संस्कृत में वापिका) कहते हैं। ये विशेषतम भव्य और विशेष ही प्रकार के बने हुए होते हैं। जमीन की सतह पर से एक दूसरे से नियमित अन्तर पर इनके चार या पाँच द्वारमण्डप मण्डप दिखाई देते हैं। ये बहुधा बाहर से समचौरस होते हैं परन्तु इनमें से कोई कोई तो भीतर की ओर अष्ट

कोण आकार का बन जाता है। इनके ऊपर की छत स्तम्भों के आधार पर टिकी रहती है और हिन्दू समय की बनावट के अनुसार छतरियों अथवा गुमटियों की आकृति मे निर्मित होती है। सबसे अन्त के मण्डप मे से बावड़ी में उतरने का मार्ग होता है और पैडियाँ वहीं से आरम्भ होकर दूसरी छत्री के नीचे तक पहुँच जाती है जो एक के ऊपर एक इस प्रकार दो दो खम्भों की पक्ति पर खड़ी दिखाई देती हैं। इनके आगे एक बडा भारी प्रस्तार (चबूतरा) होता है और फिर, पैडियों की हार शुरू होती है। अब, ये पेड़ियाँ तीसरे मण्डप की छतरी के नीचे तक पहुँचती हैं, जो एक के ऊपर एक, इस प्रकार स्तम्भों की तीन पक्तियों पर खडी दिखाई देती है। इस तरह एक प्रस्तार से दूसरे प्रस्तार पर होकर नीचे उतरा जाता है और जितनी छतरिया नीचे उतरते हैं उतने ही स्तम्भों की पक्ति एक पर एक करके बढती चली जाती हैं और अन्त में पानी तक पहुच जाती है। वहा से ऊपर की ओर देखने पर कितने हो खण्ड दिखाई देते हैं और प्रत्येक खण्ड पर छज्जे बने होते हैं। सबसे ऊपर के खण्ड की छत्तरी ही पूरी बावडी का परम शोभायमान भाग होता है। किसी किसी बावडी की लम्बाई अस्सी फीट तक होती है और इसके पैंदे में एक गोल कुआ होता है।

इस प्रकार की 'बावों' (वापिकाओं) मे सबसे अधिक वर्णनीय अणहिलपुर की 'राणी की बाव' है, परन्तु यह टूट फूट कर बिलकुल खण्डहर हो गई है। गुजरात और सोरठ के दूसरे भागों में भी कितनी ही बावडिया मौजूद हैं जिनकी दशा भिन्न भिन्न प्रकार की है। एक दूसरी बावडी, जो दर्शनीय है, अहमदाबाद शहर के पास बनी हुई है। यह कब बनी थी, यह तो कहना कठिन है, परन्तु इस की बनावट को देखकर इतना कहा जा सकता है कि यह, सिद्धराज के कुल में राज्य था,

उसी समय की बनी हुई हो सकती है। यह 'माता भवानी की वाव' कहलाती है और लोगों का कहना है कि यह पाँचों पाण्डवों की बनवाई हुई है। जिञ्जूवाड़ा के किले में जो वाव है उसके विषय में पहले लिखा जा चुका है। वढवाण के किले के बाहर और भीतर की तरफ दोनों ही जगह वावड़ियाँ बनी हुई हैं। इनके अतिरिक्त और अन्य स्थानों पर भी कितनी ही हिन्दू वावड़ियां बनी हुई हैं जिनका वर्णन यहां पर विस्तारभय से नहीं किया जा सकता।

जिन कुओं, कुण्डों वावड़ियों और तालावों आदिका बयान हमने किया है उनके बनवाने का सामान्य हेतु यही है कि, 'मृत्युलोक में जो, मनुष्य, पशु पक्षी आदि चौरासी लाख (१) योनि के जीव हैं वे इनका उपयोग करें और बनवाने वाले को चतुर्वर्ग (धर्म अर्थ काम, मोक्ष) की प्राप्ति हो।' ऐसे जलाशय प्रायः उन्हीं स्थानों पर बनवाए गए मालूम होते हैं जहां पानी की कमी रही है, जैसे कि राणकदेवी ने पाटण को बुरा बताते हुए कहा था कि, 'वाळूँ पाटण देश बिन पाणी ढोंढा मरै' अथवा उन स्थानों पर बनवाए गए हैं जहां व्यापार की अधिकता के कारण

---

(१) चौरासी लाख योनि इस प्रकार हैं :—

| | | |
|---|---|---|
| जलयोनि नवलक्षाणि | जलजन्तु | ९, |
| स्थावर लक्ष विंशति | स्थावर | २० |
| कृमयो रुद्र संख्याका | कृमि कीट | ११ |
| पक्षीणां दशलक्षम् | पक्षी | १० , |
| त्रिंशल्लक्षं पशूनां च | पशु | ३० |
| चतुर्लक्षं तु मानुषम् | मनुष्य जाति | ४ |
| | | ८४ , |

मनुष्यों का आना जाना खूब होता है, या नगर के दरवाजों के पास, अथवा चौराहों पर। इसके अतिरिक्त यह कार्य धार्मिक दृष्टि से भी उत्तम गिना जाता है। कहते हैं कि, 'नगर के किले की दीवार बनवाने से जो पुण्य होता है उसकी अपेक्षा दश हजार गुणा पुण्य जलाशय बनवाने से होता है।' ऐसे स्थान बनवा कर कृष्णार्पण कर दिये जाते हैं, दुर्गा को, जो कुण्डलिनी (१) कहलाती है और जिसका आकार कुए का सा होता है, अर्पण कर दिए जाते हैं, अथवा जल के देवता वरुण को, जो 'पुण्य कर्म का साक्षीभूत' (२) है, अर्पित कर दिए जाते हैं। दूसरे प्रमाणों के आधार पर जलाशय बनवाने का हेतु यह है कि, जलाशय बनवाने से एक सौ एक पूर्वज नरक से मुक्त हो जाते हैं, वंशपरम्परा की कीर्ति की वृद्धि होती है, पुत्रपौत्रों की वृद्धि होती है; और जब तक सूर्य और चन्द्रमा विद्यमान हैं तब तक स्वर्ग भोगने को मिलता है।" (३) कुण्डों की तरह बावड़िया भी यदि सब जगह नहीं

---

(१) मूलाधार के ऊपर और नाभि के नीचे कुण्डलिनी नाम की एक शक्ति होती है जिसकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा है। यह आंतों का एक गुच्छा सा होता है।

(२) वरुण को यह पद इसलिए दिया गया है कि दान अथवा पुण्य-कार्य नदी या तालाब के किनारे किया जाता है और चुलुक अथवा कोल की क्रिया करते समय मनुष्य अजलि में पानी लेकर छोड़ता है यह उस दान अथवा कृत्य को निश्चल करने की निशानी है।

(३) जलाशय बनवाने से बहुत पुण्य होता है। पूर्त्तोद्योत और पूर्तकमलाकर आदि ग्रन्थों में इसकी बहुत महिमा लिखी है। जलोत्सर्गमयूख में कहा है कि—

विष्णुधर्मोत्तरे—उदकेन विना तृप्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा ॥

तस्माज्जलाशया कार्या पुरुषेण विपश्चिता ॥

तो प्रायः, मन्दिरों से ही सम्बन्धित होती हैं। यदि किसी तालाब के आसपास शिवजी की मूर्ति स्थापित होती है तो वह तालाब शिवार्पित (शिवजी को अर्पण किया हुआ) समझा जाता है और उसका पानी परम पवित्र माना जाता है। मेरुतुंग ने लिखा है कि काशी के राजा ने सिद्धराज के सान्धिविग्रहिक से अणहिलपुर के लोगों के रहन सहन, मन्दिर कुओं और तालाबों आदि के बारे में पूछकर तिरस्कार करते हुए यह बताना दिया कि, अणहिलपुर का सहस्रलिंग तालाब तो शिव-निर्माल्य है अतएव उसका पानी उपयोग में लाने योग्य नहीं है। सान्धिविग्रहिक ने उत्तर देते हुए पूछा काशी-निवासी जल कहाँ से लाते हैं? उत्तर मिला कि गंगा में से। सान्धिविग्रहिक ने फिर उत्तर दिया "यदि शिवार्पण करने से ही पानी दोषयुक्त हो जाता है तो जो नदी स्वयं महादेव के मस्तक से निकलती है उसका पानी तो अवश्य ही दोषयुक्त होना चाहिए। इन जलाशयों की बनावट से हम य

---

यम — कूपारामप्रपाकारी तथा वृक्षावरोपकः ।
कन्याप्रदः सेतुकारी स्वर्गं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥
तडागो यस्य पानीयं सततं खलु तिष्ठति ।
स्वर्गे लोके गतिस्तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥

नन्दिपुराणे— यो वापीमथवा कूपं देशे तोयविवर्जिते ॥
खानयेत्स नरो याति स्वर्गं प्रेत्य यातं समाः ॥

विष्णु— कूपारामतडागेषु देवतायतनेषु च ॥
पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौलिकं फलम् ॥

भविष्योत्तरे— सर्वस्वेनापि कौन्तेय भूमिष्ठतुलकं कुरु ॥
कुलानि तारयेत्कर्त्ता यत्र गौर्वितृषा भवेत् ॥
यत्र शुभागमं दृश्य तडागादिषु योजयेत् ॥
धन्यः स यथा शिवरम्यतडागं दृष्टमशिवम् ॥

अनुमान लगा सकते हैं कि ये खेती वाडी के प्रयोजन से नहीं बनवाए गए थे और इनकी स्थिति से भी इनके बनवाने वाले के अभिप्राय का यही अनुमान लगाया जा सकता है।

अणहिलपुर के राजाओं की बची हुई ये कुछ निशानिया हैं, परन्तु उनका सब से बड़ा और अचल कीर्तिस्तम्भ तो इस सत्य मे है कि, आगस्टस (१) के भी गर्व का दमन करते हुए, उन्होने बिल्कुल उजाड़ की दशा मे इस देश को प्राप्त किया और इसमे दूध और शहद की नदियॉ बहती हुई छोडकर चले गये। यद्यपि यह विषमता बहुत ही आश्चर्यजनक है, परन्तु इसका सामान्य परिणाम ऐसा हुआ है कि जिसके विषय मे कोई सन्देह ही नहीं किया जा सकता। हा, इन दोनों दशाओं के बीच में जो क्रम चला है उसके विषय मे अन्वेषण करने का काम कितना ही कठिन हो सकता है। जब अणहिलवाडा मे वनराज की सत्ता के नीचे चावड़ा वश की प्रथम स्थापना हुई थी उस समय सम्पूर्ण गुजरात में वहॉ के मूलनिवासी जगली जाति के लोगों के अतिरिक्त और कोई जाति नहीं बसती थी। शायद इससे थोडे ही समय पहले वलभीपुर का नाश हो चुका था और खम्भात, भडौंच तथा अन्य किनारे के नगरों में प्रगति थोड़ा थोड़ा सास ले रही थी। सोरठ और गुजरात के बीच मे जो खारा पानी का तालाब आ गया है उसके ठेठ उत्तरी किनारे के प्रदेश में बसे हुए शहरों में भी शायद लोगों की यह गुन-गुनाहट सुनाई देती होगी कि

'वला औ' वढवाण, ते पाछे पाटणपुर वस्यो'

---

(१) रोम का बादशाह जो बाद में ज्युलिअस सीजर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस का जन्म २३ सितम्बर ६३ ई० पू० और निधन १६ अगस्त १४ ई० को हुआ था।

तो प्राय, मन्दिरों से ही सम्बन्धित होती हैं। यदि किसी तालाब के आसपास शिवजी की मूर्ति स्थापित होती है तो वह तालाब शिवार्पित (शिवजी को अर्पण किया हुआ) समझा जाता है और उसका पानी भी परम पवित्र माना जाता है। मेरुतुंग ने लिखा है कि काशी के राजा ने सिद्धराज के सान्धिविग्रहिक से अणहिलपुर के लोगों के रहन सहन, मन्दिर, कुओं और तालाबों आदि के बारे में पूछकर तिरस्कार करते हुए यह ताना दिया कि अणहिलपुर का सहस्रलिंग तालाब तो शिव निर्माल्य है अतएव उसका पानी उपयोग में लाने योग्य नहीं है। सान्धिविग्रहिक ने उत्तर देते हुए पूछा काशी-निवासी जल कहाँ से लाते हैं? उत्तर मिला कि गंगा में से। सान्धिविग्रहिक ने फिर उत्तर दिया "यदि शिवार्पण करने से ही पानी दोषयुक्त हो जाता है तो जो नदी स्वयं महादेव के मस्तक से निकलती है उसका पानी तो अवश्य ही दोषयुक्त होना चाहिए। इन जलाशयों की बनावट से हम यह

---

यम — कूपारामप्रपाकारी तथा वृक्षारोपकः।
कन्याप्रद॰ सेतुकारी स्वर्गं प्राप्नोत्यसंशयम्॥
तडागे यस्य पानीयं वर्षं यावत् तिष्ठति।
स्वर्गे लोके गतिस्तस्य मात्र कार्या विचारणा॥

नन्दिपुराणे — यो वापीमथवा कूपं देशे तोयविवर्जिते॥
खानयत्स नरो याति स्वर्गं मेय शतं समा॥

विष्णु — कूपारामतडागेषु देवतायतनेषु च॥
पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मौलिकं फलम्॥

भविष्योत्तरे — मरुधन्वनापि सीमान्ते भूमिष्ठमुत्कृष्ट कुरु॥
कूपानि खारयेत्कर्त्ता यत्र गार्हिता भवेत्॥
यत्र गुल्मश्च ह्रस्व तडागानि भावयेत्॥
[illegible] तथा शिवस्तडागं रूपमणिडतम्॥

अनुमान लगा सकते हैं कि ये खेती बाडी के प्रयोजन से नहीं बनवाए गए थे और इनकी स्थिति से भी इनके बनवाने वाले के अभिप्राय का यही अनुमान लगाया जा सकता है।

अणहिलपुर के राजाओं की बची हुई ये कुछ निशानिया हैं, परन्तु उनका सब से बड़ा और अचल कीर्तिस्तम्भ तो इस सत्य में है कि, आगस्टस (१) के भी गर्व का दमन करते हुए, उन्होंने बिल्कुल उजाड़ की दशा में इस देश को प्राप्त किया और इसमें दूध और शहद की नदियाँ बहती हुई छोड़कर चले गये। यद्यपि यह विषमता बहुत ही आश्चर्यजनक है, परन्तु इसका सामान्य परिणाम ऐसा हुआ है कि जिसके विषय मे कोई सन्देह ही नहीं किया जा सकता। हा, इन दोनों दशाओं के बीच मे जो क्रम चला है उसके विषय मे अन्वेषण करने का काम कितना ही कठिन हो सकता है। जब अणहिलवाड़ा मे वनराज की सत्ता के नीचे चावडा वश की प्रथम स्थापना हुई थी उस समय सम्पूर्ण गुजरात में वहाँ के मूलनिवासी जगली जाति के लोगों के अतिरिक्त और कोई जाति नहीं बसती थी। शायद इससे थोडे ही समय पहले वलभीपुर का नाश हो चुका था और खम्भात, भडौंच तथा अन्य किनारे के नगरों में प्रगति थोड़ा थोड़ा सास ले रही थी। सोरठ और गुजरात के बीच में जो खारा पानी का तालाब आ गया है उसके ठेठ उत्तरी किनारे के प्रदेश मे बसे हुए शहरों में भी शायद लोगों की यह गुन-गुनाहट सुनाई देती होगी कि

'वला औ' वढवाण, ते पाछे पाटणपुर बस्यो'

---

(१) रोम का बादशाह जो बाद में ज्युलिअस सीजर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस का जन्म २३ सितम्बर ६३ ई० पू० और निधन १६ अगस्त १४ ई० को हुआ था।

परन्तु अम्बाभवानी से साबरमती के मुख तक तथा मालवा की सीमा बनाने वाली पहाड़ियों से कच्छ के रण के आस पास के सपाट मैदान तक (१) के हिंसक पशुओं के साम्राज्य में बाधा देने वाले ये ही मनुष्य थे जो उनकी ( हिंसक पशुओं की ) अपेक्षा कुछ ही कम दर्जे के जंगली (जंगल की सन्तान) थे। (२) इसके विपरीत यही देश, सोलंकी वंश के अन्तिम राजों के समय में हमें एक राजसत्ता के नीचे सुसंगठित, द्रव्यवान् विशालभवनों से मण्डित बड़ी बड़ी जनसंख्यावाले नगरों से सुशोभित और दृढ़तर दुर्गों से सुरक्षित दिखाई देता है। वृक्षों की जिस गहन घटा से सर ऊँचा उठाए ताड़वृक्ष पहले सर्पसंसाहट किया करता था वहीं अब बड़े बड़े देवालय उसी के प्रतिस्पर्द्धी शिखर को ऊँचा उठाए हुए हैं, पहले जिन स्थानों में केवल बरसात की बौछारों से ही नमी आती थी वहां अब उत्कृष्ट कल्पना से बनाए हुए बड़े बड़े तालाब, जिनके घाटों पर देवमन्दिरों की श्रेणियां बनी हुई हैं तथा भरोखेवाली बावड़ी और कुए, देखने में आते हैं; पहले जो हरिणों के टोले निर्जन और उजाड़ मैदानों में घूमते फिरते थे, वही अब व्यापारी माल से लदे हुए ऊँटों की कतारों और बहुमूल्य वस्तुओं की भेंट लेकर यात्रा के लिए निकले हुए यात्रियों के सङ्घों से चिरसहवास के कारण इतने परिचित हो गए हैं कि उन्हें देखकर चमकते व भागते नहीं हैं।

---

( १ ) अनहलसेन के नगर के नाश में से बचे हुए शंखपुर, पंचासर और शायद आसपास के कुछ और नगर जो इस उजाड़ मैदान के किनारे पर बच रहे थे उनको छोड़ कर।

( २ ) वास्तव में यह एक अपूर्ण सी दन्त कथा प्रचलित है कि यहां पेढ़ा और बड़नगर के ब्राह्मण रहते थे।

अणहिलवाड़ा की महिमा की कथा समाप्त हो चुकी, अब तो उसके नाश और ऊजड़ होने की कथा रह जाती है, परन्तु, फिर भी हमारे देखने में यह बात अवश्य आवेगी कि इसका तेजस्वी प्रभात, जिसने काली और मेघाच्छन्न रात्रि का पीछा करके निकाल बाहर किया था और प्रथम प्रकाश को फैलाया था, वह उस अचानक उत्पन्न हुए और वातुल (तूफ़ानी) दिवस की अपेक्षा कम प्रकाशमान नहीं था, जिसने इसका स्थान ले लिया था। यद्यपि वनराज के समान ही अहमद ने नए और प्रतापी वंश की स्थापना की, यद्यपि उसके पौत्र महमूद ने 'अणहिलपुर के सिंह' जैसी प्रतापशाली पदवी अपने नामके साथ कीर्ति की बही में लिखवाई और यद्यपि इन लोगों ने तथा अन्य राज्यकर्ताओं ने गुजरात की विजयध्वजा को सगर्व दूसरे दूरदेशों में फहराई, परन्तु यह सत्य हमारे ध्यान में उतरे विना नहीं रहता कि जिस दिन से भीमदेव द्वितीय के हाथ से राजदण्ड गिरा था उसी दिन से बहुत समय तक, जब तक कि राजपूतों, मुसलमानों और मरहठों ने अपनी तलवार को म्यान में रखना स्वीकार न कर लिया और 'समुद्रवासी परदेशियों' की सत्ता, बुद्धिमत्ता और विश्वास को झगड़ों के न्याय का आधार स्वीकार न कर लिया तब तक अणहिलवाड़ा की भूमि कभी एक घण्टे भर को भी उसके निवासियों के आपसी झगड़ों में चलनेवाली तलवार से घायल हुए बिना न रही।

---

# प्रकरण १४

## बाघेला(१)—वस्तुपाल और तेजपाल—आबू पर्वत, चन्द्रावती के परमार

सामन्त आनाक सोलंकी के पुत्र लवणप्रसाद के जन्म की कथा कुमारपाल के राज्यकाल के वृत्तान्त में लिखी जा चुकी है। मेरुतुंग ने

---

(१) धर्मसागर कृत प्रवचन परीक्षा के आधार पर—

| नाम | प्रारम्भ संवत् | प्रारम्भ सन् | अन्त संवत् | अन्त सन् | कुल राज्य किया |
|---|---|---|---|---|---|
| लघु भीमदेव | १२३५ | ११७९ | १२९८ | १२४२ | ६३ |
| त्रिभुवनपाल (त्रिभुवनपाल) | १२९८ | १२४१ | १३ २ | १२४६ | ४ |

इस प्रकार चालुक्य वंश के ११ राजों ने १ वर्ष राज्य किया

बाघेला

| नाम | प्रारम्भ संवत् | प्रारम्भ सन् | अन्त संवत् | अन्त सन् | कुल राज्य किया |
|---|---|---|---|---|---|
| वीसलदेव | १३ २ | १२४६ | १३२ | १२६४ | १८ |
| अर्जुनदेव | १३२ | १२६४ | १३३३ | १२७७ | १३ |
| सारंगदेव | १३३३ | १२७७ | २३५३ | १२९७ | २ |
| करणदेव | १३५३ | १२९७ | १३६ | १३ ४ | ७ |
| | | | | | ५८ |

"पट्टावली" में लिखा है कि

वीसलदेवने १८ वर्ष ७ महीने और ११ दिन राज्य किया।
अर्जुनदेवने १३ „ , ७ आर २६
आर सारंगदेवने २१ ८ „ ८ „

लिखा है कि, 'वह श्रीभीम का प्रधान था।' इसके अधिकार में वाघेल (व्याघ्रपल्ली) और धवलगढ अथवा धोलका थे। सम्भवत' धवलगढ

---

'तत अलावदिसुरत्राणराज्यम्।'

जिस समय वाघेलों का कच्छ में राज्य था उस समय के अजार तालुका के खोजरा ग्राम में एक पालिया (स्मारकलेख) था, वह अब भुज में आ गया है। यह लेख महाराज श्री सारगदेव के राज्यकाल का सवत् १३३२ मार्गशीर्ष सुदि ११ शनौ (ता १ ली दिसम्बर, १२७५ ई० शनिवार) का है।

इस विषय में इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग २१ पृ २७७ में लिखा हुआ वृत्तान्त देखने योग्य है। उससे विदित होगा कि प्रवचन-परीक्षा के अनुसार सारगदेव का राज्य सवत् १३३२ विक्रमीय में आरम्भ नही हुआ था वरन् प्रत्येक वाघेला राजा के राज्य सवत् में से दो दो वर्ष घटा देने चाहिए, इसके अनुसार निम्न लिखित वशावली ठीक आती है—

व्याघ्रपल्ली अथवा वाघेलवश

धवल, जिसका कुमारपाल की मौसी के साथ विवाह हुआ था सन् ११६०से११७०

अर्णोराज सन् ११७० से १२००

लवणप्रसाद धोलका का महामण्डलेश्वर सन् १२०० से १२३३ तक

वीरधवल धोलका का राणक-राणा सवत् १२७६ से १२९५, सन् १२१९-२० से १२३८-३९ तक स्वतत्र

प्रतापमल्ल जो वीरधवल का बड़ा पुत्र था, उसका नाम यहाँ लिख देने से १२९४ से १३०० तक ४ वर्ष की कमी पूरी हो जाती है।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| वीसलदेव | सवत् १३०० | सन् १२४३ | से सवत् १३१८ | सन् १२६१ | तक | १८ वर्ष |
| अर्जुनदेव | ,, १३१८ | ,, १२६१ | ,, ,, १३३१ | ,, १२७४ | ,, | १३ ,, |
| सारगदेव | ,, १३३१ | ,, १२७६ | ,, ,, १३५३ | ,, १२९६ | ,, | २२ ,, |
| कर्णदेव दूसरा | ,, १३५३ | ,, १२९६ | ,, ,, १३६१ | ,, १३०४ | ,, | ८ ,, |

वर्ष

# प्रकरण १४

## बाघेला(१)—वस्तुपाल और तेजपाल—आबू पर्वत, चन्द्रावती के परमार

सामन्त अर्णोराज सोलंकी के पुत्र लवणप्रसाद के जन्म की कथा कुमारपाल के राज्यकाल के वृत्तान्त में लिखी जा चुकी है। मेरुतुंग ने

---

(१) धर्मसागर कृत प्रवचन परीक्षा के आधार पर—

| नाम | प्रारम्भ संवत् | प्रारम्भ सन् | अन्त संवत् | अन्त सन् | कुल राज्य किया |
|---|---|---|---|---|---|
| लघु भीमदेव | १२३५ | ११७९ | १२९८ | १२४२ | ६३ |
| त्रिभुवनपाल (त्रिभुवनपाल) | १२९८ | १२४२ | १३ २ | १२४६ | ४ |

इस प्रकार चालुक्य वंश के ११ राजों ने १ वर्ष राज्य किया

बाघेला

| नाम | प्रारम्भ संवत् | प्रारम्भ सन् | अन्त संवत् | अन्त सन् | कुल राज्य किया |
|---|---|---|---|---|---|
| वीसलदेव | १३ २ | १२४६ | १३२० | १२६४ | १८ |
| अर्जुनदेव | १३२० | १२६४ | १३३१ | १२७५ | ११ |
| सारंगदेव | १३३१ | १२७५ | १३५३ | १२९७ | २ |
| लघुकर्ण | १३५३ | १२९७ | १३६० | १३ ४ | ७ |
| | | | | | ५८ |

“पट्टावली” में लिखा है कि

वीसलदेवने १८ वर्ष ७ महीने और ११ दिन राज्य किया।
अर्जुनदेवने ११ ,, ७ ,, और २५
और सारंगदेवने २१ ,, ८ ८ ७

लिखा है कि, 'वह श्रीभीम का प्रधान था ।' इसके अधिकार मे वाघेल (व्याघ्रपल्ली) और धवलगढ़ अथवा धोलका थे । सम्भवत. धवलगढ

---

'तत अलावदिसुरत्राणराज्यम् ।'

जिस समय वाघेलों का कच्छ में राज्य था उस समय के अजार तालुका के खोसरा ग्राम में एक पालिया (स्मारकलेख) था, वह अब भुज में आ गया है। यह लेख महाराज श्री सारगदेव के राज्यकाल का सवत् १३३२ मार्गशीर्ष सुदि ११ शनौ ( ता. १ ली दिसम्बर, १२७५ ई० शनिवार ) का है।

इस विषय में इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग २१ पृ २७७ में लिखा हुआ वृत्तान्त देखने योग्य है। उससे विदित होगा कि प्रवचन-परीक्षा के अनुसार सारगदेव का राज्य सवत् १३३३ विक्रमीय में आरम्भ नही हुआ था वरन् प्रत्येक वाघेला राजा के राज्य सवत् में से दो दो वर्ष घटा देने चाहिए, इसके अनुसार निम्न लिखित वशावली ठीक आती है—

### व्याघ्रपल्ली अथवा वाघेलवश

धवल, जिसका कुमारपाल की मौसी के साथ विवाह हुआ था सन् ११६०से११७०

अर्णोराज सन् ११७० से १२००

लवणप्रसाद घोलका का महामण्डलेश्वर सन् १२०० से १२३३ तक

वीरधवल धोलका का राणक-राणा सवत् १२७६ से १२९५, सन् १२१९-२० से १२३८-३९ तक स्वतत्र

प्रतापमल्ल जो वीरधवल का बड़ा पुत्र था, उसका नाम यहा लिख देने से १२९४ से १३०० तक ४ वर्ष की कमी पूरी हो जाती है।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| वीसलदेव | सवत् १३०० | सन् १२४३ | से सवत् १३१८ | सन् १२६१ | तक १८ वर्ष |
| अर्जुनदेव | ,, १३१८ | ,, १२६१ | ,, ,, १३३१ | ,, १२७४ | ,, १३ ,, |
| सारगदेव | ,, १३३१ | ,, १२७६ | ,, ,, १३५३ | ,, १२९६ | ,, २२ ,, |
| कर्णदेव दूसरा | ,, १३५३ | ,, १२९६ | ,, ,, १३६१ | ,, १३०४ | ,, ८ ,, |

तो उसके बाद भी बहुत दिनों तक उसके वंशजों के अधिकार में रहा था। लवणप्रसाद का विवाह मदनराज्ञी के साथ हुआ था, जिससे उसके वीरधवल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। चन्द बारोठ ने उसका नाम वीरवाघेला अथवा वीरधवलराज लिखा है। सन् १२३१ई० में तेजपाल ने आबू पर्वत पर एक मन्दिर बनवाया था उसके लेख (१) में वीरधवल उसके पिता और पितामह के नाम लिखे हुए हैं। उसी मन्दिर में एक दूसरा लेख भी है जिसमें वीरधवल के नाम के साथ महामण्डलेश्वर और राणा की पदवी भी लिखी हुई है।

मेरुतुंग ने लिखा है कि मदनराज्ञी कुँवर वीरधवल को लेकर अपनी सुत बहन के पति देवराज पट्टकिल के यहाँ आकर रहने लगी थी। (२) परन्तु जब वीरधवल सयाना हुआ तो वह अपने पिता के घर वापस

---

[यह तालिका हमने गुजराती अनुवाद में से ज्यों की त्यों उद्धृत करदी है परन्तु सारंगदेव के राज्यकाल का हिसाब कुछ ठीक नहीं बैठता। संवत् ११११ से ११५१ तक तो २२ वर्ष हो जाते हैं परन्तु सन् १२७५ से १२९६ तक २२ वर्ष नहीं होते २  ही वर्ष होते हैं फिर यदि १२९६ के स्थान पर १२९८ मान लें तो कर्णदेव के राज्य का प्रारम्भ काल भी १२९६ ही लिखा है—यदि कर्ण के राज्य काल का प्रारम्भ भी १२९८ में मानें तो उसके ८ वर्ष १३ ४ के बजाय १३ ६ में पूरे होते हैं और यदि उसका राज्यकाल १३ ४ में ही समाप्त होता है तो उसने ६ ही वर्ष राज्य किया।]

(१) यह लेख संवत् १२८७ फाल्गुन वदि ३ रविवार का है। देखो, कीर्ति कौमुदी का परिशिष्ट (४)

(२) प्रबन्धचिन्तामणि में इतना विशेष लिखा है कि यह लवणप्रसाद की आज्ञा लेकर गई थी। (लवणप्रसादाभिधपतिमापृच्छ्य) उसको रूपवती और दर्शनीय गुणवती देखकर देवराज ने अपनी गृहिणी बना लिया। जब लवण

आगया। साँगण, चामुण्ड और राज आदि उसके दूसरे भाइयों के भी नामों का उल्लेख मिलता है और यह भी लिखा है कि वे कस्त्रों और ( राष्ट्रकूट ) देशों के स्वामी थे। (१) वीरधवल के विषय मे लिखा है कि उसको अपने पिता के पास से वहुत वड़ा देश ( राज्य ) प्राप्त हुआ जिसको उसने अपनी जीती हुई भूमि से और भी वढ़ा लिया था। 'द्विज चाहड़ सचिव' उसका प्रधान था और तेजपाल तथा वस्तुपाल नामक दो

---

प्रसादने यह वात सुनी तो वह देवराज को मारने का निश्चय करके रात को उसके घर में जा छुपा। इतने ही में भोजन का थाल आया और जव देवराज भोजन करने वैठा तो कहा, 'वीरधवल को बुलाओ, मैं उसके विना भोजन नहीं करूँगा।'' वीरधवल आया और दोनों ने एक ही थाल में भोजन किया। अपने पुत्र पर देवराज का इतना वात्सल्य देखकर लवणप्रसाद का क्रोध शान्त हो गया और वह सामने आया। उसको यम के समान सामने देखकर देवराज डर गया और उसका मुँह काला पड़ गया, परन्तु लवणप्रसाद ने कहा, 'डरो मत, मैं तुम्हें मारने के विचार से ही आया था, परन्तु मैंने वीरधवल पर तुम्हारा वात्सल्य अपनी आखों से देख लिया है, इसलिये अव तुमको नही मारूँगा।' देवराज ने उसका बहुत आदर सत्कार किया और वह जैसा गया था वैसा ही लौट आया।

(१) 'वीरधवलस्यापरमातृका राष्ट्रकूटान्वया. सागणचामुण्डराजादयो वीरव्रतेन भुवनतलप्रतीता।' यह पाठ हमारे पास की प्राचीन प्रति में है। इसका अर्थ यह है कि, 'वीरधवल के सौतेले भाई, जो राष्ट्रकूट (राठौड) वश की उसकी दूसरी सौतेली माता के पेट से उत्पन्न हुए थे उनके नाम सागण, चामुण्ड और राज आदि थे और वे अपने वीरव्रत के कारण भुवनतल (ससार) में प्रसिद्ध थे। अन्य प्रति में 'अपरपितृका.' ऐसा पाठ है जिसका अर्थ अपरपिता अर्थात् देवराज से मदनराज्ञी में उत्पन्न हुए, ऐसा होगा। फिर वीरधवल क्षत्रिय को जव यह वृत्तान्त समझमें आया तो वह लज्जित होकर देवराज का घर छोडकर अपने पिता की सेवा में रहने लगा। वह सत्य, औदार्य, गाम्भीर्य, स्थिरता, नय, विनय, दया, दान और दाक्षिण्यादि गुणों से युक्त था।

तो उसके बाद भी बहुत दिनों तक उसके वंशजों के अधिकार में रहा था। लवणप्रसाद का विवाह मदनराज्ञी के साथ हुआ था जिससे उसके वीरधवल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। चन्द बारठ ने उसका नाम वीरवाघेला अथवा वीरधवलबाघ लिखा है। सन् १२३१ई० में तेजपाल ने आबू पर्वत पर एक मन्दिर बनवाया था उसके लेख (१) में वीरधवल, उसके पिता और पितामह के नाम लिखे हुए हैं। उसी मन्दिर में एक दूसरा लेख भी है जिसमें वीरधवल के नाम के साथ महामण्डलेश्वर और राणा की पदवी भी लिखी हुई है।

मेरुतुंग ने लिखा है कि, मदनराज्ञी कुँवर वीरधवल को लेकर अपनी मृत बहन के पति देवराज पट्टकील के यहाँ आकर रहने लगी थी। (२) परन्तु जब वीरधवल सयाना हुआ तो वह अपने पिता के घर वापस

---

[यह तालिका हमने गुजराती अनुवाद में से ज्यों की त्यों उद्धृत करदी है परन्तु सारंगदेव के राज्यकाल का हिसाब कुछ ठीक नहीं बैठता। संवत् ११११ से ११५१ तक तो २२ वर्ष ही आते हैं परन्तु सन् १२७५ से १२९६ तक २१ वर्ष नहीं होते २ ही वर्ष होते हैं, फिर यदि १२९६ के स्थान पर १२९८ मान लें तो कर्णदेव के राज्य का प्रारम्भ काल भी १२९६ ही लिखा है—यदि कर्ण के राज्य काल का प्रारम्भ भी १२९८ में मानें तो उसके ८ वर्ष ११ ४ के बजाय ११ ६ में पूरे होते हैं और यदि उसका राज्यकाल ११ ४ में ही समाप्त होता है तो उसने ६ ही वर्ष राज्य किया।]

(१) यह लेख संवत् १२८७ फाल्गुन सुदि ३ रविवार का है। देखो, कीर्ति कौमुदी का परिशिष्ट (क)

(२) प्रबन्धचिन्तामणि में इतना विशेष लिखा है कि वह लवणप्रसाद की आज्ञा लेकर गई थी। (लवणप्रसादाभिधपतिमाज्ञाप्य) उसकी रूपवती और दर्शनीय गुणवती देखकर देवराज ने अपनी पत्नी बना लिया। जब लवण

आगया। साँगण, चामुण्ड और राज आदि उसके दूसरे भाइयों के भी नामों का उल्लेख मिलता है और यह भी लिखा है कि वे करत्रों और (राष्ट्रकूट) देशों के स्वामी थे। (१) वीरधवल के विषय मे लिखा है कि उसको अपने पिता के पास से बहुत बड़ा देश (राज्य) प्राप्त हुआ जिसको उसने अपनी जीती हुई भूमि से और भी बढ़ा लिया था। 'द्विज चाहड़ सचिव' उसका प्रधान था और तेजपाल तथा वस्तुपाल नामक दो

---

प्रसादने यह बात सुनी तो वह देवराज को मारने का निश्चय करके रात को उसके घर में जा छुपा। इतने ही में भोजन का थाल आया और जब देवराज भोजन करने बैठा तो कहा, 'वीरधवल को बुलाओ, मैं उसके बिना भोजन नहीं करूँगा।" वीरधवल आया और दोनों ने एक ही थाल में भोजन किया। अपने पुत्र पर देवराज का इतना वात्सल्य देखकर लवणप्रसाद का क्रोध शान्त हो गया और वह सामने आया। उसको यम के समान सामने देखकर देवराज डर गया और उसका मुँह काला पड़ गया, परन्तु लवणप्रसाद ने कहा, 'डरो मत, मैं तुम्हें मारने के विचार से ही आया था, परन्तु मैंने वीरधवल पर तुम्हारा वात्सल्य अपनी आखों से देख लिया है, इसलिये अब तुमको नहीं मारूँगा।' देवराज ने उसका बहुत आदर सत्कार किया और वह जैसा गया था वैसा ही लौट आया।

(१) 'वीरधवलस्यापरमातृका॰ राष्ट्रकूटान्वया॰ सागणचामुण्डराजादयो वीरव्रतेन भुवनतलप्रतीता॰।' यह पाठ हमारे पास की प्राचीन प्रति में है। इसका अर्थ यह है कि, 'वीरधवल के सौतेले भाई, जो राष्ट्रकूट (राठौड) वंश की उसकी दूसरी सौतेली माता के पेट से उत्पन्न हुए थे उनके नाम सांगण, चामुण्ड और राज आदि थे और वे अपने वीरव्रत के कारण भुवनतल (ससार) में प्रसिद्ध थे। अन्य प्रति में 'अपरपितृका' ऐसा पाठ है जिसका अर्थ अपरपिता अर्थात् देवराज से मदनराज्ञी में उत्पन्न हुए, ऐसा होगा। फिर वीरधवल क्षत्रिय को जब यह वृत्तान्त समझमें आया तो वह लज्जित होकर देवराज का घर छोडकर अपने पिता की सेवा में रहने लगा। वह सत्य, औदार्य, गाम्भीर्य, स्थिरता, नय, विनय, दया, दान और दाक्षिण्यादि गुणों से युक्त था।

भाइयों को भी उसने नियुक्त किया था।

वीरधवल वाघेला को उसके क्रमानुयायियों के समान राज्यपदवी प्राप्त नहीं हुई थी परन्तु इसमें संशय नहीं कि, भीमदेव की मृत्यु के उपरान्त वह गुजरात के सामन्तों में महा सत्तावान् हो गया था। वीर धवल के समय की कुछ एक राजनैतिक घटनाओं का वर्णन मेरुतुङ्ग ने किया है जिनसे पता चलता है कि उस समय केन्द्रीय महासत्ता का अभाव ही था।

सैयद ( सईद अथवा सदीक ) नाम का एक व्यापारी था, जो शायद मुसलमान था। कहते हैं कि स्तम्भ तीर्थ अथवा खम्भात पर उसके साथ वस्तुपाल का कोई झगड़ा हो गया। इस पर सैयद ने उस *प्रधान के विरुद्ध अपनी रक्षा करने के लिये भड़ौंच से शंख (१) नामक* सरदार को बुलाया। वस्तुपाल ने अपनी ओर से लूणपाल नामक गोल (२) को बुलवा भेजा। लूणपाल ने शंख पर हमला करके उसको मार

---

(१) वह गोवा के पास वाला बन्दर का चौमिया सरदार था। कुछ लोगों का कहना है कि वह सिन्ध के राजा का कुंअर था।

(२) प्रबन्धचिन्तामणि में 'गुडजातीयो लूणपालनामा सुभटो' पाठ है। एक प्रति में 'भुवनपाल' लिखा है। लूणपाल अथवा भुवनपाल ने प्रतिज्ञा की थी कि "मैं शङ्ख के अतिरिक्त और किसी पर प्रहार नहीं करूँगा। यदि ऐसा करूं तो गौ पर प्रहार करना मानूं गा।" जब उसने युद्ध में पुकार कर पूछा कि शङ्ख कौन है? तो कितने ही सैनिक एक के बाद एक करके "मैं शङ्ख हूँ" ऐसा कहते हुए उसके सामने आए। वह उनको मारता चला गया। अन्त में उसकी वीरता से प्रसन्न होकर स्वयं शङ्ख ने उसे अपने पास बुलाया। उसने मारने के एक ही प्रहार से शङ्ख और उसके अश्व को समाप्त कर दिया।

राजा की मृत्यु के बाद सईद को कैद कर लिया गया और उस की

डाला, परन्तु इस लड़ाई मे वह स्वय भी इतना घायल हुआ कि थोड़े ही दिनों बाद मर गया। कहते है कि जिस स्थान पर उसकी मृत्यु हुई थी उसी स्थान पर वस्तुपाल ने उसकी स्मृति मे 'लूणपालेश्वर' देवालय बनवाया था।

एक बार, किसी दूसरे अवसर पर, म्लेच्छ सुलतान का मली-मन्मख नामक गुरु यात्रा के लिए निकला। यह तो मालूम नहीं कि वह कहाँ की यात्रा के लिए निकला था, परन्तु वह गुजरात मे आकर अवश्य पहुँचा था। (१) वीरधवल और उसके पिताने उसको पकड कर कैद कर

---

सम्पत्ति हस्तगत करली गई। राजा ने आज्ञा दी कि वह सम्पत्ति राजकोश मे जमा की जावे और सईद के घर की धूल वस्तुपाल ले ले। यह धूल चादी और सोने की रज थी। आग लग जाने के कारण इसका परिमाण और भी बढ गया था। इस प्रकार वस्तुपाल के हाथ अपार सम्पत्ति लगी जो बाद में देवालय निर्माण में काम आई।

(१) यहा फार्बस् साहब और गुजराती अनुवादक दोनों ही ठीक ठीक अर्थ नहीं समझ पाए हैं। प्रबन्धचिन्तामणि में 'सुरत्राणस्य गुरुमालिम मखतीर्थयात्राकृते इह समागतमवगम्य' ऐसा पाठ है जिसका अर्थ यह होता है कि सुलतान के आलिम (विद्वान्) गुरु को मख अर्थात् मक्का की यात्रा-निमित्त यहां आया हुआ जान कर' एक प्रति में मख के स्थान पर 'मक्का' पाठ होने का भी उल्लेख है। (प्र चि गुजराती सभा ग्रन्थावली ग्र. १४) यहा गुरु आलिम की सन्धि करके 'गुरुमालिम' लिखा है। सिंघी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित प्रबन्धचिन्तामणि के प हजारीप्रसाद द्विवेदीकृत हिन्दी भाषान्तर में पृ १२७ पर 'मालिम (मौलवी)' लिखा है, यह भी ठीक नही जँचता है। वास्तव में 'आलिम' शब्द का अर्थ विद्वान् है और यह 'गुरु' का विशेषण है। 'मली मन मख' कोई नाम नहीं है। तेजपाल मत्री, स्वय विद्वान्, विद्याप्रेमी और विद्वानों का आदर करने वाला था इसीलिए वह सुलतान के विद्वान् गुरु के प्रति आकृष्ट हुआ प्रतीत होता है। लवणप्रसाद और वीरधवल के कुत्सित अभिप्राय को जान कर उसने कहा था—

आक्रमणों को निद्रा भंग करने वाले स्वप्न में देखी हुई मूर्तों द्वारा घटित भयावनी घटनाओं से बढ़कर कुछ न समझा। इधर तो भीमदेव द्वितीय के संकटापन्न जीवन का अन्त होता है, उसके साथ ही अणहिलवाड़ा का सौभाग्य सूर्य निरभ्र आसमान में कभी पुनः प्रकाशमान न होने के लिए डूब जाता है, केवल उसकी अन्तिम और मन्द रश्मि आभा राजधानी पर टिमटिमाती सी दिखाई पड़ती है, युद्ध का गर्जन भी अभी तक पूर्णतया शान्त नहीं हो पाया है, देश में भय और दुःख की गूंज अभी भी उठ रही है, परन्तु, उधर आबू और शत्रुञ्जय पर फिर से काम चालू हो जाता है और शान्त ध्यानमग्न एवं स्थिरासन तीर्थंकरों के लिए पहले से भी अधिक शोभामय देवालय बनकर तैयार हो जाते हैं।

वीरधवल वाघेला के प्रधान वस्तुपाल और तेजपाल जो देलवाड़ा के गौरवशाली मन्दिरों के निर्माताओं के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं श्रावक-धर्मानुयायी प्राग्वाट अथवा पोरवाल वणिए थे। इनके पूर्वज बहुत सी पीढ़ियों से अणहिलपुर में रहते थे। वीरधवल के पूर्व प्रधान चाहड़ ने ही इनका परिचय राजा से कराया था। ज्ञात होता है कि राजा का इन पर असाधारण विश्वास था और जिन शब्दों में यह बात लिखी है उनसे उस समय के लोगों की स्थिति तथा राजा और उसके कार्यकर्ताओं के आपस के चमत्कारिक सम्बन्ध का भी ज्ञान प्राप्त होता है। इनके राजनैतिक व्यवहारों के विषय में मेरुतुंग ने इस प्रकार वर्णन किया है कि "जो किसी के शिर पर हाथ धरे बिना ही राजकोष को बढ़ा सके किसी का मृत्युदण्ड दिए बिना ही देश का रक्षण कर सके बिना युद्ध किए ही राज्य की वृद्धि कर सके वही मन्त्री योग्य कहलाता

है।' (१) इसी ग्रन्थकार ने लिखा है कि जब वीरधवल ने अपने राज्य-का कार्यभार तेजपाल को सौंपा था तब उस (तेजपाल) ने राजा से यह प्रतिज्ञा लिखवाली थी कि, "कदाचित् मैं तुम पर कुपित भी हो जाऊँ तो विश्वास रखो कि जितनी सम्पत्ति तुम्हारे पास इस समय है उतनी तो तुम्हारे पास रहने ही दूँगा।' जो देवालय उन्होंने (वस्तुपाल और तेज-पाल ने ) बनवाया था उसमें इस प्रकार का लेख है कि, वीरधवल चालुक्य जो कुछ ठीक है वही करता है, अपने दोनों प्रधानों की सलाह पर चलता है और यदि उसके दूत ( गुप्तचर ) आकर उसे कुछ कहते भी हैं तो वह उस पर ध्यान नहीं देता है। दोनों भाइयों ने अपने स्वामी के राज्य की बढोतरी की है। उन्होंने घोड़ों और हाथियों की कतारें राजा के महल के पास बाँध दी हैं और राजा भी अपनी सम्पत्ति का पूर्ण उप-भोग करता है। ये दोनों मंत्री उसके घुटनों तक लटकते हुए दोनों हाथों के समान हैं।" (१)

आबू पर्वत पर सिरोही और जालोर की ओर से चढने मे सुगमता पड़ती है। गुजरात की ओर से इसका चढाव गिरवर ग्राम में

---

(१) अकरात् कुरुते कोषमवधाद्देशरक्षणम्।
देशवृद्धिमयुद्धाच्च स मंत्री बुद्धिमाश्च स ॥

यहां 'अकरात् कुरुते कोख' का अर्थ ग्रन्थकर्ता ने ठीक नहीं समझा है। पद्यांश का तात्पर्य है कि कर (लगान, महसूल आदि) का बोझा प्रजा पर बिना बढाए अन्यान्य सदुपायों द्वारा जो राज्यकोष की वृद्धि करे वह मन्त्री चतुर है। 'शिर पर हाथ रखने' की यहा कोई अर्थ संगति नहीं है। गुजराती अनुवादक ने भी ग्रन्थकर्ता का ही अनुसरण किया है।

(१) सामुद्रिक शास्त्र में लिखा है कि आजानुबाहु पुरुष भाग्यशाली होता है।

लेने का विचार किया परन्तु वस्तुपाल और तेजपाल ने उसकी रक्षा की। इससे भविष्य के लिए उन पर सुल्तान की कृपा हो गई।

*पंचग्राम संग्राम* ( पाँच गाँवों की लड़ाई ) के विषय में लिखा है कि इसमें एक ओर तो लवणप्रसाद और वीरधवल थे और दूसरी ओर वीरधवल की रानी का पिता शोभनदेव था। इस लड़ाई में बघेलों की पूर्ण विजय हुई परन्तु इसके पहले युवक पुत्र को अपने पिता के सामने कितने ही घातक वार सहने पड़े। (१)

वीरधवल की मृत्यु पर एक सौ बियासी (२) नौकरों ने उसके साथ

---

"धर्मच्छलप्रयोगेण या सिद्धिर्वसुधाभुजाम् ।
स्वमातृदेहपण्येन तदिदं द्रविणार्जनम् ॥"

'राजा लोग धर्म-छल का प्रयोग करके जो ऋद्धि प्राप्त करते हैं, वह अपनी माता के देह का विक्रय करके धन कमाने के समान है।'

(१) प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है यह एकरसिक अपने पिता के सामने इक्कीस बार घायल होकर पड़ा था।

"तत्पमेकविंशतिकृत्वः सत्प्रहारोपविष्य एकरसिकतया येन पितुरग्रे पतितः"

(२) प्रबन्धचिन्तामणि की एक प्रति में 'सेवकानां विंशत्यधिक-शतेन सह मरणं' चक्रे' लिखा है। एक प्रति में 'ब्यशीत्यधिकेन' पाठ है।

ज्ञात होता है कि वीरधवल बहुत लोकप्रिय राजा था। उसके मरण पर कहा है:—

"आयान्ति यान्ति च परे ऋतवः क्रमेण
संजातमेतदृतुयुग्मगमागमं तु ।
वीरेण वीरधवलेन विना जनानां
वर्षा विलोचनयुगे हृदये निदाघः ॥"

'अन्य ऋतुएं तो आती जाती रहती हैं, परन्तु ये दो ऋतुएं आ कर नहीं गई। वीर वीरधवल के बिना लोगों की दोनों आँखों में वर्षा और हृदयों में ग्रीष्म है ( हमेशा बनी रहती है )।'

चिता मे जलकर प्राण दे दिए। अन्त में, तेजपाल को सेना की सहायता से इस क्रम को रोकना पडा। मन्त्रियों ने वीसलदेव को गद्दी पर बिठाया। इस राजा के विषय में कोई प्रचलित वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता है परन्तु सामान्यतया यह गुजरात का प्रथम बाघेला राजा कहा जाता है।

गुजरात की भूमि पर एक के बाद एक तूफान आता रहा है, परन्तु, तूफान के बाद बादल अच्छी तरह साफ भी नहीं हो पाते और उनमें प्रचण्ड वायुवेग के कारण हुए छिद्रों (चीरों) मे से पुन: प्रकाशित होता हुआ सूर्य कुछ कुछ ही दिखाई देने लगता है कि अनायास ही मानों स्वाभाविकतया हिन्दूलोग, जो कुछ हो चुका है उसके शोक को तथा जो कुछ होने की आशंका है उसकी चिन्ता को भुलाकर, नित्य की भाँति अपने सहज मार्ग पर चलने लग जाते हैं। यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है जिससे इन लोगों की सहनशीलता का परिचय मिलता है। अणहिलवाडा को नष्ट भ्रष्ट करके तथा सोमनाथ के स्थान को खण्डहर की दशा में छोडकर महमूद गजनवी अपने देश को वापस पहुँच भी न पाया था कि आरासर और आबू के पहाडों पर से फिर हथोडे और टाँकी की आवाजें आने लगीं और कुम्भारिया तथा देलवाडा में महिमामय देवालय बनकर तैयार हो गए। सहज ही समझ में न आने योग्य उनके संस्कार और वृद्धि तथा सिल्लिनि (१) के हाथ की सी कारीगरी की सफाई को देखकर यही प्रतीत होता है कि मानो इनको बनवाने वालों ने म्लेच्छ आक्रमणकारियों और मूर्तिविध्वसकों के

(१) इटली के फ्लोरेन्स नगर का प्रख्यात शिल्पकार तथा गवैया। इसका जन्म ई० स १४०० में हुआ था और मरण १४७० ई० में। आरस पत्थर पर धातु का सरस शिल्पकार्य करने में वह निष्णात था। पोप क्लीमेएट सप्तम का वह निजी कलाकार था।

आक्रमणों को निद्रा भंग करने वाले स्वप्न में देखी हुई मूर्तों द्वारा घटित भयावनी घटनाओं से बढ़कर कुछ न समझा। इधर तो भीमदेव द्वितीय के संकटापन्न जीवन का अन्त होता है, उसके साथ ही अणहिलवाड़ा का सौभाग्य सूर्य निरभ्र आसमान में कभी पुन प्रकाशमान न होने के लिए डूब जाता है, केवल उसकी अन्तिम और मन्द रश्मि आभा राजधानी पर टिमटिमाती सी दिखाई पड़ती है, युद्ध का गर्जन भी अभी तक पूर्णतया शान्त नहीं हो पाया है देश में भय और दुःख की गूंज अभी भी उठ रही है, परन्तु, उधर आबू और शत्रुञ्जय पर फिर से काम चालू हो जाता है और शान्त ध्यानमग्न एवं स्थिरासन तीर्थंकरों के लिए पहले से भी अधिक शोभामय देवालय बनकर तैयार हो जाते हैं।

वीरधवल वाघेला के प्रधान वस्तुपाल और तेजपाल जो देलवाड़ा के गौरवशाली मन्दिरों के निर्माताओं के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं श्रावक-धर्मानुयायी प्राग्वाट अथवा पोरवाल वणिक थे। उनके पूर्वज बहुत सी पीढ़ियों से अणहिलपुर में रहते थे। वीरधवल के पूर्व प्रधान चाहड़ ने ही उनका परिचय राजा से कराया था। ज्ञात होता है कि राजा का उन पर असाधारण विश्वास था और जिन शब्दों में यह बात लिखी है उनसे उस समय के लोगों की स्थिति तथा राजा और उसके कार्यकर्ताओं के आपस के चमत्कारिक सम्बन्ध का भी ज्ञान प्राप्त होता है। इनके राजनैतिक उद्देश्यों के विषय में मेरुतुंग ने इस प्रकार वर्णन किया है कि "जो किसी के सिर पर हाथ धरे बिना ही राजकोष को बढ़ा सके किसी को मृत्युदण्ड दिए बिना ही देश का रक्षण कर सके बिना युद्ध किए ही राज्य की वृद्धि कर सके वही मन्त्री योग्य कहलाता

है।' (१) इसी ग्रन्थकार ने लिखा है कि जब वीरधवल ने अपने राज्य-का कार्यभार तेजपाल को सौंपा था तब उस (तेजपाल) ने राजा से यह प्रतिज्ञा लिखवाली थी कि, "कदाचित् मैं तुम पर कुपित भी हो जाऊँ तो विश्वास रखो कि जितनी सम्पत्ति तुम्हारे पास इस समय है उतनी तो तुम्हारे पास रहने ही दूँगा।' जो देवालय उन्होंने (वस्तुपाल और तेज-पाल ने ) बनवाया था उसमे इस प्रकार का लेख है कि, वीरधवल चालुक्य जो कुछ ठीक है वही करता है, अपने दोनों प्रधानों की सलाह पर चलता है और यदि उसके दूत ( गुप्तचर ) आकर उसे कुछ कहते भी हैं तो वह उस पर ध्यान नहीं देता है। दोनों भाइयों ने अपने स्वामी के राज्य की बढोतरी की है। उन्होंने घोड़ों और हाथियों की कतारें राजा के महल के पास बाँध दी है और राजा भी अपनी सम्पत्ति का पूर्ण उप-भोग करता है। ये दोनों मत्री उसके घुटनों तक लटकते हुए दोनों हाथों के समान हैं।" (१)

आबू पर्वत पर सिरोही और जालोर की ओर से चढने में सुगमता पडती है। गुजरात की ओर से इसका चढाव गिरवर ग्राम मे

---

(१) अकरात् कुरुते कोषमवधाद्देशरक्षणम्।
देशवृद्धिमयुद्धाच्च स मत्री बुद्धिमांश्च स ॥

यहां 'अकरात् कुरुते कोष' का अर्थ ग्रन्थकर्ता ने ठीक नही समझा है। पद्यांश का तात्पर्य है कि कर (लगान, महसूल आदि) का बोझा प्रजा पर बिना बढाए अन्यान्य सदुपायों द्वारा जो राज्यकोष की वृद्धि करे वह मन्त्री चतुर है। 'शिर पर हाथ रखने' की यहा कोई अर्थ सगति नहीं है। गुजराती अनुवादक ने भी ग्रन्थकर्ता का ही अनुसरण किया है।

(१) सामुद्रिक शास्त्र में लिखा है कि आजानुबाहु पुरुष भाग्यशाली होता है।

होकर है। यह मार्ग अत्यन्त रमणीय है और पैदल के अतिरिक्त और किसी प्रकार इधर से चढ़ना असम्भव है। अम्बाभवानी के देवालय से आगे का रास्ता विचित्र पहाड़ी दृश्यों में होता हुआ बड़ी दूर तक एक पगडंडी के रूप में पहाड़ी झरने के सहारे सहारे चला गया है। 'इस प्रदेश में सब कुछ शोभायमान रमणीय और स्वाभाविक है यहां के दृश्य की एकान्त सुन्दरता के बनाव का मानवीय मनोविकारों द्वारा कोई बाधा नहीं पहुँचती है इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इस स्थान को प्रकृति देवी ने अपनी परम लाडली सन्तान के उपभोग के लिए ही सजाया है। आकाश निर्मल है वनस्पति की घनी पत्रावली में से कूकती हुई कोयलें मानो आपस में उत्तर प्रत्युत्तर दे रही हैं जंगली उल्लू बांसों की घटाओं में शरण लिए पड़े हैं और वहीं से किलकिला रहे हैं और ज्योंही पर्वत शिखरों को स्वच्छ करता हुआ सूर्यदेव उनमें होकर अपनी प्रखर किरणों का प्रसार करता है त्योंही घोंसलों में बैठे हुए भूरे तीतर भी अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए वृक्षों पर पंक्तिबद्ध बैठे हुए कबूतरों के साथ साथ शब्द करने लगते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे पक्षी भी जो मैदान में बसने वाले नहीं हैं यहां पर घूमते रहते हैं। कठिन काष्ठ पर अपनी चोंच का जोर आजमाते हुए कठफोड़ ( खाती चिड़ा ) की आवाजें भी सुनाई देती हैं। नाना प्रकार के और रंग बिरंगे फूलों के तथा फलों के उप-भोग के लिए तरह तरह के वनवासी पशुपक्षी यहां एकत्रित हो रहे हैं उद्योगी भ्रमर विशाल और घने वृक्षों से लिपटी हुई सफेद अथवा पीली चमेली के फूलों का मधुर से मधुर रस चूसते हैं गुलअब्बास के फूलों जैसे गोटा और चमरियों के सफेद अथवा जामुनी रंग वाले पुष्पगुच्छों का रस पान करते हैं अथवा जिसके तट पर एरंड या

सरकट खूब उगे हुए हैं ऐसी नदी के तीर पर छाए हुए, वादाम की सी सुगन्धि देने वाले कैरों का रसास्वादन करते हैं।" इस एकान्त के मोहक सौन्दर्य मे विघ्न डालने के लिए कोई भी मानव प्राणी उधर दिखाई नहीं देता है, कभी कभी अम्बा जी की यात्रा करने के लिए आए हुये किसी राजपूत अश्वारोही की गम्भीर आकृति दिखाई पड़ जाती है। उसकी पीठ पर ढाल लटकती है और कन्धे पर भाला होता है। जहां वहुत थोडे से ही शूरवीर शत्रु की सेना का कठिन सामना कर सकते हैं, ऐसा यह लम्बा और सकडा पहाड़ी मार्ग उस यात्री से भरा हुआ सा मालूम देता है—अथवा कभी, जहा पर निर्मल पानी का यह झरना किसी ऐसे छोटे से तालाब के रूप मे विस्तार प्राप्त कर लेता है जिसके किनारे किनारे नन्हीं नन्हीं दूब उग आई है वहा इस घाटी के हृदय मे किसी प्रकृतिरमणीय स्थान पर अनाज की भरी हुई बोरिया लेजाने वाले कुछ शान्त मनुष्य और चरते हुए ढोर भी दिखाई पड़ जाते हैं। आगे चलकर इस पहाडी का ढाल धीरे धीरे थोडी वहुत रेतीली सपाट और उपजाऊ घाटी के रूप मे वदल जाता है जहा अनाज वहुतायत से उत्पन्न होता है। यहीं पर इधर उधर कुछ छोटे मोटे गावड़े भी वस गए हैं और आगे पीछे चल कर विशालरूप धारण करने वाले कुछ पहाड़ी झरने ( नाले ) भी इसी ओर वहते दिखाई देते हैं। कोहरे के काले चोगे में लिपटा हुआ प्रतापशाली आवू अपने विषय में कितनी ही प्रकार की कल्पनाओं का जन्मदाता है। जब तक कि इसके पास पहुँच कर हम अपनी दृष्टि से इसके श्याम और ऊवडखावड मुख-भाग को देख न लें तव तक इसके चित्रविचित्र वहिरग पर दृष्टिपात करने पर कितनी ही आकृतिया हमारे मानस मे आकर बैठ जाती हैं—इसकी काली पोशाक है, वनों और उपवनों से ढके हुए स्थान इस पोशाक

का प्रस्तर बने हुए हैं जिसमें रूपहरी पानी के झरने धारियों सदृश दिखाई देते हैं। वैसे जैसे हम इसके समीप आते जाते हैं वैसे ही इसके पीछे धँसके हुए स्कन्ध महत्ता से आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं और ज्यों ज्यों सूर्य अपनी मध्यावस्था की ओर अग्रसर होता जाता है त्यों त्यों इसकी काली पोशाक सुनहरी किनारों से चित्र-विचित्रित होती हुई सी दिखाई पड़ती है।

इन्हीं स्कन्धों में से एक पर गिरवर ग्राम से आने का मार्ग है जो पर्वत के बगल बगल में लिपटे हुए से सूत्र के समान दिखाई पड़ता है। यह मार्ग कहीं कहीं तो स्पष्ट ऊपर निकला हुआ दीख पड़ता है और कहीं कहीं फिर डूबता हुआ सा जान पड़ता है। गहन और सघन वनों में होकर एक लम्बी चढ़ाई के बाद अन्त में यह मार्ग एक सपाट और समतल स्थान पर जाकर पहुँचता है जहां वृक्षों की शोभायमान और सघन कुञ्जों से घिरा हुआ वसिष्ठ मुनि का आश्रम विद्यमान है। सूर्य की तेज धूप से घबराया हुआ यात्री यहीं पर किसी छोटी सी बगीची में विश्राम करता है, जहां पर सुगन्धित पुष्पों से लदी हुई पहाड़ी झाड़ियां जिनमें केवड़ा मुख्य होता है, खूब लगी होती हैं। इस प्रकार उसको यहां पर अपनी आंखों और नाक को आनन्द पहुँचाने के साधन एक साथ ही प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त किसी चट्टान में काट कर बनाए हुए गोमुख से नीचे की ओर खोदकर बनाए हुए पात्र में पड़ते हुए पानी की मधुर ध्वनि को सुनकर उसके कानों को प्राप्त होनेवाला सुख भी थोड़ा नहीं होता।

मुनि के देवालय की इमारत छोटी और साधारण है, जिसमें श्यामवर्ण के संगमर्मर की बनी हुई मुनि की मूर्ति विराजमान है। इन मुनिवर्य ने अचलेश्वर के अग्निकुण्ड में से क्षत्रियों को उत्पन्न किया

था इसलिए यही उनके पूर्वज कहलाते हैं। वसिष्ठ मुनि के देवालय मे प्रात काल, दोपहर और सन्ध्या समय चौघडिये की गम्भीर ध्वनि होती है। नगाडे की इस महाध्वनि के कारण आसपास के सुन्दर और गम्भीर दृश्य का गौरव और भी अधिक बढ़ जाता है। यहीं पर आबू के रणधीर शूरवीर 'दनुज त्रासक' धारावर्ष परमार की भी पीतल निर्मित मूर्ति विद्यमान है जिसका भाव यह है कि वह अपनी जाति को उत्पन्न करने वाले ऋषि की अभ्यर्थना कर रहा है।

वसिष्ठ मुनि के देवालय से आगे चट्टानों मे खोदकर बनाई हुई पैड़ियों की चढाई शुरु होती है जो, अन्त मे, आबू के पृष्ठभाग पर समतल मैदान तक चली गई है। यहा पर पहुँचने के बाद यात्री को सद्य यह भान होता है कि वह किसी नए ही ससार में आ पहुँचा है अथवा हवा में अधर झूलते हुए किसी द्वीप की सैर कर रहा है। जिस अधित्यका मे वह उस समय खड़ा होता है उसके चारों ओर ऊ ची ऊ ची और सीधी उसी प्रकार की चट्टानों का कोट खिंचा हुआ दिखाई देता है, जिनको पार करता हुआ वह यहा तक आ पहुँचा है। यह भाग कुछ मीलों की दूरी मे फैला हुआ है, छोटे छोटे गावों और कुओं से व्याप्त है, पानी की झील और अनेक छोटे छोटे झरनों से शोभायमान है और पर्वतशिखरों का सुन्दर मुकुट धारण किए हुए है। इनमे सबसे ऊँचे शिखर पर एक देवालय है जिसके कारण वह 'ऋषिशृ ग' कहलाता है, परन्तु सबसे अधिक चमत्कारी शिखर तो वह है जिस पर प्रसिद्ध अचलगढ़ का दुर्ग बना हुआ है।

वसिष्ठ मुनि के आश्रम और देलवाड़ा के बीच के प्रदेश का राजस्थान के इतिहासकार ने इस प्रकार सुन्दर वर्णन किया है — "इस यात्रा मे आबू की अधित्यका का अत्यन्त रमणीय भाग मेरे देखने

में आया । यहां पर हरियाली खूब होती है, आबादी भी घनी है और पानी के झरनों तथा वनस्पति की बहुतायत है, कहीं कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो पृथ्वी पर नीली फर्श बिछी हुई है और पग पग पर नए नए प्राकृतिक एवं कृत्रिम चमत्कार देखने को मिलते हैं । सदा की भांति कमेड़ी (पण्डुकी) पक्षी किसी अज्ञात स्थान से अपना स्वागत गान सुनाती है और कोयल की तेज तार एवं स्पष्ट कूक किसी ऐसे गहन वन में से आती हुई सुनाई पड़ती है जहां से निर्मल जल के किसी शान्त झरने का उद्गम होता है । धरती का प्रत्येक छोटे से छोटा भाग जिसमें अनाज उग सकता है बड़ी मेहनत के साथ बाबा जोता जाता है; इस छोटे से सफर में ही आबू के बारह मासों में से चार मास मेरे देखने में आए । इन गांवों की रचना भी यहां के दृश्य के अनुकूल ही है । यहां के निवासियों के घर साफ सुथरे और सुखमय हैं, इनका आकार झोंपड़ी की भांति गोल ( वृत्ताकार ) है, बाहर मिट्टी का पलस्तर हुआ रहता है और इसका पीला रंग इन पर पुता रहता है । प्रत्येक बहते हुए झरने के किनारे पर जल सींचने के लिए रेंहट लगा होता है और पानी जमीन की सतह के निकट होने के कारण कूप भी अधिक गहरे नहीं खोदने पड़ते हैं । इन उपजाऊ खेतों के चारों ओर कँटीली थूहरों की बाड़ होती है और उन पर लूम ( अम्बरबेल ) तथा भारतीय बगीचों में बहुतायत से बोयी जाने वाली सेवती (शिरपर चढ़ाने योग्य) की घटा छाई रहती है । कठिन मानिटपत्थर की चट्टानों पर जहां दरारों के अतिरिक्त नाम मात्र को भी मिट्टी नहीं है, दाड़िम के पेड़ लगे हुए हैं । सर्व आम्र जो फलों के बीच बीच में से कभी कभी दिखाई पड़ जाते हैं, अभी तक हरे सघन होने के कारण ऐसे मालूम होते हैं मानो कभी नहीं पकेंगे । यहां के लोग मेरे पास संग्रह

की दाखे भी लाए जिनके आकार को देख कर मुझे यह विचार आया कि उन लोगों ने इनकी खेती की है। ये दाखें तथा (Citron), जो मेरे देखने मे तो नहीं आए परन्तु इन लोगों ने किसी गहरी घाटी में उगे हुए बताए थे, आबू के स्वाभाविक फल समझे जाते हैं। यहा पर आमों की भी वहुतायत है जिनकी डालियों पर सुललित अम्बात्रीवेल देखने में आती है। इसके सुन्दर नीले और सफेद फूल डालियों से नीचे लटकते रहते हैं। इनको यहा के पहाड़ी लोग अम्बात्री कहते हैं। मेरे देखने में यह बात भी आई कि ये लोग इन फूलों को बहुत पसन्द करते हैं और जहा भी हाथ आ जाते हैं इन्हें तोड़ कर अपने केशपाशों व पगडियों मे टाग लेते हैं। यहा के पेड़ों में अत्यधिक नमी होने के कारण उन पर लीलोतरी छा जाती है यहां तक कि अचलगढ़ के अत्युच्च खजूर वृक्ष की सबसे ऊ ची टहनी भी इस से मॅढी हुई पाई जाती है। अम्बात्री के फूट निकलने का यही आधार है। फूलों की तो यहा पर कोई कमी है ही नहीं, इनमे चमेली और प्रतिवर्ष फूलने वाले विविध जाति के पुष्प गोखरू की भाति बिखरे पड़े हैं। पुष्पों वाले वृक्षों में सबसे वड़ा सुनहरी चम्पा का वृक्ष होता है, जो मैदानों मे तो कहीं कहीं पर ही मिलता है। इसके लिए कहते हैं कि अलोय (Aloe) की भाति यह सौ वर्ष मे एक वार ही फूलता है, पर यहा तो सौ सौ कदम के फासले पर यह वृक्ष मिलता है और अपने पुष्पों की महक से हवा को भर देता है। सक्षेप मे यहा का वर्णन इस प्रकार है—

वन, गह्वर, निर्झर, अमल, मेवा, पल्लव श्याम।<br>
पर्वत, शिखर, सुद्राक्ष वहु, शोभित क्षेत्र ललाम।<br>
जीर्ण किन्तु पत्रों ढकी, इन दुर्गों की भींत।<br>
ताजा हीं जिस पर यहॉ, नाश वसा वहु रीति।

स्वामिहीन पे दुग मी, अन्तिम करें प्रणाम ।
सो सुन्दरता का बना आबू मिश्रण धाम ॥'

नखी-तालाब बहुत सुन्दर सरोवर है। इसके बीच बीच में हीछोतरी से ढके हुए वृक्षों वाले बहुत से छोटे छोटे टापू हैं जिनमें से लम्बे लम्बे ताड़ के वृक्ष अपने सिर हिलाते हुए से दिखाई देते हैं। तालाब के आसपास ऐसी चट्टानें आ गई हैं जिनके ठेठ किनारे तक सघन वन छाए हुए हैं। जब कर्नल टॉड ने इसको देखा था उस समय इसमें जलमुर्गाबियां तैरती थी न उनकी ओर किसी मनुष्य का ध्यान जाता था न किसी मनुष्य की ओर उनका ही क्योंकि इस पवित्र पर्वत पर बहेलिए की बन्दूक और मछुए के जाल को कोई नहीं जानता था। 'किसी भी प्राणी को मत मारो' ऐसी ईश्वरीय आज्ञा प्रचलित थी और इसका भङ्ग करने वाले को दण्ड के रूप में मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता था। कुछ दिनों से आबू के इस तालाब के आसपास यूरोपियन लोगों के बँगले बन गए हैं पास ही आबहवा बदलने के लिए आए हुए सैनिकों के बैरक (सैन्यशाला) भी बन गए हैं और एक ईसाई गिरजाघर भी आदिनाथ के देवालयों के साथ साथ अचलेश्वर के पवन पर अपना अधिकार प्रदर्शन करता हुआ विद्यमान है।

आबूपर्वत की तलहटी में ही अणादरा नामक गाँव है जिसके पास होकर सीमा की छावनी में जाने का एक चौड़ा और सुगम मार्ग बना हुआ है। यह रास्ता नखीतालाब के आगे आ कर मिलता है। नखी तालाब के पास ही देलवाड़ा अथवा देवालयों का समुदाय है। यहाँ पर विमलशाह और तेजपाल के बनवाए हुए दो मुख्य देवालयों के अतिरिक्त और भी बहुत से देवालय हैं परन्तु उन सबमें यही दोनों अति प्राचीन

और शोभाशाली है । पहले लिखा जा चुका है कि पहला देवालय विमलशाह ने १०३१ ई० मे बनवाया था और इससे पूर्व यहा पर कोई जैन देवालय बना हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता । यहा पर इन देवालयों के साधारण वर्णन के अतिरिक्त अधिक लिखना आवश्यक नहीं है । (१) इन मन्दिरों के आकार व बाहरी दृश्य मे तो कोई ऐसी विशेषता नहीं है परन्तु सुथार लोगों की अच्छी से अच्छी सुसस्कृत कारीगरी इनके अन्तरङ्ग भाग मे देखने को मिलती है । प्रत्येक देवालय मे निज-मन्दिर के आगे एक सभामण्डप है जिसके ऊपर अष्टकोण गुम्बज बनी हुई है और आसपास मे भी स्तम्भपंक्ति पर बहुत से गुम्बज खडे हुए हैं ।

---

(१) इसके वर्णन के लिए फर्ग्युसन की लिखी हुई 'हैण्डबुक आफ आर्किटैक्चर" के प्रथम भाग का पृष्ठ ६६ देखना चाहिए जहाँ वर्णन के अतिरिक्त इसका चित्र भी दिया हुआ है । इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थकर्ता की लिखी हुई "पिक्चरस्क इल्लस्ट्रेशन्स् आफ ऐन्शियन्ट आर्किटैक्चर इन हिन्दुस्तान' नामक पुस्तक भी देखनी चाहिए ।

तेजपाल और वस्तुपाल के देवालयों के विषय में लिखते हुए मिस्टर फर्ग्युसन ने लिखा है "इस सफेद सगमर्मर के पत्थर में फीते जितनी बारीक जगह में हिन्दू कलाकारों ने अपने अथक परिश्रम से जो कारीगरी दिखलाई है उसको कितना ही परिश्रम और समय व्यतीत करके मैं कागज पर नही उतार सका ।" 'पिक्चरस्क इल्लस्ट्रेशन्स् आफ ऐन्शियन्ट आर्किटैक्चर इन हिन्दुस्थान ।

अपनी दूसरी पुस्तक में इसी ग्रन्थकार ने हिन्दुओं के गुम्बजों की अन्दर की तरफ के कमल जैसे लटकन (लोलक) के विषय में लिखा है कि "इनके आकार में ही सामान्यतया ऐसी कोमलता और सौन्दर्य होता है कि गॉथिक कारीगरी के कारीगर तो उसकी कल्पना भी नही कर सकते । घुमट के मध्य में से लटकते हुए सगमर्मर के ढेले के बजाय यह ऐसा मालूम होता है कि मानों स्फटिक मणियों (के रवो अथवा दानो) का एक गुच्छा लटक रहा है ।

सम्पूर्ण देवालय सफेद संगमर्मर का बना हुआ है और इसका प्रत्येक भाग कुराई के बारीक काम से सुसज्जित है। यह कुराई का काम इतनी बारीकी का है कि देखते ही एक बार तो ऐसा भ्रम होता है मानों यह सब कुछ मोम का ढला हुआ तो नहीं है—अर्द्ध पारदर्शक पतली कोरें (किनारें) इतनी सूक्ष्म हैं कि बहुत ध्यान से देखने पर ही यह मालूम होता है कि इनमें कुछ मोटाई भी है अथवा इनको देखने से गणितज्ञ (यूक्लिड) की बनाई हुई 'रेखा' की परिभाषा पूर्णतया सार्थक हो जाती है। तेजपाल के मन्दिर की गुम्मज के बीच से लटकते हुए लटकन (लोलक) की कारीगरी तो देखने ही बनती है। प्रत्येक दर्शक का ध्यान इधर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता। कर्नल टॉड ने इसका उचित ही बयान किया है कि "इसका वर्णनात्मक चित्र खींचते लेखनी थक जाती है और अत्यन्त परिश्रमशील विशिष्ट कलाकार की कलम भी घिस जाती है।" और कर्नल टॉड की लिखी हुई यह बात भी बिल कुल सच है कि अत्यन्त सुसंस्कृत गॉथिक गृहनिर्माण कला का शृङ्गार भी इसकी शोभा के आगे नहीं ठहर सकता। "यह अर्द्ध विकसित कमलों के गुच्छे के समान दिखाई देता है—ऐसे कमल कि जिनके पत्ते और पारदर्शक कटोरे इतनी बारीकी से कतरे गए हैं कि देखते ही आँखें विस्मय से स्तब्ध हो जाती हैं।' इन मन्दिरों में जो कुराई का काम हो रहा है वह भी निर्जीव और स्वाभाविक वस्तुओं के चित्र तक ही सीमित नहीं है बरन् उसमें नित्यप्रति के सांसारिक व्यवहारों व्यापार और नौकारशास्त्र के प्रशंसनीय प्रयत्नों और रणक्षेत्र के युद्धों का भी आलेखन स्पष्ट देखने में आता है, और यहाँ पर यह बात निधड़क कही जा सकती है कि यदि कोई पुरातत्त्वान्वेषक (पुरानी बातों की खोज करने वाला) इस कुराई के काम का अध्ययन करने में अपना

समय व्यय करे तो बदले में उसको मध्यकालीन भारतवर्ष के बहुत से रीति रिवाजों का मनोरञ्जक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

आबू के सब से ऊँचे शिखर ऋष्यशृङ्ग पर चढने वाला पहला यूरोपियन कर्नल टॉड था। वह लिखता है "यद्यपि साधारणतया देखने पर ऐसा मालूम होता है कि यह पर्वत-शिखर बहुत ऊँचा नहीं है परन्तु जैसे ही हम मारवाड के मैदानों मे होकर ऊपर पहुँचे वैसे ही हमें ज्ञात हुआ कि यह अपने पठार की सतह से सात सौ फीट ऊँचा है। उस समय, बहुत ठंडी और ठिठुरा देने वाली दक्षिणी हवा चल रही थी जिसके आघात से बचने के लिए सावधान पहाडी लोग अपने अपने काले कम्बलों मे लिपट कर एक आगे निकले हुए चट्टान की आड मे लम्बे लेट गए। वहाँ का दृश्य अत्यन्त गम्भीरता, भव्यता और नवीनता लिए हुए था। बादलों के समूह हमारे पैरों तले होकर तैरते हुए निकल जाते थे। कभी कभी सूर्यदेव उनमे होकर अपनी एक आध किरण हमारी ओर फेंक देते थे, मानों इसलिए कि दृश्य की अत्यधिक रमणीयता के कारण हम मोह मे न पड जावें। इस चक्करदार चढाई के बाद हम एक ऊँचे चबूतरे पर आकर पहुँचते हैं जिसके चारों ओर छोटी छोटी चारदीवारी खिंची हुई है। यह कोट इस ऊँचाई का मुकुट सा दिखाई देता है। यहीं पर एक ओर लगभग २० फीट समचौरस एक गुफा है जिसमे एक ग्रेनाइट पत्थर की चौकी पर विष्णु के अवतार श्री दत्तात्रय के चरणचिह्न वर्तमान हैं। यहा पर आने वाले यात्री के लिए इनके दर्शन ही एक मात्र मुख्य ध्येय है। दूसरी ओर के कोने मे श्रीरामानन्द स्वामी की चरणपादुका विद्यमान है। ये रामानन्द सीतासम्प्रदाय के प्रवर्तक हो चुके हैं। यहा पर इसी सम्प्रदाय

का एक गुसांई रहता है जो यात्रियों के आते ही घण्टा बजाना शुरु कर देता है और जब वे लोग कुछ भेंट चढ़ा देते हैं तो बन्द कर देता है। अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन करने के लिए यात्री लोग अपने अपने गुरु आचार्य की पादुका के आगे लिटा देते हैं। पत्थरों का वहाँ पर एक बड़ा भारी ढेर लगा हुआ था। इस पर्वत पर बहुत से स्थानों पर अनेक गुफाएं हमारे देखने आईं जिनसे यह पता चलता है कि पहले यहां पर गुफाओं में रहने वाले लोगों की बस्ती थी और इनके अतिरिक्त बहुत से गोलाकार छिद्र भी दिखाई दिए जिनकी तोप के गोलों के छिद्रों से समानता की जा सकती है। एक एकान्तवासी तपस्वी के साथ बातें करता हुआ मैं संध्या समय तक वहीं पर ठहरा रहा। उसने मुझे बताया कि वर्षा ऋतु में जब आकाश स्वच्छ हो जाता है तो जोधपुर का किला और लूनी के किनारे पर स्थित बालोतरा तक का मैदान यहां से स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यद्यपि इस बात की पूरी जांच करने के लिए पर्याप्त समय नहीं था परन्तु फिर भी रह रह कर प्रकट होने वाले सूर्य के प्रकाश में मैंने सिरोही तक फैली हुई भीत्रीश की उपजाऊ घाटी और पूर्व में लगभग बीस मील की दूरी पर अरावली की बादलों से ढकी हुई चोटी पर स्थित अम्बा भवानी के मन्दिर को तो खोज ही निकाला था। अन्त में सूर्यदेव अपने पूर्ण प्रकाश के साथ उदित हुए और हमारी दृष्टि वहां तक पहुँचने लगी जहां पर स्वच्छ नील गगन और सूखी सुनहली बालू एक दूसरे से मिलते हुए दिखाई दे रहे थे। दृश्य की उत्कृष्टता को बढ़ाने के लिए सभी साधन उपस्थित थे और शान्त वातावरण के कारण इसकी रमणीयता द्विगुणित हो रही थी। पहाड़ी के अधोभाग के श्यामल दृश्य से हटाकर थोड़ी सी दाहिनी ओर फेरने पर दृष्टि परमारों के उस किले के खण्डहरों पर जाकर

ठहरती है जो कभी सूर्य के प्रकाश को आगे बढने से रोक दिया करता था और एक लम्बा ताड का वृत्त उन्हीं खण्डहरों मे खडा खडा अपने पताका-सदृश पत्तों को खडखडा रहा था – मानों वह उस नष्ट हुई जाति के खण्डहरों को देख कर उपहास कर रहा था, जो कभी अपने साम्राज्य को अटल और विनाशहीन समझती थी। दाहिनी ओर ही थोडे से आगे बढ कर देलवाडा के शिखरबन्ध मन्दिरों के शिखरों का समूह दिखाई देता है। इसके पीछे ही सुन्दर सघन वन छाया हुआ है जिसके ( बीच बीच मे ) चारों ओर पठार के ऊपर से चट्टानों की चोटियाँ निकली हुई दिखाई पडती है। पहाड की ऊँची नींची धरातल से आकर बहुत सी नदियाँ भी इस पठार पर अपना टेढा मेढा मार्ग निकालने का प्रयत्न करती हुई दृष्टिगत होती हैं। नीला आकाश और रेतीला मैदान, सगमर्मर के बने हुए देवालय और साधारण झोंपडिया, गम्भीर और घने जगल और टेढीमेढी चट्टानें ये सभी एक दूसरे से विपरीत दृश्य यहाँ पर नजर आते थे।"

"शृण्यशृ ग से उतरते ही अग्नि कुण्ड और अचलेश्वर का देवालय आता है जो हिन्दुओ के पौराणिक इतिहास मे बहुत प्रसिद्ध है।

"अग्निकुण्ड लगभग नौ सौ फीट लम्बा और दो सौ चालीस फीट चौडा है। यह ठोस पत्थर की चट्टान मे से कुरेद कर बनाया गया है और इसके किनारों पर बहुत बड़ी बडी पत्थर की ईटें जड़ी हुई हैं। कुण्ड के बीच मे एक बिना कटी हुई चट्टान छोड दी गई है जिस पर जगदम्बा के मन्दिर के खण्डहर विद्यमान हैं। उत्तर के किनारे पर पाण्डवों के छोटे छोटे से देवालयों का समूह है परन्तु ये भी दूसरे मन्दिरों की तरह टूटे फूटे हुए हैं। पश्चिम दिशा मे आबू के सरक्षक

देवता अचलेश्वर का देवालय है, जो न तो बहुत विशाल ही है और न उसमें कोई विशेष कारीगरी ही पाई जाती है परन्तु उसमें एक प्रकार की गम्भीर सादगी है और देखते ही यह जान पड़ता है कि यह कोई प्राचीन इमारत है। यह देवालय चौक के मध्य भाग में स्थित है और इसके आसपास छोटे और समान आकार की काले पत्थर की बनी हुई गुमटियां (Fanes) हैं। "देवालय की इसी बाजू में सिरोही के राव मान की छत्री बनी हुई है। इस राव को एक जैन मन्दिर में ज़हर देकर मारा गया था और उसके कुल देवता के मन्दिर के पास ही उसका शव जलाया गया था। यहीं उसके साथ उसकी पाँच रानियां भी सती हुई थीं।

"अग्निकुण्ड के पूर्व की ओर परमार वंश के संस्थापक और मूलपुरुष के देवालय के खण्डहर पड़े हुए हैं जिनमें पावस्थल सहित आदिपाल की मूर्ति अब तक यथावस्थित विद्यमान है। यह मूर्ति प्राचीन काल के रीति रिवाज और वेषभूषा का मूल उदाहरण है। यह सफेद संगमरमर की बनी हुई पाँच फीट ऊँची मूर्ति है। इसको इस ढंग से बनाया गया है कि मानों आदिपाल महिषासुर पर बाण चलाने ही वाला है क्योंकि वह अग्निकुण्ड का पूरा पानी रात के समय आ कर पी जाता था और इसीलिए (उस कुण्ड की रक्षा करने के लिए) परमार राजपूतों की सृष्टि की गई थी।

"अचलगढ़ जाने के लिए मैं अग्निकुण्ड से आगे चला। अचलगढ़ के खण्डहर की बुर्जें मेरे चारों ओर फैले हुए बादलों की गहरी घटा से ढकी हुई थीं। चढ़ाई खतम होने पर हनूमान दरवाजे में होकर हम उस स्थान पर आ पहुँचे जहाँ का राजकीय वैभव कभी खूब फैला हुआ था। इस हनूमान दरवाजे के दोनों तरफ काले पत्थर की बनी हुई दो बड़ी बड़ी बुर्जें हैं जो हजारों जाड़ों की ठंडी हवा

के झोंके खा खाकर और भी अधिक काली पड़ गई हैं। इन दोनों बुर्जों के बीच मे एक प्रकोष्ठ बना हुआ है जो इन दोनों को संयुक्त करता है और जो चौकीदारों के बैठने का स्थान मालूम होता है। इस दरवाजे में होकर नीचे के किले मे जाने का मार्ग है। इस किले की टूटी फूटी भींतें ऊपर की टेढीमेढी चढाई पर से दिखाई पड़ती हैं। यहीं पर एक दूसरा दरवाजा है, जिसमे होकर भीतर के किले में जाते हैं। इस दरवाजे के मुँह के आगे ही पारसनाथ का मन्दिर है जिसको मॉडू के एक साहूकार ने बनवाया था। यह मन्दिर अब इस दशा को पहुँच गया है कि इसका जीर्णोद्धार होना आवश्यक है। ऊपर का कोट राणा कुम्भा का कोट कहलाता है। जब राणा कुम्भा को मेवाड़ छोड कर भागना पडा तो उसने यहा आकर बहुत समय से उपेक्षित पडे हुए परमारों के किले पर अपना सूर्य-ध्वज फहराया था। उसने इस अचल-गढ के किले की केवल टूट फूट की ही मरम्मत करवाई थी बाकी सब काम बहुत प्राचीन काल का है। इस किले में सावण-भादों नामक एक टाका है, जो अपने नाम को पूर्णतया सार्थक कर देता है क्योंकि आधा जून बीतते बीतते तो यह पानी से लबालब भर जाता है। पूर्वोक्त सबसे ऊँचे शिखर पर परमारों की गढी के खण्डहर हैं। यहाँ से यदि द्रुत-गामी बादलों के उस पार दृष्टि फैलाई जावे तो उन टूटे फूटे महलों और वेदियों की झांकी प्राप्त होती है कि जिनकी रक्षा करने के लिए परमारों की वीर जाति ने लडकर अपना रक्त बहाया था।"

अचलगढ की बुर्जों और रमणीय आबू से अन्तिम विदा लेने के पहले जिस वश के राजों ने यहा पर कितने ही वर्षों तक राज्य किया था उसी परमार वश के विषय में कुछ शब्द कह देना उपयुक्त होगा। प्राकारों से घिरी हुई चन्द्रावती नगरी इनकी राजधानी थी। आबू पर्वत की तल-

हटी से लगभग बारह मील की दूरी पर और अम्बाभवानी तथा तारिंगा के देवालयों से कुछ अधिक दूरी पर जंगलों से घटाटोप प्रदेश में बनासके किनारे अब भी इस नगरी के खण्डहर पाए जाते हैं। जिस स्थान पर पहले यह नगर बसा हुआ था वहाँ अब घनी वनस्पति उग आई है; इसके कूए और तालाब मिट्टी से भर आए हैं, देवालयों का नाश हो चुका है और इसके खण्डहरों में से संगमर्मर के पत्थर छुटे जा रहे हैं। ये खण्डहर एक बहुत विशाल मैदान में फैले हुए हैं इससे पता चलता है कि इस नगर का विस्तार बहुत बड़ा रहा होगा। जब पहल पहल यूरोपियन लोग इन खण्डहरों को देखने गए तो जिस स्थान पर वे सर्वप्रथम आकर पहुँचे वहीं संगमर्मर की बनी हुई बीस सुन्दर इमारतों के खण्डहर खोद कर निकाले गए; इससे इस नगर की सुन्दरता और समृद्धि का पता चलता है। धारावर्ष के भाई रणधीर प्रह्लादन देव ने प्रह्लादनपट्टण अथवा पाल्हनपुर बसाया था वह भी चन्द्रावती के राजवंश क अधिकार में ही था।

परमारों में पहला राजा श्री धूमराज हुआ। (१)धंधूक और धुव

---

(१) आबू पर्वत पर देलवाड़ा में श्री आदिनाथ का देवालय है। इस मन्दिर की दाहिनी तरफ धर्मशाला की भीत पर एक लेख है जो फाल्गुन कृष्ण १ सोमवार सं १२६७ को लिखा गया था। यह लेख वीरधवल के समय के श्री सोमेश्वरदेव कवि का रचा हुआ है। इससे चन्द्रावती के परमार राजाओं की वंशावली का निम्नलिखित परिचय प्राप्त होता है—

श्रीधूमराजः प्रथमं बभूव भूवासवस्तत्र नरेन्द्रवंशे
भमीभृतौ च नवनागमिज्ञामपक्षयोपदेदनवेदमाह ॥११॥
धन्धुकधुवभटादयस्ततस्ते रिपुद्विपघटाविदोऽभवन्
यत्कुलेऽजनि पुमान्मनोरमो रामदेव इति कामदेवजित् ॥१४॥ इत्यादि।

भट्ट उसके क्रमानुयायी थे। इनके विषय में लिखा है कि, "हाथियों के टोले ( झुण्ड ) के समान शत्रुओं के झुण्ड के लिए वे अजित शूर-वीर पुरुष थे।' इनके पीछे रामदेव हुआ। जिस समय कुमारपाल सर्वो-

---

वशिष्ठ मुनि के अग्निकुण्ड में से परमार नामका पुरुष उत्पन्न हुआ जिसके वश में श्री धूमराज उसके बाद

|

धन्धुक

|

ध्रुवभट आदि हुए, और उनके पीछे

|

रामदेव

|

यशोधवल(कुमारपाल के शत्रु मालवा के राजा बल्लाल को इसी ने मारा था)

|

धारावर्ष ( स १२२०, १२३७, १२४५, १२६५ के लेख हैं । प्रल्हादनदेव (कोंकण का राज्य किया) पालणपुर बसाया, सामतसिंह से लड़ा

सोमसिंहदेव (स १२८७,१२८९,१२९२)

कृष्णराजदेव (स १३००)

उदयपुर के श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा द्वारा प्राप्त विमलशाह के देवालय के लेख का कुछ अश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"समजनि वीरामणी धधु ॥५॥

स भीमदेवस्य नृपस्य सेवाममन्यमानः किल धुधुराजः ।
नरेशरोषाञ्च ततो मनस्वी धाराधिप भोजनर प्रपेदे ॥६॥
प्राग्वाटवशाभरण बभूव, रत्नप्रधानो विमलाभिधान ।
यस्तेजसा दु समयान्धकारे, मग्नोऽपि धर्म्म सहसाविरासीत् ॥७॥
ततश्च भीमेन नराधिपेन, प्रतापभूमिर्विमलो महामतिः ।
कृतोऽर्बुदे दण्डपति सता प्रिय प्रियवदो वन्दतु जैनशासने ॥८॥
श्री विक्रमादित्यनृपाद्व्यतीतेऽष्टाशीतियाते शरदा सहस्रे ॥१०॥"

छूटी से लगभग बारह मील की दूरी पर और अम्बाभवानी तथा तारिंगा के देवालयों से कुछ अधिक दूरी पर जंगलों से घटाटोप प्रदेश में बनासके किनारे अब भी इस नगरी के खण्डहर पाए जाते हैं। जिस स्थान पर पहले यह नगर बसा हुआ था वहाँ अब घनी वनस्पति उग आई है; इसके कूप और तालाब मिट्टी से भर आए हैं, देवालयों का नाश हो चुका है और इसके खण्डहरों में से संगमर्मर के पत्थर लुटे जा रहे हैं। ये खण्डहर एक बहुत विशाल मैदान में फैले हुए हैं इससे पता चलता है कि इस नगर का विस्तार बहुत बड़ा रहा होगा। जब पहले पहल यूरोपियन लोग इन खण्डहरों को देखने गए तो जिस स्थान पर ये सर्वप्रथम जाकर पहुँचे वहीं संगमर्मर की बनी हुई बीस सुन्दर इमारतों के खण्डहर खोद कर निकाले गए; इससे इस नगर की सुन्दरता और समृद्धि का पता चलता है। धारावर्ष के भाई रणधीर प्रह्लादन देव ने प्रह्लादनपट्टण अथवा पाल्हनपुर बसाया था वह भी चन्द्रावती के राजवंश के अधिकार में ही था।

परमारों में पहला राजा श्री धूमराज हुआ। (१)धंधूक और ध्रुव

---

(१) आबू पर्वत पर देलवाड़ा में श्री आदिनाथ का देवालय है। इस मन्दिर की दाहिनी तरफ धर्मशाला की भीत पर एक लेख है जो फाल्गुन कृष्णा १ सोमवार सं० १२६७ को लिखा गया था। यह लेख वीरधवल के समय के श्री सोमेश्वरदेव कवि का रचा हुआ है। इससे चन्द्रावती के परमार राजाओं की वंशावली का निम्नलिखित परिचय प्राप्त होता है—

श्रीधूमराजः प्रथमं बभूव भूवासवस्तत्र नरेन्द्रवंशे
भूमीभृतो यः कृतवानभिज्ञान्पक्षप्रमोच्छेदरुजाभिदेनात् ॥११॥
धन्धुकध्रुवभटादयस्ततस्ते रिपुद्विपघटाजितोऽभवन्
तत्कुलेऽजनि पुमान्मनोरमो रामदेव इति कामदेवजित् ॥१४॥ इत्यादि।

लिए लिखा है कि वह चन्द्रावती का राजा था। नांदोल के चौहानों की शाखा में देवड़ा राजपूत हैं, उनके इतिहास मे लिखा है कि राव लुम्भो ने आबू और चन्द्रावती को जीता था और बाडौली ग्राम के आगे जो लडाई हुई उसमे परमारों के राज्य को जीत कर अपने आधीन कर लिया, "इस लड़ाई में अगनसेन का कुँअर मेरुतुङ्ग भी अपने सातसौ साथियों के साथ मारा गया।" इस आधार के प्रमाण से इस झगडे की अन्तिम लड़ाई १३०३ ई० में हुई जिसमें चन्द्रावती देवडा चौहानों के अधिकार में आ गई और आबू को तो उन्होंने इससे सात वर्ष पहले ही हस्तगत कर लिया था। "इस बीच मे चौहान धीरे धीरे परमारों की छोटी छोटी जमींदारियों को नष्ट करते रहे और प्रत्येक जीत पर एक नई शाखा का जन्म होता रहा। इनमे से कितने ही तो, जैसे मदार और गिरवर के

---

अचलेश्वर के लेख और विमलशाह के लेख के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से वशावली तैयार होती है—

| अचलेश्वर के लेख के आधार पर | विमलशाह के देवालय के लेखानुसार |
|---|---|
| १ अल्हण | १ आसराज |
| २ कीर्तिपाल | |
| ३ समरसिह | समरसिंह |
| ४ उदयसिंह | |
| ५ मानसिंह | |
| ६ प्रतापसिंह | प्रतापमल्ल |
| ७ बीजड | बिजड |
| लुणिग-लु दिग | लुणिग-लु ढ |
| ८ लुणवर्मा-लुढागर | लु भो |
| लु ढाप | तेजसिंह |

कृष्ण सत्तावान् राजा था उस समय इस रामदेव का पुत्र यशोधवल ही आबू पर राज्य करता था। यशोधवल के पुत्र श्री सोमसिंह देव अपने पिता के बाद गद्दी पर बैठा। सन् १२३१ ई० के एक लेख में उसको 'महामण्डलेश्वर' लिखा है। उस समय अणहिलवाड़ा में श्री भीमदेव (द्वितीय) महाराजाधिराज था। फिर सोमसिंह के भी एक पुत्र हुआ जिसका नाम कृष्णराजदेव था।

धारावर्ष के पुत्र के समय में भी परमारों ने नाडोल के चौहानों को मार्ग दे दिया था। विमलशाह (१) के देवालय में एक लेख है जिसमें लिखा है कि इन चौहानों में लुण्ड अथवा लुणिग नाम का एक पुरुष था (१०९२ ई०) जिसने मारवाड़सिक का वध करके आबू का राज्य अपने अधिकार में ले लिया था। वशिष्ठ के देवालय में (ई०स० १३३८ का) एक लेख है जिसके अनुसार लुणिग का पुत्र तेजसिंह था उसका पुत्र का नाम कान्हड़देव और पौत्र का नाम सामन्तसिंह था। कान्हड़देव के

---

इससे विदित होता है कि संवत् १ ८८ में विमलशाह ने जो देवालय बनवाया था उसी का यह लेख है। यह विमलशाह प्रथम भीमदेव के समय में आबू का दण्डपति था। इसके बाद का जो लेख मिलता है वह इस देवालय के जीर्णोद्धार के समय का है।

(१) इस लेख को पन्ने में फार्बस साहब से भूल हो गई है। उनके पास जो नकल थी उसके लिये 'वसु मुनि कर राशि वर्षे' पाठ के अनुसार संवत् ७८ और ई० स० १०९२ निकलता है परन्तु उदयपुर के श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने स्वयं आबू पर जाकर इस लेख को पढ़ा है और उसकी अच्छी तरह जाँच कर नकल की है उसमें—वसु मुनि गुण राशि वर्षे—पाठ है इसके अनुसार ११७८ वि० स० और ११२२ ई० सन् निकलता है इस प्रकार एक सौ वर्ष की भूल हो गई।

लिए लिखा है कि वह चन्द्रावती का राजा था। नांदोल के चौहानों की शाखा में देवड़ा राजपूत हैं, उनके इतिहास में लिखा है कि राव लुम्भो ने आबू और चन्द्रावती को जीता था और बाडौली ग्राम के आगे जो लड़ाई हुई उसमे परमारों के राज्य को जीत कर अपने आधीन कर लिया, "इस लड़ाई में अगनसेन का कुँअर मेरुतुङ्ग भी अपने सातसौ साथियों के साथ मारा गया।" इस आधार के प्रमाण से इस झगड़े की अन्तिम लड़ाई १३०३ ई० में हुई जिसमें चन्द्रावती देवड़ा चौहानों के अधिकार में आ गई और आबू को तो उन्होंने इससे सात वर्ष पहले ही हस्तगत कर लिया था। "इस बीच मे चौहान धीरे धीरे परमारों की छोटी छोटी जमींदारियों को नष्ट करते रहे और प्रत्येक जीत पर एक नई शाखा का जन्म होता रहा। इनमें से कितने ही तो, जैसे मदार और गिरवर के

---

अचलेश्वर के लेख और विमलशाह के लेख के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से वशावली तैयार होती है—

| अचलेश्वर के लेख के आधार पर | विमलशाह के देवालय के लेखानुसार |
|---|---|
| १ अल्हण | १ आसराज |
| २ कीर्तिपाल | |
| ३ समरसिंह | समरसिंह |
| ४ उदयसिंह | |
| ५ मानसिंह | |
| ६ प्रतापसिंह | प्रतापमल्ल |
| ७ बीजड | बिजड |
| लुणिग-लु ढिग | लुणिग-लु ढ |
| ८ लुणवर्मा-लुढागर | लु भो |
| लु ढाप | तेजसिंह |

ठाकुर के वंशज अपने मुख्य स्वामियों से मुक्त होकर उनके प्रतिनिधियों को धीरे धीरे कम मानने लग गये।"

आबू के एक दूसरे लेख में लिखा है कि सन् १२६४ ई० में सारंगदेव अणहिलवाड़ा का राजा था और वीसलदेव उसका एक सूबेदार था जिसके अधिकार में अठारहसौ मण्डल थे और चन्द्रावती उसके रहने का स्थान था। यह वीसलदेव राजा का एक अधिकारी मात्र था और कुछ समय के लिए यह प्रान्त उसके अधिकार में रहा होगा। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जब चौहानों ने हमला किया तो सारंगदेव ने अपनी फौज भेजकर अपने पटावतों का प्रदेश जो झगड़े की जड़ बना हुआ था अपने अधिकार में कर लिया होगा। उक्त लेख के अतिरिक्त एक और भी लेख है जो इससे सर्वथा भिन्न है। अचलेश्वर के मन्दिर में एक पत्थर पर खुदा हुआ लेख मिलता है जिसमें एक दूसरे ही लुम्बदेव का वर्णन है (१३२१ ई०) जो साँभर के चौहानों का वंशज बतलाया गया है। इसके पूर्वजों की नामावली पहले वाले लुण्ड अथवा लुणिग के पूर्वजों की नामावली से भिन्न है। इसने चन्द्रावती प्रान्त और रमणीय आबू को अपने अधिकार में ले लिया और अचलेश्वर के सामने अपनी तथा अपनी स्त्री की मूर्तियाँ स्थापित कीं।

अब इस वृत्तान्त को यहीं छोड़कर हम फिर थोड़ी देर के लिए वाघेलों की कथा आरम्भ करते हैं। पहले लिखा जा चुका है कि वीरधवल के कुमार वीसलदेव के विषय में अधिक वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता। भाट लोगों की कथाओं से केवल इतना ही पता चलता है कि इसके

राज्यकाल में दुष्काल (१) पडे जिनको मिटाने का इसने भरसक प्रयत्न किया और वीसलनगर बसाया तथा दर्भावती अथवा डभोई के किले का जीर्णोद्धार कराया।

देवपट्टण के सोमनाथ के देवालय में सन् १२६४ ई० का एक लेख है जिसमे अर्जुनदेव नामक राजा के साथ महाराजाधिराज पद के सभी विशेषण लिखे हुए हैं "परमेश्वर भट्टारक श्री चालुक्य चक्रवर्ती महाराजाधिराज श्रीमदर्जुनदेव"। बाघेलावंश के भाटों का अपनी वहियों के आधार पर कहना है कि अर्जुनदेव वीसलदेव के बाद गद्दी पर बैठा था, परन्तु उसके राज्यकाल की घटनाओं का कोई वर्णन नहीं मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वह अणहिलवाड़ा का राजा था और शैव मत का अनुयायी था। अनेक राजा उसकी आज्ञा मानते थे, जिनमे से चन्द्रावती का परमार राजा राणक, श्री सोमेश्वरदेव, चावडा ठाकुर पालुकदेव, रामदेव, भीमसिंह इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। श्रीमल्ल देव उसका प्रधानमन्त्री था और हरमुज वेलाकुली व नाखुदा नूर-उद्दीन फीरोज का पुत्र खोजा इब्राहिम आदि अन्य मुसलमान भी उसके कर्मचारी थे, परन्तु 'नाखुदा' पद से यह ठीक ठीक पता नहीं चलता कि ये लोग किस अधिकार पर नियुक्त थे और न यही बात मालूम होती है कि एक हिन्दू राजा के अधिकार मे ये मुसलमान लोग नौकरी करने

---

(१) स० १३१५ का अकाल पँदरथा अकाल के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय कच्छ में भद्रेश्वर नाम का एक तालुका था जिसको भगडूशाह नामक वनिए के गिरवी रखकर इसने अपने प्रान्त के लोगों के अन्न वस्त्र का प्रबन्ध किया था, जो धन बचा उससे जिन-प्रासाद का जीर्णोद्धार कराया गया।

ठाकुर के वंशज अपने मुख्य स्वामियों से मुक्त होकर उनके प्रतिनिधियों को धीरे धीरे कम मानने लग गये।"

आबू के एक दूसरे लेख में लिखा है कि सन् १२६४ ई० में सारङ्गदेव अणहिलवाड़ा का राजा था और वीसलदेव उसका एक सूबेदार था जिसके अधिकार में अठारहसौ मण्डल थे और चन्द्रावती उसके रहने का स्थान था। यह वीसलदेव राजा का एक अधिकारी मात्र था और कुछ समय के लिए यह प्रान्त उसके अधिकार में रहा होगा। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जब चौहानों ने हमला किया तो सारंगदेव ने अपनी फौज भेजकर अपने पटावतों का प्रदेश जो झगड़े की जड़ बना हुआ था अपने अधिकार में कर लिया होगा। इस लेख के अतिरिक्त एक और भी लेख है जो इससे सर्वथा भिन्न है। अचलेश्वर के मन्दिर में एक पत्थर पर खुदा हुआ लेख मिलता है जिसमें एक दूसरे ही लुम्बदेव का वर्णन है (१३२१ ई०) जो साँभर के चौहानों का वंशज बतलाया गया है। इसके पूर्वजों की नामावली पहले वाले लुम्ब अथवा लुम्भिग के पूर्वजों की नामावली से भिन्न है। इसने चन्द्रावती प्रान्त और रमणीय आबू को अपने अधिकार में ले लिया और अचलेश्वर के सामने अपनी तथा अपनी स्त्री की मूर्तियां स्थापित कीं।

अब इस वृत्तान्त को यहीं छोड़कर हम फिर थोड़ी देर के लिए वाघेलों की कथा आरम्भ करते हैं। पहले लिखा जा चुका है कि वीरधवल के कुमार वीसलदेव के विषय में अधिक वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता। भाट लोगों की कथाओं से केवल इतना ही पता चलता है कि इसके

राज्यकाल में दुष्काल (१) पडे जिनको मिटाने का इसने भरसक प्रयत्न किया और वीसलनगर बसाया तथा दर्भावती अथवा डभोई के किले का जीर्णोद्धार कराया।

देवपट्टण के सोमनाथ के देवालय में सन् १२६४ ई० का एक लेख है जिसमे अर्जुनदेव नामक राजा के साथ महाराजाधिराज पद के सभी विशेषण लिखे हुए हैं "परमेश्वर भट्टारक श्री चालुक्य चक्रवर्ती महाराजाधिराज श्रीमदर्जुनदेव"। वाघेलावंश के भाटों का अपनी वहियों के आधार पर कहना है कि अर्जुनदेव वीसलदेव के बाद गद्दी पर बैठा था, परन्तु उसके राज्यकाल की घटनाओं का कोई वर्णन नहीं मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वह अणहिलवाड़ा का राजा था और शैव मत का अनुयायी था। अनेक राजा उसकी आज्ञा मानते थे, जिनमे से चन्द्रावती का परमार राजा राणक, श्री सोमेश्वरदेव, चावडा ठाकुर पालुकदेव, रामदेव, भीमसिंह इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। श्रीमल्ल देव उसका प्रधानमन्त्री था और हरभुज वेलाकुली व नाखुदा नूर-उद्दीन फीरोज का पुत्र खोजा इब्राहिम आदि अन्य मुसलमान भी उसके कर्मचारी थे, परन्तु 'नाखुदा' पद से यह ठीक ठीक पता नहीं चलता कि ये लोग किस अधिकार पर नियुक्त थे और न यही बात मालूम होती है कि एक हिन्दू राजा के अधिकार में ये मुसलमान लोग नौकरी करने

---

(१) स० १३१५ का अकाल पँदरया अकाल के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय कच्छ में भद्रेश्वर नाम का एक तालुका था जिसको झगडूशाह नामक बनिए के गिरवी रखकर इसने अपने प्रान्त के लोगों के अन्न वस्त्र का प्रबन्ध किया था, जो धन बचा उससे जिन-प्रासाद का जीर्णोद्धार कराया गया।

लेख मे आबू का राजा लिखा है और उसी के अधिकार मे वीसलदेव को चद्रावती का मण्डलेश्वर लिखा है। सारगदेव के बाद कर्ण वाघेला राजा हुआ, जो 'गैला' अथवा पागल के उपनाम से प्रसिद्ध था। यही अणहिलपुर का अन्तिम हिन्दू राजा था।

---

का सवत् १३३२ ई० का लेख मिलता है, परन्तु सवत् १३५० (ई०स० १२६५) के आबू के लेख और सवत् १३४३ (ई० स० १२८७) के लेख के अनुसार यह अप्रमाणित ठहर जाता है। इस समय उसका महामात्य मधुसदन था। लघुकर्ण के ६० वर्ष के विषय में 'आठ' वर्ष के स्थान म 'साठ' वर्ष लिखा है, ऐसी शका होती है।

# वस्तुपाल तेजपाल विषयक विशेष ज्ञातव्य(*)

वस्तुपाल और तेजपाल का जन्म अणहिल्लवाड़ा पट्टण के प्राचीन पोरवाड़ वणिक् वंश में हुआ था। वस्तुपाल स्वयं विद्वान्, विद्या-प्रेमी और विद्वानों का आदर करने वाला था। उसका लिखा हुआ षोडश-सर्गात्मक 'नरनारायणानन्द' नामक महाकाव्य है जो भारवि और माघ की शैली में महाभारत के वनपर्वान्तर्गत अर्जुन और कृष्ण (नर और नारायण) के मैत्री-सम्बन्ध में सुभद्रापरिणय के सन्दर्भ को लेकर रचा गया है। इसके अन्तिम अथवा षोडश सर्ग में वस्तुपाल ने अपने वंश के मूल पुरुष का नाम चण्डप लिखा है। उसके मित्र और कीर्ति-कौमुदी के कर्त्ता सोमेश्वर ने भी लिखा है कि 'प्राग्वाट वंश का प्रथम पुमान् मन्त्रिमण्डलमार्तण्ड चण्डप हुआ'। संभवतः यह गुजरात के राजाओं का ही मुख्य-मन्त्री था। इसका पुत्र चण्डप्रसाद हुआ जिसका हाथ राजा की व्यापारमुद्रा से कभी वियुक्त नहीं हुआ'। चण्डप्रसाद के सोम और सूर नामक दो पुत्र हुए। सोम सिद्धराज जयसिंह के दरबार में जवाहरात आदि का अधिकारी था। उसकी स्त्री का नाम सीता और पुत्र का नाम अश्वराज अथवा आशाराज था। अश्वराज का विवाह दण्डाधिप आभु नामक प्राग्वाद् वणिक् की पुत्री कुमारदेवी से हुआ था। यह अश्वराज और कुमारदेवी ही वस्तुपाल के मातापिता थे। (१)

---

(*) यह टिप्पणी मूल पुस्तक एवं गुजराती अनुवाद में नहीं है।

(१) कीर्ति कौमुदी सर्ग ३ (४-२२)

प्रबन्धचिन्तामणि मे लिखा है कि कुमारदेवी विधवा थी और अश्वराज के साथ उसका पुनर्विवाह हुआ था। लक्ष्मीसागर, पार्श्वचन्द्र और मेरुविजय ने भी अपनी गुजराती कृतियों ( वस्तुपालरासा ) मे इस तथ्य की पुष्टि की है। चालुक्यों के कुलपुरोहित सोमेश्वर ने उनका परिचय वीरधवल से कराया था और तदनन्तर उनकी नियुक्ति राजकार्य मे हुई। सुकृतसकीर्तन ( सर्ग ४ ), जयसिंह सूरिकृत वस्तुपाल-तेजपाल-प्रशस्ति (पद्य ५१) और उदयप्रभकृत सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी (पद्य ११८-१६) में लिखा है कि वे पहले से ही भीमदेव द्वितीय की सेवा में थे और वीरधवल की प्रार्थना पर राजा ने उनको उसे दे दिया था।

राजशेखर सूरि ने इन बन्धुओं द्वारा किए गए व्यय का व्यौरा इस प्रकार दिया है—

| | |
|---|---|
| शत्रुञ्जय पर | १८,६६,००,००० द्रव्य |
| गिरिनार पर | १२,८०,००,००० " |
| आबूशिखर पर | १२,५३,००,३०० " |
| ( अणहिलवाड़ा, स्तम्भतीर्थ और भृगुकच्छ के तीन सरस्वतीभण्डारों पर ) | १८,००,००० " |
| खम्भात के ज्ञानभण्डार पर | ३,००,००० " |

वस्तुपाल की दोनों पत्नियों के नाम ललितादेवी और सौख्यलता थे और तेजपाल की पत्नी का नाम अनुपमा था। अनुपमा वास्तव मे अनुपमा थी। इन दोनों भाइयों ने जितने बड़े बडे धर्मकार्य किए वे सब अनुपमा देवी के परामर्श से ही किए थे।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है वस्तुपाल स्वय साहित्य-सेवी एव विद्वानों का आश्रयदाता था। उसको 'कूर्चाल सरस्वती' (१) कवि-

(१) दाढ़ीदार सरस्वती

कुमार, 'कविचक्रवर्ती' और 'सरस्वतीसुत' की उपाधियाँ प्राप्त थीं। यह जैसा स्वयं प्रतिभाशाली सरस्वती का वरदपुत्र कवि था वैसा ही साहित्य का सूक्ष्म आलोचक भी। सोमेश्वर ने उल्लाघराघव नाटक के द्वितीय सर्ग में कहा है—

'सत्कविकाव्यशरीरे दुष्यद्गददोषमोषणैकभिषक्
श्रीवस्तुपालसचिवः सहृदयचूडामणिर्जयति ॥

सत्कवि के काव्यशरीरगत दोषरूपी दुष्टरोग को मेटने वाला एकमात्र सहृदयचूडामणि वस्तुपाल सचिव विजयी है।

वस्तुपाल-रचित एवं उसके आश्रय में तथा उसकी प्रेरणा से निर्मित प्राप्त साहित्य का विवरण इस प्रकार है —

वस्तुपाल-रचित — (१) अम्बिकास्तोत्र (२) आदिनाथस्तोत्र (३) आराधना (४) नेमिनाथस्तोत्र और (५) नरनारायणानन्द महाकाव्य।

सोमेश्वर— (१) सुरथोत्सव नाटक (२) कीर्तिकौमुदी महाकाव्य, (३) उल्लाघराघव नाटक (कवि ने यह नाटक अपने पुत्र भल्ल शर्म्मा की प्रार्थना पर रचा था) (४) कर्णामृतप्रपा*(५) रामशतक (६) आबूप्रशस्ति (१२८७ वि०) (७) वैद्यनाथ प्रशस्ति (१३११ वि०) (८) वीरनारायण-प्रशस्ति (अप्राप्त)। इनके अतिरिक्त सोमेश्वर निर्मित अन्य कुछ पद्यादि भी मिलते हैं।

हरिहर— यह नैषध-काव्य के रचयिता श्रीहर्ष का वंशज था। इसके पूर्व गुजरात में नैषध-काव्य का प्रचलन नहीं था। कहते हैं कि वस्तुपाल ने नैषधीयचरित की पुस्तक इससे लेकर एक ही रात में प्रतिलिपि करवाली थी। इसके गुजरात में आने पर पहले

---

* सोमेश्वर की इस कृति का प्रकाशन राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर से 'राजस्थानपुरातन ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत हो रहा है।

तो सोमेश्वर मे और इसमें अनबन रही, बाद मे मित्रता हो गई। हरिहर प्रणीत कोई ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला था परन्तु हाल ही मे मुनि श्री पुण्यविजयजी को अहमदाबाद में देचशापाडा ज्ञान भण्डार में हरिहर कविकृत 'शङ्खपराभव व्यायोग' की एक प्राचीन प्रति प्राप्त हुई है जिसमे सिन्धुराज पुत्र शङ्ख पर वस्तुपाल की विजय का वर्णन है। यह ऐतिहासिक घटना अन्य प्रामाणिक सन्दर्भो से भी सम्पुष्ट है। प्रति १६ वीं शताब्दी से अर्वाचीन नहीं है ॐ।

नानाकभूति अथवा नानाक— यह वीसलदेव का दरबारी कवि एव कृपापात्र था। इसने प्रभासपट्टण में सरस्वतीसदन नामक विद्यालय की स्थापना की थी। इस विद्यालय के स्थान पर ब्रह्मेश्वर के मन्दिर के पास अब भी आश्विन मे सरस्वती-पूजा होती है। इस विद्यालय से सम्बद्ध दो प्रशस्तियाँ मिलती हैं जिनमें से एक १३२८ वि० सं० की है। इसका भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता परन्तु प्रशस्तियों से इसकी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय मिलता है। वस्तुपाल से इसकी मैत्री थी।

यशोवीर— वणिक् था और जाबालिपुर के चौहान राजा उदयसिंह का मत्री था। हम्मीरमदमर्दन नाटक मे वस्तुपाल द्वारा यशोवीर का बड़े भाई के समान आदर करना लिखा है। यह शिल्पशास्त्र का विशेषज्ञ था और आबू के मन्दिर मे इसने कितनी ही त्रुटिया बताई थीं।

---

जर्नल ऑफ दी ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, पृ २७०-२७५, जून १६५८ में श्री भोगीलाल जे साडेसरा का लेख

सुभट— सोमेश्वर और हरिहर ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। इसका लिखा हुआ 'दूताङ्गद' नामक छायानाटक मिलता है।

अरिसिंह— यह प्रसिद्ध कवि एवं साहित्यिक अमरचन्द्र का कला-गुरु था। अमरचन्द्र ही इसको वीसलदेव के दरबार में लाया था। (प्रबन्धकोश पृ० ६१) इसके द्वारा रचित सुकृतसंकीर्तन काव्य का बहुत महत्त्व है। बहुत से स्फुट पद्य भी कितने ही ग्रन्थों में उल्लिखित मिलते हैं।

अमरचन्द्रसूरि— मध्यकालीन संस्कृत साहित्य के इतिहास में इनका नाम सुप्रसिद्ध है। बालभारत और 'काव्यकल्पलता' इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। काव्यकल्पलता पर इन्हीं की लिखी 'कविशिक्षा' नामक वृत्ति भी मिलती है। इसी ग्रन्थ पर 'परिमल' व 'मञ्जरी' नामक दो और टीकाएं भी इन्हीं की लिखी मिलती हैं। इनके अतिरिक्त अलङ्कारप्रबोध छन्दोरत्नावली और स्यादिशब्दसमुच्चय नामक दो और भी ग्रन्थ इन्हीं के द्वारा रचित हैं। प्रबन्ध-कोश में सूक्तावली और कलाकलाप नामक दो और ग्रन्थों के नाम दिए हैं पर उपलब्ध नहीं हैं। ये 'वेणीकृपाण' विरुद (१) से विभूषित थे। इनकी एक प्रतिमा अणहिलवाड़ा में पण्डित महेन्द्र के शिष्य मदनचन्द्र ने विक्रम संवत् १३४४ में स्थापित की थी। (२)

विजयसेनसूरि— वस्तुपाल के कुलगुरु थे। यद्यपि इनकी एक मात्र अपभ्रंश रचना 'रेवन्तगिरि रास' ही उपलब्ध है परन्तु सम सामयिक अन्य संस्कृत विद्वानों के ग्रन्थों से विदित होता है कि

(१) वेणी अर्थात् नागिन के झूडे की उपमा कृपाण से देने के कारण।

(२) देखिए 'प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग २ मुनि जिनविजय जी सम्पादित भिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई में प्रकाशित।

ये वहुत अच्छे कवि और विद्वान् थे।

उदयप्रभसूरि— ये विजयसेन के पट्टशिष्य थे और अवस्था मे वस्तुपाल से छोटे थे। इनकी मुख्य कृति 'धर्माभ्युदय' महाकाव्य अपरनाम 'सघपति-चरित्र' है जिसमे वस्तुपाल की यात्रा का वर्णन है। इस कृति की एक प्रति खम्भात के जैन भण्डार में सुरक्षित है जो स्वय वस्तुपाल की हस्तलिपि मे लिखित है।

जिनभद्र— इनके द्वारा रचित प्रबन्धावली (अपूर्ण) उपलब्ध होती है। ऐतिहासिक कथाओं का यह सग्रह इन्होंने वस्तुपाल के पुत्र जयतसिंह को पढाने के लिए तैयार किया था। (१)

नारचन्द्र सूरि— ये वस्तुपाल के मातृकुल के गुरु थे और 'पाण्डवचरित्र' के कर्ता तथा अनर्घराघव नाटक के व्याख्याकार देवप्रभसूरि के शिष्य थे। वस्तुपाल इनका वहुत आदर करता था और उसने इनसे जैनग्रन्थों के अतिरिक्त न्याय, व्याकरण एव साहित्य विषयों का अध्ययन किया था। इन्होंने वस्तुपाल के साथ बहुत सी धर्म यात्राएँ भी की थीं।

इनकी कृतियों का विवरण इस प्रकार है—

१ श्रीधरकृत न्यायकन्दली पर टिप्पण,
२ प्राकृत-प्रबोध,
३ मुरारिकृत अनर्घराघव पर टिप्पण,
४ नारचन्द्र ज्योतिष अथवा ज्योतिषसार, जिसके केवल दो ही प्रकरण उपलब्ध हैं।

इनके अतिरिक्त कथारत्नाकर तथा कथारत्नसग्रह और चतुर्विंशति-जिन-स्तोत्रादि अन्य रचनाओं के भी उल्लेख मिलते

---

(१) मुनि जिनविजय जी सम्पादित–पुरातन-प्रबन्ध-सग्रह पृ० १२६

हैं। गिरनार पर वस्तुपाल प्रशस्ति-परक दो शिलालेखों का पद्य भाग भी इन्हीं की रचना है। (पिटर्सन)

नरेन्द्रप्रभसूरि— इन्होंने वस्तुपाल की प्रार्थना पर विक्रम संवत् १२८२ में 'अलङ्कारमहोदधि' नामक ग्रन्थ रचा और उसकी वृत्ति लिखी। इसके अतिरिक्त 'काकुत्स्थकेलि' नामक नाटक (?) भी इनका रचा हुआ बताया जाता है परन्तु वह उपलब्ध नहीं है (न्याय कन्दली-पञ्जिका)। कितनी ही प्रशस्तियाँ और गिरनारलेखों का बहुत सा अंश नरेन्द्रप्रभसूरि की ही रचनाएं हैं। 'विवेकपादप' और विवेककलिका' नामक दो धार्मिक निबन्धों से ज्ञात होता है कि इनका साहित्यिक उपनाम विबुधचन्द्र कवि था।

बालचन्द्र— ये वस्तुपाल के परम मित्र थे। इनकी कृतियां ये हैं—

(१) वसन्तविलास महाकाव्य ( इसमें वस्तुपाल का ही वसन्तपाल नाम रख कर उसके गुणों एवं चरित्रों का वर्णन किया गया है। ),

(२) करुणावज्रायुध-(एकाङ्की),

(३) आसड़ श्रीमालीकृत विवेकमञ्जरी की व्याख्या,

(४) आसड़ श्रीमालीकृत उपदेश-कन्दली की व्याख्या

(५) गणधरावली ( जैन गुरुओं की परम्परा )।

जयसिंहसूरि—इनकी हम्मीरमदमर्दन (नाटक) और वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति नामक दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं। ये जयसिंहसूरि कुमारपाल चरित और धर्मोपदेशमाला के कर्ता जयसिंहसूरि से भिन्न हैं।

माणिक्यचन्द्र— ये मम्मटकृत 'काव्य-प्रकाश' के प्राचीनतम 'संकेत' के कर्ता थे। शान्तिनाथ-चरित्र और पार्श्वनाथ-चरित्र नामक दो महाकाव्य भी इन्हीं के रचे हुए हैं। आरम्भ में माणिक्य

चन्द्र और वस्तुपाल के सम्बन्ध यद्यपि बहुत अच्छे नहीं रहे परन्तु वाद में इनके सुदृढ़ साहित्यिक सम्बन्ध स्थापित हो गए थे। ( प्रबन्धकोश, वस्तुपाल चरित )।

पुरातन प्रबन्ध-सग्रह, प्रबन्धकोश और कृष्णकवि सकलित सुभाषित रत्नकोश से विदित होता है कि मदन ( मदनकीर्ति ), हरिहर, पाल्हनपुत्र ( आबूरासा का कर्त्ता ) चाचर्याक, पिप्पलाचार्य,( सती चन्दनबाला का गायक ), यशोधर, कमलादित्य, शङ्करस्वामिन् , दामोदर, विकल, वैरिसिंह और जयन्तदेव आदि कवि भी वस्तुपाल के समसामयिक थे।

इनके अतिरिक्त वस्तुपाल के कुटुम्बीजन भी सत्साहित्यिक प्रतिभा से समन्वित थे। तेजपाल प्रणीत कितने ही स्फुट पद्य प्राप्त होते हैं। उसकी पत्नी अनुपमा की षड्दर्शनवेत्ताओं ने 'षड्दर्शनमाता' कह कर स्तुति की है। 'कङ्कणकाव्य' नामक उसकी एक कृति भी प्रसिद्ध है ( पुरातनप्रबन्धसग्रह पृ० ६३—७० )। वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह अथवा जैत्रसिंह ने अपने पिता की मृत्यु पर निम्न पद्य पढा जो कितने ही प्रबन्धों में उद्धृत हुआ है.—

'खद्योतमात्रतरला गगनान्तरालमुच्चावचा' कति न दन्तुरयन्ति तारा ।
एकेन तेन रजनीपतिना विनाऽद्य सर्वा दिशो मलिनमाननमुद्वहन्ति ॥१०६॥
( प्रबन्धकोश पृ० १२८ )

इसी प्रकार अन्य शताधिक कवियों, भाटों और चारणों आदि ने मत्रीवर वस्तुपाल की प्रशस्ति में अपभ्रंश एव प्राचीन गुर्जर राजस्थानी भाषा में बहुत से पद्य एव दोहे आदि लिखे हैं जो इन भाषाओं के उज्ज्वल साहित्यिक रत्न समझे जाते हैं।

वस्तुपाल का देहान्त विक्रम सवत् १२९६ ( १२४० ई० ) में और तेजपाल की मृत्यु सवत् १३०४ ( १२४८ ई० ) में हुई थी।

# प्रकरण १५

## राजा कर्ण वाघेला

अब अणहिलवाड़ा के नाटक का अन्तिम दृश्य देखना बाकी है। सन् १२९६ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा और उपकारी बादशाह का वध कर दिया और उस वृद्ध मनुष्य की लाश को पैरों से रौंदता हुआ स्वयं दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया। जन-साधारण से वह अपने नाम की प्रार्थना करवाने लगा और इस प्रकार उसने निर्दयतापूर्ण और रक्तपात से भरे हुए राज्य का आरम्भ किया। इसमें उसको इतना द्रव्य प्राप्त हुआ कि उससे पहले दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले किसी भी सम्राट् को इतना माल नहीं मिला था। महमूद गजनवी को उसके बारह (१) हमलों में प्राप्त हुए जिस धन की कल्पना की जाती है वह भी इस धन राशि से बहुत कम था। मीरात-ए-अहमदी में लिखा है— 'खुदा की ऐसी इच्छा हुई कि पैगम्बर की शरिअत और दीन (मजहब) का प्रचार हो। जिस जाति के लोगों का बयान पहले किया जा चुका है उनकी सत्ता और राज्य का अन्त आ गया था और अब वे हमारे पवित्र और प्रकाशमय धर्म एवं नियमों को चलाने वाले लोगों के वश में आ गये थे कि जिससे इस महान

---

(१) मयद।

धर्म का प्रकाश सूर्य के तेज के समान अन्धकारपूर्ण क्षेत्रों मे भी फैलता चला जावे और बुराइयों से बचाने वाले उस धर्म के सच्चे फरमानों का प्रचार करते हुए हम लोग औरों को भी भारी भूल के भयकर दलदल से निकालकर मुक्ति के सच्चे और सीधे मार्ग पर ले जावें।"

सन् १२९७ ई० के आरम्भ मे ही अलाउद्दीन ने अपने भाई अलफखॉ (१) और अपने वजीर नुसरतखॉ जालेसरी को गुजरात-पुनर्विजय के लिए फौज देकर भेजा। वनराज के नगर को उजाड़ करके उन्होंने अपने कब्जे मे कर लिया और जगह जगह मुसलमान पहरायती नियुक्त कर दिए। वहाँ के राजा कर्ण बाघेला को भी, जो भाग कर दक्षिण में देवगढ के राजा रामदेव के आश्रय मे चला गया था, पकड़ लिया। प्राय मुसलमानी हमलों का अन्तरग कारण राज्य का लोभ ही होता था, परन्तु इस प्रत्यक्ष कारण के साथ साथ किसी घरेलू घटना को भी जोड देने मे हिन्दू चारणों को विशेष आनन्द प्राप्त होता है और वे इस घरेलू बात ही को किसी भी बड़ी से बड़ी राजनैतिक घटना का मूल बता देते हैं। प्रस्तुत घटना के विषय में भी लिखा है कि—"कर्ण बाघेला के माधव और केशव नामक दो मन्त्री थे। ये दोनों ही जाति से ब्राह्मण थे। बढवाण के पास ही इनका बनवाया हुआ एक कुआ अब भी मौजूद है जो 'माधव का कुआ' कहलाता है। माधव की स्त्री पद्मिनी जाति की थी इसलिए राजाने उसके पति से उसको छीन लिया और केशव को मरवा डाला। अपने भाई की मृत्यु के

(१) मीरात ए अहमदी में उलुगखॉं नाम लिखा है और बताया है कि वह गुजरात में अलपखाँ के नाम से प्रसिद्ध था।

बाद माधव अलाउद्दीन के पास दिल्ली गया और मुसलमानों को गुजरात पर चढ़ा लाया। उन दिनों गुजरात में शहर के दरवाजे दिन में भी बन्द रहते थे, जानवर भी शहर की चारदीवारी के अन्दर ही चरते थे और यहाँ के निवासी अपनी पगड़ी का एक पेंच ठोडी के नीचे से लगा कर हर समय लड़ने के लिए तैयार रहते थे। सन् १३०० ई० (१) में तुर्कों ने गुजरात में प्रवेश किया। माधव ने तीन सौ साठ कच्छी घोड़े (२) अलाउद्दीन को भेंट किए और उस देश के लिए मन्त्रीपद का भार अपने ऊपर ले लिया। (उस समय) अलफखाँ सेना का अफसर था उसके अधिकार में एक लाख घुड़सवार पन्द्रह सौ हाथी बीस हजार पैदल और पैंतालीस ऐसे अफसर थे जिनको (लड़ाई का) डंका बजाने का अधिकार प्राप्त था। इसीने वाघेलों से गुजरात छीन लिया था।"

कर्णराजा अचानक भाग जाने को विवश हुआ और इस भगदड़ में उसे अपनी रानियों बच्चों हाथी, सामान और खजाने को भी छोड़ना पड़ा। ये सब चीजें विजेताओं के हाथ में आ गईं। हिन्दुओं

---

(१) प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार यह समय १३ ४ ई है।

(२) जिस प्रकार कच्छ के घोड़े प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार काठियावाड़ की घोड़ियाँ भी नामी हैं। काठियावाड़ के निम्नलिखित स्थानों में विभिन्न जाति की घोड़ियाँ होती हैं :—

| स्थान | घोड़ी की जाति |
|---|---|
| ढसा | माणकी और बागली |
| गढ़डा | अमरदाल |
| भड़ला | मल और पती |

की जाति और धर्म के शत्रु मुसलमानों ने जिन रानियों (१) को कैद किया था उनमे कौलादेवी भी थी जो 'अपनी सूझबूझ, सुन्दरता और सुलक्षणों के लिए हिन्दुस्तान की शोभा गिनी जाती थी'। सुल्तान ने उसको पकड कर अपने जनाने मे दाखिल कर दी, और आगे चल

---

| | |
|---|---|
| चोटीला | चागी |
| पालियाद | हरिण |
| भड़ली | ताजण |
| जसदण | रडी और भूतड़ी |
| जेतपुर | जलाद |
| भीमोरा | केसर, मोराण और आगड़ियाल |
| मूलीमेवासा | वेरी |
| चूडा | बोदली |
| गोसल | फूलमाल |
| सोनीसर (मूली परगना) | रेशम |
| बागड (धधूका) | बादरी |
| खेरवा (पाटड़ी) | लाखी |
| दरवा (गोंडल) | लाश |
| बाबरा | ढेल |
| मोणिया (जूनागढ) | हीराल |
| हलवद | रामपासा |
| लींबडी | लाल |
| गुदरण (भावनगर) | मनी |
| लखतर | सीगाल्नी |
| धाधलपुर | लखमी |

(१) उस समय वहा पर मौजूद न होने के कारण कर्ण की दो रानियाँ बच गई थी। एक का नाम अमरकुँवरबा था। यह कच्छ के शेरकोट के जाडेजा

कर यही अपने कुटुम्ब और देश के लिए दुःख का कारण बन गई। अलफ खाँ और वजीर खम्भात को लूटने के लिए गए। खम्भात धन-धान्य व्यापारियों से भरा हुआ शहर था इसलिए अत्यधिक सम्पत्ति उनके हाथ लगी। यहीं पर नुसरत खाँ ने खम्भात के एक व्यापारी के पास से उसके एक सुन्दर गुलाम (दास) को भी बलात् छीन लिया था। यही गुलाम आगे चल कर सुल्तान का बहुत प्रीतिपात्र बन गया और मलिक काफूर की उपाधि प्राप्त करके बड़े भारी पद को पहुँच गया था। महमूद गजनवी के बाद में सोमनाथ के लिंग की पुनः स्थापना करदी गई थी उसका नाश करने में इस बार भी मुसलमानों ने भूल नहीं की। (१) (सन् १३०० ई०) इसके बाद सन् १३०४ ई०

---

जैसलजी की पुत्री थी। इस को रानीमंगल की खानगी में खरघार और ६५ गाम मिले थे। यह अपने पुत्र वीरसिंह को लेकर पीहर में ही रहती थी। दूसरी रानी लाछकुँवर थी। यह जैसलमेर के गजसिंहजी भाटी की पुत्री थी। यह भी अपने पुत्र सारंगदेव को लेकर मीलड़ी ग्राम में रहती थी। इसको भी रानीमंगल की खानगी में मारवाड़ के पास मीलड़ी नामक गाँव और ६५ दूसरे गाँव मिले हुए थे।

(१) दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी की फौज ने जब अणहिलपुर पट्टण को जीत कर अपने कब्जे में कर लिया तब वह कई छोटी छोटी टुकड़ियों में विभक्त करदी गई और सभी टुकड़ियाँ गुजरात काठियावाड़ के भिन्न भिन्न भागों को जीतने के लिए अलग अलग निकल पड़ी। इन्हीं में से एक ने मोढेरा के चारों ओर घेरा डालकर उसको अधिकृत कर लिया था। उसी का वर्णन अमलाल भाविदास शास्त्री ने इस प्रकार किया है।—

'अलफ खाँ की सेना ने मोढेरा पर चढ़ाई की और शहर को घेर लिया। 'यवन लोग हमारे तीर्थ स्थान को भ्रष्ट कर देंगे' इस विचार से मोढ ब्राह्मण

तक गुजरात सम्बन्धी और कोई हाल नहीं मिलता है, केवल इतना ही लिखा है कि अलफ खाँ को एक बड़ी भारी फौज के साथ उस सूबे

बहुत क्रोधित हुए और शास्त्रास्त्र लेकर उनका सामना करने के लिए तैयार हुए। ये ब्राह्मण धनुर्वेद, छत्तीस प्रकार के दण्डादण्डी युद्धशास्त्र और चौसठ कलाओं में पारंगत थे। इनके साथ युद्ध करने की किसी में सामर्थ्य न थी। चावड़ा वंश के संस्थापक राजा वनराज ने गुर्जरदेश की सीमा पर इन्हीं लोगों को (इनके पूर्वजों को) स्थापित किया था। मोढेरा ब्राह्मणों की छ जातियाँ हैं जिनमें से एक जेठीमल नाम से विदित है। इस जाति के लोग पाण्डवों के समान महा बलवान्, महारथी और अतिरथी थे। मोढेरा पर यवनों की चढाई के समाचार सुनते ही सौ ब्राह्मणों ने अपने कुटुम्ब, पशु, धन धान्यादिक को विकट वन में पहुँचा दिया और फिर एकमत होकर लड़ने को तैयार हुए। मोढेरापुर और दूसरे ५६ ग्राम इन लोगों के अधिकार में थे। माण्डव्य गोत्रीय विठ्ठलेश्वर विप्र इनका मुखिया था और सौ के सौ ब्राह्मण उसकी आज्ञा का पालन करते थे। वह चापविद्या में बहुत कुशल था। अस्तु, उसी की सरदारी में सब के सब ब्राह्मण ढाल, तलवार, तीर, कमान आदि शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर नगर की रक्षा करने लगे। दिवाली के दिन से होली तक यवनों ने नगर को घेरे रखा परन्तु ब्राह्मण भी बहादुरी से डटे रहे और नगर का रक्षण करते रहे। बादशाही सेना के बहुत से आदमी ब्राह्मणों के हाथों से मारे गए इसलिए नुसरत खाँ को और आदमी भेजने के लिए लिखा गया। उस समय माधव मन्त्री ने अलफ खाँ को कहा "ब्राह्मणों के साथ युद्ध करना राजधर्म के विरुद्ध है। इनको यदि तुमने जीत भी लिया तो कोई विशेष कीर्ति प्राप्त न होगी। लम्बी लडाई तो राजाओं के साथ ही लड़नी चाहिए, इसी में शोभा है।" यह सुनकर अलफ खाँ ने माधव को आज्ञा दी कि वह जाकर ब्रह्मणों को समझा दे, इस पर उसने ब्राह्मणों को समझाया और बादशाह की सेना के खर्च के नुकसान के लिए पाँच हजार मोहरें देने को राजी कर लिया। प्रतिज्ञानुसार ब्राह्मणों ने यह रकम उसको दे दी। इस प्रकार जब सब तरह से समाधान हो चुका तो माधव प्रधान पाटण लौट गया। उसके लौट जाने के बाद ही फागुण

का शासक बना कर भेजा गया था। मीरात ए अहमदी के लेखक ने लिखा है कि उसने अणहिलवाड़ा में सफेद संगमर्मर (१) की जुमा-मसजिद बनवाई थी जो आज तक मौजूद है। इस मसजिद में इतने खम्भे हैं कि उनको गिनने वाले से प्रायः भूल हो ही जाती है। ऐसा भी कहते हैं कि यह पहले किसी देवता का मन्दिर था और इसमें मूर्तियाँ विद्यमान थीं उसी मन्दिर में हेरफेर करके इसने मसजिद बनाली थी। कुछ भी हो यह एक विचित्र और शानदार इमारत है जो अब शहर की आबादी से बहुत दूर है परन्तु उस समय नगर के बीचों बीच स्थित थी।'

---

सुदी १५ के दिन सूर्यास्त के समय कोई बहाना निकाल कर मुसलमान लोग नगर में घुसने लगे। ब्राह्मणों ने उनको रोका तो उन्होंने हथियार उठा लिए। लड़ाई ठन गई और बहुत से यवनों तथा ब्राह्मणों के सिर कट गए। अन्त में मिश्रेश्वर सहित ब्राह्मणों को पीछे हटना पड़ा। मध्यरात्रि के समय मोढेरापुर को छोड़कर सब के सब ब्राह्मण साबरमती के किनारे आ मरे। मुसलमानी फौजों ने घरों में से ढूंढ ढूंढकर धन लूट लिया। मोढेरा के कोट और देवालयों को नष्ट कर दिया और नगर को जला दिया मोढेरा और उसके आसपास के गाँवों पर कब्जा कर लिया और लोगों को पकड़ पकड़ कर जबरदस्ती मुसलमान बना लिया। जो ब्राह्मण मोढेरा से भाग कर निकल गए थे वे अलग अलग स्थानों पर जाकर बस गए। शान्ति होने पर मिश्रेश्वर को गुजारे के लिए कुछ गाँव मिल गये और लूट का धन लेकर मुसलमान सिपाही अणहिलवाड़ा चले गये।" यह वृत्तान्त मोढ ब्राह्मणों के ग्रन्थ में लिखा है।

(१) यह आरस पत्थर पहले अजमेर से मँगवाया गया था और इससे बहुत से देवालय आदि बनवाये गये थे। जब अहमदाबाद राजधानी बना तब इसी में से बहुत सा पत्थर बड़े परिश्रम के बाद खोदखाद कर पाटण से वहाँ ले जाया गया था (मीराते अहमदी)।

काफूर नामक गुलाम, जो कभी खम्भात में एक हजार दीनारों में खरीदा गया था, अब बादशाह का बडा भारी प्रीतिपात्र और बड़े बड़े सरदारों के लिए ईर्ष्या का विषय बन गया था। सन् १३०६ ई० में काफूर को मलिक नायब का पद मिल गया और वह एक सेना का नायक बना दिया गया जिसमें अच्छे अच्छे मशहूर अफसर उसके अधिकार में काम करने लगे। इसी सेना के भाग्य में दक्षिण हिन्दुस्तान के देशों को जीतना लिखा हुआ था। दक्षिण-विजय के महान् कार्य मे दूसरे सूबों के अफसरों की तरह अलफ खाँ को भी सहायता देने की आज्ञा मिली। इसी अवसर पर कौलादेवी, जो अब बादशाह की बहुत लाडली बेगम हो गई थी, इस चढ़ाई का हाल सुन कर, बादशाह के पास पहुँची और उसने अपने शाही गुलाम के द्वारा एक काम निकाल लेने का वरदान प्राप्त किया। उसने कहा 'जब मैं कैद करके यहां लाई गई थी उससे पहले मेरे राजपूत पति से दो पुत्रियां हुई थीं। मैंने सुना है कि उनमें से बड़ी की तो मृत्यु हो गई है और छोटी, जिसका नाम देवल देवी है, अभी तक जीवित है। जब वह मेरी गोद से बिछुड़ी थी तब उसकी अवस्था केवल चार वर्ष की थी, इसलिए अब आप कृपा करके अपने सरदारों को यह आज्ञा दे दीजिए कि वे किसी तरह से उसको तलाश करके यहा दिल्ली भेज दें।" सुल्ताना की प्रार्थना के अनुसार ही बादशाह ने मलिक नायब काफूर को हुक्म दे दिया। उसने सुल्तानपुर आकर अपना मुकाम कायम किया और अभागे राजा कर्ण को, जो अब भाग कर बागलाना चला गया था, कहला भेजा 'या तो देवल कुमारी को मेरे सुपुर्द करो वरना शाही फौज का मुकाबला करने के लिए तैयार हो जाओ।' एक सच्चे राजपूत के लिए अपनी पुत्री को हल्के ठिकाने देना मृत्यु से भी अधिक दुखदायक बात है और 'जब

का शासक बना कर भेजा गया था। मीराते अहमदी के लेखक ने लिखा है कि उसने अणहिलवाड़ा में सफेद संगमर्मर (१) की जुमा-मसजिद बनवाई थी जो आज तक मौजूद है। इस मसजिद में इतने खम्भे हैं कि उनको गिनने वाले से प्रायः भूल हो ही जाती है। ऐसा भी कहते हैं कि यह पहले किसी देवता का मन्दिर था और इसमें मूर्तियाँ विद्यमान थीं उसी मन्दिर में हेरफेर करके इसने मसजिद बनाली थी। कुछ भी हो यह एक विचित्र और शानदार इमारत है जो अब शहर की आबादी से बहुत दूर है परन्तु उस समय नगर के बीचों बीच स्थित थी।'

---

सुदी १५ के दिन सूर्यास्त के समय कोई बहाना निकाल कर मुसलमान लोग नगर में घुसने लगे। ब्राह्मणों ने उनको रोका तो उन्होंने हथियार उठा लिए। लड़ाई ठन गई और बहुत से यवनों तथा ब्राह्मणों के सिर कट गए। अन्त में बिल्लेश्वर सहित ब्राह्मणों को पीछे हटना पड़ा। मध्यरात्रि के समय मोढेरापुर को छोड़कर सब के सब ब्राह्मण साबरमती के किनारे जा भरे। मुसलमानी फौजों ने घरों में से ढूंढ ढूंढ कर धन लूट लिया। मोढेरा के कोट और देवालयों को नष्ट कर दिया और नगर को जला दिया मोढेरा और उसके आसपास के गाँवों पर कब्जा कर लिया और लोगों को पकड़ पकड़ कर जबरदस्ती मुसलमान बना लिया। जो ब्राह्मण मोढेरा से भाग कर निकल गए थे वे अलग अलग स्थानों पर जाकर बस गए। शान्ति होने पर बिल्लेश्वर को गुजारे के लिए कुछ गाँव मिल गये और लूट का धन लेकर मुसलमान सिपाही अणहिलवाड़ा चले गये।" यह वृत्तान्त मोढ ब्राह्मणों के ग्रन्थ में लिखा है।

(१) यह आरस पत्थर पहले अजमेर से मँगवाया गया था और इससे बहुत से देवालय आदि बनवाये गये थे। जब अहमदाबाद राजधानी बना तब इसी में से बहुत सा पत्थर बड़े परिश्रम के बाद खोदखाद कर पाटण से वहाँ ले जाया गया था (मीराते अहमदी)।

काफूर नामक गुलाम, जो कभी खम्भात में एक हजार दीनारों में खरीदा गया था, अब बादशाह का बडा भारी प्रीतिपात्र और बड़े बड़े सरदारों के लिए ईर्ष्या का विषय बन गया था। सन् १३०६ ई० में काफूर को मलिक नायब का पद मिल गया और वह एक सेना का नायक बना दिया गया जिससे अच्छे अच्छे मशहूर अफसर उसके अधिकार में काम करने लगे। इसी सेना के भाग्य में दक्षिण हिन्दुस्तान के देशों को जीतना लिखा हुआ था। दक्षिण–विजय के महान् कार्य में दूसरे सूबों के अफसरों की तरह अलफ खाँ को भी सहायता देने की आज्ञा मिली। इसी अवसर पर कौलादेवी, जो अब बादशाह की बहुत लाडली बेगम हो गई थी, इस चढ़ाई का हाल सुन कर, बादशाह के पास पहुँची और उसने अपने शाही गुलाम के द्वारा एक काम निकाल लेने का वरदान प्राप्त किया। उसने कहा 'जब मैं कैद करके यहां लाई गई थी उससे पहले मेरे राजपूत पति से दो पुत्रिया हुई थीं। मैंने सुना है कि उनमें से बड़ी की तो मृत्यु हो गई है और छोटी, जिसका नाम देवल देवी है, अभी तक जीवित है। जब वह मेरी गोद से बिछुड़ी थी तब उसकी अवस्था केवल चार वर्ष की थी, इसलिए अब आप कृपा करके अपने सरदारों को यह आज्ञा दे दीजिए कि वे किसी तरह से उसको तलाश करके यहा दिल्ली भेज दें।" सुल्ताना की प्रार्थना के अनुसार ही बादशाह ने मलिक नायब काफूर को हुक्म दे दिया। उसने सुल्तानपुर आकर अपना मुकाम कायम किया और अभागे राजा कर्ण को, जो अब भाग कर बागलाना चला गया था, कहला भेजा 'या तो देवल कुमारी को मेरे सुपुर्द करो वरना शाही फौज का मुकाबला करने के लिए तैयार हो जाओ।' एक सच्चे राजपूत के लिए अपनी पुत्री को हल्के ठिकाने देना मृत्यु से भी अधिक दुखदायक बात है और 'जब

आकाश से अंगारे बरसें तो पिता अपनी संतान की आड़ लेकर भी अपना रक्षण करे' इस ओछी कहावत के अनुसार स्वार्थ साधने का समय भी अभी तक पूर्ण रूप से नहीं आया था। भीमदेव के वंशज और शेरदिल सिद्धराज के क्रमानुयायी कर्ण राजा ने सभी मुसीबतों को सहते हुए भी अपने वंश की प्रतिष्ठा के ध्यान को नहीं भुलाया था। वह इस मांग को स्वीकार करने के लिए किसी तरह भी राजी न हुआ। काफूर ने सोचा कि घायल हुए सिंह के समान शत्रु का सामना करने वाले अणहिलवाड़ा के भाग्यहीन राजा पर उसकी धुड़कियों का कोई असर नहीं पड़ने का इसलिए उसने अपना सफर (कूच) जारी रखा और राजप्रतिनिधि की हैसियत से, अलफखां को आज्ञा दी कि वह गुजरात की फौज लेकर बागलाना की पहाड़ियों की ओर रवाना हो जाय और शाही फरमान को बजा-लाने का पूर्ण प्रयत्न करे।

राजा कर्ण ने अलफखां का सामना किया। दो मास तक वह अपने प्राणों को हथेली पर रखकर वीरता से टक्कर लेता रहा। इस अवधि में कितनी ही लड़ाइयां हुई परन्तु अलफखां के आगे बढ़ने के सभी प्रयत्न निष्फल गए। जब अणहिलवाड़ा का अन्तिम राजा इस प्रकार अपनी निराशापूर्ण दशा में भी वीरतापूर्वक कठिनाइयों का सामना कर रहा था और शत्रु से बराबर की टक्कर ले रहा था, उसी समय अवसर देखकर मराठा जाति के एक दूसरे राजा ने उससे देवलकुमारी का विवाह अपने साथ कर देने की मांग प्रस्तुत की। कर्ण वाघेला के अच्छे दिनों में वह राजा किसी भी तरह उस चालुक्य-वंश की राजकुमारी के योग्य नहीं था परन्तु, इस समय उसने इस आशा से यह प्रस्ताव (राजा कर्ण के) सामने रखा कि आफत का मारा हुआ वह उसे स्वीकार कर ही लेगा।

देवगढ़ का राजा शकरदेव (१) बहुत दिनों से देवलदेवी के साथ विवाह करने की आशा लगाए बैठा था। इस अवसर पर उसने अपने भाई भीमदेव को कर्ण राजा के पास भेंट लेकर भेजा। भीमदेव ने उससे कहा 'देवगढ आपकी सहायता के लिए तैयार है। इस लडाई का एक मात्र कारण आपकी पुत्री है, इसलिए यदि आप जल्दी से जल्दी उसका विवाह कर देगे तो उसे व्याही हुई और उसके पति के अधिकार में समझ कर मुसलमान सरदार निराश होकर लडाई बद कर देगा और हिन्दुस्थान लौट जावेगा।" कर्ण को इस राजा की सहायता के वचन से बहुत आश्वासन मिला। यह डूबते हुए को तिनके के सहारे के समान था, इसलिए उसने सोचा कि वश मे नीचा हुआ तो क्या, एक म्लेच्छ के हाथों मे मेरी पुत्री चली जाए इससे तो अच्छा यही होगा कि उसका विवाह किसी हिन्दू राजा से हो जावे। अस्तु, यह सब सोच विचार कर उसने देवलदेवी का विवाह शकरदेव के साथ कर देने की बात स्वीकार कर ली।

परन्तु, अब बहुत देर हो चुकी थी इसलिए यह तरकीब पूरी न पड़ सकी और कर्ण के भाग्य मे जो कलक सहित मानभङ्ग का प्याला पीना लिखा था वह उसको पीना ही पडा। जब अलफ खॉ ने देवलदेवी के विवाह की बात सुनी तो वह बहुत चिन्तित हुआ और सोचने लगा कि यदि यह विवाह हो गया तो सुल्तान यह समझे बिना न रहेगा कि यह सब कुछ मेरी असावधानी के ही कारण हुआ है। इसलिए उसने यह निश्चय कर लिया कि किसी भी तरह रवाना होने से पहले देवल देवी को अपने अधिकार में कर ले। कौलादेवी का बादशाह के

(१) यह 'देवगिरियादव' वश का था। देखिए रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल, पुस्तक ४ पृ० २६

ऊपर कितना प्रभाव था, इस बात को भी वह अच्छी तरह जानता था, और इसीलिए वह समझता था कि उसकी जीत पर ही उसका जीवन निर्भर था। उसने अपने दूसरे सहायक सरदारों को इकट्ठा करके सब बातें समझा दीं और यह भी बतला दिया कि जितना दायित्व उसके सिर पर था उतना ही उन सब के ऊपर भी था। इस प्रकार समझा बुझा कर उसने सब को एकमत कर लिया और वे उसकी सहायता के लिए तैयार हो गए। जब सब बन्दोबस्त हो चुका तो सबने एक साथ ही पहाड़ी दर्रों में प्रवेश किया। जिस रास्ते से राजा कर्ण भागा था वह उन्हें मिल गया। उन्होंने आगे बढ़ कर उसकी गति को रोक दिया उसके साथी तितर बितर हो गए और मजबूर होकर अपने हाथी, घोड़े तम्बू डेरे आदि सब कुछ वहीं छोड़ कर उसे देवगढ़ भाग जाना पड़ा। पर्वत के सैंकड़े मार्गों में अलफ खाँ ने उसका पीछा किया और अन्त में वह देवगढ़ के किले से एक मंजिल की दूरी पर रह गया। यहाँ आते आते वह उस रास्ते को बिलकुल भूल गया जिससे करण भाग कर गया था और उसको ऐसा मालूम हुआ कि उसका पासा पलट गया और बना बनाया खेल ही बिगड़ गया। परन्तु उसी समय एक ऐसी घटना घटी कि उसे अचानक सफलता प्राप्त हो गई। यदि वह सारा शारा प्रयत्न करता और अच्छी से अच्छी चालें भी चलता तो उसे ऐसी सफलता नहीं मिल सकती थी।

जब यह मुसलमान सरदार अपनी फौज को आराम देने के लिए वहीं पर्वतों में दो दिन के लिए ठहर गया तो उसके लगभग तीन सौ सिपाहियों की एक टुकड़ी इलोरा की गुफाओं के चमत्कार को देखने के लिए निकल पड़ी। वे इन प्रसिद्ध गुफाओं को जाने वाले पहाड़ी संकड़े मार्ग से जा ही रहे थे कि एकाएक देवगढ़ का झंडा दिए जाते

हुए कुछ घुडसवारों से उनकी भेट हुई । वह भीमदेव की टोली थी जो अपने भाई की चिरमनोनीत वधू को लेकर घर जा रहा था। मुसलमान सिपाहियों की सख्या बहुत थोड़ी थी, परन्तु वे इतने आगे बढ चुके थे कि अब लौटना कठिन हो गया था इसलिए शत्रु पर आक्रमण न करके वे अपना बचाव करने के लिए तैयार खड़े रहे। भीमदेव के साथ देवलदेवी थी इसलिए उसको बहुत चिन्ता हुई। वह राजी खुशी इस झगड़े को टाल जाता परन्तु शत्रु सामने ही मौजूद था और देवगढ़ का रास्ता रोके हुए था इसलिए लडाई के सिवाय उसको और कोई चारा न सूझा। तत्काल ही दोनों दलों मे युद्ध शुरू हो गया। पहले ही हमले मे कितने ही हिन्दू सिपाही भाग खडे हुए और जिस घोड़े पर देवलदेवी सवार थी उसके एक तीर लगने के कारण वह जमीन पर गिर पड़ी। लडाई ने फिर जोर पकडा और सिरोही और अफ़ग़ानिस्तान की सेनाएँ लोहूलुहान होकर तलवारें चलाने लगीं। राजा कर्ण की पुत्री पृथ्वी पर चित पडी हुई थी और यदि भूल से भी उस पर एक वार हो जाता तो प्राणों के मूल्य पर उसके कुल की प्रतिष्ठा बच गई होती, परन्तु, उसी समय उसकी दासियों ने मुसलमानों को उसके नाम और कुल का पता बता दिया। जिसको खोजने की वे लोग पूरी पूरी कोशिश करके हार बैठे थे उसी का पता उन्हें इस विचित्र रीति से प्राप्त हो गया।

अब, अणहिलवाड़ा की राजकुमारी सम्मान के साथ अलफ खा के डेरे में पहुँचाई गई। जिस बादशाह पर इस कन्या की माता का अत्यधिक प्रभाव था वह लूट में प्राप्त हुए इस रत्न को पाकर कितना खुश होगा; इस बात को यह सरदार अच्छी तरह जानता था। उसने अपने लश्कर को आगे बढ़ने से रोक दिया और वापस गुजरात लौट

कर वहां से उस सुन्दर राजकुमारी को साथ लिए दिल्ली पहुँच कर सुल्तान को भेंट कर दी। राजधानी में पहुँचने से पहले ही उस राजकुमारी ने अपने अनुपम सौंदर्य से अलाउद्दीन के शाहजादे का हृदय वश में कर लिया था। उसी के साथ उसका विवाह हो गया और इस प्रकार उसने वह पद प्राप्त कर लिया जिसके लिए कितनी ही मुसलमान युवतियाँ व्यर्थ की आशा लगाए बैठी होंगी। फिर भी यह कौन कह सकता है कि जिस समय राजसभा में उसके मोहक रूप का बखान होता होगा और अमीर खुसरो की सितार के तारों से खिज़िर खाँ और देवलदेवी की प्रेमगाथा को अमर बनाने वाली मकारें गूँजती होंगी उस समय निराश शंकरदेव के प्रेम की याद करके अथवा अपने प्रतिष्ठाहीन और शोक में डूबे हुए पिता का ध्यान करके उसके हृदय पर उदासी न छा जाती होगी।

अणहिलवाड़ा के अन्तिम और अभाग राजा के विषय में इतिहास इससे अधिक और कुछ नहीं कहता है। जिसे अपने देश और गद्दी को छोड़ कर भागना पड़ा देश और सत्ता से भी प्यारी जिसकी राजपूती शान मिट्टी में मिल गई बुरे दिनों में स्त्री ने भी जिसका साथ छोड़ दिया और जिसके दुर्भाग्य में अन्तिम और सब से कटु डंक उसी की संतान ने मारा ऐसा राजा कर्ण कहीं इस तरह घुल घुल कर मर गया होगा कि उसका नाम लेने वाला भी कोई न रहा। परन्तु, क्या राजा कर्ण के हृदय का शोक उसकी मृत्यु के साथ ही शान्त हो गया था? अणहिलवाड़ा के बन्दरगाह को रेलपेल करके विजयी लोग जो माल ले गये थे उसी (माल) में एक ऐसा सर्प छुपा हुआ था जिसके भाग्य में उनके मर्मस्थान पर डंक मारना लिखा था।

वर्ष पर वर्ष बीतते चले गए और विजय अलाउद्दीन के रक्तरंजित झण्डे से बँधी हुई सी दिखाई देने लगी थी परन्तु फिर भी आकाश में अपने खड्ग को घुमाती हुई दुर्भाग्य की अधिष्ठात्रीदेवी धीरे धीरे नीचे उतरती चली आ रही थी। 'अपने शस्त्रों की सर्वत्र विजय देखकर बादशाह के मस्तिष्क मे एक हवा सवार हो गई थी और वह घमण्ड मे बहुत फूल गया था। अपने राज्य के आरम्भकाल मे वह मन्त्रियों की सलाह को जिस प्रकार ध्यान से सुनता था उस प्रकार अब उन पर ध्यान नहीं देता था। प्रत्येक कार्य उसकी अटल आज्ञा के अनुसार होता था। यह सब कुछ होते हुए भी, उसके राज्यकाल के विषय मे लिखा है कि "राज्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई, राज्य के दूर दूर के प्रान्तों मे न्याय और सुव्यवस्था फैली हुई थी, देश की शोभा दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। बडे बडे महल, मसजिदें, विद्यालय, हमामखाने (स्नानागार) मीनारे और किले तथा सभी प्रकार की सार्वजनिक एव व्यक्तिगत इमारतें इतनी जल्दी जल्दी तैयार हो रही थीं कि मानों जादू से ही खड़ी की जाती हों। इसके राज्यकाल में राज्य के सभी भागों में विद्वानों की भी इतनी बढ़ोतरी हुई कि जितनी पहले कभी नहीं हुई थी।"

"अब, बादशाह की महिमा और सत्ता अपने शिखर पहुँच चुकी थी। परन्तु इस ससार में सभी वस्तुए नाशवान् हैं। केवल परमात्मा ही अनश्वर है। इसलिए इस बादशाह के राज्य की कला भी अपनी पूर्णता को पहुच कर अब धीरे धीरे ढलने लग गई थी।' उसने अपने राज्य की बागडोर, खम्भात में एक हजार दीनारों मे खरीदे हुए गुलाम, मलिक काफूर के हाथ मे छोड़ दी थी। उसका उस गुलाम में पूर्ण विश्वास था और उसके किए हुए प्रत्येक अराजनैतिक एव अत्याचारर्ण कार्य का वह

पूर्ण समर्थन करता था । इसका फल यह हुआ कि राज्य के सभी सरदार उससे अप्रसन्न हो गए और उसके प्रति समस्त प्रजा में असंतोष फैल गया। मलिक काफूर के हृदय में बहुत दिनों पहले से ही राजगद्दी की लालसा उत्पन्न हो चुकी थी और अब वह ऐसे जाल रचने में व्यस्त था कि शाही वंश का समूल नाश हो जावे। देवलदेवी का पति खिजिरखाँ और उसके पिता के राज्य को नष्ट करने वाला अलाफखाँ उसके पहले शिकार हुए। उसने उनके शिर पर यह दोष मँढ़ा कि वे बादशाह के विरुद्ध षड़यन्त्र करके उसको मार डालना चाहते थे, और इसी अभियोग में अपनी नीचता और दुष्टबुद्धि से उसने ऐसे ऐसे जाल फैलाए कि जो केवल इयागो (१) जैसे दुष्ट प्रकृति वाले मनुष्य के द्वारा ही संभव हो सकते हैं। इसी समय चारों ओर विद्रोह की वह आग भड़कने लगी, जो बहुत दिनों से अन्दर ही अन्दर धधक रही थी और इस विद्रोहाग्नि की सबसे पहली चिनगारी गुजरात की उस भूमि में फूटकर निकली जहाँ पर अब तक वनराज के वंशानुयायी राज्य करते रहे थे। यह चिनगारी मानों इसलिए फूट निकली थी कि अब यहाँ के राजों को नाश करने वालों से बदला लेने और उनकी चिता सुलगाने का समय आ चुका था। इस प्रकार इस भूमि ने अपनी अन्तिम राजभक्ति का परिचय दिया। बादशाह ने कमालखाँ नामक अपने प्रसिद्ध सरदार को उपद्रव का दमन करने के लिए भेजा परन्तु अलाफखाँ के आदमियों ने जो मार दिया गया था वहाँ भी मार काट के बाद उसको हरा दिया इस समय चित्तौड़ के राजपूतों को भी पुनः अपनी कीर्ति का ध्यान हो

---

(१) शेक्सपियर के आथेलो नामक नाटक का एक पात्र जो अपनी चालाकियों और दुष्ट प्रकृति के लिए प्रसिद्ध है।

आया और उनका स्वाभिमान जाग उठा, इसलिए उन्होंने अपने किले पर से मुसलमान अधिकारियों को निकाल बाहर किया और अपने को फिर से स्वतंत्र घोषित कर दिया। उधर शंकरदेव के बहनोई हरपाल ने दक्षिण में विरोध खड़ा कर दिया और मुसलमान किलेदारों को भगा दिया।

इन सब समाचारों को सुनकर अलाउद्दीन ख़ूनी ने अपने निष्फल क्रोध के मारे अपने ही शरीर को नोंच लिया और अब उसके शोक और क्रोध का परिणाम इसके अतिरिक्त और कुछ न निकला कि उसके शरीर और राज्य की अव्यवस्था बढ़ती चली गई। कोई भी दवा उसके रोग को ठीक न कर सकी। अन्त में, सन् १३१६ ई० के दिसम्बर मास की उन्नीसवीं तारीख की शाम को उसने प्राण त्याग दिये और जिस दुष्ट को उसने अपने रक्त, मास और बड़ी कठिनता से प्राप्त की हुई राज्यसत्ता को छीन लेने के लिए धूल में से निकाल कर ऊँचा उठाया था उसी काफूर ने उसको जहर दे दिया, यह सन्देह भी वह अपने साथ ही ले गया।

---

# परिशिष्ट

॥ अथ जगदेव परमार रा कवित कंकाली भाटण रा कह्या ॥

कंकाली कनडी (१) वेस दीपण (२) सू चाली ।
गुजराति जैसंघ भाइ ततपिण (३) साम्हु ली (४) ॥
क छग कुस छत्रीस पारसाहण (५) बहु पायो ।
दे भासका (६) भनंत राज-फल वास संचायो (७) ॥
सिद्ध मसवोते (८) दिवस मांग जब मांगे सिरधर ।
जैसिंघ कहै कंकालि सु सु म्भ समपू (९) विवह (१ ) पर ॥१॥
पांच दिवस दरबार रही भाटण गुणधंती ।
सीस उपाडै (११) फिरी नगर नर सह सोमंती (१२) ॥
एक भपंम मथि पीमो (१३) फिस कारण कंकाली ।
भाजस सिर ढंकीयो गहे कर चंपक वाली ॥
जगदेव सिर ढकीयो सिर ढंके लम्मा कीयो ।
दाहियो हाथ भासीस द धव राव पिसमें (१४) भयो ॥ २ ॥

---

(१) नमक (२) रुचिर (३) तत्क्षण (४) सामने लिया स्वागत किया (५) प्रशासन इनाम इत्यादि (६) आशीर्वाद (७) संचित किया (८) प्रस्तुति विनय (९) समर्पित कर (१ ) विवाह (११) अनावृत सिर (१२) शोभती (शोभती) हुई (१३) मैंने कहा (१४) विस्मय ।

सिव कहै ककाल काई बोलै अफारो (१)।
जो कछु दै जगदेव ताहि चोगुणो हमारो ॥
करे राव सू विसर (२) गइय मारह द्वारैं।
पुत्त लुछि मिलतास मत्री मत्री पर वारैं ॥
सुर नरगण गन्ध्रप (३) मणि अभरन (४) को ससार थिर।
जुग जुग नाम कीरत रहे जो ककाली दीयै सिर ॥ ३ ॥
दीजै मदगुरु गयद वलै तोषार (५) विव्रह पर।
दीजै गाम केर रयण (६) दीजै अचह (७) भर ॥
दीजै भैंस्या वह्वोत वलै मोताहल (८) भाई।
तोही लछ ताम वलै सोवृन (९) वहु चाई ॥
दीजीयै अनडवर सहित भटां थट समपणो।
इम कहै जगदेवरी सीस न दीजै आपणो ॥ ४ ॥
आपा गैवर (१०) एक राव पचसाति समपै।
आपा अश्व दा पांच राव पंचास समपै ॥
आपा चचल चीर हीर मोताहल दीजां।
आपां द्या धनमाल राव सु देत न पूजा ॥
दीजीयै सीस ककाल नों मु म तुम छै मागणा।
इण दान राव पूजै नहीं सीस न हुवै चोगुणा ॥ ५ ॥
जिण जीवन कै काज अन धन लिछमी सचै।
जिण जीवन कै काज काल दुकालह वचै (११) ॥
जिण जीवन कै काज होम कर नवग्रह टालै।

---

(१) अत्युक्तिपूर्ण, उभारकर (२) विसर्जन (३) गन्धर्व (४) आभरण (५) तोषा=कपडे लत्ते गहना आदि (६) धन (७) अन्जुलि अथवा आचल भर कर (८) मुक्ताफल (९) सुवर्ण (१०) गजवर, श्रेष्ठ हाथी (११) बचै

जिण जीवन के काज सोइ जोतिक (१) विचारे।
जिण जीव सटै (२) जस विसतरे धन जोपन कुरन मीटै।
जगदेव जीव जगजस होम न आपि सहेलां सटै ॥ ६ ॥
जिण जीवन के काज भोम भोगवें भूसंगम।
जिण जीवन के काज (ल) गाम भोगवे तरंगम।
जिण जीवन के काज मिलै गुणवंती सुन्दर।
जिण जीवन के काज माहा सुख मांणो मिन्दर।
जीजीये जैत स्वामी आपण जो संसार असार है।
सु कंस सरोवर हंस गे कुल बूडे अंधियार है ॥ ७ ॥
मेर चलै ध्रू टलै पाण (३) गंग गहन सु कै।
रवि ससि नह उगसी सपत साइर (४) जल सु कै (५) ॥
सेस न सिर धर सहै भीम भारथ नह मंडै।
हणवंत दूरबल (६) हुवै पाण (७) पुरुषोतम छंडै ॥
अणभंग (८) चित दाता इभक मंतकस जोवंत पिन।
हारंत राम रावण आगे रहै पवन धरसे न धन ॥ ८ ॥
तू नर वै जगदेव भट कंकाल इंकारपो।
मांगण जे मांगीयो चित आपरै संभारपो ॥
गया महिण अपणै वडे अमरपणु पूजै।
अवस मरण नह टलै अमर जस में नह सूजै।
जो सिर देव तो आपणो रहै कीरत संसार इण।
कवि, वैण समर दधीच वे पूर्वा (६) चिहु में पंच मोहि गियै ॥ ६॥

---

(१) ज्योतिष (२) के लिये (३) पानी (४) सागर ५) सूखे (६) दुर्बल
(७) मर्यादा (८) अभंग (६) दुनिया

तव नर वै जगदेव लोह कटारो मेल्यो।
कमल सीस उतरयो त्रीया अचह (१) कर भेल्यो।
दिसटासण (२) नह टलै सीस बोलै अकारै।
देह देह मागणा कीरत पसरे जग सारे॥
भर नैण नीर सुकलीणीया (३) कर जोडे वीनती करैं।
कुछ कुछ दान कंकाल नो रावत देत लज्या मरै॥ १०॥
साम सीस उर लाइ थाल सोव्रन (४) जूगतां (५)।
पाटवर सो हेक भात भांत दीसता॥
हीरा मणी माणक कनक काकण अपूरव।
चोवा चदन वास धूत मलियागर धूपता (६)॥
सुरगा विमाण जब ऊतरथा सुर कांमण (७) इण परि कहे।
जगदेव जीव परमल (८) लग्यो पोहवी (९) बोल अविचल रहे॥११॥

## कंकाल कहे फुलमालनु (१०) रावत के मन आवीया

नही तुम सरिपो दान काहा ले रावत आवै।
सिधराजा जयसिंघ ताहि मील काहा दीपावै॥
नयणे नीर भरत इंद जिम ऊलर (११) आया।
विषम कठिण की वात्ति तास किण किण की माया॥
जोघार (१२) जामनी नो भाण (१३) थो सो सुरलोक सिंधावियो।
फुलमालु कहे कंकाल नु रावत ए मन आवियो॥ १२॥

---

(१) अञ्चल (२) दिष्टासन, विधिविधान (३) सुकुलीना (४) सुवर्ण (५) देखते (६) धूपित करते (७) सुर कामनी (८) परिमल, सुवास (९) पृथ्वी (१०) फूलमदे, जगदेव की पत्नि (११) उमड़ आए (१२) योद्धार (१३) भानु

## अथ सिद्धराय जैसंघ ना कवित्त लि० । छप्पै ।

तीन नेत्र त्रसूल डम डम डमरू वज्जै ।
चौरासी आसन्न जोग सब जो जो सज्जै ॥
झर्यो अमृत नैंन चद जब सिर पै आयौ ।
मृग सम मिलै न कोय भूख्यौं ति हाथी पायौ ॥
आक धतूरा कर धरै रुण्डमाल कठै सह्यौ ।
वाघ बैंल कु मारण धर्यौ तब शकर हा हा कह्यो ॥१॥
ऊदर बिल खिण खिण मरे पेस भोगवै भुयगम ।
वलद हल वाह वहि मरे हरी जव चरै तुरगम ॥
कृपण धन सची मरे वीर विद्रवे त्रिविध पर ।
पडित पढि पढ़ि मरे मूरख विलसे राय घर ॥
सुण सिद्धराय गुज्जरधरा करू वीनती श्रवण सुभ्र ।
हम पढ़े गुणे चातुर अवर कवण पारषौ जैसघ तुझ्र ॥ २ ॥
चिडी चुगण कु गई पूछ पुसाइ घर आई ।
बहु आग्गे कु गई चीर दभाइ घर आई ॥
कूकर कढ़ावन गई ऊँट मर पड्यौ दुआरहिं ।
पुत्र वधावन गई सोग पड्यौ भरतारहिं ॥
सुण सिद्धराय गुज्जरधणी करू वीनती श्रवण सुभ्र ।
हम पढ़े गुणे चातुर अवर कवण पारषौ सघ तुझ्र ॥ ३ ॥
थिर सें सत रचो मालथभ सें सोल निरतर ।
पूतली सहस अढ़ार रची रूप रग मनोहर ॥
वीस लाप धजदड कलस लप दो इहि माला ।
छप्पन कोटि गज तुरी रच्यौ रूप रग निहाला ॥

असपति गजपती नरपति मोनष भय भनि सबै ।
परमार कीध जैसिंह सुभ दुक रुद्रमालो चाडै ॥ ४ ॥

॥ अथ सिद्धराय जैसंघ नो कवित ॥

पाँच लाष पाषर्यां असी लष पाय तुरंगम ।
जोधा महा सुभ्भर उभा असवार अरु गम ॥
वाणापति षेलाष सबद षेषीस परोणा ।
सोल सहस सामंत सहस बत्तीसे रांणा ॥
भू चलो ग्रीख पूठी धरा वीस सहस वाजित्र बजी ।
सोलंकी सिद्ध जैसिंघ सू मंडै नहीं को मंडली ॥ १ ॥

अथ सिद्धराय जैसंघ नो दान लि० छप्पै ।

वीस त्रीस पचास साठि सत्तेर सत्योत्तर ।
भट्टां आप्या आंण तुरी तुषार विविध पर ॥
दस डोल दस डाल सात नेजा इक डंबर ।
हस्ति पंच मैमंत दीया जैसिंघ नरिंदह ॥
भाट के परच दस लाष बलि पुनि अक्षबराकव कीय ।
देषत भाट हरषत हुए सिद्धराय इतने दिये ॥
चलत अचल चल चलन मरत धरधर जड़ उट्ठिय ।
गंग उलट षह अंग संग मंकर सट छुट्टिय ॥
असुर परत मुख मरत उगत भय तौं मदि मंडल ।
पटव चंड महमंड हटत बल भय कमंडल ॥
षह धरत इंद्र डगमगत चंद्र मसहत दिवाकर देषे दुष ।
धर धसत मेर सलसलत सेस मम मह मम मह मुख्ख से संग दुष ॥

# अनुक्रमणिका (पूर्वार्द्ध)

## १ (ग्रन्थ और ग्रन्थकार)

## २ ऐतिहासिक व्यक्ति

——०——

—•—

## ३, ऐतिहासिक स्थान ( नगर ग्राम इत्यादि )

—oo—

———————

# अनुक्रमणिका (उत्तरार्द्ध)

## १, ग्रन्थ और ग्रन्थकार

श्र



त्र



--------

## २ एतिहासिक व्यक्ति

### अ



### आ

## च



## ज

## म

मध्यमात परमार राजपूत था। पड़्याए के मन्थकर्ता आचार्य ने उसके उस समय के अस्तित्व का वर्णन करते हुए लिखा है कि, वह त्रिवीर अर्थात् बलवान्, बुद्धिमान और धनवान था। सिद्धराज की उ पर बहुत प्रीति थी और अन्त में वह अपने राजा (सिद्धराज) की नौकरी छोड़ कर परमर्दिराज के दरबार में चला गया था। परमर्दिराज की पट्टरानी का वह राखी बँध भाई था।

अब जो कथा पाठकों के आगे आएगी उसका मुख्य नायक यही शूर वीर सेनापति होगा। इस कथा का यद्यपि कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है तथापि इसके द्वारा राजपूत जीवन के वीरतापूर्ण चित्रों को देखने का अवसर मिलेगा तथा एक ऐसी अद्भुत कथा का रस प्राप्त होगा जिससे प्रत्येक सच्चा क्षत्रिय-पुत्र आनन्दित होता है।

संग्राम किया था तब परमर्दिराम सपादलक्ष के राजा के पक्ष में था परन्तु वह हार कर लौट गया था। 'जिस पृथ्वीराज ने २१ बार म्लेच्छों का नाश किया इत्यादि सब वृत्तान्त लिखा है परन्तु इससे पृथ्वीराज के समय के विषय में ... उसमें पैसा है